1993-94

20 रुपए

साहित्य वार्षिकी

इंडिया टुडे

सन्नाटे में संवाद

राय कृष्णदास, शिवपूजन सहाय, अमृत राय, नागार्जुन, कैफ़ी आज़मी,
केदारनाथ सिंह, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, अशोक वाजपेयी,
विजय मोहन सिंह, सूर्यबाला, मृदुला गर्ग, असगर वजाहत, स्वयंप्रकाश,
शलभ श्रीराम सिंह, प्रियंवद, अरुण कमल, राजेश जोशी....

साथ में

दिलीप कुमार से ज़ावेद अख़्तर की खास बातचीत

फ़िल्मी गीतः रंगोली से चोली तक

सच्चे लोग
सच्चा आनन्द
RED & WHITE
Flake
STATUTORY WARNING
CIGARETTE SMOKING
IS INJURIOUS TO HEALTH
RED & WHITE
रेड एण्ड व्हाइट
वैधानिक चेतावनी: सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

अपनी बात

सबसे पहले तो हम उन अनगिनत पाठकों और रचनाकारों को हार्दिक धन्यवाद देना चाहते हैं जिनकी वजह से पिछली साहित्य वार्षिकी बेहद सफल रही. उन्होंने जो ढेरों पत्र लिखे वे सबूत हैं इस बात के कि श्रेष्ठ साहित्य के लिए भूख उनमें बनी है. तभी तो एक पाठक ने पूछा कि साहित्य वार्षिकी को "अर्धवार्षिकी, फिर त्रैमासिकी कब बना रहे हैं." वैसे, कुछ पाठकों की प्रतिक्रिया कुछ इस तरह भी थी, "इस अंक को संभालकर रखूंगा. इसकी रचनाओं की वजह से नहीं, आपकी खर्चीली सहूलियत और प्रस्तुत करने के ढंग की वजह से. आप लोगों ने हिंदी साहित्य को इतनी इज्जत के साथ छापा है कि हिंदी बिलकुल भी अनुसूचित नहीं लगती है."

जहां तक सजग समीक्षकों और साहित्यकारों की बात है, उनकी प्रतिक्रिया मिश्रित रही. किसी को यह "बोझिल, उबाऊ, नकचढ़ा, अपठनीय" लगा, तो किसी को "यह प्रयास सराहनीय" लगा. अधिकांश लोगों ने हिंदी साहित्य की दुनिया में इंडिया टुडे की पहल पर सुखद आश्चर्य व्यक्त किया. एक सम्माननीय साहित्यकार ने इसे "तृतीय श्रेणी का खेल" माना, तो एक ने "बड़ी सूझबूझ" से तैयार किया गया "प्रतिनिधि संकलन". जाहिर है, हिंदी के साहित्यकारों में जितने पूर्वाग्रह हैं उतनी प्रतिक्रियाएं भी मिलीं. लेकिन जैसा कि हमने पिछली बार भी कहा था, हमें इन पूर्वाग्रहों में न फंसना है और न कोई पूर्वाग्रह पालना है.

अपने इसी दृष्टिकोण के तहत हम इस बार फिर साहित्य को सीधे पाठकों से मुखातिब कर रहे हैं. हमें आशा है कि ये रचनाएं उनकी संवेदनाओं को छुएंगी, उन्हें अपने भीतर झांकने और बाहर की दुनिया को नई संवेदना के साथ देखने-समझने को प्रेरित करेंगी.

आवरण चित्रः मक़बूल फिदा हुसैन
चित्र का शीर्षकः 'शांति-शांति'
चित्र सौजन्यः वढेरा आर्ट गैलरी, दिल्ली

इस बार हमने एक नया खंड शामिल किया है—'धरोहर'. इसमें साहित्य की उन दो विभूतियों की अप्रकाशित रचनाएं प्रस्तुत कर रहे हैं जिनकी जन्म शताब्दी का वर्ष इन दिनों मनाया जा रहा है. प्रख्यात कला मर्मज्ञ राय कृष्णदास की रचना छायावाद के स्तंभ माने जाने वाले जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और रचना प्रक्रिया का परिचय देती है. आचार्य शिवपूजन सहाय के अवदानों के बारे में कम ही चर्चा हुई है. उनकी डायरी के कुछ पन्ने उनके व्यक्तित्व और उनके दौर का दिलचस्प चित्र पेश करते हैं. पिछली बार की तरह उपन्यास अंश, कहानियां, कविताएं और व्यंग्य रचनाएं इस बार भी हैं. सिनेमा खंड के लिए इस बार प्रस्तुत हैं—फिल्मी गीतों के स्तर पर परिचर्चा, और करीब पांच दशकों से अभिनय कला के शिखर पर विराजमान दिलीप कुमार की यादें और जज्बात खुद उनकी जबान से. भारतीय ही नहीं, इस पूरे उपमहाद्वीप के जनमानस पर छाये रहने वाले हिंदी फिल्मी गीतों ने जो लंबा सफर तय किया है उसका जायजा ले रहे हैं उनके प्रस्तुतीकरण से जुड़े लोग.

*हम उन सभी रचनाकारों और चित्रकारों के आभारी हैं जिन्होंने इस अंक के लिए रचनाएं और चित्र आदि भेजे. हमें आशा है उनका सहयोग हमें बराबर मिलता रहेगा. वरिष्ठ कॉपी एडीटर **अशोक कुमार** और उप संपादक **संजय चौहान** के संपादन सहयोग से तैयार यह विशेष अंक आपको समर्पित है सुधी पाठको!*

अरुण पुरी

अंक की साज-सज्जाः **अनिल शर्मा, सुबाचन यादव, सुब्रतो रॉय, सुधीर जे. कुमार, नुपुर मेहता**

साहित्य वार्षिकी: 1993-94

● **संपादकीय कार्यालयः** लिविंग मीडिया इंडिया लि., एफ-14/15, कनाट प्लेस, नई दिल्ली-110001. फोन: 3315801-4, टेलेक्स: 31-61245 INTO IN, तार: लिवमीडिया, नई दिल्ली. **ग्राहकी चंदा भेजें:** इंडिया टुडे (हिंदी), पो.बॉक्स 114, नई दिल्ली-110001 ● **सर्कुलेशन कार्यालयः** इंडिया टुडे, एफ-14, कनाट प्लेस, मिडल सर्कल, नई दिल्ली-110001. फोन: 3313076-8, टेलेक्स: 31-62634 INTO IN, तार: सर्कुलेट, नई दिल्ली. ● **मुख्य विज्ञापन कार्यालयः** 28 ए और बी, जॉली मेकर चैंबर-2, नरीमन पाइंट, मुंबई-400021. फोन: 2026152, 2029326, 2029435, टेलेक्स: 11-5373 THOM IN, तार: लिवमीडिया, मुंबई. ● **क्षेत्रीय विज्ञापन कार्यालयः** ए-1, हैमिल्टन हाउस, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001; फोन: 3313076, टेलेक्स: 031-62634 INTO IN, फैक्स: 3327330, 3712998 ● द्वितीय मंजिल, 98 ए, डॉ. राधाकृष्णन सलाई, मायलापोर, मद्रास-600004. फोन: 831605, 831719, 831729, 832428, 832247 तार: लिवमीडिया, मद्रास ● 201-204, रिचमंड टॉवर्स, 12, रिचमंड रोड, बंगलूर-560025 फोन: 212448, 214106, टेलेक्स: 0845-2217 INTO IN, तार: लिवमीडिया, बंगलूर ● 12-सी, एवरेस्ट 46-सी, चौरंगी रोड, कलकत्ता-700016. फोन: 225398, 221922, टेलेक्स: 21-7138 INTO IN, तार: लिवइन-मीडिया, कलकत्ता.

● कॉपीराइट 1992 लिविंग मीडिया इंडिया लि. विश्व भर में सर्वाधिकार सुरक्षित. किसी भी रूप में सामग्री की नकल प्रतिबंधित. इंडिया टुडे अनिमंत्रित प्रकाशन सामग्री को लौटाने की जिम्मेदारी स्वीकार नहीं करता.

● लिविंग मीडिया इंडिया लि., एफ-14, कंपिटेंट हाउस, कनाट प्लेस, नई दिल्ली के लिए अरुण पुरी द्वारा संपादित और प्रकाशित तथा थॉमसन प्रेस इंडिया लि. फरीदाबाद, हरियाणा में मुद्रित.

जेके टायर

हम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के
स्टील रेडियल टायर
बनाते हैं।

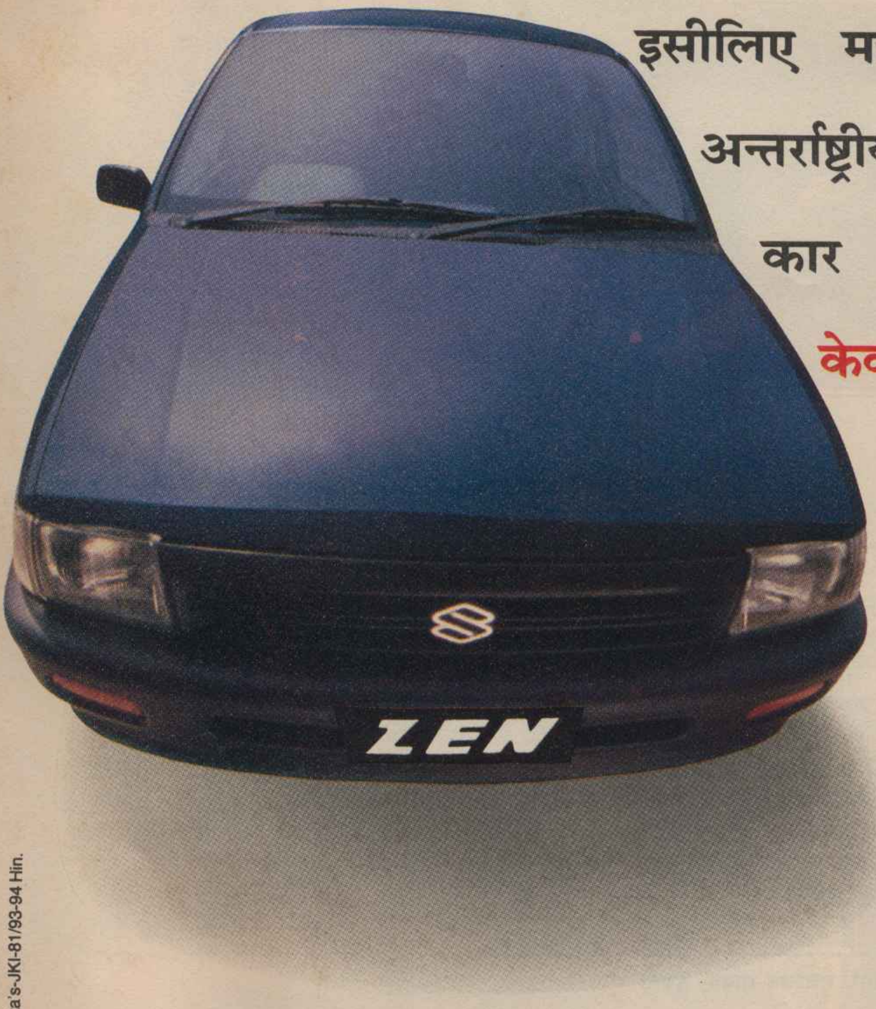

इसीलिए मारुति ने अपनी
अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की
कार ज़ैन के लिए
केवल जे के ही
चुने।

Sista's-JKI-81/93-94 Hin.

जेके स्टील रेडियल
असली रेडियल

सर्वश्रेष्ठ भारतीय मोटरों के लिए केवल एक ओरिजिनल इक्विपमेन्ट स्टील रेडियल।

अगले पन्नों पर

धरोहर 6

•**प्रसाद की आस्थाएं**—राय कृष्णदास: 6
•**डायरी के कुछ पन्ने**—आचार्य शिवपूजन सहाय: 11

उपन्यास अंश 15

•**चुप होता हुआ समय**—निर्मल वर्मा: 16
•**भुगतो असीमा**—मृदुला गर्ग: 24

कहानियां 31

•**अपने देश में**—कमलेश्वर: 34 •**सांझवाती**—सूर्यबाला: 38 •**शेरपुर १५ मील**—विजय मोहन सिंह: 40 •**कतरन**—गिरिराज किशोर: 52 •**तख्ती**—असगर वजाहत: 58 •**अपनी चमड़ी**—अमृत राय: 76 •**पलंग**—प्रियवंद: 78 •**खेल**—पंकज बिष्ट: 83 •**ढलान पर**—स्वयंप्रकाश: 89 •**लंठ**—अब्दुल बिस्मिल्लाह: 96 •**शापग्रस्त**—अखिलेश: 103

व्यंग्य रचनाएं 117

शोमैन के पीछे क्या है—मनोहर श्याम जोशी: 118 • **दंगे में मुर्गा**—ज्ञान चतुर्वेदी: 123 • **पीले फूल कनेर के**—रवींद्रनाथ त्यागी: 132

कविताएं 137

•**नागार्जुन: 138** •**केदारनाथ सिंह: 139** •**कैफ़ी आज़मी: 144** •**अशोक वाजपेयी: 143** •**रामदरश मिश्र: 144** •**राजेश जोशी: 144** •**जितेंद्र कुमार: 147** •**अजित कुमार: 147** •**प्रयाग शुक्ल: 151** •**विनोद भारद्वाज: 153** •**लीलाधर जगूंड़ी: 154** •**बद्रीनारायण: 155** •**राजी सेठ: 158** •**गुलजार: 157** •**अरुण कमल: 158** •**कुमार अंबुज: 160** •**शलभश्रीराम सिंह: 160** •**विमल कुमार: 164** •**संजय चतुर्वेदी: 166** •**कात्यायनी: 168** •**हरिमोहन: 171** •**मदन कश्यप: 173**

सिनेमा 177

•दिलीप कुमार से जावेद अख्तर **की खास बातचीत: 178**
•**फिल्मी गीत: रंगोली से चोली तक: 190**

CPL

CPL

The highest standards of perfection.

CHOKSONS PRIVATE LTD.

Post Box 8943, Saki Vihar Road, Powai, Bombay-400 072.
Telephone: 8322691 □ 8328520
□ 8329347 □ 8349121. Showroom: 2060846 □ 2084539
Telex: 011-79195 CPL IN Fax: 91-22-8345456

Fall in love with electricity

■ **BOMBAY**: VYAPTI MARKETING ☎ 2064659, 2089968 ■ **PUNE**: JYOTI ELECTRIC & TRADING CO. ☎ 324324 ■ **GOA**: LAWANDE ELECTRIC STORES ☎ 43573 ■ **AURANGABAD**: SATYA ELECTRICALS ☎ 24991, 25281 ■ **NEW DELHI**: KARAN TRADING CO. ☎ 3713235 ■ **MADRAS**: GENERAL ELECTRICALS ☎ 410240 ■ **HYDERABAD**: LIGHTWELL ELECTRICALS ☎ 662924, 664803. BALACHANDRA ELECTRICALS ☎ 611141, 613464 ■ **TELLICHERRY**: MODERN AGENCIES (AGENTS FOR KERALA) ☎ 23117, 20608 ■ **UDUPI**: KUMAR AGENCIES (FOR COASTAL KARNATAKA) ☎ 32200 ■ **SURAT**: JHAVERI ELECTRIC CORPN. ☎ 24551 ■ **BHAVNAGAR**: BHARAT ELECTRIC STORES ☎ 26470 ■ **CALCUTTA**: TECHNO ELECTRIC CORPN. ☎ 252076, 254417 ■ **LUCKNOW**: ALAKNANDA ELECTRICALS ☎ 235447

HEADQUARTERS

धरोहर

राय कृष्णदास

आचार्य शिवपूजन सहाय

धरोहर

राय कृष्णदास

प्रसाद की आस्थाएं

कला मर्मज्ञ, साहित्य मनीषी राय कृष्णदास की जन्म शताब्दी इस वर्ष मनाई जा रही है. प्रस्तुत है प्रख्यात साहित्यकार जयशंकर प्रसाद पर उनका एक अप्रकाशित रोचक संस्मरण:

चित्र सौजन्य: भारत कला भवन, वाराणसी/छाया: अनुज अग्रवाल

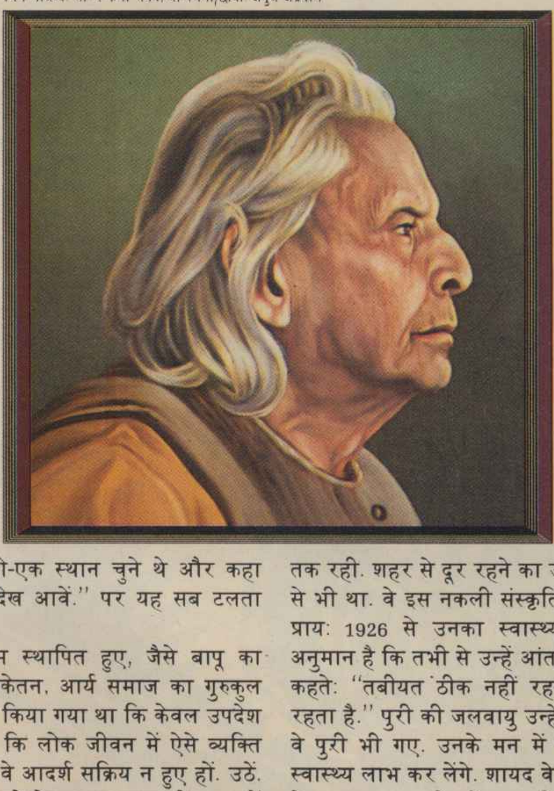

प्रसाद जी अपने परंपरागत शहरी जीवन से ऊब चुके थे. वे अपने परंपरागत व्यापार तक बेचने को उद्यत हो चुके थे. जब वे 'कंकाल' को अपने मन में गढ़ रहे थे तब उनको यह विचार आया कि क्यों न शहर से तनिक हटकर एक आश्रम की तरह की चीज खोलें. वहां स्थानीय बालकों के लिए एक पाठशाला चलावें. यही बात बहुत कुछ 'तितली' में भी एक स्थल पर आयी है. प्रसाद जी के मन में था कि वहां कुछ खेतीबाड़ी करायेंगे जिससे उनका निजी खर्च चले और उस आश्रम का भी. वे यह कहते कि गांव के उस जीवन में थोड़े खर्च में काम चल जावेगा. उन्होंने इसके लिए काशी के बाहर ही दो-एक स्थान चुने थे और कहा करते: "एक दिन चलो, चलकर देख आवें." पर यह सब टलता गया.

उस समय देश में कई आश्रम स्थापित हुए, जैसे बापू का सेवाग्राम, रवींद्रनाथ का शांति निकेतन, आर्य समाज का गुरुकुल कांगड़ी आदि. इस बात को महसूस किया गया था कि केवल उपदेश से आदर्श नहीं चल सकता है जब कि लोक जीवन में ऐसे व्यक्ति नहीं उतरते स्वयं जिनके जीवन में वे आदर्श सक्रिय न हुए हों. उठें. तभी लोक उन्हें ग्रहण करेगा. इसी को लेकर इस प्रकार के आश्रमों की स्थापना हुई. किंतु समाज की दशा ऐसी विकृत हो उठी है कि बाद में चलकर ऐसे प्रयोग विशेष सफल नहीं हुए. यही कारण है कि बापू ने साबरमती आश्रम को छोड़कर सेवाग्राम बनाया. प्रसाद जी ने 'कंकाल' वाले निरंजन का मोहभंग करके इसी वास्तविकता को दिखलाया है. वस्तुत: प्रसाद जी की आश्रम पर तो आस्था न थी फिर भी वे आदर्श बस्ती में विश्वास करते थे और चालीस-पचास परिवारों की, जिनकी मनोवृत्ति एवं प्रवृत्ति में साम्य हो, एक बस्ती बसाना चाहते थे जो स्कूल, चिकित्सालय आदि से स्वत: पूर्ण हो. 'तितली' में शैला का 'धामपुर ग्राम संगठन' इसी प्रकार की चीज है. 'कंकाल' में मंगलदेव की पाठशाला है. किंतु वे निजी झंझटों में फंसे रहे और यह चीज विचार के ही स्तर तक रही. शहर से दूर रहने का उनका यह विचार कई और कारणों से भी था. वे इस नकली संस्कृति से दूर हट जाना चाहते थे. उधर प्राय: 1926 से उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिर रहा था. मेरा अनुमान है कि तभी से उन्हें आंतरिक यक्ष्मा हो चुका था. अकसर वे कहते: "तबीयत ठीक नहीं रहती, पेट में भारीपन और दर्द-सा रहता है." पुरी की जलवायु उन्हें पसंद थी, इसी कारण तनिक बाद वे पुरी भी गए. उनके मन में था कि खुले वातावरण में रहकर स्वास्थ्य लाभ कर लेंगे. शायद वे शहर से बाहर चले जाते तो यक्ष्मा के प्राणघातक प्रकोप से बच भी जाते पर होनी कुछ और ही थी.

'कंकाल' में समाज का वर्ण-संकरी रूप प्रकट हुआ है. प्रसाद जी सृष्टि को ही वर्ण-संकरी मानते थे. 'कंकाल' में उन्होंने समूचे समाज

प्रसाद जी की आश्रम पर तो आस्था न थी फिर भी वे आदर्श बस्ती में विश्वास करते थे... 'तितली' में 'धामपुर ग्राम संगठन' इसी प्रकार की चीज है.

चित्र सौजन्य: काशी नागरी प्रचारिणी सभा/ छाया: अनुज अग्रवाल

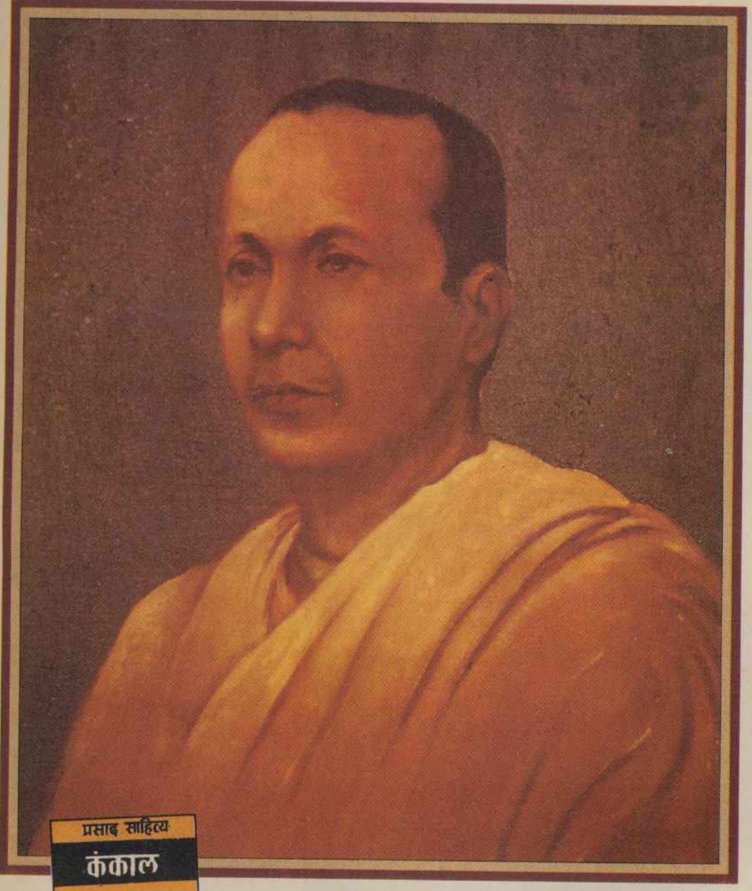

'कंकाल' में समाज का वर्ण-संकरी रूप प्रकट हुआ है...'कंकाल' प्रसाद जी का मेनिफेस्टो है, उनके धार्मिक विचारों का, उनके भीतर चल रही उथल-पुथल की इसमें एक उद्‌घोषणा-सी है.

के भीतर के 'कंकाल' को प्रकट किया है. इसीलिए जहां 'तितली' में सौंदर्य और कोमल भावना की अभिव्यक्ति है, वहीं 'कंकाल' में कठोर और खुरदुरे वीभत्स तत्वों का प्रकाश है. इसके साथ-साथ 'कंकाल' प्रसाद जी का मेनिफेस्टो है, उनके धार्मिक विचारों का, उनके भीतर चल रही उथल-पुथल की इसमें एक उद्‌घोषणा-सी है. पहले तो आर्य परंपराओं की उदात्तता जो उनके सभी नाटकों, काव्यों आदि में अजस्र मिलती है, उसकी व्याख्या बराबर की गई है. क्या सनातन धर्म अपने वर्तमान रूप में उसी उदात्त परंपरा की रक्षा कर रहा था अथवा एक सड़े-गले समाज को ढो रहा था.

हिंदू धर्म के अंदर जो आंदोलन हुए, जिनमें आर्य समाज वाला सुधारवादी आंदोलन था, वह कहां तक सफल हुआ? 'कंकाल' में प्रारंभ में ही उस पर प्रसाद जी ने अपना लंबा वक्तव्य दिया है. वे आर्य समाज के उत्कृष्ट रूप को स्वीकार करते और ऐसे व्यक्तियों को 'आर्य' कहते. उसी वर्ग में जो साधारण कोटि के व्यक्ति थे उन्हें वे 'आर्य समाजी' कहते और जो प्रचारक किस्म के वाद-विवादी प्रकार के लोग थे उन्हें 'आरिया' कहते.

हिंदू धर्म के संबंध में हम लोगों की चर्चा होती रहती. हम लोगों के बीच कई प्रकार के लोग थे. काशी प्रसाद जायसवाल का तो मत था कि ब्राह्मणवाद ने ही हिंदू धर्म को इस 'गर्त' में ला पटका. रामचंद्र शुक्ल भी ब्राह्मण पौरोहित्य की हंसी उड़ाते, वे कहते: ''दुख इसका है कि इन लोगों ने धर्म को व्यवसाय बना लिया है...ये लोग सुधार की बातों का विरोध इसलिए करते हैं क्योंकि इस प्रकार उनके रोजगार पर आघात पहुंचता है.'' कभी-कभी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी, प्रसाद जी और मैं तथा इस गोष्ठी के कुछ अन्य लोग सनातन धर्म की रूढ़िवादिता और बाह्याचार के इस पक्ष को लेकर ''सड़ा-तन'' धर्म कहते थे. प्रसाद जी इलाहाबाद के गिरिजाशंकर की यह उक्ति अकसर दोहराया करते: ''दीवार पर पानी का छींटा मारा, सफेदी पर अपनी चार उंगलियां रगड़ीं और मस्तक पर फेर लीं. उज्ज्वल और उन्नत ललाट देदीप्यमान हो उठा.'' प्रेमचंद की वर्णाश्रम धर्म पर अनावश्यक आस्था न थी. उन्होंने प्रसाद जी को एक पत्र लिखा था, ''किस बात पर गर्व करें वर्णाश्रम धर्म पर, जिसने हमारी जड़ खोद डाली.'' 'कंकाल' में भारत संघ (नाम साम्य के लिए, भारत धर्म महामंडल) के विज्ञापनों में बहुत कुछ ऐसी ही बात कही गई है. आचार्य केशव जी भी धर्म में सुधारवाद के समर्थक थे, पर धर्मशास्त्र की परिधि के भीतर ही. वे कहते: ''धर्मशास्त्र में इतनी व्यापकता है कि सभी समस्याओं का समाधान मिल जाता है, फिर उसे हम क्यों छोड़ें.'' अथवा कहते: ''धर्मशास्त्र ने जो मर्यादाएं बना रखी हैं, वही तो हिंदुत्व है; उसे छोड़कर हिंदुत्व कहां रहेगा.'' 'कंकाल' में विशेष रूप से प्रसाद जी ने इन प्रश्नों को बड़े मौलिक रूप में उपस्थित किया है और उनकी अपनी निजी व्याख्या भी दी है.

उन दिनों पौराणिक उपाख्यानों की तार्किक व्याख्या का युग था. 'कंकाल' में इसका कई बार प्रयोग है, जैसे अहिल्या की कथा का. प्रसाद जी कहते हैं कि अहिल्या अपने पाप के प्रायश्चित स्वरूप जब जड़वत हो गई, हवा पीकर भस्म पर सोने वाली आदि हो गई, यही तो पाषाणमयी हो जाने का लक्षण है. 'कंकाल' में ऐसे कई प्रकरण आए थे. प्रसाद जी की यह बात थी कि वे अपनी रचनाओं को अपनी मित्र मंडली को सुनाया करते. उन्होंने 'कंकाल' भी हम लोगों को कई बैठकों में सुनाया था. उसमें इस प्रकार की सामग्री बहुत अधिक थी. तीस-चालीस पृष्ठों में 'कृष्णचरित' भी था. उसमें बहुत से आख्यानों द्वारा मानव समाज के विकास क्रम को भी दिखलाया था, उनमें से एक याद आता है: 'गोवर्धन धारण.' शायद यह था कि गोपों की अर्ध-यायावर-अवस्था से घर बसाकर एक नयी सामाजिक संस्कृति का निर्माण हुआ, जो यह संस्कृति प्रलयंकारी वर्षा से उत्पन्न हुई. हम लोगों को यह अंश बहुत पसंद आया. पर इसके कारण कथा प्रवाह में कुछ-कुछ गतिरोध हो जाता था. मैंने सुझाव दिया कि इस सामग्री को स्वतंत्र छापो. उन्होंने उक्त अंश निकाल तो दिये पर वे कहां गए, पता नहीं.

प्रसाद जी के नाटकों में भी ऐसी व्याख्याएं हैं जहां प्रसाद

'कंकाल' को देखकर प्रेमचंद प्रमुदित हुए, ''कंकाल' में एक समाज के सच्चे हितैषी की आंखों का गर्म, बड़ी-बड़ी बूंदों वाला आंसू है...''

जी ने पौराणिक उपाख्यानों को आधुनिक संदर्भ में, नई दृष्टि से देखा है उनके मौलिक समाधान हैं. प्राय: 1920-22 में उनके 'यशोधर्मा' नाटक में अवतार की भी ऐसी ही व्याख्या थी.

'कंकाल' के लेखन में उन पर उनके एक मथुरा-प्रवास का भी प्रभाव था. मुझे यह स्मरण नहीं आता कि वे कभी हरिद्वार गए भी या नहीं—संभवत: नहीं गए थे. 'कंकाल' के संबंध में उनके इस प्रवास की चर्चा हुआ करती, प्रसाद जी कहते: ''वहां चौबे के साथ एक विचित्र सी लड़की अकसर आती रहती. उसी को आधार बनाकर 'घंटी' का चरित्र है.'' 'कंकाल' में देवी मरियम और शिशु ईसा के एक चित्र का भी प्रसंग आता है. मैं कला परिषद की स्थापना (1920) के पूर्व से ही चित्र संग्रह किया करता था. इसे लेकर कई चित्र-विक्रेता आते रहते, हर दूसरे-तीसरे पखवाड़े उनका चक्कर लगता रहता. इनमें से लखनऊ के एक बड़े बुजुर्ग थे—बाबू भोलानाथ कपूर और दूसरे थे बंबई के पोपली जी. ये दोनों ही बड़े ही शाइस्ता किस्म के लोग थे. प्रसाद जी की इन लोगों से खूब पटती थी. उन दिनों मुगल चित्रों की नकल भी बहुतायत से आती रहती थी. इसकी भी 'कंकाल' में चर्चा आयी है. पर 1925 के आसपास मुझे वस्तुत: देवी मरियम और शिशु ईसा का एक छोटा-सा पर बहुत ही उत्कृष्ट चित्र मिल गया, अब वह 'कला भवन' संग्रह की शोभा बढ़ा रहा है. इसमें देवी के वात्सल्य और शिशु के भोलेपन को प्रसाद जी और हम लोग बराबर निहारा करते; मेरे अनुरोध पर उस्ताद रामप्रसाद ने इसकी एक दो प्रतिकृतियां बनाई थीं जिनमें एक तो मैंने अपने एक मित्र को भेंट कर दी, एक मेरे पास है. प्रसाद जी ने इसी को लेकर एक काल्पनिक वातावरण प्रस्तुत किया है.

'कंकाल' में जन्माष्टमी के उत्सव की चर्चा है. जब प्रसाद जी 'कंकाल' की कल्पना कर रहे थे उन दिनों काशी में एक गोसाईं... पुरी थे. उनकी गणना रईसों में होती थी. वे कुरता-धोती तो पहनते, पर गेरुए रंग का, रेशमी. उनकी एक धनाढ्य रक्षिता थीं. इस प्रेम प्रसंग से काशी का वातावरण बोझिल हो रहा था. यद्यपि मेरी प्रसाद जी से कभी इस विषय में बातचीत न हुई—होती तो वे कोई दुराव न रखते, मुझे अवश्य बताते. पर मेरी समझ में 'कंकाल' में जहां प्रसाद जी ने जन्माष्टमी के उत्सव का चित्रण किया है, वहां उक्त गोसाईं जी के यहां का तत्कालीन बहुचर्चित जन्माष्टमी उत्सव का प्रभाव उन पर अवश्य था.

चित्र सौजन्य: भारत कला भवन, वाराणसी/छाया: अनुज अग्रवाल

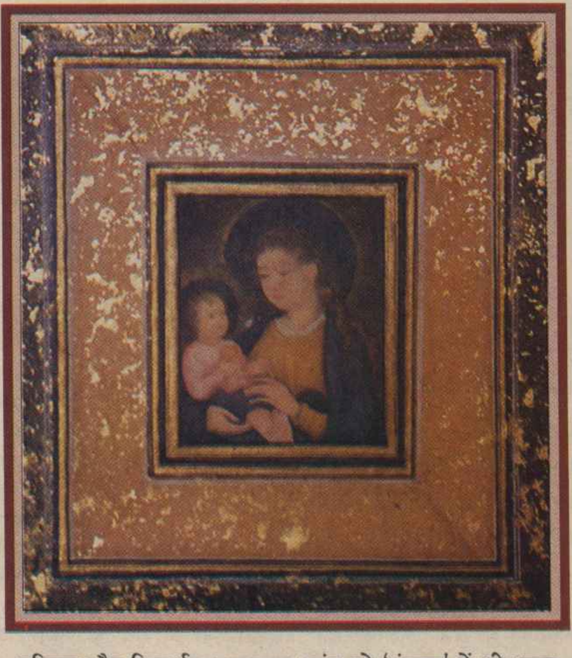

मरियम और शिशु ईसा: वात्सल्य प्रसंग जो 'कंकाल' में भी आया

प्रसाद जी ने अपने इन दो उपन्यासों में अपने अनेक विचारों को इस प्रकार रख दिया है कि वे मानो अगले प्रकाशनों के सिनाप्सिस हों. प्रसाद जी के प्रारंभिक जीवन से ही उनके घनिष्ठ मित्रों में पं. विश्वंभर नाथ जिज्जा थे. वे बाद में घोर साम्यवादी हो गए थे—लेनिन भक्त. अकसर हम लोगों को साम्यवाद का पाठ पढ़ाया करते. प्रसाद जी ने उसे किस रूप में ग्रहण किया, उसका किस प्रकार समाधान किया, वह 'तितली' में रामनाथ (नाम साम्य के लिए मि. विश्वंभर नाथ) के उस वक्तव्य में है जो उन्होंने इंद्रदेव को दिया है. इसी प्रकार शराबियों का घृणित व्यवहार ('तितली,' पृष्ठ -201) पर मेरे चेचेरे भाई राय शिव प्रसाद की घटना की छाया है. प्रसाद जी उसे कभी न भुला सके, अकसर जुगुप्सापूर्वक उसे याद करते. ऐसा दृश्य 'कंकाल' में भी है.

इस प्रकार ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो तत्कालीन जीवन को 'कंकाल' और 'तितली' में प्रतिबिंबित करते हैं. यदि उनकी विस्तृत चर्चा की जाए तो यह वक्तव्य लंबा हो जायेगा. इसे कभी भविष्य में उपस्थित किया जावेगा. 'कंकाल' को देखकर प्रेमचंद प्रमुदित हुए, ''मैंने इसे आदि से अंत तक पढ़ा और मुग्ध हो गया...जो लेखनी वर्तमान समस्याओं को इतने आकर्षक ढंग से जनता के सामने रख सकती, इस तरह दिलों को हिला सकती है, उसे... 'कंकाल' में एक समाज के सच्चे हितैषी की आंखों का गर्म, बड़ी-बड़ी बूंदों वाला आंसू है. घंटी और यमुना दोनों का क्या कहना है. मैं 'हंस' में इसकी वृहद आलोचना करूंगा. 'हंस' का नाम याद आ गया. आपसे उसके लिए कुछ याचना करूं? मैं छोटे-छोटे 'कंकाल' चाहता हूं. या कोई उपन्यास हो तो वह भी बड़े प्रेम और आदर से प्रकाशित करूंगा...'' कई वर्ष बाद प्रेमचंद बंबई में थे. उन्होंने प्रसाद जी को अपने पत्र में फिल्मी जगत के हास्यास्पद वातावरण का अच्छा चित्र खींचा है. प्रेमचंद चाहते थे कि सीता के चरित्र पर प्रसाद जी कुछ लिखें, उन्होंने लिखा: ''...मेरे ख्याल में सीता का जितना सुंदर चित्र आप खींच सकते हैं दूसरा नहीं खींच सकता...उसका स्वागत होगा...मैंने 'तितली' नहीं देखी. उसकी एक प्रति भेजवा दीजिए...'' उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रेमचंद प्रसाद जी के इस साहित्य के कायल थे. भले ही प्रसाद के नाटकों को वे ''गड़े मुर्दे उखाड़ना'' कहते थे. ■

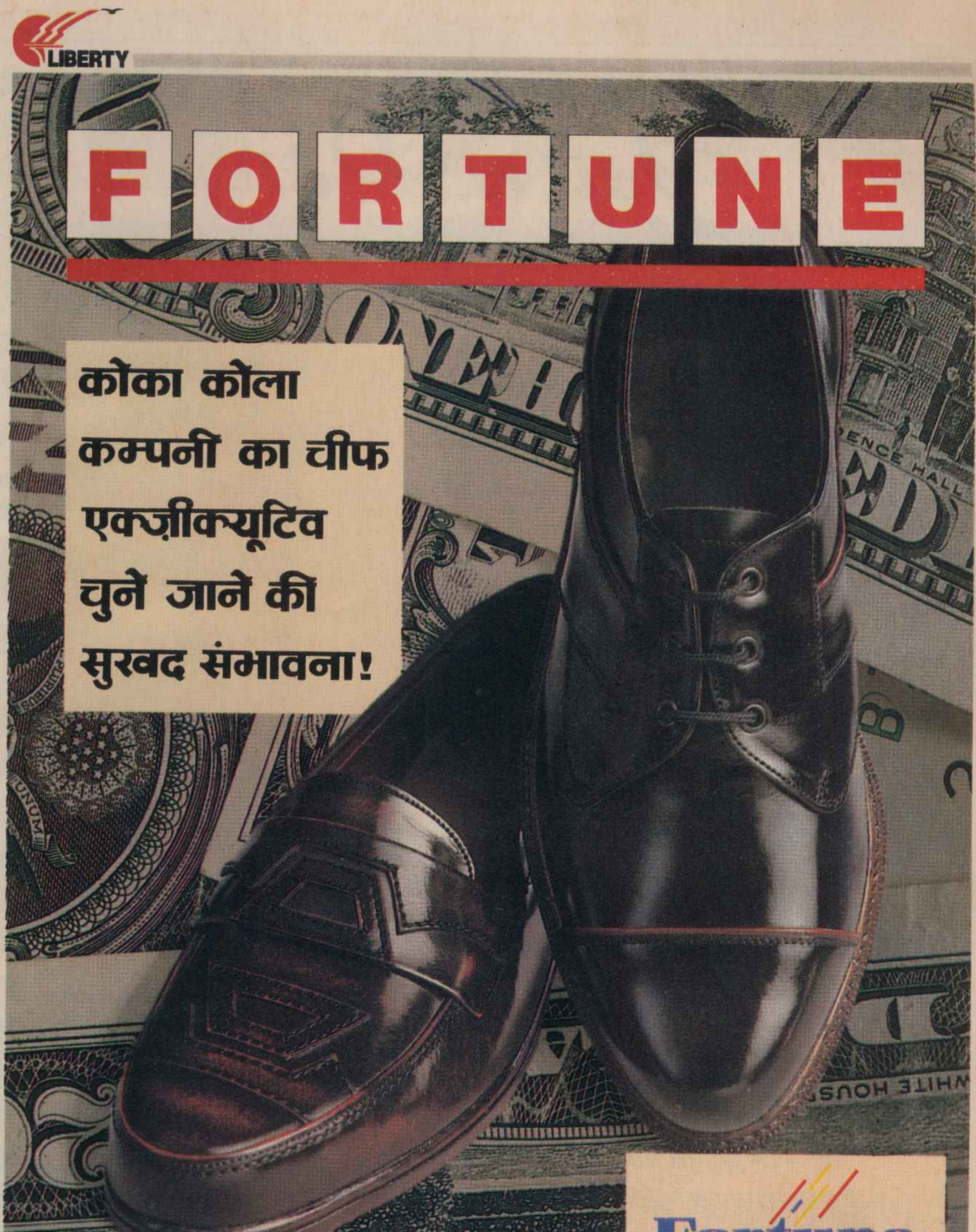
LIBERTY
FORTUNE
कोका कोला
कम्पनी का चीफ
एक्ज़ीक्यूटिव
चुने जाने की
सुखद संभावना!
Fortune
FROM LIBERTY
TM
शान बढ़ायें, आराम दिलायें
11
0 748515 2

श्रृंगार कक्ष

सेरा द्वारा

अपने हर बाथरुम को एक अलग रुप रंग दीजिए. उनमें से एक आपके श्रृंगार कक्ष का वातावरण प्रस्तुत करे, दूसरा निजी अध्ययन कक्ष जैसी नीरवता और तीसरा एक खेल कक्ष जैसी स्फूर्ति दे. सेरा के 6 शानदार डिज़ाइनर संकलनों में से अपने लिए चुनें : क्राउनी, कोनका, कैप्री, कोरनेट, कोमेट, कोन्यक. ढेरों शेड, उचित दाम. **उनसे मेल खाते ग्लेज्ड वाल टाइल्स** और दूसरे साज सामान. हर बाथरुम खूबसूरती में अनोखा. सेरा से यह सब कैसे संभव? उत्तर जानने के लिए **मुफ़्त** ब्रॉशर मंगवाइए या फिर सेरा के नजदीकी शोरुम में चले आइए. अपने नीरस बाथरुम को चमाचम बनाइए.

आपके कमरे से कम सुंदर नहीं आपका बाथरुम

CERA

SANITARYWARE AND GLAZED WALL TILES

मधुसूदन सेरामिक्स, (मधुसूदन इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड का एक विभाग)
'मधुसूदन हाउस', नवरंगपुरा टेलिफ़ोन एक्सचेंज के सामने, अहमदाबाद- 380 006.

Mudra:MC:6917 Hin

धरोहर

आचार्य शिवपूजन सहाय

डायरी के कुछ पन्ने

'मतवाला', 'गोलमाल', 'मौजी', 'माधुरी', 'गंगा' जैसी पत्रिकाओं के संपादक रहे आचार्य शिवपूजन सहाय का जन्मशती वर्ष इस साल 9 अगस्त से मनाया जा रहा है. प्रस्तुत हैं उनकी डायरी के कुछ अप्रकाशित पन्ने, जो उस दौर और उनके सरोकारों के परिचायक हैं:

शुक्रवार १०-११ जन. १९४१

हिंदी ही राष्ट्रभाषा है इस देश की. अंग्रेजी तो कुछ थोड़े-से शिक्षितों की भाषा है. साम्राज्य की शक्ति के बल पर अंग्रेजी टिकी हुई है. स्वराज्य का अधिकार प्राप्त होने पर अंग्रेजी का स्थान हिंदी ही ले लेगी. वह बलपूर्वक नहीं—स्वाभाविक रीति से ले लेगी. तब हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी आदि सभी भारतीय जातियां हिंदी के माध्यम से ही काम लेंगी. इसके सिवा दूसरी संभावना नहीं.

भाषा का प्रश्न इस देश में केवल इसलिए विषम और विकट बन गया है कि यहां की सरकार इस झगड़े को तीखा बनाते जाना चाहती है. ईसाई मिशनरियों ने हिंदी को अपनाया है. उर्दू कवियों ने भी अपनाया है. मुसलमान कवियों की संख्या हिंदी में बहुत है. सिखों के नानक और गुरु गोविंद हिंदी के कवि हैं. पारसी लोग गुजराती का व्यवहार करते हैं जिसमें हिंदी के समान बहुत से भारतीय शब्द हैं. इस प्रकार हिंदी ही भारतीय राष्ट्रभाषा है.

१२ फरवरी १९४१

उर्दू के साथ हिंदी का कोई वैर-विरोध नहीं है. वह मुसलमानी हिंदी है. उसकी क्रियाएं, मुहावरे, कारक चिह्न आदि हिंदी के ही हैं. यदि उर्दू में अरबी-फारसी के दुरूह शब्द और हिंदी में संस्कृत के क्लिष्ट शब्द व्यवहृत न हों तो दोनों में कोई अंतर नहीं है. केवल लिपि का ही अंतर है. उसकी लिपि ही ऐसी उलटी और टेढ़ी है कि भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं पड़ती. और उर्दू को कभी राष्ट्रभाषा का पद नहीं पाने देगी.

मंगलवार १९ फरवरी १९५२

दिन भर का समय 'विश्वधर्मदर्शन' के संशोधन एवं संपादन में लग गया. बिहार-लाइब्रेरी-कमिटी की पुस्तक-सूची के प्रूफ पड़े रह गये. रात में श्री उमानाथ जी के अनुज श्रीशंकरनाथ विद्यार्थी एमएलए आये. उन्होंने कहा कि कांग्रेस-मंडल में आपको (मुझको) दिल्ली के केंद्रीय पार्लमेण्ट में साहित्यिक सदस्य चुनकर बिहार की ओर से भेजने की चर्चा चल रही है. मैंने कहा कि मुझे उसकी आकांक्षा नहीं. अब तो यही लालसा है कि बिहार का साहित्यिक इतिहास लिखकर, पूरा करके एकांत सेवन करता और हरिभजन में अंतिम समय बिताता. उन्होंने बहुत जोर दिया कि आपका ही नाम मैंने (उन्होंने) प्रस्तावित किया है. मैंने कहा कि साहित्य को छोड़कर राजनीति में मेरा चंचुप्रवेश भी नहीं है, अतः मैं वहां जाकर देश का कुछ भी उपकार नहीं कर सकता, हां हिंदी का कुछ हित साधन हो तो ईश्वर की असीम कृपा. वास्तव में यह सब कुछ ईश्वर की कृपा से ही हो रहा है. महीनों से नियमित रूप से पूजा-पाठ नहीं हो पाता, केवल क्षणमात्र जप, ध्यान और सुमिरन ही हो पाता है, तब भी राम की कृपादृष्टि की महावृष्टि निरंतर होती जा रही है. पंद्रह रुपये मासिक पर पहले-पहल मैं कायस्थ जुबली एकादमी (आरा) में हिंदी शिक्षक हुआ १९१३ में, और रामकृपा से उन्नति करता हुआ सवा पांच सौ रुपये मासिक वेतन आज पा रहा हूं. प्रूफरीडर, संपादक से प्रोफेसर बनाया राम ने. अब केंद्र की शासनसभा में ले जाने के लिए रामजी सोच रहे हैं. राम की जो इच्छा है वही होगा. राम की कृपा का प्रताप. रामभजन में लालायित चित्त में संलग्न हो जाने की उत्कट इच्छा जिस दिन जाग उठेगी उसी दिन जीवन की सफलता निश्चित है. अभी रामजी मुझ

चित्र: वृज गोयल

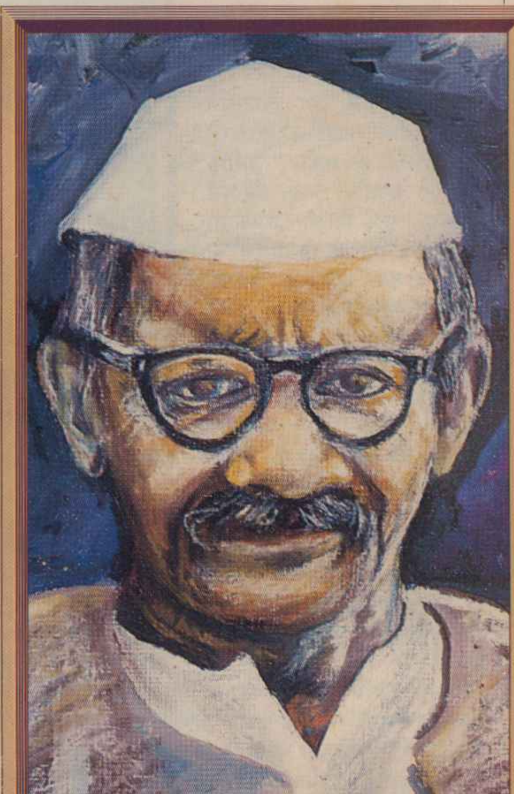

आचार्य शिवपूजन सहायः साहित्य और पत्रकारिता की सेवा

तुच्छ से कुछ लोकसेवा कराना चाहते हैं. रामजी की कृपा दिन-रात मेरे ऊपर छत्रछांह किये रहती है और मैं अभागा पेटप्रपंच में पड़ पूजा-पाठ छोड़ बैठा हूं. जब रामजी की कृपादृष्टि की स्पष्ट अनुभूति हो रही है तब सब छोड़ रामभजन करना ही श्रेष्ठ.

सोमवार १४ अप्रैल १९५२

बिहार में मंत्रिमंडल निर्माण का झगड़ा-झमेला कई सप्ताहों से चल रहा है. चुनाव-संघर्ष के बाद बहुत क्षुब्ध वातावरण में समझौता भी हुआ, तो मौखिक ही हुआ, हार्दिक नहीं. 'मन में राम, बगल में छुरी' नहीं, 'मन में छुरी, बगल में राम' चरितार्थ हुआ. जबानी सफाई हुई है, दिली सफाई नहीं हो सकी. राजनीति पुंश्चली वेश्या है. जिसने उसे गले लगाया वह नारकी हो गया. परंतु राजनीति के बिना देश का शासन चल भी नहीं सकता. महात्मा गान्धी ने राजनीति में सत्य, अहिंसा, दया, विश्वप्रेम आदि का समावेश किया-कराया, पर उनके निधन के बाद उनके अनुयायी कहलाने वाले घोर स्वार्थी बन गये. स्वार्थांध लोगों ने कांग्रेस की कीर्ति को कलंकित कर दिया है. जान पड़ता है कि त्यागी नेता भी अधिकारलोलुप बन गये हैं. कांग्रेसी लोगों में सच्चे देशसेवक एक-दो ही हैं...

मंगलवार १५ अप्रैल १९५२

बिहार के माननीय मंत्रियों का दल बढ़ने वाला है. सुना जा रहा है कि चौदह-पंद्रह मंत्री होंगे, उतने ही उपमंत्री भी. बेचारे गरीब बिहार पर भारी भार लद जायगा. दिल्ली के अंग्रेजी साप्ताहिक 'शंकर्स वीकली' में बूढ़े, लाचार रिक्शावाले की झुकी कमर तोड़ने वाले नये मंत्री रिक्शारूढ़ होते दिखाये गये हैं. भावपूर्ण व्यंग्यचित्र (कार्टून) है. अनावश्यक व्यय भार से दीन बिहार की कमर टूट जायेगी. प्रजातंत्री राज्य में ऐसे मंत्रियों की कोई आवश्यकता नहीं. यदि वे मंत्री बनें भी तो कम वेतन लें, कोठी और मोटर तथा भत्ते में कम खर्च करें. गान्धी जी रहते तो सबकी तोंद पच जाती, सबकी खर्चीली जवानी लच जाती, बिहार या अन्य प्रान्तों की भी जान बच जाती. हा बिहार! तुम्हारा आदर्श साम्राज्य मंत्री चाणक्य बस एक ही कम्बल और झोपड़ी में गुजर करता रहा, पर आज के राज्यमंत्री तुम्हारा रक्तशोषण कर रहे हैं. अधिकार का लोभ और मद मनुष्य को अन्धा बना देता है. हमारे कुछ मंत्री अत्यंत मदांध हो गये हैं. वे प्रजातंत्र को कलंकित कर रहे हैं. धिक् धिक्. ईश्वर की दया हुई कि असहयोगी होकर मैं राजनीति के दलदल में न फंसा. साहित्य में अभाव और कष्ट है तो संतोष और शांति काफी है.

शिवपूजन बाबूः युवावस्था में

सोमवार १९ मई १९५२

बिहार का साहित्यिक इतिहास लिख डालने से पहले समस्त प्रान्त का भ्रमण करना पड़ेगा. प्रमुख पुस्तकालयों में जाना होगा, प्रमुख साहित्यिकों से मिलना होगा, पुरानी चीजों की खोज करके नोट तैयार करना पड़ेगा. यह काम साहित्यिक सन्यासी हुए बिना नहीं हो सकता. एक झोला, एक कम्बल, एक लोटा, लुंगी-लगोटी और दुपट्टा, बस यही ठाट, यही भेष, यही बाना. जहां कहीं जाऊं और ठहरूं, किसी को झझट न हो, भोजन सादा और थोड़ा, हो सके तो एक ही जून, लिफाफा और टीम-टाम कुछ नहीं. ऐसा समय कब आयेगा, ऐसी प्रवृत्ति कब होगी, ऐसी सुविधा कब मिलेगी, प्रभु की इच्छा का भरोसा. अपने गांव में 'उजियार के पिंड' वाले अपने खेत में साहित्यिक आश्रम की झोपड़ी. उसी के पास सरोवर के किनारे शिवालय में शिवजी की पूजा-सेवा. चौमासा-भर आश्रम में रहना और आठ महीने बिहार में साहित्यिक यात्रा करना. यही संकल्प. मन का संकल्प तो केवल प्रभु की प्रेरणा से ही जागता है और प्रभु की कृपा से ही सफल होता है. शिव

सोमवार ३० जून १९५२

आजकल जो कहानियां और कविताएं तथा समालोचनाएं प्रकाशित हो रही हैं उनमें अधिकांश ऐसी हैं जिनको हम साहित्य की कोटि में नहीं रख सकते. अच्छी कहानियां बहुत कम दीख पड़ती हैं. मैं खुद तो पढ़ता नहीं. अधिकारी पाठकों से पता चलता है. कविताएं कभी-कभी आंखें गड़ाकर पढ़ लेता हूं... समालोचनाओं को भी पढ़वाकर सुनता हूं तो ईर्ष्या-द्वेष और पक्षपात से शून्य कुछ ही आलोचनाएं मिलती हैं. कहीं-कहीं किसी में अद्‌भुत क्लिष्ट वाक्य मिलते हैं जिनका भाव नहीं खुलता. बहुत-सी तो कविताओं का भी भाव

भाषा का प्रश्न इस देश में केवल इसलिए विषम और विकट बन गया है

कि यहां की सरकार इस झगड़े को तीखा बनाते जाना चाहती है.

अधिकार का लोभ और मद मनुष्य को अंधा बना देती है. हमारे कुछ मंत्री अत्यंत मदांध हो गये हैं. वे प्रजातंत्र को कलंकित कर रहे हैं. धिक् धिक्.

समझ में नहीं आता आज की ये रचनाएं आगामी शताब्दी में लुप्त हो जायंगी. वही साहित्य स्थायी और शाश्वत होता है जिसका रचयिता सच्चा साधक, सदाचारी, गंभीर चिन्तक, स्वाध्यायपरायण, मननशील और लोककल्याणकामी होता है. श्रद्धा, निष्ठा, साधना, लगन, सुरुचि, मंगलमयी भावना आदि सब मिलकर साहित्य को अमरत्व देते हैं. जो चाहे कि हमारी रचना अमर हो वह सच्चरित्र और पुण्यात्मा बने. पुण्य और धर्म का बल ही वास्तविक बल है. जिस स्थान के लोगों में मनुष्यता, सदाचारिता, ईश्वरपरायणता, धर्मनिष्ठा, परोपकारिता, दीनबंधुता नहीं है वहां अकाल, महामारी, दुर्भिक्ष, अभाव आदि की प्रबलता हो जाती है. समय के प्रवाह में वही टिकता है. आज के लोगों का नैतिक पतन ही दुर्भिक्ष और रोग का कारण है. अभावों और रोगों से बचना हो तो अपने भावों को शुद्ध करो, विचारों को पवित्र करो, संयम से रहो.

२८ नवंबर १९५२

इस युग के होनहार साहित्यकार स्वयं गुरु बन गये हैं, चेला कोई नहीं. सभी गुरु ही हैं. उनके जीवन से श्रद्धा निकल भागी है, अहम्मन्यता भीतर पैठ गयी है. किंतु अल्पसंख्यक श्रद्धालुओं के पुण्य और शील के प्रभाव से साहित्य-जगत अभी सर्वथा स्वेच्छाचार-क्षेत्र नहीं बना है. गुरु परंपरा की टिमटिमाहट भावी घनान्धकार का आभास दे रही है. भगवान हमारे साहित्यकारों को सुबुद्धि दें.

२९ नवंबर १९५२

हिंदी के अनेक लेखक पाश्चात्य साहित्य से इतने अधिक प्रभावित दीख पड़ते हैं कि उनकी रचनाओं को पढ़कर मन खिन्न हो जाता है. भारतीय साहित्य का ज्ञान उन्हें है ही नहीं. वेद, शास्त्र-पुराण, उपनिषद और रामायण-महाभारत कोई पढ़ता ही नहीं. इसी से विदेशों की उन्नति देखकर वे बहुत चकराते हैं. जो भारतीय साहित्य पढ़ेगा उसे आज का उन्नत संसार मूढ़ बालक ही जान पड़ेगा. भारत जहां पहुंचा था, वहां का रास्ता संसार भूल गया है.

१८ दिसंबर १९५४

मैं अपनी योग्यता और पात्रता का जब अनुभव करता हूं तब अपनी प्रतिष्ठा और कीर्ति को देख-सुनकर घोर आश्चर्य एवं खेद होता है. मन खिन्न हो जाता है कि मैं झूठी, थोथी, खोखली योग्यता की ओट में संसार को छलता-ठगता हूं. किंतु राम की कृपा और इच्छा तो मेरे अधीन नहीं, उन पर तो प्रभु का ही अधिकार है. जो करें.

२६-२७ दिसंबर १९५४

गत रात्रि आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) के प्रसिद्ध हिंदी कवि श्रीगुरुभक्त सिंह जी ने सम्मेलन कार्यालय में स्वयं पधारकर मुझे दर्शन देने की कृपा की. गाढ़ालिंगन में हम दोनों बरसों बाद मिले. एक-डेढ़ घंटे तक साहित्यिक संलाप हुआ. उनके भाई श्री गुरुदत्त सिंह फैजाबाद (अयोध्या) में डिप्टी कलक्टर थे. रामजन्म स्थान की बाबरी मस्जिद में राममूर्ति के प्रकट होने और अनंतकालीन अखंड हरिकीर्त्तन का वर्णन सुनाया. धन्य गुरुदत्त सिंह! श्री गुरुदत्त सिंह ने बड़ी निर्भीकता से साहस दिखाया. मुसलमान लोग अदालती लड़ाई लड़ रहे हैं. धर्मांधता का झगड़ा प्रलय तक रहेगा.

श्री गुरुभक्त सिंह जी ने सुनाया कि विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर से शांतिनिकेतन में भेंट हुई थी. महाकवि ने आश्चर्य के साथ पूछा कि हिंदी में भी क्या कोई कवि है. भक्त जी ने निर्भीकता से स्पष्ट कहा—हिंदी में तो ऐसे कवि हैं जिन्हें पढ़कर लोग विश्वकवि तक बन गए हैं. इस उत्तर से महाकवि मौन हो रहे. भक्तजी ने यह भी कहा कि विश्वभारती में एक हिंदी भवन स्थापित करने में काफी चंदा उगाहा. बंगाली भाई प्राय: हिंदी को तुच्छ मानते हैं. ■

शिवपूजन बाबू जेपी और रामवृक्ष बेनपुरी (शिवपूजन बाबू के पीछे) के साथ

हम स्वीकार करते हैं कि हमारे उच्च कार्यनिष्पादन ऑयल सर्वश्रेष्ठ हैं हर मामले में... सिर्फ़ एक के सिवाय.

वो है दाम.

अभी तक आपने गौर नहीं किया होगा कि आपकी कार के इंजन में कौन-सा ऑयल डाला जाता है • लेकिन जब आप ***XEE*** याने एक्सईई डालेंगे तो आपकी नजरों से फर्क छिप नहीं सकेगा. क्योंकि ***XEE*** सामान्य ऑयल नहीं है. • इंजन ऑयल में विश्व के प्रमुख जानकार अमेरिकन पेट्रोलियम इंस्टीट्यूट द्वारा ***XEE*** को भारत में सर्वोच्च (जी हां सर्वोच्च) निष्पादन रेटिंग प्रदान की गई है • ***XEE*** देश का एकमात्र इंजन ऑयल है जिसने एपीआई एसजी/सीडी मानकों को हासिल किया है • सच पूछें तो ***XEE*** की बदौलत आप इंजन ऑयल की ओर अपना नज़रिया ही बदल देंगे • इसके दाम पर भी गौर कीजिए. आप भी मानेंगे कि सर्वोत्तम पाने के लिए सर्वोच्च दाम चुकाने की जरूरत नहीं • अब आपके सामने एक ही समस्या रहेगी कि इस बचत का क्या किया जाय?

	आइओसी सर्वो सुपीरियर XEE	अन्य अपने सर्वश्रेष्ठ निष्पादन में
एपीआई निर्दिष्टीकरण	एपीआई एसजी/सीडी	एपीआई एसजी/सीसी
ईंधन किफायती	एपीआई ईसी II 2.7% से अधिक ईंधन में किफायती	एपीआई ईसी 1.5% से अधिक ईंधन में किफायती

सर्वो XEE याने आपकी कार के लिए बेहतर कार्यनिष्पादन. इंजन की कम टूट-फूट, इस तरह इंजन ज़्यादा दिन चलता है. पिस्टन में कम जमाव और बेहतर संक्षारण अवरोधन इसलिए रखरखाव का खर्च कम होता है. ज़्यादा अवधि तक (10,000 कि.मी. की दूरी तक) ऑयल बदलने की जरूरत नहीं होगी. अर्थात कम बार तेल बदलना. इसका मतलब है प्रतिलीटर ईंधन में ज़्यादा सफर करने का सुख.

सर्वो® पेश करते हैं **XEE** इंजन ऑयल

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड

IOC. 257/93 HIN

उपन्यास अंश

निर्मल वर्मा

मृदुला गर्ग

चुप होता हुआ समय

• निर्मल वर्मा • चित्र: मनु पारेख

जीवन की शुरुआत जब किसी अनुभूति विशेष से वंचित रह जाती है तब तमाम स्थितियां, सारे रिश्ते कुछ रहस्यमय आवरण में लिपटे नजर आते हैं और समय की विशेष चुप्पी कितनी मुखर लगने लगती है.

चलते-चलते अचानक आशु भाई खड़े हो जाते, सिर ऊंचा करके कुछ सुनने लगते. सुनाई कुछ भी न देता था. सांय-सांय करती हवा चलती रहती. हम जैसे होते, जहां होते, पत्थर की मूर्तियों की तरह जड़ हो जाते. क्या यह चुप रहने का समय है? तिया मेरी तरफ देखती, लेकिन मैं उसकी आंखों से बचकर आशु भाई की निगाहों का पीछा करता...वे आकाश से उतरकर आड़ू के पेड़ पर जा अटकतीं...और तब मुझे याद आता कि इसी पेड़ के नीचे आशु भाई ने मुझे अपनी कविता सुनाई थी, जो मेरे लिए नहीं थी. वह एक ऐसी लड़की के लिए थी, जो अपनी मां के साथ अकेली रहती थी.

"क्या यह जिज्जा के लिए है?" मैंने उनसे पूछा, तो आशु भाई ने कहा, "जिस बात के बारे में तुम्हें मालूम नहीं, उसके बारे में चुप रहना चाहिए." और फिर उस कविता को फाड़कर उसकी चिंदी-चिंदी को हवा में उड़ा दिया.

जब काफी देर हो गई और हमारे पांव खड़े-खड़े दुखने लगे तो तिया ने कनखियों से मुझे देखा, "क्या चुप रैने का समय खत्म हो रहा है?" मैंने तुरंत उसकी डिब्बी जैसे मुंह को बंद कर दिया. उसके होंठ तो मुंद गए, लेकिन नथुने थरथराने लगे. आशु भाई ने जब उसकी ओर देखा, तो वह मुझे छोड़कर उनके पास चली आई. आशु भाई ने उसके आंसू पोंछे, जो पता नहीं कब उसके मैले गालों पर लकीरें खींच गए थे. जेब से सफेद चिट्टा रूमाल निकाला, उसके चेहरे, आंखों, नाक को पोंछा और फिर उसकी छोटी-छोटी गुत्तों को सिर पर एक मुकुट की तरह बांध दिया. तिया ने गर्व से सिर मोड़कर मेरी ओर देखा, जैसे पूछ रही हो, अब बताओ कैसी लग रही हूं. कालीबाड़ी की रामलीला में जब वह छोटे-से राजा का पार्ट करती थी तो ऐसा ही मुकुट पहनकर स्टेज पर आती थी. मैं तोड़ूंगा, मैं तोड़ूंगा कहते हुए सीता जी के स्वयंवर में सबसे पहले आगे बढ़ती थी, धनुष उठाते ही धम से नीचे गिरने का अभिनय करती थी और फिर तालियों के बीच जल्दी से उठकर सीता जी की गोद में जाकर बैठ जाती थी.

कहां गए आशु भाई? हमने चारों तरफ देखा, तो वह कहीं दिखाई नहीं दिए. वह ऐसे ही आते थे और चले जाते थे. आंखें भींचते-न-भींचते वह न जाने कहां लोप हो जाते थे. हम झाड़ियों के पीछे देखते तो सन्नाटा दिखाई देता, बहते पानी की झिर-झिर आवाज़ अतल अंधेरे से बाहर आती, पत्थर पर सिर पटकती हुई कहती, करहाती. "आशु भाई, आशु भाई"—तिया की रुआंसी पुकार किसी हृदयभेदी क्रंदन में बदले, इससे पहले ही मैं उसका हाथ पकड़ लेता, "चलो, ठुल दद्दा के पास."

"ठुल दद्दा के? भला क्यों?" उसने भीगी आंखों से मुझे देखा, जैसे मैं उसे बहकाकर पाताललोक में ले जा रहा हूं.

"हो सकता है, आशु भाई ने कुछ लिखा हो," अनुमानों के ढेर में मैंने हाथ डालकर तिया को देखा, उसकी आंखें चमक रही थीं, "फिर तो उन्हें दिखाने जाना होगा...नहीं?"

"क्यों नहीं," मैंने कहा, "ठुल दद्दा ने जब पत्रिका निकाली थी, तो आशु भाई की कविता सबसे ऊपर थी—हिमालय का दर्द."

तिया हंसने लगी, "ठुल दद्दा वैसे अच्छे आदमी नहीं हैं. ऊपर से भोलेभाले लगते हैं, भीतर से हम सबकी हंसी उड़ाते हैं."

"तुझे कैसे मालूम?"

"जिज्जा कहती थीं...उनके पास जो पत्रिका आई, पता है, उस पर कविता का दूसरा नाम ही लिखा था—हिमालय का सिरदर्द."

"मुझे तो करम कौर की डायरी सबसे अच्छी लगी थी.

ओक व्यू—ठुल दद्दा का घर! पहाड़ी की ढलान पर इस तरह तिरछा लेटा हुआ कि उसे देखकर लगता जैसे नींद में सोया कोई वनैला जानवर हो, जो जरा-सी करवट लेते ही नीचे खड्ड में जा लुढ़केगा...

क्या वह सच्ची थी?"

"सच्ची नहीं, तो ठुल दद्दा उसे लेते क्यों...उन्होंने कई बार मुझे करम कौर के घर भेजा था, तब जाकर वह राजी हुई थीं."

तभी ठुल दद्दा का घर दिखाई दिया, ओक व्यू. वह घर सारे का सारा लकड़ी से बना था, पहाड़ी की ढलान पर इस तरह तिरछा लेटा हुआ कि उसे देखकर लगता था जैसे नींद में सोया हुआ कोई वनैला जानवर हो, जो जरा-सी करवट लेते ही नीचे खड्ड में जा लुढ़केगा. दूर से ही उसे पहचाना जा सकता था. वही एक घर था जिसकी ढलुआं छत पर बड़ियां और लाल मिरचें दहका करती थीं. फाटक के भीतर घुसते ही बेंत की आराम कुर्सी पर बैठे जानकी बाबू दिखाई दे जाते. चौड़ा चमकता चेहरा, सफेद दाढ़ी और चैतन्य प्रभु के भक्तों जैसे लंबे बाल. उन्हें देखकर यह विश्वास नहीं होता था कि ठुल दद्दा उनके लड़के हो सकते हैं. हमें देखकर वह मुस्कराने लगते, तिया को खींचकर अपनी स्पेनियल जानी के साथ बिठा देते और जैसे वे दोनों चूं-चूं करती हुई चीखने, छटपटाने लगतीं, सारा छज्जा डगमगाने लगता. धुंआधार चीखों के बीच पता नहीं चलता कौन-सी आवाज तिया की है, कौन-सी कुतिया की. फिर अचानक छज्जे के दूसरी ओर से ठुल दद्दा की पुकार सुनाई देती और सब कुछ शांत हो जाता. जानकी बाबू तिया को गोद से उतार देते और हम तीनों तिया, मैं, और जानकी छोटा-सा जुलूस बनाकर उस तरफ चल देते जहां न शोर था, न कोई हलचल—सिर्फ छज्जे की धूप और हमारी चलती छायाएं...धीरे-धीरे उस ओर सरकतीं हुई जहां ठुल दद्दा बैठे होते.

वह हरे रंग के जंगले के सामने पीली दरी पर बैठे होते. लंबी छरहरी देह, सफेद चिट्टा कुमाउंनी चेहरा, पतली सुतवां नाक और एक छोटी-सी चुपीली हंसी, जिसे देखकर पता नहीं चलता था कि वह हमें देखकर उघड़ती है या उनके मुखमंडल पर हमेशा विचरती रहती है. हमें मालूम था, वह वहीं धूप में बैठे होंगे, कोई किताब पढ़ते हुए या स्लेट पर कुछ लिखते हुए. उनकी साफ-सुथरी स्लेट को देखकर हम हमेशा कुछ हैरान-से हो जाते. हम सोचते थे, स्लेट या तख्ती पर सिर्फ स्कूल के बच्चे ही लिखते हैं और ठुल दद्दा तो इलाहाबाद की यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी का इम्तहान देकर आए थे. लेकिन उन्हें शायद ही इस बात का कोई गुमान था कि हम उनके बारे में क्या सोचते हैं. न ही उनके चेहरे से कोई अभिमान झलकता था. जब उनके सामने कोई उनकी तारीफ करता...तो उनका सफेद चेहरा पहाड़ी दाढ़ूं की तरह लाल हो जाता. माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगतीं, और तारीफ करने वाला अपनेआप शर्म के गड्ढे में डूबने लगता.

उस दिन उनके हाथ में न स्लेट थी, न खड़िया. वह दीवार का सहारा लेकर उकड़ूं बैठे कोई पत्र लिख रहे थे. तिया उनके पास

जा बैठी और जानी उनकी टांगों के बीच सिर डालकर पसर गई. मैं जंगले पर डोल रहा था. नीचे बांज के पेड़ों से हवा उठती, तो छज्जे के आरपार एक ज्वार-सा उठने लगता, जैसे बहुत से कबूतर एक साथ पंखों को फड़फड़ाते उड़ रहे हों.

"ठुल दद्दा, क्या यहां आशु भय्या आए थे?"

"नहीं तो, तुमसे कुछ कहा था?"

"कुछ भी तो नहीं..." तिया ने एक ठंडी गहरी सांस ली, जैसे आने वाली जिंदगी में न जाने इस तरह की कितनी निराशाएं झेलनी होंगी, "कहने लगे, यह चुप रहने का समय है. जब मैं कुछ उनसे बात करती हूं तभी चुप रैने का समय शुरू हो जाता है."

इस बार ठुल दद्दा ने उसके बालों को सहलाया, जो दो बंधी गुत्तों के बीच गले पर झूल रहे थे. "कवि लोग ऐसे ही होते हैं, तिया... तुम्हें उनका बुरा नहीं मानना चाहिए."

"मेरी तरफ वह देखते भी नहीं," तिया ने कहा.

"ऐसा?" ठुल दद्दा ने पूछा, "फिर कहां देखते हैं?"

"मेरी तरफ," मैंने कहा.

तिया ने मेरी तरफ तरेरती आंखों से देखा—"ठुल दद्दा, इसकी बात न सुनिए, यह तो आधा पागल है."

"कौन कहता है?" मैंने पूछा.

"तेरी मौसी और कौन? हमेशा मुझसे कहती हैं, इसका साथ मत छोड़ना, यह पता नहीं कहां-कहां जाता है."

क्या मौसी ऐसा कहती हैं? मेरा मन रोने को हुआ, लेकिन मैं अपना रोना रोके रहा. लड़कियां भी कैसी होती हैं. "मैं चलता हूं," मैंने कहा. मुझे पता नहीं था, मैं कहां जाने वाला हूं. मैं जंगले से उतरकर जाने लगा, तो ठुल दद्दा की आवाज़ सुनाई दी, "गिन्नर...इधर आओ."

मैं उनके पास आया, तो उनकी आंखें मेरे ऊपर उठी थीं—और तब मुझे पहली बार पता चला कि इनके चिट्टे सफेद चेहरे पर उनकी आंखें ही सबसे उदास कर देने वाली हैं.

"तुमने कहा था, आशु भाई तुम्हें देखते हैं?"

मैंने सिर हिलाया.

"क्या देखते हैं?"

"कहते थे, वह जानना चाहते हैं, इसमें कितना सच है, जो लोग मेरे बारे में कहते हैं."

"सच मिल जाता है?"

"हां ठुल दद्दा, मिल जाता है, जब चुप रहने का समय आता है, तो सब चले जाते हैं, वही बेचारा रह जाता है."

ठुल दद्दा कुछ नहीं बोले. छज्जे के बाहर देखने लगे, जहां दिन सूना पड़ रहा था और पेड़ चुप खड़े थे.

"ठुल दद्दा, क्या आप यहां से जाने वाले हैं?" मैंने कहा.

"नहीं तो..." वह कुछ चौंक गए, "तुमसे किसने कहा है?"

"जिज्जा कहती थीं. कहती थीं, आप रिजल्ट की राह देख रहे हैं. वह आया नहीं कि आप गए नहीं."

वह हमेशा गरमी की छुट्टियों में यहां आते थे. इन गर्मियों के बाद उनकी छुट्टियां हमेशा के लिए खत्म होने वाली थीं, यह बात वह किसी से कहते नहीं थे, लेकिन मालूम सबको हो जाता था.

"जिज्जा का भी हर साल रिजल्ट निकलता है, लेकिन वह तो कहीं नहीं जातीं?" तिया ने कहा.

"जिज्जा कहीं नहीं जा सकतीं.. वह चली जाएंगी, तो उनकी मां को कौन देखेगा?"

"हाबलू और कौन...वह तो लड़का है."

"वह तो बहुत छोटा है...ठीक से बोल भी नहीं सकता, तेरे से भी गया-बीता!" तिया ने कहा.

"क्यों उनकी मां को क्या हुआ है?" ठुल दद्दा कभी जिज्जा का सीधा नाम नहीं लेते थे, उनका-उनका करके बोलते थे. हम

मुस्कराते थे, तो उनका चेहरा सुर्ख-सा हो जाता था और हम शर्म में पछताने लगते थे. सोचते थे, फिर कभी ऐसा नहीं करेंगे, लेकिन उनके सामने जिज्जा का नाम आ ही जाता था और हम उसका कुछ भी नहीं कर सकते थे.

"क्या वह बहुत बूढ़ी हैं?" ठुल दद्दा ने बिना किसी की ओर देखे पूछा.

"नहीं, नहीं," तिया बहुत उत्तेजित-सी हो गई, "वह तो जिज्जा की मां भी नहीं लगतीं. बहुत सुंदर हैं. कभी पौडर लगाती हैं, तो बिलकुल मेम जैसी दिखाई देती हैं. हंसती हैं तो उनके दांत मोतियों-से चम-चम करते हैं."

"हंसती हैं तो हंसती रहती हैं, लेकिन जब हाबलू सामने पड़ जाता है, तो रोने लगती हैं."

"रोती हैं, तो रोती ही रहती हैं और किसी को अपने पास नहीं आने देतीं. अपना कमरा बंद कर लेती हैं. जिज्जा उनके दरवाज़े पर खाने की थाली छोड़ आती हैं... जब साहिब जी आते हैं, तभी दरवाजा खोलती हैं," तिया ने कहा.

"साहिब जी?"

"करम कौर के बाबू...वह सुई लगाते हैं, तो कहीं जिज्जा भीतर जाती हैं."

तिया को सब मालूम है. उसका घर जिज्जा के घर के नीचे है. इसलिए ठुल दद्दा कुछ सहम-से जाते हैं. भीतर जाते हैं, अपनी छोटी कैंची और अखबार का कागज बरामदे में लाते हैं और दरी पर बैठकर खट-खट अपने पांवों के नाखून काटने लगते हैं. नाखून काटते हुए उनकी जबान की सुर्ख नोंक थोड़ी-सी बाहर निकल आती जैसे वह स्लेट पर किसी बहुत मुश्किल सवाल का हल ढूंढ़ रहे हों, हल मिलते ही खट से नाखून कट जाता और हवा में उड़ता हुआ आधे चांद-सा अखबार पर गिर जाता और ठुल दद्दा बहुत ध्यान से उसे अपनी दो उंगलियों से उठाकर किनारे रख देते.

ठुल दद्दा किसी दूर-दुनिया में खो जाते. तिया कुछ डर-सी जाती. कुछ समझ में न आता, वह कहां चले गए हैं. जानी सिर उठाकर अंगड़ाई लेती, चूं-चूं करके रिरियाने लगती...जैसे सोते हुए उसने कोई सपना देखा हो. सपना-सा ही लगता वह छज्जा, सूखती धूप, अखबार पर गिरते खट-खट नाखून... हम चुपचाप बाहर निकल आए.

"जिज्जा का नाम सुनते ही क्या हो जाता है ठुल दद्दा को?" तिया ने पूछा.

"वह प्यार करते हैं," मैंने कहा.

"धत... कहीं के."

वह भागने लगी. मैं खड़ा रहा. फिर पीछे मुड़कर देखा, ज़ानी ठुल दद्दा की गोद में सिर टिकाकर फिर कोई सपना देख रही थी और वह सिर झुकाए बैठे थे, छज्जे की पीली, पहाड़ी धूप में आधे चंद्रमाओं के बीच, जैसे वह कोई जादू का पिटारा हो, छुआ नहीं कि उड़ा नहीं.

बादल उड़ते थे. सूरज को ढक लेते, तो घरों पर छांह गिरने लगती. भरी दुपहर में एक रुआंसी रोशनी रेंगने लगती. बहुत से कव्वे बावड़ी की मुंडेर पर बैठ जाते. पत्थर मारो, तो भी बैठे रहते जैसे कव्वे नहीं, मिट्टी के लोंदे हों. हाबलू ने हारकर गुलेल मुझे दे दी, "तुम मारना चाहोगे?"

मैंने गुलेल के रबड़ में ढेला फंसाया. सबसे पास बैठे कव्वे पर निशाना साधा. ढेला तो पता नहीं कहां गया, कव्वे ने गरदन मोड़कर मेरी तरफ कुछ ऐसे देखा, जैसे मैंने उसके ध्यान में खलल डाला हो.

"साले बेशर्म हैं," हाबलू ने कहा, "बम फेंको, तो भी अपनी जग्गे से नहीं हिलेंगे."

"हाबलू, जग्गे नहीं, जगह," मैंने एक-एक अक्षर पर जोर डालकर कहा.

"मेहरबानी करके आप चुप रहिए," हाबलू जब मुझसे नाराज होता था, तो 'आप' कहकर बुलाता था.

"जिज्जा ने मुझसे कहा था, तुम जब गलत बोलो, तो ठीक करना चाहिए."

"आप बताइए, जिज्जा आपकी कौन लगती हैं?"

मैं कुछ भी नहीं लगता था, जबकि वह उसका भाई था, इसीलिए जब वह यह वार करता, मैं निहत्था-सा हो जाता.

"हाबलू क्या तुम नाराज हो गए. मैंने तो डर के मारे कहा था."

"कैसा डर?" हाबलू ने कुछ कौतूहल से मुझे देखा.

"जिन लफ़्जों को तुम गलत बोलते हो, वे बेचारे बीमार पड़ जाते हैं. भगवान जी उन्हें अपने पास बुला लेते हैं."

"क्या यह सच है?"

"सच नहीं तो झूठ? पता नहीं...ऐसे कितने लफ़्ज भगवान जी ने अपनी गुल्लक में जमा कर रखे हैं—लंगड़े-लूले."

हाबलू कुछ देर चुप बैठा रहा, फिर मेरे पास सरक आया, "बताऊं—तिया तो बहुत ही गलत बोलती है. सिकंदर की कहानी सुनाती है, तो कहती है, जब उसने आसपास के मुर्गों को जीत लिया तो हिंदुस्तान पर हमला किया. वह मुल्कों को मुर्गे समझती है..."

"हिश...!" सन्नाटे में बावड़ी के अंधेरे तल से गड़-गड़ की सी आवाज़ सुनाई दी जैसे कोई जानवर गुस्से में गुर्रा रहा है. उसे सुनते ही सारे कव्वे लश्कर बांधकर उड़ चले.

"बावड़ी से डरते हैं," हाबलू ने कहा, "पत्थर मारने से तो नहीं हिले. अब कैसे दुम दबाकर उड़े जा रहे हैं."

"कैसी आवाज़ है? चलो नीचे चलकर देखते हैं."

गीली सीढ़ियों पर बच-बचकर पैर रखना पड़ता था. बाहर की रोशनी का छोटा-सा हिस्सा एक सफेद लट्टू-सा पानी पर तैर रहा था. एक-एक पौढ़ी नीचे उतरते हुए जितना हम पानी के पास आते जाते, उतनी ही एक सीली-सी गंध ऊपर उठती जाती. सिर चकराने लगता—जैसे किसी अतल कुंए की गहराई से बहुत-सी छायाएं एक साथ ऊपर आ रही हों और बीच सीढ़ियों पर हमसे टकराकर तितर-बितर हो जाती हों.

"देखो, नीचे कौन बैठा है?" हाबलू ने मेरा कंधा दबोचा और मेरा दिल धक-सा रह गया. बावड़ी की अंतिम सीढ़ी पर करम कौर बैठी थीं. उन्होंने अपनी टांगें पानी में छोड़ रखी थीं और उनकी सलवार टखनों तक खिंच आई थी.

"मैं चलता हूं," हाबलू ने कहा.

"जरा रुको, मैं भी आता हूं." लेकिन हाबलू इतनी जल्दी में था और सीढ़ियों पर इतनी रपटन थी कि ज्यों ही मुड़कर मैंने उसे रोकने की कोशिश की, मेरा पांव फिसल गया. हड़बड़ में हाबलू का तो कुछ पता नहीं चला, लेकिन करम कौर ने मुझे देख लिया. मुझे वहां देखकर वह कुछ उतनी ही चकित हो गईं जैसे पानी से कोई मेंढक उछलकर सीधे उनके सामने आ टपका हो.

"तुम यहां कैसे?" करम कौर का स्वर इतना तीखा था कि मैं सिर्फ सच बोलकर छुटकारा पा सकता था.

"ऊपर कव्वे उड़े थे," मैंने कहा.

"कव्वे?" करम कौर ने मुझे देखा, "और तुम?"

"वह तो बहुत सुंदर हैं. कभी पौडर लगाती हैं, तो बिलकुल मेम जैसी दिखाई देती हैं. हंसती हैं तो उनके दांत मोतियों-से चम-चम करते हैं... हंसती हैं तो हंसती रहती हैं, लेकिन जब हाबलू सामने पड़ जाता है, तो रोने लगती हैं."

"मैं और हाबलू ऊपर बैठे थे.. नीचे से आवाज़ आई थी."

"हाबलू कहां है?"

"हाबलू," मैंने सोचा सच ही बोलना है, तो पूरा सच, "वह तो आपको देखकर ही भाग गया."

मेरी सारी आशंकाओं को फोड़ती उनकी फुलझड़ी-सी हंसी सुनाई दी, "वह तो पागल है. और भला देवी की बावड़ी से कोई डरता है?"

उन्होंने अपनी टांगें पानी से बाहर निकालीं, तो वे घुटनों तक नंगी थीं. सलवार के पांयचों को नीचे किया, तो उन पर कीचड़ के धब्बे छिटके थे. दुपट्टे का एक सिरा पानी में था, दूसरा उनके हाथ में, जैसे वह मछली पकड़ने का कांटा डुबोकर बैठी हों. अचानक उन्होंने दुपट्टे को पानी में छप-छप करते हुए हिलाया और मेरी तरफ देखा, "कहीं यह आवाज़ सुनकर तो कव्वे नहीं उड़े थे?"

मैंने झिझकते हुए उनकी तरफ देखा. नहीं, वह हंस नहीं रही थीं, अपने लंबे बालों को सहेज रही थीं. हमेशा उनके चेहरे को देखकर लगता था कि वह सलवार, कमीज, दुपट्टे के अलावा भी कुछ और पहने हैं, जिसे वह बार-बार फिसलने से बचा लेती हैं...क्या यह वही चीज थी जिसे देखकर लोग दूर से ही पहचान लेते थे, यह करम कौर है जिसकी शादी नहीं हुई? यह बात जब मैंने अपनी मौसी से पूछी तो वह हंसने लगी, "बस कुछ नहीं." जब मैंने खोदते हुए पूछा कि जिन लड़कियों की शादी हो जाती है, तो उन्हें कैसे पहचाना जाता है, तब उन्होंने कहा कि जो लड़कियां अपनी मांग सिंदूर से भरती हैं, समझ लो, उनकी शादी हो गई...लाल निशान, यह खतरे की निशानी है, उन्होंने कहा, "इसका मतलब है, ये लड़कियां अब तुम्हारे लिए नहीं हैं, इनसे दूर रहो.

लेकिन करम कौर से दूर रहने का कोई कोई मतलब नहीं था...उनके बालों में सिंदूर की बात तो अलग रही, मांग भी दिखाई नहीं देती थी. सारे बाल एक जटा में उठकर एक लंबी चोटी में कसे हुए नीचे उतर जाते थे, जैसे पहाड़ों से उमड़ती पानी की मोटी धारा नीचे उतरकर एक पतली नदी में बदल जाती हो. उनके कपोलों की उभरी हुई हड्डियों और खाली आंखों के नीचे हमेशा एक चांदी-सी चमक बैठी रहती थी जिसे देखकर पता नहीं चलता था कि वह पसीने की झांई है या सिर्फ रोशनी की खरोंच.

> **सन्नाटे में बावड़ी के अंधेरे तल से गड़-गड़ की सी आवाज सुनाई दी... एक-एक पौढ़ी नीचे उतरते हुए जितना हम पानी के पास आते जाते, उतनी ही सीली-सी गंध ऊपर उठती जाती. बावड़ी की अंतिम सीढ़ी पर करम कौर बैठी थीं...**

"करम कौर जी, क्या आप यहां पाठ पढ़ने आती हैं?"

वह हंसने लगीं, "पगले, यह कोई पाठ की जगह है...यहां तो मैं सिर्फ देखने आती हूं."

"क्या देखती हैं?"

"कुछ नहीं मालूम?" वह धीरे-धीरे अपनी खुरदरी अंगुलियों से मेरी बांहों को सहलाने लगीं. मुझे डर भी लग रहा था और गुदगुदी भी हो रही थी. लग रहा था जैसे उनकी अंगुलियों तले मेरी देह के रोंये खड़े हो रहे हैं, सूखे तिनकों-से सुलग रहे हैं.

"यहां कामना देवी अपनी बहिन दुर्गा जी से मिलने आती हैं. दोनों बहनें एक साथ बावड़ी में नहाती हैं."

मैं संदेह के सन्नाटे में उन्हें देखता हूं. "कामना देवी का मंदिर तो पहाड़ी पर है.. क्या वह इतनी दूर पैदल चलकर नीचे आती हैं?"

"और नहीं तो क्या? तू सोचता है, वह कोई अंग्रेज मेम हैं जो रिक्शे में बैठकर नीचे उतरेंगी?"

मुझे विश्वास नहीं होता. कहां कामना देवी का मंदिर, शहर के धुर ऊपर, जहां आकाश शुरू होता था और बादल चलते थे, कहां दुर्गा जी की बावड़ी पाताल का तल छूती हुई.. मुझे याद आया, एक बार मैं और हाबलू जिज्जा के साथ कामना देवी के मंदिर गए थे. मैं और हाबलू बाहर तिब्बती बाजार में घूमते रहे और जिज्जा अकेली कामना देवी के मंदिर में बैठी रहीं. पूरी दुपहर बाद जब हम नीचे उतरे तो एक ही बात मन में मंडराती रही, लेकिन इतना साहस नहीं हो सका कि मैं जिज्जा से कुछ पूछ सकूं...

इतने दिनों बाद बावड़ी के अंधेरे में वह प्रश्न फिर एक बार कौंध उठा—अपनी बांह पर करम कौर के हाथ को धीरे से पकड़कर मैंने पूछा, "करम कौर जी..."

"क्या है?"

"क्या यह सच है कि कामना देवी से जो कुछ मांगो, वह पूरा हो जाता है?"

वह हंसने लगीं, "पगले, जिसका अपना नाम कामना देवी है, वह दूसरों की कामना पूरी नहीं करेंगी?"

"क्या आपने कभी कुछ मांगा है?"

"छिः छिः छिः," उन्होंने दुपट्टे का सिरा अपने मुंह में ठूंस लिया, जैसे मैंने कोई गंदी बात कह दी हो. चेहरे का रंग वैसे ही खूब पका था, अब तो गरम तवे-सा बिलकुल सुर्ख हो आया था.

"आप अपनी चुन्नी मुंह से निकाल लीजिए—मुझे डर लगता है."

उनकी आंखें फैली थीं, गाल फूले थे. माथे की नसें फड़क रही थीं लेकिन मेरी बात सुनते ही उन्होंने दुपट्टा मुंह से बाहर निकाल लिया—टेनिस की गेंद की तरह गोल और गरम.

"क्या तू मेरी एक बात मानेगा?"

"कैसी बात?"

"अगली बार जब कामना देवी नीचे उतरेंगी, तू उनसे कुछ मांगेगा?"

"मांगूंगा, जो आप कहेंगी."

"मांगना कुछ नहीं, सिर्फ पूछना होगा. देख, जैसे मैं कामना देवी हूं और तू है करम कौर," उन्होंने चुन्नी मेरे गले में लपेट दी और उसके पल्लू से मेरा सिर ढक दिया. मैं करम कौर बन गया था और खुली आंखों से करम कौर को देख रहा था, जो कामना देवी से ज्यादा काली देवी दिखाई दे रही थी. काला दिप-दिप करता चेहरा, छोटी चमकती आंखें, नाक के सिरे पर माता के दाग.

अचानक उनकी चीखती-सी आवाज सुनाई दी, "बता अभागी करम कौर तू क्या जानना चाहती है?"

"कामना देवी जी.." मैंने सिर पर दुपट्टा संभालते हुए कहा, "मेरा ब्याह कब होगा?"

उनके चेहरे पर एक भेद भरी मुस्कान खिल आई, बिलकुल वैसे जैसे मंदिर में कामना देवी की मूर्ति पर लहराती थी.

"ब्याह इस उम्र में? करम कौर तू सठिया तो नहीं गई है?"

"फिर मैं क्या करूं, आप बताइए."

"जाग, करम कौर, जाग!"

"मैं...मैं..." मैं हकला रहा था जैसे कोई ऐन मौके पर अपना पार्ट भूल जाता है. फिर अचानक मेरे भीतर करम कौर की सारी मरी-बुझी इच्छाएं जागने लगीं. "देवी जी, मैं अब अकेले नहीं जी सकती. मुझे मार डालिए."

करम कौर अपनी फटी-फटी आंखों से मुझे निहारती रहीं. बिना दुपट्टे के उनकी रूखी, ढीली छातियां हर सांस के साथ ऊपर जाती थीं, नीचे आती थीं.

"इधर आ, मेरे पास," उन्होंने मुझे बुलाया. जब मैं उनके पास आया, उन्होंने मेरे

गले में लटके दुपट्टे को दोनों सिरों से कसते हुए कहा, "तू मरना चाहती है, करम कौर?" वह उसे कसती जा रही थीं और तब तक कसती गईं जब तक मेरे गले से गों-गों जैसी आवाज़ नहीं निकलने लगी, जिसे सुनकर मुझे हैरानी हुई कि यह मैं हूं, मेरी आवाज़ है, मेरी देह की किसी अज्ञात गुहा से बाहर आ रही है...

"मर, मरती क्यों नहीं? मर, करम कौर मर!"

तब सहसा वह आवाज धीमी पड़ गई—और मुझे लगा, मेरा गला खाली है. न कोई कसक, न कराहट, सूखा और हल्का... आखिरी धूप की मुरझाई डाल बावड़ी के पानी पर झूल रही थी.

"क्या आप जा रही हैं?"

"और नहीं? तू क्या रात भर बैठा रहेगा?" उन्होंने धीरे से मुसा-सिमटा दुपट्टा मेरे गले से उतारकर अपने कंधे पर डाल दिया. वह अब भी बावड़ी के पानी में भीगा था और बूंद-बूंद चू रहा था.

हम धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़ने लगे. जितना ऊपर चढ़ते जाते, रोशनी बढ़ती जाती, सीलन भरी दीवार की दरारें चौड़ी होती जातीं, जिनके भीतर गड़ी देवी-देवताओं की मूर्तियां उजली होती जातीं और दरवाज़े के पास दुर्गा जी तक आते-आते रोशनी का मंडल इतना चमकीला हो जाता कि पता नहीं चला कि वह दुर्गा जी से छंटकर ऊपर जा रहा है या ऊपर की रोशनी नीचे झुके दुर्गा जी के पैरों को छू रही है...

जब मैं बाहर आया, तो कोई भी न था. बारिश के बाद का मैलापन था, दिन की रोशनी को ढकता था. ऐसे दिनों में मुझे अपने भीतर एक ठिठुरन-सी लगती थी, जैसे कोई रास्ता रोककर खड़ा हो. हटाओ, तो भी वह अड़ा रहता था. चलते रहो, तब तो कोई बात नहीं, लेकिन रुकते ही वह कील की तरह मन पर ठुकने लगता था.

मौसी मां को कुछ भी नहीं मालूम होता था. जब मैं घर आता, वह मंजी पर बैठ जातीं. "लालदेई, अरी ओ लालदेई...," वह चिल्लाने लगतीं, जैसे जंगल से निकलकर कोई बाघ-चीता भीतर चला आया है. लालदेई भागती हुई चौके से आती. चिट्टा चेहरा, पतली नाक, आंखों पर कांपती ऐनक. वह मुझे देखकर कुछ ऐसे शरमा जाती, जैसे छोटी-सी बच्ची हों—"छोटे भय्या, पहले मांसी मां से मिल आओ. वह राह अडीगती हैं."

उनके कमरे में जाते ही रजाई के गूदड़ की गंध सुंघाई देती. गरम, गुनगुनी, गदराई गंध चारों तरफ से घेर लेती. मैं जितना उनके पास आता जाता, उनकी सफेद पुतलियां एक जगह थिर हो जातीं और फिर अचानक धक से एक बल्ब की तरह जल जातीं. "गिन्नर, इधर आ, इतनी देर कहां रहा?"

मैं उनके सिरहाने बैठकर उनकी रजाई के

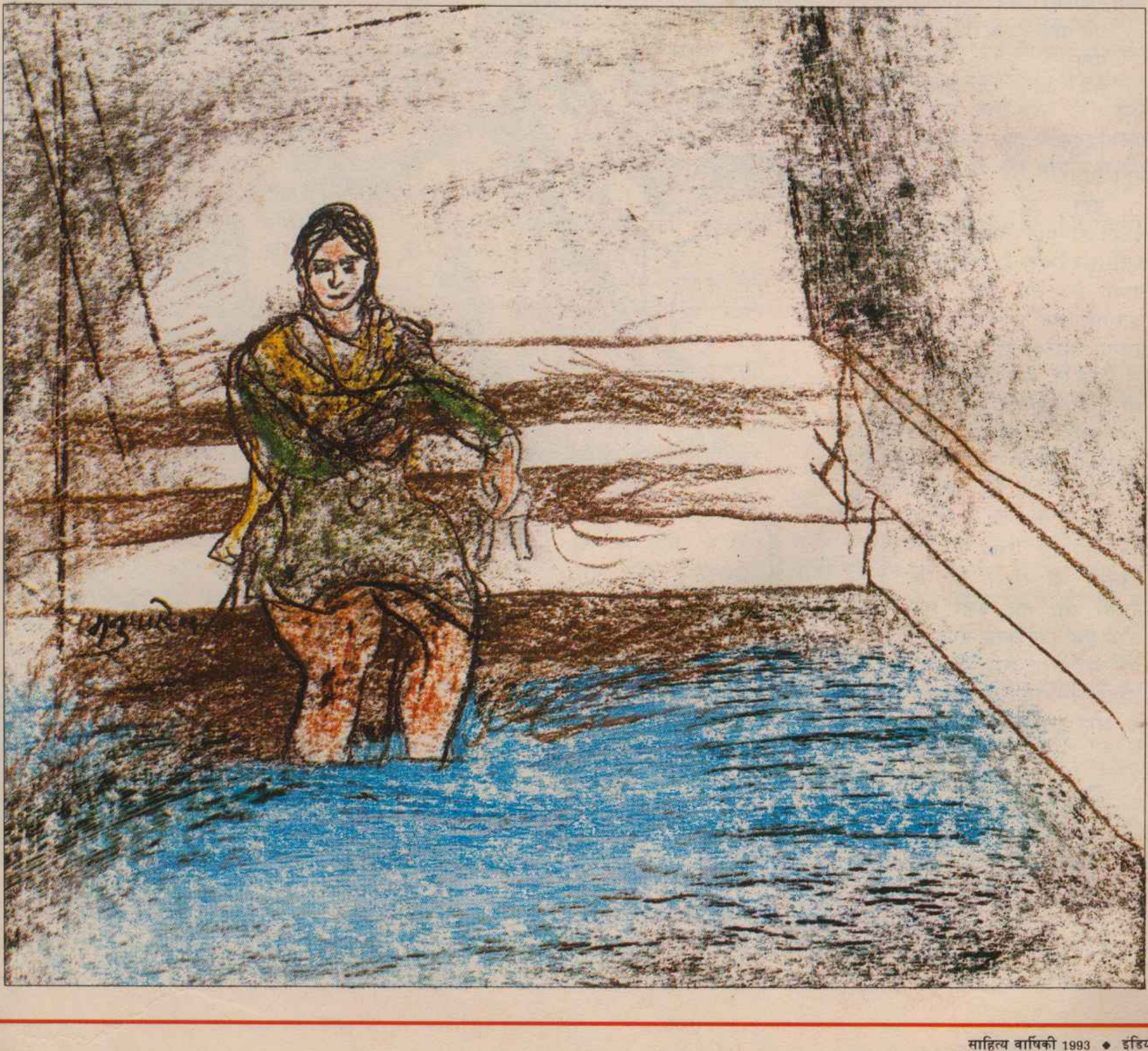

भीतर अपना हाथ डाल देता. गरमाई के गोले में उनकी देह का जो अंग मेरे हाथ लगता, वह हाड़-मांस का न होकर एक खोयी याद की तरह खुलने लगता. मांसी मां की गरम देह, उनका मुरझाया मांस, हड्डियों के बीच खाली खोखल जहां सुख भी था और सन्नाटा भी और जब मौसी यों मुझे झिड़कते हुए पूछती, "कहां रहा रे, सारा दिन?" तो मुझे कुछ भी याद नहीं आता, जैसे चुप रहने की तरह याद करने की अपनी पगडंडी है जिस पर आशु भाई जैसे कवि लोग ही चल सकते हैं.

"मौसी मां—क्या कभी ऐसा भी होगा?"

"क्या होगा?"

"मैं वैसा नहीं रहूंगा, जैसा मैं हूं?"

मौसी मां का मुरझाया हाथ रजाई के अंधेरे से बाहर निकल उसे टटोलने लगा, जो मेरा चेहरा था.

"यह पाप है, बेटा!"

"पाप?"

"तैने अपने को मांगा था?"

"किससे? मुझे याद भी नहीं आता."

"यही तो भेद है बेटा...जो याद नहीं आता, वही तुझे मिला है...वही तूने पाया है. जब तुझे याद आएगा, तब तू क्या ऐसा रहेगा, जैसा तू है?"

"कब?" मैंने उनके हाथ को अपने चेहरे से परे ठेलते हुए पूछा, "कब मौसी मां? कब ऐसा होगा?"

"पर किसी को मालूम है..?" वह गूदड़ के सिरहाने पर लेट गई. "जब मैं तेरे जितनी थी, तेरी मां से पूछती थी. वह चली गई और सब कुछ अपने साथ ले गई. मेरे लिए कुछ भी नहीं छोड़ा—सिवाय एक गिन्नर के, और दूसरी यह गिलहरी के..."

चौके की देहरी पर लालदेई हंसती है, खिल-खिल करती हंसी की फुहार जैसे दीवाली की फुलझड़ी हो. चारों तरफ मोतियों-से अंगारे बिखेरती हुई अंधेरे में चमकती हुई. सिर्फ एक विधवा ही ऐसे हंस सकती है, मैं सोचता हूं. उनकी चमक अंधेरे में किसी वनैले जीव की आंख की तरह दिखाई देती है. न जाने कितने जंगलों में विधवाएं घूमती होंगी. लालदेई का जंगल हमारे चौके में है. मां के मरने पर वह जब यहां आई, तो यहीं आकर रह गई, हालांकि बाबू यह नहीं चाहते थे. मौसी मां अगर पलंग न पकड़ती, तो उसे जाना ही पड़ता. कोई भी उसे नहीं रोक पाता...अब तो बाबू भी जब उसे बुलाते हैं, तो दोस्तों से कहना नहीं भूलते—यह हमारी छोटी नातिन है, लेकिन हम इसे बहन से भी ज्यादा मानते हैं.

लालदेई बिल्ली की तरह बिस्तर पर आई. और मौसी मां के कानों में चिल्लाकर बोली, "मां जी, बाजा सुनना है?"

मौसी मां ने झपटकर रजाई अलग फेंकी और उठकर बैठ गई, "कैसा बाजा?"

कमरे की खुली खिड़की से धीमी, धूमिल-सी धुन आती थी, हार्मोनियम की उदास, उठती-गिरती उसांस. अंधेरे आकाश में जैसे कोई तारा टूटकर बहता आता है, वैसी ही वह आवाज़ खिड़की के भीतर आती थी. लालदेई और भी नीचे झुक आई बिलकुल

मौसी मां के ऊपर. फुसफुसाती स्वर में बोली, "चलें मां जी चलकर देखें?"

मौसी मां की गरदन एक अड़ियल घोड़ी की तरह दाएं-बाएं डोल रही थी. वह सो रही थीं—या सिर्फ सोने का बहाना कर रही थीं, जानना आसान नहीं था, क्योंकि उनकी आंखें जैसे सोते हुए भी कुछ खुली रहती थीं वैसे जागते हुए कुछ मुंदी रहती थीं. मैंने उनका पल्लू खींचा, "चलें, मौसी, चलकर देखते हैं."

खिड़की छोटी थी. एक पांव पलंग पर टिकाकर हाथ से खिड़की के पल्ले का सहारा लेकर दूसरे पैर के बल उतरना पड़ता था. पहले मैं नीचे उतरा, मौसी मां का हाथ पकड़ा और दूसरी तरफ से लालदेई ने उन्हें गोद में उठाकर खिड़की के चौखटे पर टिकाया, ताकि मैं उन्हें अपनी तरफ खींच सकूं. वह धप से नीचे आईं तो जोर से लालदेई पर चिल्लाईं, "मुझे खड्ड में फेंकेगी?"

मैंने जल्दी से उनके मुंह पर हाथ रखा, "मौसी, इस तरह चिल्लाओगी, तो बाजे की आवाज़ कैसे सुनाई देगी?"

"अरे चल बाजे वाले!" उन्होंने मेरा हाथ छिटककर अलग किया और धोती झाड़ती हुई उठ खड़ी हुईं, "मुझे कुछ नहीं सुनना. तू जाने और तेरी बुआ जाने."

इस बीच लालदेई छज्जे पर आ गई थी और मुंह में पल्लू ठूंसकर खी-खी हंस रही थी. मन तो मेरा हुआ उसका मुंह नोंच लूं, लेकिन यह घड़ी लड़ने-भिड़ने की नहीं थी. एक बार छज्जे पर आकर फिर आगे बढ़ा जा सकता था. बीच में गुसलखाने का दरवाजा पड़ता था और उसके आगे रोशनी का धब्बा, जो बाबू की खिड़की से बाहर छिटक रहा था.

हम छज्जे के अंधेरे में चुपचाप सांस लेते रहे...गाने का वह स्वर जो कमरे में इतना मंद, रूई में बंद-सा सुनाई देता था, अब रोशनी की नंगी शहतीर की तरह खुला-खुला पास आ रहा था. मौसी मां का गुस्सा भी उसकी रौ में बहने लगा और जब मैंने उनका हाथ पकड़कर धीरे से खींचा, तो उनके पांव अपने-आप मेरे साथ चलने लगे. जुलूस के सबसे पीछे लालदेई आ रही थी. उसकी लंबी छाया नीचे झाड़ियों तक दिखाई देती थी और वह धीरे-धीरे लंबी होती जाती थी, जितना हम खिड़की की रोशनी के पास पहुंच जाते थे.

अचानक मौसी मां की पकड़ मेरी बांह पर कस गई. जैसे उन्हें कोई प्रेत दिखाई दे गया हो. "देख तो, वहां कौन बैठा है?"

"दाऊ हैं, और कौन हैं." अंधेरे में लालदेई की आवाज़ सुनाई दी.

> **बाबू हाथ बढ़ाकर गिलास उठाते, तो मैं खिड़की के पीछे हट जाता. लोगों की बात याद आती, जैसा बाप वैसा बेटा. मुझे गुस्सा आता, तो गर्व भी होता. क्या मैं उनके जैसा हूं जो कमरे में ग्रामोफोन के सामने बैठा है?**

बीच में काठ की चौकी रखी थी, जिस पर पानी का जग रोशनी में झिलमिला रहा था. जब बाबू हाथ आगे बढ़ाकर गिलास उठाते, तो मैं खिड़की के पीछे हट जाता, जैसे वह हाथ कहीं आगे बढ़कर हमें छू लेगा, पूछेगा—भला इतनी रात को तुम यहां कैसे? लोगों की बात याद आती, जैसा बाप, वैसा बेटा. मुझे गुस्सा आता, तो गर्व भी होता, क्या मैं उनके जैसा हूं जो कमरे में ग्रामोफोन के सामने बैठा है?

"गाने वाली बात तो कहीं नजर नहीं आती!" पीछे से लालदेई ने कहा.

"चुप, धीरे बोल...देखती नहीं, वह बाजे के भीतर से गा रही है," मैंने कहा.

"कहां भीतर से?" लालदेई देखने के लिए नीचे झुकी तो उसके बालों की चोटी लहराती हुई खिड़की पर लटक आई. बाबू का मुंह मुड़ा था, इसलिए उन्होंने देखा नहीं. देखते, तो सोचते जैसे कोई सांप छत से नीचे लटक रहा है—इतनी लंबी थी लालदेई की गुत! मैंने उसे पीछे धकेला, तो मौसी मां डर के मारे चीख उठीं, "डायन!"

"कौन है?" बाबू का सिर खिड़की की तरफ मुड़ा ही था कि हम तीनों के सिर खिड़की के नीचे थे. घुप्प अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं देता था. लालदेई ने चौकस में मौसी मां का मुंह भींच रखा था, इसलिए सन्नाटे में उनकी छाती से उठती हुई घुर्र-घुर्र के अलावा कुछ भी सुनाई नहीं देता था. बाहर झींगुरों के संगीत के साथ मौसी मां की सांसें कुछ इस तरह घुल-मिल गई थीं कि बाबू को इन दोनों के बीच कोई अंतर नहीं जान पड़ा. वह शायद कुछ सुन भी नहीं रहे थे—गाती हुई उस औरत की आवाज़ भी नहीं, जो धीरे-धीरे मंद पड़ते हुए मोमबत्ती की लौ की तरह फड़फड़ाई थी और फिर अचानक बुझ गई थी. लगता था, रोशनी के बीचोबीच वह कहीं अंधेरे में बैठे हैं... मैंने उन्हें हमेशा ऐसे ही देखा था. पता नहीं, जब मां जीवित थीं तब वह कैसे थे, लेकिन जिज्जा बताती हैं कि तेरे बाबू का मन अब इस दुनिया में नहीं है. इस दुनिया में नहीं है तो पता नहीं, वह कहां जा सकता है?

छज्जे के ऊपर चांद निकल आया था. लालदेई के कंधे पर सिर टिकाकर मौसी मां सो रही थीं और लालदेई—वह अपनी फफकती आंखों से बाबू को लील रही थी, जो भीतर बैठे थे, रोशनी के बीच अंधेरे में...

"कैसा लगता होगा दाऊ को," उसने धीरे से कहा.

"कैसा?"

"इस तरह बाजा सुनना, अकेले में!"

"करम कौर कहती थी..."

"चुप!" लालदेई ने फूत्कार-सी मारी.

बाबू ने बोतल से कोई लाल-लाल-सी चीज़ गिलास में डाली, फिर जग को उलटा कर पानी डाला और जब गिलास भर गया तो धीरे से उठे और बरामदे की तरफ वाला दरवाजा खोल दिया, बत्ती बुझा दी... भूरी-सी चांदनी में अब सिर्फ उनकी छाया दिखाई देती थी—जग, गिलास और बोतल के बीच बैठी हुई.

"क्या कहती थी करम कौर?" लालदेई ने फुसफुसाते हुए पूछा.

मैं कुछ नहीं बोला.

"क्या कहती थी, बताता क्यों नहीं?"

"बोलो नहीं," मैंने कहा.

"लोग ठीक कहते हैं... तू आधा पागल है!"

"और आधा?"

"आधा वह.. जो कमरे में बैठे हैं."

मैं कुछ कहता, कि फिर उस औरत की आवाज़ सुनाई दी, जो अभी कुछ देर पहले गा रही थी. ऐसे ही दिल दुखता होगा, पीड़ा की एक-एक कतरन में, ठुल दद्दा जैसे नाखून काटते थे, जमा करते थे, वैसे ही वह आवाज़ छीलती जाती थी, कागज़ की चिंदियों-सी, जिस पर आशु भाई अपनी कविता लिखते थे और चिंदी-चिंदी में फाड़ डालते थे.

क्या यह वह दुनिया थी जिसमें बाबू का मन और मेरा पागलपन एक साथ मिलकर रहते थे? बहुत देर तक जब कोई आवाज़ सुनाई नहीं दी, तो पीछे मुड़कर देखा लालदेई मौसी मां का हाथ पकड़कर कमरे की तरफ लौट रही थी, उसके पीछे-पीछे हार्मोनियम का सुगबुगाता-सा स्वर जा रहा था. और सबसे पीछे चांद, जो आड़ू के पेड़ से उतरकर जिज्जा की छत पर चला आया था. ■

भुगतो असीमा

• मृदुला गर्ग • चित्र: शमशाद

परित्यक्ता मां के साये में पली असीमा के खून में स्वाभिमान कुछ ज्यादा ही था. मगर नारी को न्याय दिलाने के उसके हौसले को किन इम्तहानों से गुजरना पड़ा!

मेरा नाम असीमा है. कभी सुना है किसी लड़की का नाम असीमा? नहीं न? लड़कों का अलबत्ता, सुना होगा, असीम. सारा खेल 'मेल शाविनिज्म' का है. सीमा में बंधे रहने का ठेका लड़कियों ने जो ले रखा है.

मेरे मां-बाप ने कौन-सा मेरा नाम असीमा रखा था. वही घिसा-पिटा—सीमा. मेरे पिद्दी भाई को जरूर असीम नाम दिया था. वह तो मैंने खुद बदलकर असीमा कर लिया.

अब आए तो कोई मर्द मेरी सीमा में. टांग तोड़कर पूंछ बना दूं. मुझे मर्दों से नफरत है. सब एक से एक बढ़कर हरामी होते हैं. सबसे बड़ा हरामी था, मेरा बाप. लंबा, तगड़ा, खूबसूरत हरामी. उसके सामने मेरी मां—न पिद्दी, न पिद्दी का शोरबा. हर तरह की सीमा में बंधी, एक अड़ियल, जिद्दी औरत.

महज़ ज़िद के बल पर कोई औरत फेमिनिस्ट कहला सकती है?

मेरी मां को आधुनिक तो किसी हिसाब से नहीं कहा जा सकता था. न पहरावे से, न खान-पान, रहन-सहन और न विचार-भावनाओं से. वही पोंगापंथी धुतल्ली का पहरावा. सिर पर पल्लू, मेकअपहीन चेहरा, त्यौहारों पर आस्था, मां-बाप की आज्ञाकारिणी पुत्री, तयशुदा विवाह की पात्रा, खाना बना-खिलवाकर तृप्त, बच्चे पैदा करके खुश. आदर्श गृहिणी, कर्तव्यपरायण मां, अपनी सीमाओं में आबद्ध, सतयुगी काल से चली आ रही, संतोषी भारतीय नारी.

> **मर्दों से नफरत है मुझे. सब एक से एक बढ़कर हरामी होते हैं. सबसे बड़ा हरामी था मेरा बाप. उसके सामने मेरी मां—न पिद्दी, न पिद्दी का शोरबा. हर तरह की सीमा में बंधी, एक अड़ियल, ज़िद्दी औरत.**

और सब ठीक-ठाक, संतुलित, दरम्याने किस्म का था, बस स्वाभिमान का शीरा कुछ ज्यादा ही मिकदार में उसके खून में मिला हुआ था. जिसे अपमान मान लिया, मान लिया. फिर खून को कड़ाही में खौलाकर शीरा यूं सख्त किया कि फेमिनिस्ट से फेमिनिस्ट, मर्दमार, उच्च शिक्षित औरत उस अनपढ़ गंवार को देखकर दांतों तले जीभ दबा ले. व्यवहार किसी स्वीकृत फेमिनिस्ट थ्योरी के पासंग बैठे तब तो उसका तर्क समझ में आए न! अभिमान तो समझ में आता है पर ऐसे अभिमान का क्या फायदा, जो अपमान के एवज में एक फूटी कौड़ी नसीब न हो. न कुछ मांगना, न लेना, यह तो व्यावहारिक मर्दानगी नहीं मानी जा सकती.

मुसीबत यह है कि मेरी मां की बिरादरी की औरतों का तर्क भी, साला, एकदम औरतनुमा होता है. फेमिनिस्ट नहीं, फीमेल. मेरी मां का तो एक ही नारा था: जिसका मैं सम्मान नहीं कर सकती, जिसने मेरे आत्मसम्मान को चोट पहुंचाई, उससे पैसा क्यों लूं?

तो मरो. पालो उसके पिल्लों को, बिला मदद. शहीद हो जाओ, अपने अभिमान के लिए. गरीबी में संतोष ढूंढो, अभाव में महानता.

यह सब कहकर खुश तो हो जाओगे पर तब क्या करोगे, जब वही जाहिल, अनपढ़ जिद्दी औरत वाकई अभाव को वश में कर ले. अपनी मेहनत के बल पर, अच्छी-खासी मध्यवर्गीय जिंदगी बसर करने के साधन जुटा ले. बहुत संपन्न, समृद्ध न सही, पर एक ठीकठाक, सुचारु, आरामदेह, मध्यवर्गीय जिंदगी. ऐसी जिंदगी, जो अपने देश में कम लोगों को ही नसीब होती है.

सच, ऐसी औरतें बहुत तंग करती हैं. किसी खांचे में फिट ही नहीं होतीं. ऐसी थी मेरी मां. मेरा नाम सीमा न रखती तो और क्या करती. खुद को इतनी सीमाओं में बांध रखा था कि....

मां बतलाती थी कि मेरे बाप ने, उसके रहते दूसरी औरत इसलिए की थी क्योंकि मां हर वक्त उसकी भूख मिटाने को तत्पर नहीं रहती थी. उसकी अपनी सीमाएं थीं. मेरा हरामी बाप, मां ने उसे कभी हरामी नहीं कहा. न 'ये' 'वे' को छोड़कर कोई संबोधन मुंह चढ़ाया. यह नाम तो मेरा दिया हुआ है. खैर, मेरा हरामी बाप सबसे ज्यादा तब खार खाता था, जब मां अपने मैके जा बैठती थी. हफ्ता भी न गुजरता कि बाप वहां नमूदार हो जाता. मां के अनेक सिद्धांतों में से एक यह था कि मैके में मर्द के साथ नहीं सोना चाहिए, चाहे अपना ही क्यों न हो. बाप की मनुहार, गाली, धमकी, कुछ काम न आती और वह उपहारों से लदा-फदा वापस प्रस्थान कर जाता.

उसके बाद मां के मां-बाप उन्हें ज्यादा देर अपने पास टिकने नहीं देते. पति के पास पठा देते. उसे ज्यादा दिन इंतजार नहीं करना पड़ता. पर स्वामित्व के अधिकार से बलात् वंचित किए जाने पर उसकी भूख हिंसक बनी मिलती. उसकी फरमाइशें ज्यादा फाहश होकर सामने आतीं.

पर मां देह प्रदर्शन के खिलाफ थी. यह उसका दूसरा सिद्धांत था. मेरा बाप चाहता कि मां ऐसे कपड़े पहने जिनमें से उसकी देह का सौंदर्य और सौष्ठव केवल वह नहीं, उसके तमाम दोस्त-अहबाब भी देखें. और वह गर्व से सिर ऊंचा करके मूक कटाक्ष फेंक सके कि देखो क्या बांकी औरत ब्याह कर लाए हैं. तुम लाख लार गिराते रहो, हाथ न आएगी. पर मां पर उसका कोई बस नहीं चलता था.

मां दो टूक कहती, "मैं अपनी सीमा नहीं लांघूंगी. न घर को बाजार बनाऊंगी, न बाजार को ख्वाबगाह." मार-पीट करने की मेरे बाप को आदत नहीं थी. औरत की देह उसके लिए भोग की खूबसूरत वस्तु थी, उसे पीट-पाटकर दाग-धब्बेदार बनाना गवारा नहीं था. मन के दाग, अलबत्ता, चेहरा खराब करने में वक्त लगाते हैं, सो.....

खैर, मां अपनी ज़िद पर अड़ी रही. तो असीम और मेरी पैदाइश के बाद बाप ऐसी औरत की तलाश में मसरूफ हो गया जिसके न सिद्धांत हों, न सीमाएं. वह ऊंची पोस्ट पर मोटी तनखा पाने वाला, जवान-तगड़ा मर्द था, इसलिए इस तलाश में उसे बहुत जल्द कामयाबी मिल गई. उसने दिल्ली से अपना तबादला बंबई करा

लिया और वहां एक दूसरा घर बसा लिया. इस सचाई को पोशीदा रखने की उसने कोई कोशिश नहीं की. मां को पता चलना था, सो चल गया. जब बाप को पता चला कि मां को सब मालूम है तो उसने फराखदिली दिखलाई. बोला, मां और हम दोनों का वह पूरा खर्चा उठाएगा. और अगर मां चाहे तो महीने में चार-पांच दिन आकर उसके साथ सो भी लेगा.

पर मां ठहरी एक नंबर की अफलातून. उसने न रोना-धोना मचाया, न तलाक मांगा, न जेबखर्च. उलटा छाती ठोंककर ऐलान कर दिया, "मेरे सिद्धांत मुझे ऐसे पति से एक पैसा लेने की इजाज़त नहीं देते, जो किसी और का पति बन चुका हो." विवाहित स्त्री का अपने मां-बाप से पैसे लेते रहना भी उसके सिद्धांत के खिलाफ था. सो, हमारा रोटी-पानी मां की सीमित शिक्षा और शून्य अनुभव के हत्थे चढ़कर रह गया. कुछ सीना-पिरोना वह जरूर जानती थी. एक सिलाई मशीन भी थी उसके पास, काफी बढ़िया, फैशन डिजाइनर जैसी कुछ. उस पर सी-काढ़कर उसने अपनी शादी के लिए पूरे इक्कीस पलंगपोश, इक्कीस मेजपोश और बयालीस तकियों के गिलाफ बनाए थे. अब तक भी वे शेष नहीं हुए. तो, इसी सिलाई मशीन के भरोसे, उसने हम मासूमों को पालना शुरू कर दिया था.

पर हमने कोई फिल्मी किस्म का अभाव नहीं झेला. न मां ने हमें ताजी, खुद बासी खाकर पाला, न हमें सूखे में सुलाकर खुद गीले में सोई और न बड़ी होने पर मुझे किसी साहूकार, लेनदार की बुरी नजर का शिकार होना पड़ा. मां का काम चला और खूब चला. मेहनत से समझिए या किस्मत से. अब किस्मत भी क्या करे. जिद्दी लोगों के सामने कभी-कभी भगवान की भी नहीं चलती. तो आम निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की तरह हमने भरपेट खाया, बढ़िया सिला-पहना (मां की कारीगरी की बदौलत), और सरकारी वाहनों के सफ़र में व्यायाम की सहूलियत का इस्तेमाल करते हुए, दो कमरों में घर-दुकान बसाए, आराम से स्कूल पास कर गए. असीम भाई मुझसे एक साल बड़े थे. सो, एक बरस पहले बारहवीं पास हुए. काफी दुनियादार और चौकस बंदे थे, अपने भाई साहब. कौन-सी फिल्म में कौन तारिका है, कौन-सा गाना कितना हिट हुआ, बाल काढ़ने का ठीक क्या फैशन उन दिनों प्रथम स्थान पर है, सबकी उन्हें जानकारी रहती थी. टीवी, वीसीआर, फ्रिज, कूलर आदि के क्या दाम हैं और वे जिंदगी के लिए कितनी अहम जरूरियात की चीजें हैं, यह भी वह अच्छी तरह जानते थे. मोटरसाइकिल के बिना जिंदगी कितनी बेजान, बेमतलब और टुच्ची है, यह एहसास बराबर उन्हें कचोटता था. पर स्कूल पास करने तक, सिवाय सपने देखने और लंबी आहें भरने के वे उसके बारे में कुछ कर नहीं पाते थे.

बारहवीं का नतीजा निकलने तक असीम अठारह बरस का हो गया था, कई मायनों में बालिग. वह जब-तब आह भरकर कहने लगा था, "अगर मेरे पास मोबाइक होती तो अब मुझे उसे चलाने का लाइसेंस मिल सकता था." कहकर वह अपनी मूंछों को ऐंठता और जुम्मा-चुम्मा गाने लगता. मूंछें उसकी रोबदार थीं. गरीबी बालों की पैदावार में आड़े नहीं आती. खैर मां के हिसाब से, चूंकि अब वह बालिग हो गया था, इसलिए उसे उसके बाप के बारे में तमाम जानकारी दे देनी चाहिए थी. यह उनका कौन से नंबर का सिद्धांत था, मुझे याद नहीं. खैर, किस्सा मुख्तसर यह, कि मां से जिंदा बाप की ऐशो-आराम वाली रिहाइश के बारे में सुनकर वह इतनी जोर से चीखा कि मैं उम्र से साल भर पहले बालिग हो गई.

"मुझे फौरन उनके पास बंबई जाना है," वह चीखा और मां से टिकट के पैसे और बाप का पता लेकर चला गया. मां ने एतराज नहीं किया. क्यों करती? बकौल उसके, उसका 'उनसे' कोई झगड़ा नहीं था, बस एक सिद्धांत था जो... जाहिर है, सिद्धांत मां का था, बेटे का नहीं. और हर हाल में बेटा केवल मां का नहीं, 'उनका' भी था. असीम भाई वहां गए तो वहीं सीमित रह गए.

एक महीने बाद लौटे, तो मां को वह-वह खरी-खोटी सुनाई कि मैंने फौरन उन्हें हरामी नंबर-2 का खिताब दे दिया. और उसी दिन, कराटे सीखने का फैसला भी कर लिया.

घर में घुसते ही, असीम भाई ने नया वीआइपी सूटकेस पलंग पर

पटका और यूं झटका देकर खोला, जैसे अलीबाबा का खजाना पेश कर रहे हों. एक से एक उम्दा कमीज पैंट, स्वेटर, जाकेट निकाल-निकालकर सामने लहराए और ऐंठ-ऐंठकर बोले, "यह देखो. और यह! देखे हैं कभी, ये और ये!"

मुझसे नहीं रहा गया. बोली, "न, कहां? हमने तो अब तक सब नंगे लड़के ही देखे हैं. ये सब मर्दाने कपड़े......"

तब तक एक झन्नाटेदार चांटा मेरे गाल पर रसीद हो चुका था. मेरी बोलती बंद हो गई. दर्द से नहीं, अचंभे से.

"बात करने की तमीज नहीं है," हमारे भाई साहब ने फरमाया, "छोटे लोगों के साथ और सीखोगी भी क्या?"

"आंय, कौन छोटे लोग?"

"पिता जी ने दिए हैं?" मां ने निस्सीम धैर्य के साथ पूछा.

"और कौन देगा? तुमने जबरदस्ती इतने दिन हमें इस नरक में ठूंसे रखा. उनसे मिलने नहीं दिया, इसके लिए मैं तुम्हें कभी माफ नहीं कर सकता."

"मैंने मना नहीं किया. उन्होंने पहले तुम्हें बुलाया ही नहीं."

"बुलाया नहीं. वाह, उलटा चोर कोतवाल को डांटे. तुम उन्हें छोड़कर चली आओगी तो वे क्यों बुलाते फिरेंगे?"

"मैंने उन्हें नहीं छोड़ा. वे मुझे छोड़ गए थे."

"छोड़ेंगे नहीं तो क्या पूजेंगे. न ढंग का पहनोगी, न ढंग से रहोगी. वह... औरत... छोटी मां.... देखा है कभी उन्हें, कितनी सलीकेदार, कितनी ग्लैमरस हैं. मुझे इतना सामान दिया, घुमाया-फिराया..."

"अच्छा है. खुशी की बात है."

"तुम्हारे लिए होगी. हमारे लिए तो शर्म की बात है. पूरा बचपन कंगलों की तरह काटना पड़ा. दोस्तों के सामने जलील होना पड़ा. सब तुम्हारी अकड़ की वजह से. पति से एक पैसा नहीं लूंगी, वाह-भई-वाह! वे सिर्फ तुम्हारे पति नहीं, हमारे डैडी भी हैं. जिस-तिस पर लाखों लुटाते फिरते हैं, और उनके बच्चों को तुम भिखमंगों की तरह पाल रही थीं. तुम मां हो या दुश्मन." असीम रोने लगा. जोर-जोर से, हिचकियां बांधकर.

> **कि**स्सा यह, कि मां से जिंदा बाप की ऐशो-आराम वाली रिहाइश के बारे में सुनकर मेरा भाई इतनी जोर से चीखा कि मैं उम्र से साल भर पहले बालिग हो गई. मैंने उसे हरामी नं 2 करार दिया.

मां भौंचक, चुप, ज़र्द.

"मुझे नहीं पता था, तुम्हारे लिए ये... सब.... इतना मायने रखता है. मैंने सोचा था, स्वाभिमान की जिंदगी..." आखिर, कराह की तरह उसके मुंह से निकला.

"स्वाभिमान!" असीम ने ऐसे कहा जैसे 'हरामजादी' कह रहा हो.

मां फिर चुप.

मुझसे नहीं रहा गया. बोली, "तो भाई, जाओ, वहीं रहो."

"रहूंगा. ज़रूर रहूंगा. अब इस नरक में और क्यों सड़ूं. तू भी चल मेरे साथ, तुझे भी बुलाया है. छोटी मां के बच्चे नहीं हैं. कह रही थीं, तुम दोनों ही मेरे बेटा-बेटी हो."

"डायन!" मैंने कहा.

"खबरदार, जो उन्हें गाली दी."

"दूंगी. तुम क्या करोगे? वह डायन और तुम्हारे डैडी हरामी!"

इस बार मेरे मुंह पर जो झन्नाटेदार चांटा पड़ा, वह मां के हाथ का था.

"पिता हैं तेरे. तमीज़ से बात कर."

मेरी जबान बंद हो गई पर, मन-ही-मन मैं दोहराती रही हरामी-हरामी-हरामी... मैंने तय कर लिया था कि उन दोनों के लिए हमेशा इसी लफ्ज़ का इस्तेमाल करूंगी. हरामी नंबर एक, मेरा बाप. हरामी नंबर दो, मेरा भाई. मां चाहे तो पूजा करें उनकी. मैं किसी साले मर्द से वास्ता नहीं रखना चाहती.

बाद में मां ने मुझे समझाया था, "डैडी के पास जाकर रहोगी. तो वे तुम्हें वह सब दे पाएंगे, जो मैं नहीं दे सकती. तुम भी असीम के साथ बंबई चली जाओ. जब चाहो मिलने आ सकती हो. फिर तुम्हारी शादी भी होनी है...."

"मुझे नहीं जाना. तुम चाहो तो चली जाओ," मैंने कहा, "मैं उनका नाम भी नहीं सुनना चाहती."

"मैंने नहीं चाहा था कि तुम अपने बाप से नफरत करो. मैं तो सिर्फ तुम्हें स्वाभिमान की जिंदगी जीना सिखाना चाहती थी. खैर, अब तुम सयानी हो गई हो, अपना रास्ता खुद चुनो. मैंने अपनी जिंदगी खुद चुनी थी. मैं नहीं चाहती कि उसका साया तुम्हारी जिंदगी को ढक ले. मुझे मर्दों से नफरत नहीं है. जरूरी नहीं है कि सब मर्दों की ख्वाहिशें एक जैसी हों. मुझे मात्र शरीर बनकर जीना पसंद नहीं था और मैं दया का पात्र बनना भी स्वीकार नहीं कर सकती थी. यह मेरी किस्मत थी कि मुझे इन्हीं विकल्पों के बीच चुनना पड़ा. जरूरी नहीं है कि तुमसे तुम्हारा मर्द यही चाहे. तुम्हें आजादख्याल होना चाहिए. पहले से खुद को सीमाओं में नहीं बांधना चाहिए."

मां को इतना असीमित बोलते मैंने पहले कभी नहीं सुना था.

"पर मेरा तो नाम ही सीमा है," मैंने कहा था.

मां ने चौंककर मुझे देखा था, फिर मृदुल परिहास के साथ कहा था, "तो असीमा कर लो."

"कर लिया!" मैं गंभीर थी.

मां भी गंभीर हो गई थीं. कहा था, "सोच-समझकर तय करना, तुम वाकई क्या चाहती हो."

"मैं कराटे सीखना चाहती हूं," मैंने कहा था

"मैं अभी की नहीं, आगे की पूरी जिंदगी की बात कर रही हूं."

"बोर्ड के इम्तिहान होते ही मैं नौकरी कर लूंगी. बीए पत्राचार से करूंगी. अभी इतना काफी है."

मां ने और कुछ नहीं कहा था, चुपचाप हरामी नंबर दो का बक्सा लगाने चली गई थीं.

मैंने कराटे सीखना शुरू कर दिया था. धीरे-धीरे उसके गुर मेरी पकड़ में आने लगे थे. मैं चाहती थी, जितना जल्दी हो सके, मैं उसमें पारंगत हो जाऊं और अपनी लियाकत साबित करने के लिए किसी को पीट डालूं. सुबह-शाम बस में सफर करती थी, लिहाजा, रोज दो-चार मर्द पिटने का काम कर जाते थे.

पर कराटे में जल्दबाजी के लिए कोई जगह नहीं थी. गुरु जी का कहना था, कराटे का दूसरा नाम है, चित्त की एकाग्रता और एकाग्रता की पहली शर्त है, धीरज. पहले धीरज बांधो फिर चित्त को एकाग्र करो, तब मन के संकल्प द्वारा शरीर की तमाम शक्ति हाथ या पैर में समाहित करके वार करो. तभी वह कारगर होगा. वरना हाथ-पांव तो सब चला लेते हैं. उसके लिए कराटे सीखने की क्या जरूरत है. उन्हें जल्दबाजी से इस कदर चिढ़ थी कि जरा बेसब्री दिखलाने पर वह घंटा-घंटा भर ध्यान लगाकर बैठने का हुक्म दे डालते. फिर मैं सब्र करना सीखने लगी धीरे-धीरे. उतने ही धीरे-धीरे कराटे के गुर भी मेरी पकड़ में आने लगे.

अब जब मैं बस में सफर करती, तो मर्दों की अश्लील हरकतें मुझे कराटे के इस्तेमाल के लिए नहीं उकसातीं. नहीं, मैं जरा झूठ

प्रीमियम कोमलता

अपनी त्वचा से कीजिए कोमलता का ये वादा... रोजाना.

प्रीमियम साबुन ८०% टी.एफ.एम. (टोटल फैटी मैटर) युक्त, जिसे ख़ासतौर से बनाया गया है नाज़ुक त्वचा को कोमलता से दुलारने-संवारने के लिए.

टी.एफ.एम. से संबंधित ठोस तथ्य :

त्वचा विज्ञान की दृष्टि से यह सिद्ध हो चुका है कि ज़्यादा टी.एफ.एम. अंश युक्त सुपर फैट वाले साबुनों से कुदरती तेलों की हानि कम होती है और नहाने-धोने के बाद त्वचा में खुश्की भी पैदा नहीं होती. ये हर तरह की त्वचा के लिए उत्तम साबित होते हैं.

त्वचा विज्ञान प्रमाणित तथ्य
८०% टी.एफ.एम.
त्वचा के लिए सर्वोत्तम सुपर फैट युक्त साबुन

त्वचा का श्रृंगार

प्रीमियम साबुन का उफनता झाग और खुशबू का सैलाब आपकी त्वचा को कर दे ताज़गी से सराबोर. त्वचा में ले आए स्वच्छ-निर्मल निखार. काया को कंचन बनाए. कमनीय बनाए. प्रीमियम साबुन त्वचा की हर चाहत को पूरा करे... प्यार से.

त्वचा का रखवाला साबुन

प्रीमियम

सुंदर सुगंधित साबुन

प्रीमियम श्रेणी में शामिल हैं ये भी :

आफ़्टर शेव कोकोनट शैम्पू परफ्यूम स्प्रे शेविंग क्रीम टेल्कम पाउडर स्टाइलिंग ज़ॅल
आफ़्टर शेव जेल आफ़्टर शेव मॉस्च्युराइज़र बॉडी ड्योडोरेंट रूम फ्रेशनर

HELENE CURTIS

IMPULSE/JKHC/S1-693 HIN

बोल गई. उकसाती तो थीं पर मैं सब्र कर जाती थी. गुरु जी पर चित्त एकाग्र करके उनको दिया अपना वायदा दोहरा लेती थी, कि पहलेपहल मैं कराटे का इस्तेमाल किसी महत काम के लिए करूंगी.

आज भी वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैंने पहले-पहल कराटे का प्रयोग किया था.

मेरी एक सहेली थी, स्मिता. उसके मां-बाप मर चुके थे और वह अपनी बहन और जीजा के साथ रहती थी. एक दिन, बेहद परेशान बदहाल वह मेरे पास आई और अपने लुच्चे जीजा की कमीनगी से बचने में मदद मांगने लगी. मैंने दस गालियां उसे, और दस उसके जीजा को सुनाई. उसे अपने घर पर रहने का न्यौता दिया और कुछ ट्यूशनें दिलवाने का वादा. साथ मे एमएससी में दाखिले की फीस के रुपए उधार देने को भी कहा. मैं तब कॉटेज इंडस्ट्रीज में सेल्सगर्ल थी, और मां मात्र दर्जिन. मेरा बीए पूरा होने को था. हमारे पास ज्यादा कुछ नहीं था, फिर भी इतनी आमदनी जरूर थी कि स्मिता को एमएससी के दाखिले का पैसा उधार, और एक-दो महीने उसे अपने घर पर पनाह दे सकें. वह खुशी-खुशी मेरे घर से विदा हुई थी, यह कहकर कि अभी उसका नापाक जीजा कलकत्ते गया हुआ है, इसलिए घर से सामान उठाकर लाने मे कोई दिक्कत नहीं होगी. अगले दिन, अल स्सुबह, वह मेरे घर पहुच जाएगी.

पर वह नहीं आई थी.

हमने चार दिन तक स्मिता के लिए इंतजार किया. उस बीच उसके लिए ट्यूशनें तय कर दीं. जब दो दिन तक वह नहीं आई, तो फिक्र होनी शुरू हो गई थी. मा तो नियम से, सुबह-शाम भगवान का नाम लेकर बुरे से बुरे अजाम के न घटने की दुआ माग मुझसे इसरार करने लगी कि मैं ही वहा होती आऊं.

पांचवें दिन, कॉटेज इडस्ट्रीज के बद होते ही मैं वहीं से सीधा स्मिता के, यानी उसकी बहन नमिता के, यानी उसके जीजा के घर के लिए रवाना हो गई थी.

वह दिन मेरे लिए यादगार दिन बन गया था. उसी दिन मेरे भीतर यह जज्बा पैदा हुआ था कि मैं अकेली, दुनिया के हर दरिंदे से टक्कर ले सकती हू. उसमें हार-जीत, मरना-जीना, दीगर बात थी. पर लड़ाई करने लायक होना ही मेरे लिए असली महत्व की बात थी. मेरे लिए क्या, किसी के लिए भी, कोई लियाकत अगर मानी रखती है, तो बस यही.

डीटीसी की बस खचाखच भरी हुई थी और पसीने से चिपचिपाते बदन पर किसी दूसरे बदन का स्पर्श असह्य लग रहा था. कमाल है, यार, उस दिन की छोटी से छोटी बात भी एकदम फिल्मी तरीके से आंखों के सामने खुली जा रही है. बस मे पूरा वक्त एक अधेड मर्द मेरी छाती का सहारा लेकर टिका खड़ा रहा था. हर हिचकोले के साथ उसका सिर मेरे सीने से रगड खाता था और वह बदबख्त सिसकारी भरने तक से बाज नहीं आता था. पर चेहरे पर ऐसी मासूम थकान ओढ़े रहता कि हर बार मैं सोचने पर मजबूर हो जाती कि खचाखच भरी बस हिचकोले पर हिचकोले खाती चले, तो उसके भीतर खडा आदमी करे तो क्या करे. फिर भी लाजपतनगर का बस स्टॉप आने तक, मैं कराटे की अपनी तालीम का इस्तेमाल करने को बेकरार हो चुकी थी.

बस स्टॉप से नमिता के घर पहुंचने तक प्यास और पसीने ने कुछ और बेहाल बना दिया था.

दरवाजा नमिता ने खोला था और कमबख्त ने मुझे अंदर आने तक को नहीं कहा था. वहीं, दरवाजे के पल्लों के बीच खड़ी दीदे फाड़े मुझे देखती रही थी.

"स्मिता है?" मैंने दुपट्टे से चेहरे का पसीना पोंछते हुए पूछा था.

"नहीं."

"कब आएगी?"

"पता नहीं... वह बाहर गई है, शहर से बाहर."

"कहां?"

"बड़ौदा."

"कब?"

"तीन दिन हो गए."

"क्यों?"

"एमएससी में दाखिला लेने."

"कैसे? अभी तो कॉलिज बंद हैं."

"हां, इतने... तैयारी कर लेगी. वहां मेरी एक सहेली है. उसके पास रह लेगी."

"मेरे लिए कोई संदेश नहीं दे गई?"

"नहीं."

"अजीब बात है. अच्छा, वहा का पता दे दीजिए."

"पता...?"

"जी हां. अपनी सहेली का पता.

"वह...."

"अपनी सहेली का पता तो होगा आपके पास."

"हां-हां, पर...."

"पानी पिलाइए."

"जी?"

"प्यास लग रही है. पानी चाहिए. पानी तो होगा घर में."

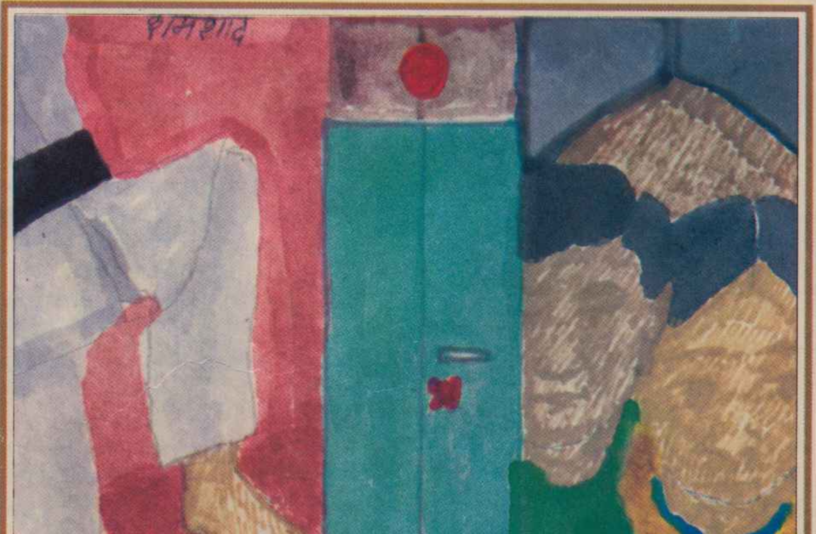

नमिता पानी लाने के लिए मुड़ी तो मैं कमरे के भीतर आ गई. पानी का गिलास थामकर कहा, "अब पता भी ले आइए."

"स्मिता ने मना किया है."

"क्या मना किया है?"

"पता देने को."

"मुझे अपना पता देने को मना किया है?"

"किसी को भी..."

"नान्सैंस!" मैं जोर से चिघाड़ी. सब्र की भी हद होती है.

नमिता के कुछ कहने से पहले, उसके पूज्य पतिदेव कमरे में नमूदार हो गए. "कौन?" कहते हुए आए और मुझे देखकर बदतमीजी से बोले, "आप कौन?"

"मैं स्मिता की सहेली, असीमा हूं. उससे मिलने आई हूं."

"तो आप हैं असीमा!" वह हा-हा कर हंस दिया, "सहेली! वाह! तो आपसे कहकर नहीं भागी आपकी सहेली?"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि आपकी बदजात सहेली मेरे रुपये चुराकर भाग गई."

"क्या? पर नमिता तो कह रही हैं..."

"इस हरामजादी के कहने से क्या. यह क्या सोचती है, मेरे घर से रुपये लेकर भागेगी तो छोड़ दूंगा. आज ही पुलिस से पकड़वाकर न मंगवाया तो मेरा नाम नहीं."

"नहीं," नमिता ने कहा, "तुम पुलिस में नहीं जाओगे."

"क्यों नहीं जाऊंगा?"

"लड़की का मामला है. गई तो गई. अब जग-हंसाई कराने का क्या फायदा."

"अच्छा! तो यह बात है. तूने ही भगाया है उसे!" उसने नमिता के बाल पकड़कर ऐंठने शुरू कर दिए.

वह चीखी तो झटका देकर बोला, "सच-सच बोल. तूने भगाया उसे?"

"भगाती नहीं, तो क्या सौतन बनाकर रख लेती," दर्द से बिलबिला कर नमिता चिल्लाई.

"हां, रखती. सौ बार रखती. तेरा बाप कारूं का खजाना छोड़कर गया है, जो तेरे साथ तेरी बहन को भी पालूं. पालूंगा तो इस्तेमाल भी करूंगा. बोल, कहां है तेरी मां जाई. तू क्या समझती है, तू नहीं बतलाएगी तो मुझे पता नहीं चलेगा. अरे, पुलिसवालों से माल शेयर करूंगा तो मुफ्त में ढूंढ़कर लाएंगे, तेरी कुत्ती बहन को. पर तुझे क्यों छोड़ूं. बोल." कहते-कहते उसने उसे जमीन पर गिरा दिया और पीठ पर लातें मारने लगा. "बोल! वरना चल, तुझे ही छोड़ आता हूं पुलिस स्टेशन. इतनी बूढ़ी नहीं है कि मज़ा न दे सके. और नहीं तो यह मजा तो दे ही सकती है. औरत का जिस्म, भगवान ने, मार खाने को ही बनाया है." वह उसके बदन के हर हिस्से को लतिया रहा था.

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि नमिता उससे अपने को छुड़वाने के बजाय अपनी ताकत का इस्तेमाल, कोसने में क्यों कर रही है. "जल्लाद! हत्यारा! कमीना!" जैसी एकदम औरतनुमा गालियां, रीं-रीं करके उसके मुंह से झड़ रही थी.

मुझे याद है, मैंने उस नामुराद मर्द पर कराटे किक तब जमाया था, जब वह अपनी लात उसके मुंह पर जमाने जा रहा था. तालीम के दायरे से बाहर, असल जिंदगी में, सचमुच के दुश्मन के खिलाफ वह मेरा पहला हिट था.

अचरज के साथ मैंने देखा था, स्मिता का जीजा, चारों खाने चित, जमीन चूम रहा था. फिर तो मेरे सिर चुड़ैल सवार हो गई थी. उसका बदन मेरे लिए अखाड़ा बन गया था. जहां-जहां जी चाहा था, मैं कराटे किक जमाती चली गई थी. उसकी चीखें मेरे भीतर आह्लाद का संचार कर रही थीं. मैं जानती थी, वह गलत था. गुरु जी ने कौल भरवाया था कि हम पाप की सजा देने या अपने बचाव के लिए ही कराटे का इस्तेमाल करेंगे और उस वक्त हिंसा के क्रूर रंजन से अछूता बने रहेंगे. एक तरह की दिव्य तटस्थता के साथ पापी को उसके पाप का फल भुगतवाएंगे. मुझमें वह तटस्थता बिलकुल नहीं थी. मैं उसे मारती चली जाती, अगर नमिता मेरे दोनों हाथ पकड़ कर मुझे रोक न देती.

हिंदुस्तानी औरत का पत्नीत्व जगने में कितनी देर लगती है.

"अगर तूने स्मिता को ढूंढ़ने की कोशिश की, या फिर कभी, अपनी बीवी पर हाथ उठाया तो समझ ले पीट-पीटकर तुझे अपाहिज बना दूंगी. मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है और मुझे मारने-पीटने में तुझसे ज्यादा मजा आता है," मैंने बाकायदा फिल्मी डायलॉग मारा था और लौट आई थी.

उसी दिन मैंने अपने पिताश्री से हरामी नं. एक का खिताब छीनकर नमितास्वामी को अर्पण कर दिया था. उसके सामने अपने पिता जी बेचारे तो गऊ थे. बेचारे पिता जी!

> **हरामी नं. एक को पीटकर जो आनंद मिला था, उससे बड़ा सुख इस एहसास का था कि मैं भी मर्द को पीट सकती हूं. यही नहीं, मेरे हाथ ऐसा कारगर नुस्खा लग गया था, जिसे मैं अपनी साथिन औरतों के साथ बांट सकती थी.**

दिनोंदिन उनका ओहदा गिरता चला गया. अब तक तो वे हरामी नं. 25 हो चले होंगे.

हरामी नं. एक को पीटकर जो आनंद मिला था, वह अपनी जगह था. उससे बड़ा सुख इस एहसास का था कि मैं भी मर्द को पीट सकती हूं. यही नहीं, मेरे हाथ ऐसा कारगर नुस्खा लग गया था, जिसे मैं अपनी साथिन औरतों के साथ बांट सकती थी. ब्लैक बेल्ट पाना मेरे लिए कराटे में सिद्धहस्त होना ही नहीं था, मोक्ष प्राप्ति की तरह था. जीवित रहते मोक्ष प्राप्ति, नारी सुलभ कोमलता और करुणा से.

मुझे याद है, जब मुझे पता चला था कि हरामी नं. एक को लकवा मार गया है तो मुझे बेहद खुशी हुई थी. मुझे लगा था, शायद मेरे ही किसी कराटे के वार से उसकी कोई धमनी फट गई होगी, जिसकी वजह से उसे स्ट्रोक हो गया होगा. अब सोचती हूं तो विश्वास नहीं होता कि मुझे जरा पछतावा नहीं हुआ था.

मेरे हिस्से की सारी करुणा मां ने सोख ली थी.

मेरे खुश होने की बात सुनकर वह इतनी भावुक हो उठी थी कि मुझे लगा था, उसका आंचल दूध से सराबोर हो गया होगा. "आंचल में दूध, आंख में पानी" अब भई, मैथिलीशरण गुप्त कोई छोटे-मोटे कवि तो थे नहीं.

"इस तरह सोचना छोड़ दे बेटी," अश्रुविगलित मां ने कहा था, "हम औरतें हैं. हमें माफ करना आना चाहिए."

"खुश रहो, मां. मैंने पिताश्री को माफ कर दिया. इसके सामने वह बहुत छोटा हरामी था."

"असीमा! वे मेरे पति हैं."

"तो?"

"तो कोई अधिकार नहीं है, मेरे पति को गाली देने का," सहसा आंसू और दूध दोनों सूख गए और मां शेरनी की तरह दहाड़ी. मैंने फौरन माफी मांग ली थी पर मां रुकी नहीं थी. बोलती गई थी, "दुश्मन को दुख पहुंचाकर खुश होना गलत है. खुद हमारी आत्मा के लिए नुकसानदेह है. तूने उसकी मार से नमिता को बचाया, अच्छा किया. उसे आगे ऐसा व्यवहार न करने की सीख दी, और अच्छा किया. पर उसकी तकलीफ पर खुश क्यों हो रही है. बल्कि मैं तो कहती हूं, तेरे इस कराटे वगैरह का फायदा तुझे तभी पहुंच सकता है,

जब तू किसी को मारते वक्त खुश न हो. वरना..."

यह क्या! मां तो बिलकुल गुरु जी की तरह बोल रही थीं. तो क्या उन्होंने भी कराटे सीखा था? ज़रूर सीखा होगा. पिछले जन्म में. कौन जाने, पिछले जन्म में वे कराटे की गुरु रही हों. ज़रूर रही होंगी. तभी उनकी किसी बात को, इस जन्म के तर्क पर नहीं तोला जा सकता था.

"औरत मर्द में कोई फर्क नहीं होता," अब वे कह रही थीं.

आंय, अभी तो कहा था, हम औरतें हैं, हमें माफ करना आना चाहिए.

"देख लेना," उसने कहा, "इस नमिता के हाथ में ताकत आएगी तो वह भी अपने पति जितनी क्रूर हो जाएगी. और तू! समझती क्या है तू? मर्द को जिंदगी से निकाल देगी तो महफूज हो जाएगी. इतना आसान नहीं है. एक दिन तू औरत से मात खाएगी."

क्या मां मुझे श्राप दे रही थीं? या सिर्फ याद दिलवा रही थीं कि मैं हमेशा उनसे मात खाती आई थी. हरामी नं. दो के सामने भी शिकस्त मुझे एक औरत यानी मां ने ही दिलवाई थी, हमें छोटा आदमी बतलाकर. उसके घर से रुखसत होने के बाद मेरी उससे मुलाकात पांच साल बाद हुई. मुलाकात क्या, बाकायदा भाई साहब हमारे नाचीज़ घर में अवतरित हुए थे. दाहिने हाथ की अनामिका पर वे मोटे हीरे की अंगूठी धारण किए हुए थे. बदन पर चर्बी चढ़ गई थी. उतना ही चिकना सूट उस पर सुसज्जित भी था.

आते ही चुपड़ी मुस्कान के साथ अपनी शादी का कार्ड मां के हाथ में थमा दिया था. और मां यूं मगन हो हंस दी थीं, जैसे कृष्ण कन्हैया रुक्मिणी को भगाने से पहले बाकायदा जसोदा मैया की अनुमति लेने आए हों. वैसे, अनुमति की गुंजाइश यहां भी नहीं थी. शादी को कुल जमा दस दिन बाकी थे. चट मंगनी पट ब्याह वाली मिसाल थी. प्यार के चक्कर की वजह से, नामी सिंधी व्यापारी, मनसुखानी पंजाबी वर को स्वीकार करने को राजी हो गया था.

"देखो, यह अंगूठी मिली है सगाई में. कैसी है?"

"बढ़िया है," मां ने बिना देखे कहा. मैं देखकर भी चुप रही.

"अब हमें भी टक्कर का जेवर चढ़ाना पड़ेगा, नहीं?"

"ज़रूर."

"कंगन तो मां पहनाती है," वे मचलकर बोले तो मैं भी बिना बोले न रह सकी. कहा, "कंगन क्यों, सब कुछ मां पहनाती है. कहो न, अपनी छोटी मां से. उनके पास जेवरों की क्या कमी होगी."

हरामी नंबर-2 ज़रा नहीं भड़का. इत्मीनान से बोला, "वे तो शादी के ही खिलाफ हैं. शरीक हो जाएं तो बहुत समझो."

"क्यों?"

"बस... उन्हें पसंद नहीं है."

"पर क्यों नहीं है? लड़की लंगड़ी है? लूली है? कानी है? बदसूरत है?"

"बिलकुल नहीं, यह देखो फोटो."

फोटो तो ठीकठाक थी.

"बतलाया नहीं, वे यह शादी क्यों नहीं चाहतीं?"

"बस, नहीं चाहतीं. तू जो इतनी चीजें नहीं चाहती. हमें हिसाब देती है क्या?"

"छोड़," मां ने कहा, "तेरे डैडी क्या कहते हैं?"

"वे राजी हैं. रिसेप्शन ताज होटल में देंगे. पर जेवर के लिए कहते हैं, "वह हक तुम्हारी मां का है, मेरा नहीं, सारा जेवर उन्हीं का था."

"ठीक कहते हैं."

"मैंने कहा, "तुम क्या सारा जेवर इसे पकड़ा दोगी?"

"नहीं, तेरा हिस्सा अलग कर रखूंगी."

"मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा जेवर," मेरे मुंह से निकला.

"देखो!" भाई साहब बिहंसे. फिर बोले, "शादी में मां आशीर्वाद न दे तो बेटे को खुशी कैसे मिल सकती है."

"जिस मां ने खुद खुशी न पाई हो, वह बेटे को शादी की खुशी कैसे दिलवा सकती है?" मैंने कहा तो दोनों बोले, "तू चुप रह."

मैंने देखा, वे दोनों एक परिधि के भीतर हैं. और मैं बाहर.

मां ने खुशी-खुशी अपने सारे जेवर बहू को पहना दिए थे. पर बाप के रिसेप्शन में कुछ खाया-पिया नहीं था.

करीब दो साल बाद, हमारी भाभी साहिबा, भाई साहब को छोड़कर घर से निकल गई थीं. जाते-जाते वे थाने में रपट लिखवा कर अपना और भाई साहब का बैंक लॉकर, सील करवा गई थीं. शादी और रिसेप्शन के चित्र दिखलाकर उन्होंने देह पर सजे तमाम जेवर 'स्त्री धन' के अंतर्गत दर्ज करवा लिए थे. फिर तलाक मिलने पर ही, पुलिस और अदालत के नुमाइंदे के सामने लॉकर खुले थे और भाभी साहिबा को उनका 'स्त्री' धन सुरक्षित प्राप्त हो गया था. नारी को न्याय मिला था. पूरी स्त्री जाति के लिए गर्व की बात थी. मेरे लिए आह्लाद की. पर मैं साला यही तय नहीं कर पाई थी कि नारी की जीत पर खुश होऊं या मां के जेवर चले जाने पर दुखी. पर मां निर्द्वंद्व थीं. उन्हें दुख था तो सिर्फ हरामी नं. 2 के लिए. उसे भी दुख सिर्फ अपने लिए था. वह तय नहीं कर पाया था कि उसे किसका दुख ज्यादा था, जेवरों का या पत्नी का. पर दोनों दुख थे उसी के. और उसका दुख मां का दुख था. मां बेटे फिर एक परिधि के भीतर सिमट आए थे. एक मैं ही थी, जो उसकी सीमा के बाहर छिटकी पड़ी थी. और होना भी क्या था. बड़ा चाव था असीमा नाम रखवाने का. तो लो, भुगतो. ■

कहानियां

अमृत राय • कमलेश्वर • विजयमोहन सिंह • सूर्यबाला
गिरिराज किशोर • असगर वजाहत • स्वयंप्रकाश • पंकज
बिष्ट • अब्दुल बिस्मिल्लाह • प्रियंवद • अखिलेश

HERO
HERO

TREAT YOUR

BODY

TO A TRIUMPH OF STRUCTURE AND DESIGN

Presenting

Hero Impact. A feather-light machine structured and designed to give your body a complete ego massage!

An elegant metal frame. Slim tyres on even slimmer rims. A snazzy chain cover. Black aluminium carrier. A new design side stand. Factory designed lock, and bell. A perfectly contoured saddle, with an optional saddle bag. And an ergonomical black–metal handlebar.

They all add up.

So you get to ride what's probably the smartest, lightest and fastest bicycle on the streets today!

*Available in two frame sizes of 21 & 23 inches.

HTA 8015 B

HERO IMPACT

SUPER LIGHT CITY BIKE

शीतयुद्ध खत्म हो गया लेकिन आर्थिक युद्ध तो अभी समाप्त नहीं हुआ. वर्दियां बदल गई हैं पर युद्ध तो अभी जारी है. यह युद्ध आज हर गरीब देश लड़ रहा है.

अपने देश में

• **कमलेश्वर** • चित्र: बृज गोयल

ओस्टैंड पोर्ट. जहाज बहुत बड़ा नहीं था. डोवर से चलकर इंग्लिश चैनल पार करने में करीब तीन, साढ़े तीन घंटे लगे. जब जहाज जेटी पर सहारा लेकर शांत हुआ तब सागर की लहरें तट से ऐसे टकरा रही थीं, जैसे झील का पानी तट को चूमता है, लौटता है और फिर तट के ओठों तक लौट आता है. सागरपंछी उन लहरों पर झूल रहे थे. कोहरा छाया हुआ था. सूरज कहीं आकाश में मटमैले चांदी के रुपये के रूप में लटका हुआ था. ठंडा, निस्तेज सूरज!

माइक ने मेरे कंधे पर हाथ रखा, "हम ओस्टैंड पहुंच गए हैं, यानी तुम मेरे देश बेल्जियम में आ गए हो!"

अपर डेक गराज से मैंने अपनी गाड़ी निकाली और जहाज से निकलकर सड़क पर आ गया. माइक साथ था. पर चारों ओर कोहरा था. पीली बत्तियां जल रही थीं. सांपों की तरह उलझी हुई सड़कों का जंगल. गाड़ी का पेट्रोल खत्म हो रहा था. मैंने एक गैस स्टेशन पर गाड़ी रोकी. वहां पेट्रोल देने वाला कोई दिखाई ही नहीं दिया. हॉर्न के दस-बारह बार चीखने के बाद एक आदमी आया, "येस! वात कैन आई दू फॉर यू?" हमें पहचानकर अंग्रेजी में बोला.

"गैस! ऐंड देन एन आक्टोपस.. टु होल्ड अवर लगेज ऑन दि टॉप..." मैंने उसे बताया कि मुझे एक मजबूत स्प्रिंगवाले कवर की जरूरत है जो गाड़ी पर लदे हुए मेरे सामान को संभाल सके.

पेट्रोल देकर उस आदमी ने कहा, "यू प्लीज़ कम तु अवर डिपार्तमेंट स्तोर, काउंतर नंबर थ्री!"

हम काउंटर नंबर थ्री पर पहुंचे. दरवाजा झूलेवाला था. उसमें एक घंटी बंधी हुई थी. हम भीतर पहुंचे तो उस घंटी ने हमारी मौजूदगी की सूचना दी. घंटी सुनकर वह पेट्रोल देने वाला आदमी हाजिर हुआ, "यस! वात आइ कैन दू फॉर यू?" उसने पूछा.

"आइ नीड एन आक्तोपस टु होल्ड अवर लगेज ऑन टॉप!" कि हमें उस आक्टोपस जैसे कवर की जरूरत है जो कार की छत पर रखे सामान को जकड़ लेता है.

"ओ दैत!" गैस स्टेशन के उसी आदमी ने एक नए आदमी की तरह बात की, "सर! यू विल हैव तू गो तु केबिन नंबर फाइव!"

मैं उसी तरह खुलने बंद होने वाले दरवाजे से घुसा. उसी तरह घंटी बजी और केबिन नंबर पांच में वही आदमी फिर अजनबी की तरह हाजिर हुआ, "यस सर! वात कैन आई दू फॉर यू?"

मैं अंदर ही अंदर भुनभुनाया—यू डैमफूल ऑफ ए मैन...लेकिन मैंने फिर अपनी जरूरत दोहरा दी, "आइ नीड एन आक्तोपस... टु होल्ड अवर लगेज..."

"सॉरी सर! यू नीद एन आक्तोपस.. प्लीज़ कम तु केबिन नंबर तैन.. यू विल गैत इत..."

फिर वही. वैसा ही स्प्रिंगवाला दरवाजा. वही घंटी की आवाज़. हमारा इंतजार करना और फिर उसी आदमी का, उसी तरह अजनबी की तरह हाजिर होना, "यस सर! वात कैन आइ दू फार यू?"

"नथिंग...!" मैं बुरी तरह से चीख पड़ा.

"थैंक यू!" कहकर वह आदमी गायब हो गया.

मैं लगभग अपमानित और पूरी तरह आहत-सा खड़ा रह गया. समझना मुश्किल था कि एक-एक मिनट में आदमी इतना अजनबी कैसे बन सकता है. एक उपस्थिति से इतना निरासक्त कैसे रह सकता है. मैंने कुछ-कुछ चिढ़ी आंखों से माइक को देखा. वह मेरे त्रास को समझ गया था पर बोला कुछ नहीं, धीरे से मुस्करा दिया.

"क्या तुम्हारे देश के आदमी इतने उदासीन, इतने सभ्य, इतने निरासक्त और इतने अजनबी हैं?"

"इसे समझने के लिए तुम्हें अपनी मानसिकता बदलनी पड़ेगी!" माइक बोला और वह मुझे अपने देश में हुए भाषायी झगड़ों के बारे में बताने लगा. और इन्हीं बातों में हम रास्ता भूल गए थे. हीरों के नगर एंटवर्प को छोड़ते हुए हम किसी और ही गांव में आ लगे थे. एक टैवर्न दिखाई दिया तो उसमें घुस गए. माइक ने फ्रेंच में कुछ बात की तो काउंटर वाली लड़की कुछ बोली ही नहीं. माइक ने तब इशारे से बात करते हुए काउंटर पर रखे फोन को इस्तेमाल करने की इजाजत मांगी. काउंटर वाली लड़की ने इशारे से ही बता दिया कि वह ठीक नहीं है.

आखिर माइक आकर साथ बैठ गया. मैंने उसे छेड़ने के अंदाज में

कहा, "क्या तुम्हारे देश के लोग तुम्हें नहीं पहचानते?"

"क्यों?" उसने पूछा

"तुम उस लड़की से फ्रेंच में क्या-क्या बोले, पर वह लड़की कुछ बोली ही नहीं."

"यह फ्लैमिश का इलाका है... यहां के लोग फ्रेंच न जानने और न बोलने का नाटक करते हैं!" माइक ने कहा.

तभी टैवर्न को मैंने गौर से देखा. भीतर वाले कमरे में तांत की बोतलों के अंगूर जैसे गुच्छे लटके थे. दूसरा कमरा बिलियर्ड रूम था, उसमें कुछ स्पैनिश बिलियर्ड खेल रहे थे. सामने की दो मेजों पर कुछ डच लड़के-लड़कियां बैठे वेट्स पी रहे थे. वे बेयरे से कुछ कह रहे थे. बेयरा हंस रहा था पर बोल कुछ नहीं रहा था. मैंने माइक से पूछा, "क्या मामला है ?"

माइक ने बताया कि डच लड़की बेयरे से कह रही है कि तुम फ्रेंच में बात करो तो मैं तुम्हें अच्छा टिप दूंगी. तभी हमारी मेज पर टैवर्न का एक आदमी आया और बोला कुछ पीना-पिलाना नहीं है तो मेज खाली करो. मैं उसके लहजे से समझ गया था कि वह यही कह रहा था. दुनिया में सम्मान का लहजा अलग-अलग है पर अपमान के तौर-तरीके लगभग एक से हैं.

मैंने माइक से कहा, "बीयर मंगवा लो.. तब बैठकर सोचें कि अब हम क्या करें." टैवर्न वाला आदमी हमें गड़ती निगाहों से ताक रहा था कि जल्दी तय करो कि तुम्हें क्या करना है.

माइक ने इशारे से उसे बीयर लाने के लिए कहा और सोल फिश का आर्डर भी दे दिया, "रात भी बढ़ रही है और कोहरा भी. बेहतर यही है कि हम कुछ खा लें."

"ठीक है."

"अगर इस भाषायी मजबूरी के कारण हमें अपने मेजबान का गांव न मिला, तो हम ब्रुसेल्स निकल चलेंगे. एक रात के लिए तो मेरे माता-पिता हमें पनाह दे ही देंगे!" माइक ने कहा.

"क्यों ऐसी क्या बात है?"

वेट्स का भरपूर घूंट लेकर मैंने पूछा, "मां-बाप से क्या तुम्हारी लड़ाई है?"

"हां."

"क्यों?"

"क्योंकि मैं अपने देश में सो नहीं पाता!" माइक ने कहा.

मैं उसकी इस दार्शनिक-सी बात को समझ नहीं पाया. "मतलब?" मैंने पूछा.

"यही कि मेरी आत्मा पर एक बोझ है...क्योंकि मेरे देश ने सारा धन और संपदा अफ्रीका के बेल्जियन कांगो और कटांगा से कमाई है...कमाई नहीं, लूटी है... वहां सोने और तांबे की खानें थीं, हमने ही पैट्रिस लुमुम्बा की हत्या की थी, हमने ही कटांगा और कांगो के अफ्रीकी कबीलों को सभ्य बनाने के नाम पर बर्बर यातनाएं दीं. उनकी बस्तियां जलाकर उन्हें जंगलों और आदिम घाटियों की अंधी गुहाओं में धकेल दिया. उन्हें स्लेव्ज़ बनाकर योरप के बाजारों में बेचा.. हमने उन्हें अपने यहां स्लेव्ज़ से बदतर हालत में रखा.." माइक लगातार बोलता जा रहा था, बीयर का एक भरपूर घूंट लेकर माइक फिर बोला, "मछली जल्दी खत्म करो. रात हो रही है... अगर हमें और कहीं रुकने की जगह न मिली तो हम लूवें चले जाएंगे."

"लूवें?"

"हां, मेरी यूनिवर्सिटी का शहर... वहां चलकर हम यूनिवर्सिटी काफे में सो जाएंगे... वह काफे आजकल भी अफ्रीकन चलाते हैं. इसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने फ्लैमिश भाषा का आंदोलन चलाया था.. लूवें नहीं चलना चाहो तो ह्वी निकल चलेंगे... जहां फादर दोमोनिक पियरे ने यूनिवर्सिटी ऑफ पीस स्थापित की है..."

अभी माइक बोल ही रहा था कि टैवर्न में हंगामा हो गया. चीख-पुकार और मुक्कों के बीच गिलास और मुक्के चलने लगे... हमने किसी तरह उलटे-सीधे पैसे चुकाए और जान बचाकर टैवर्न से भागे.

रात अब अच्छी तरह उतर आई थी. फॉग लाइट्स के ऊपर जगह-जगह सफेद बादलों की छतरियां लगी हुई थीं... कभी-कभी उनसे स्लीट के रेशे सेमल की रुई की तरह झरने लगते थे... आखिर हम टांगारिन होते हुए ह्वी पहुंच गए थे, गांवों से गुजरते हुए उस पहाड़ी नगर में, जहां शांतिदूत फादर पियरे ने यह शांति का द्वीप स्थापित किया था... पश्चिम में खुली पगड़ी की तरह म्यूज नदी सोई पड़ी थी. बेरिख के पेड़ों में चिड़ियां दुबककर सो गई थीं... जब तक स्लीट का तूफान हमें घेरता, हम काफे तक पहुंच गए थे. लेकिन काफे बंद था. तूफान से बचने के लिए हम वहीं तिकोनी छत वाले पोर्टिको में रुक गए. बर्फ के फाहे उड़ते हुए आते और हमारे ओवरकोट पर बिना कुछ कहे बैठ जाते. एक पल जुगनू की तरह सफेद-सफेद चमकते और वहीं बैठे-बैठे गुम हो जाते.

तूफान कुछ थमा तो गाड़ी छोड़कर हम मेन हॉल की तरफ चल पड़े. मुख्य दरवाजा उढ़का हुआ था. बंद नहीं था.

"यहीं हमने शपथ ली थी!" माइक ने कहा

"किस बात की?"

"कि हम अपने इतिहास से क्षमा मांगते हैं... और शपथ लेते हैं कि जांबिया जाकर हम उस पीढ़ी के लिए घर बनाएंगे, उनके खेतों में बीज बोएंगे, उनकी सड़कें ठीक करेंगे और उन्हें अंधेरी घाटियों से वापस लाकर खुली बस्तियों में बसाएंगे... उन्हीं बस्तियों में, जहां उनके पूर्वजों को हमारे पूर्वजों ने मारा था, यातनाएं दी थीं और उन्हें वहां से खदेड़ दिया था. यही शपथ हमने ली थी..." माइक कह रहा था.

"तो तुम जांबिया गए थे?" मैंने हॉल में घुसते हुए पूछा.

"अपनी शपथ से तुम कैसे भाग सकते हो! मैं जांबिया गया था. वहां चार साल रहा, उसी इलाके में जहां मेरे पिता की तांबे की खदानें थीं. मारिया मुझे वहीं मिली थी. वह नीग्रो थी. मैंने उसे वचन दिया था कि मैं शादी उसी से करूंगा..."

"फिर?"

"उसने भी मुझे वचन दिया था कि जिस दिन मैं उससे शादी कर लूंगा, वह अपना काला धंधा छोड़ देगी. लेकिन यह मेरे मां-बाप को मंजूर नहीं था... उन्होंने मेरा पासपोर्ट रद्द करवा दिया और मुझे मजबूरन जांबिया से लौटना पड़ा. मैं जानता हूं मारिया को आदमियों

नहीं जान सकोगे कि मैं अपने मां-बाप और अपने देश से कितना प्यार करता हूं... लेकिन मैं अपने उन्हीं मां-बाप और देश से बेहद घृणा करता हूं क्योंकि अपने देश में सो नहीं पाता! सोता हूं तो रोता हुआ जांबिया मेरे सपनों में आता है."

की कमी नहीं है पर उसे एक आदमी चाहिए!"

"क्या वह आदमी सिर्फ तुम्हीं हो सकते हो?"

"हां, जो उसे पीढ़ियों और सदियों के संताप से बाहर ला सके. आखिर यह कीमत तो उन्हें ही चुकानी पड़ेगी, जिनके पूर्वजों ने उन्हें इस हालत में पहुंचाया है.. मारिया और मारिया जैसी लड़कियों को वेश्यावृत्ति का लाइसेंस दिलवाया है!" माइक बहुत उत्तेजित होकर बोल रहा था, "तुम नहीं जान सकोगे कि मैं अपने मां-बाप और अपने देश से कितना प्यार करता हूं.. लेकिन मैं अपने उन्हीं मां-बाप और अपने इसी देश से बेहद घृणा करता हूं...क्योंकि मैं अपने देश में सो नहीं पाता! सोता हूं तो रोता हुआ जांबिया मेरे सपनों में आता है... खैर छोड़ो इस बात को... सर्दी बहुत हो गई है..."

और तब हमने बाहर देखा. एक सफेद तंबू तना हुआ था और सैकड़ों सफेद सांप बाहर फुफकार रहे थे. तभी माइक ने लाइट ऑन की. रोशनी की शहतीरें बाहर पड़ रही बर्फ को आरी की तरह काटने लगी थीं.

रोशनी हुई तो देखा,सामने गांधी जी का एक बहुत बड़ा पोट्रेट लगा हुआ था. साथ में था ऐनी फ्रैंक का एक पोट्रेट. गांधी जी के पोट्रेट के नीचे एक गिटार रखा हुआ था. हॉल में सूखे फूलों के खूबसूरत गुलदस्ते लगे थे.

"बड़े खूबसूरत फूल हैं."

"हां, सूखे फूल हमारी विशेषता हैं. लूवें में तो सिर्फ यही फूल मिलेंगे.. लेकिन हमें विश्वास है कि एक दिन ये सारे फूल हरे हो जाएंगे!" माइक ने फायरप्लेस में आग जलाते हुए कहा.

मुझे लगा वह सपनों में खो गया था... मैं उसके खूबसूरत सपने को तोड़ना नहीं चाहता था, खामोश ही रहा. फायरप्लेस के पास बैठे माइक का चेहरा तांबे की तरह दमक रहा था.

"माइक!"

"हूं!"

"तुम्हारा चेहरा तांबे की तरह दमक रहा है!"

"तांबे की खदानों को लूटने वालों की संतानों के चेहरे तांबे की तरह ही चमक सकते हैं... इन पर कोई और चमक कैसे आ सकती है!... इतिहास यही तो देता है.. जैसे गल्फ वार की फटती मिसाइलों की रोशनी में आज अमरीकियों के चेहरे बारूद की तरह चमक रहे हैं. एक दिन इन्हें भी इतिहास को उत्तर देना पड़ेगा.. आखिर ध्वस्त हो गए सोवियत संघ के वैचारिक भौतिकवाद और अमरीकियों के यांत्रिक भौतिकवाद में फर्क क्या है?... शीतयुद्ध खत्म हो गया, लेकिन आर्थिक युद्ध तो अभी समाप्त नहीं हुआ.. वर्दियां बदल गई हैं, पर युद्ध तो अभी जारी है..." माइक हाथ सेंकते हुए बोल रहा था.

"माइक मुझे अब नींद आ रही है!" मैंने कहा.

"तो यहीं इसी मेज पर सो जाओ..."

"तुम भी सो लो."

"नहीं मुझे नींद नहीं आएगी..."

"कोशिश करो..."

"देखता हूं!"

और वहीं दो मेजों पर हम लेट गए. रोशनी बुझी तो बर्फ का सफेद तंबू फिर तन गया. आग की रोशनी में ऐनी फ्रैंक और गांधी जी की पोट्रेट आधी उभरती और आधी अंधेरे में समा जाती थी. गांधी जी की पोट्रेट के नीचे रखी गिटार के हिस्से कभी रोशन होते, कभी बुझ जाते थे. आखिर मैं सो गया.

मेरी नींद एकाएक टूटी, जब कहीं दूर से गिटार के तारों के स्वर तेज होकर उभरे... बगल वाली मेज पर माइक नहीं था. मैं उठा. मैंने इधर-उधर देखा. फायरप्लेस में शोले अभी भी मौजूद थे. उसी हल्की रोशनी में दिखाई दिया कि तूफान बदस्तूर जारी है. बर्फ लगातार पड़ रही है और हॉल के बाहर सायबान के नीचे माइक उन्मत्त होकर गिटार बजा रहा है... बर्फ तो नीचे गिर रही थी पर आसमान ऊपर और भी ज्यादा सफेद था. सफेद परों वाले लाखों पंछी आकाश से उतर-उतरकर एक दूसरे के साथ जैसे सटकर बैठते जा रहे थे. बर्फ के पंछी गहरी सांसें ले रहे थे..

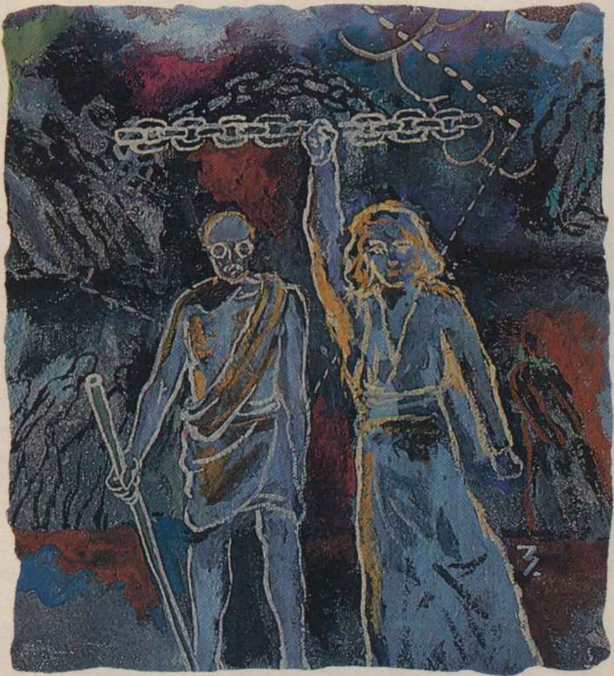

रोशनी में ऐनी फ्रैंक और गांधी जी की पोट्रेट आधी उभरती और आधी अंधेरे में समा जाती थी. पोट्रेट के नीचे रखी गिटार के हिस्से कभी रोशन होते, कभी बुझ जाते. मैं सो गया... पर मेरी नींद एकाएक टूटी, जब गिटार के स्वर तेज उभरे...

मैंने आहिस्ता से पुकारा, "माइक!"

माइक ने कुछ नहीं सुना. वह अपनी गिटार में डूबा रहा. आखिर वह त्रस्त हो गया तो मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा.

"ओह तुम! सॉरी, मैंने तुम्हारी नींद तोड़ दी..."

"नहीं.. लेकिन इस भयानक सर्दी में तुम पसीने से तरबतर हो.. आराम कर लो.. आधी से ज्यादा रात बीत गई है, कुछ देर सो लो."

"दोस्त! मैंने कहा था न... अपने देश में मुझे नींद नहीं आती... मैं क्या करूं? तुम यहां हो, सो लो, अपने देश में पहुंचकर शायद तुम्हें भी नींद नहीं आएगी.... ■

खास मौकों के लिए खास सजीली घड़ियाँ. चुनी हुई दुकानों में उपलब्ध. जेन्ट्स Rs. 7300. लेड़ीज़ Rs. 7125*.*

टाइटन की रोयालः विशेष व्यक्तित्व की पहचान.

टाइटन पेश करते हैं, रोयाल घड़ियों की एक नई लाजवाब श्रेणी. निस्संदेह युरोपीय अन्दाज़ का, राजसी शान का एक अनुपम खज़ाना. घड़ियाँ जिन्हें लोग मुड़-मुड़ कर देखें, जो हलचल मचा दें, दिल जीत लें.

सुन्दर, सलोनी, असाधारण घड़ियाँ. 18 और 23 कैरट में, 10 माइक्रॉन्स की डुप्लेक्स-प्लेटिंग के साथ. अनूठी, बारीक कारीगरी के डायल — असली मदर ऑफ पर्ल में या झिलमिलाते क्यूबिक ज़र्कोनिया में. सुनहरी – सजीली कंगननुमा घड़ियाँ. आपकी कलाई की शोभा बढ़ाने के लिए खास तौर पर डिज़ाइन की गई.

ये रोयाल घडियाँ, टाइटन की 500 से भी ज़्यादा बेहतरीन क्वॉर्टज़ घड़ियों के खज़ाने के सर्वश्रेष्ठ हीरे हैं. हर घड़ी के साथ आप पाएँगे टाटा के नाम का भरोसा और दो वर्ष की गारंटी. टाइटन की रोयालः विशेष व्यक्तित्व की पहचान.

TITAN
QUARTZ
अन्तर्राष्ट्रीय शान की पहचान

** मूल्य में सभी कर शामिल हैं.*

Ogilvy & Mather 3933 HIN

सांझवाती

• सूर्यबाला • चित्र: हरिपाल त्यागी

अपनी देहरी छोड़कर जमीन-आसमान से लेकर समंदर थाहने वाली नई पीढ़ी बाहर-बाहर अपनी खुदी को ढूंढ़ती फिर रही है, इस बात से बेखबर कि बेइंतिहा खुशी का खजाना खुद उसके दरवाजे के भीतर है.

उढ़के दरवाजे धीमे से खुले हैं और उम्र के अस्सी बसंतों की उजास फैल गई है पूरी कोठरी में.

"बेगम मेरी! कैसी है तू?"

खाट पर सूखी दूब की ढेरी-सी पड़ी बेगम की अपंग, अधूरी-सी काया में एक हिलार-सी जागी.

माथे पर गरम, नरम हथेली का स्पर्श—"चंगी तो दीख रही, रब्ब दा शुक्कर." हाथ आकाश की ओर उठ गए. उदास मुस्कान के फूल, पलकों में उलझ गए. होंठों पर एक मद्धम-सी हरकत.

"आ गए सी—"

"ले, तभी तो पूछ रहा हूं की गल्ल ए कुड़िए! राजी खुशी?"

बहत्तर साल की 'कुड़ी' खुशबू के हिंडोले पर झूल गई.

"राजी खुशी"—अधूरे होंठों ने शब्द गूंथे.

बरूनियों में उलझी पंखुरियों पर ओस झलकीं...भरपूर तृप्ति और आत्मालोक की.

"वा! ये हुई न बात मेरी बहादूर हीर."

लम्हे के लम्हे पंखुरियों पर झलकी बूंदें लबालब समंदर बन गई प्यार का, मनुहार का—

"आ ऽऽ प कैसे हो जी—"

"मैं?" उजली भौहों के ऊपर की आसमानी पगड़ी अकड़ी, चुहल से अस्सी साल की सफेदपोश रौनक वापस खिल उठी.

> **"आ गए सी—"**
> **"ले, तभी तो पूछ रहा हूं कि गल्ल ए कुड़िए! राजी खुशी?"**
> **बहत्तर साल की 'कुड़ी' खुशबू के हिंडोले पर झूल गई.**

"एकदम चंगा है तेरा यार, ऐन तेरे सामने खड़ा—और क्या चाहिए तुझे? ऐ?"

"रोटी खाके आया क्या मेरा यार?"

लाड़ की मसखरी.

"फिर?"

"झूठ!"

"हां, लेकिन अगर किसी झूठ से मेरी बेगम के चेहरे पर थोड़ी-सी रौनक खिल जाए तो 'झूठ' मुबारक नहीं क्या?"

(गलत बात, कहां खिली रौनक! उदास हो ली उलटे वो तो).

"मेरे सिर की सौगंध—"

"खुल गई तेरी अदालत? हथकड़ी बांध, हाजिर कर दिया कटघरे में?"

"बयान दो फिर...गीता कुरान का हवाला दे—रोटी इत्ती जल्दी बण कहां पाती है उधर?"

(जानती हूं, मेरे पास पहुंचने की उतावली में इंतजार किससे हो पाता है?)

"तो..."

"अरी तो रोटी क्या सिर्फ 'रोटी' खाने को कैते हैं? अभी तो कित्ती सारी चीजें रोटी के नाम पर मयस्सर हैं."

"होंगी—पर तुम्हें तो रोटी का स्वाद हमेशा रोटी में ही आया और कुरकुरे पराठों में."

"पराठे पचाने की मशीन बदलवा ली है अब. पूरे सात कोस से आया है तेरा यार—लाल बाग से सिंधी कालोनी तक—पराठे तो वहीं बिठा लेते न!"

"खाया क्या? ये बोलो."

"भर-पेट-बस्स..."

"मेरे सिर की कसम."

"छाछ और ब्रेड."

"क्याऽऽ..."

कसम का मान रखने वाले का सिर झुक गया.

उन सफेद भौहों पर जैसे आसमान झुका.

"यहां भी चौका उठ गया होगा, हरजीत की बीवी को बुलाकर पूछूं कि एक दो चपाती?"

"हद हो गई, मैं तेरे पास होना चाहता हूं. और तू मुझे रोटी और चौके में घसीट देती है."

"लो, नहीं घसीटती. रहो बिगर खाए...पर डिराइवर को तो कुछ."

"डिराइवर कित्थे बेगम? गडी कौन बेवकूफ लाया?"

गड्डी नई लाए. तो फिर?"

"शान की सवारी, 'बस.'"

"इस उम्र में—"

"फिर क्या, शहंशाही उम्र, शहंशाही सवारी—"

खाट पर पड़ी अपाहिज काया की धुंधली रोशनी वाली आंखें सिहरती हैं—बूंद-बूंद ओस झलफलाती है.

"नासमझ! किसी ने मने थोड़ी ही किया था. छोटे पम्मी के इम्तहान थे. ड्राइवर उसे लेके मदरसे गया था न. और 'बहू' ने क्लब जाना था. लंच भी वहीं लेना था. (जभी छाछ और ब्रेड—)"

"इंतजार कर लेते—"

"करता तो तुझ तक शाम तलक पहुंच पाता और बीस मिनट में ड्राइवर वापस चलने की आवाज लगाता क्योंकि उसे जसवीर को लेने जाना होता." (सच-सच कहूं तो मेरा दिल दुखता है—तुझ तक टैम पर न पहुंच पाने में और इन लोगों की दिन भर की दिनचर्या के बीच कहीं भी रोड़े-सा अटक जाने में).

"जस्सी कैसा है?"

"चंगा. परसों टोकियो जा रहा. तुझे सत-श्री-अकाल बोला है."

"और बहू?"

"सेक्रेट्री बन गई क्लब की. कल बोलती थी, पप्पा जी अब बोत बिजी रैना होगा. कित्ते सारे कैंप, वर्कशॉप, ऑपरेशन, नसबंदी."

"काके?"

"गया ट्रेनिंग पे. रिश्ते आ रहे हैं. छंटाई हो रही है."

"अच्छा, काक्के की शादी हो गई तो आप—"

"किचेन से बाहरी तरफ वाले स्टोर की बात चल रही है, कल जस्सी को बहू से बोलते सुना."

"वह-वह तो कबाड़ों से अंटा पड़ा है."

"इतना नहीं कि मैं न आ सकूं—"

(रुंधे गले का सैलाब होंठों ने भींचा, सम्हाला— यह पूरे कुटुंब का सरताज सामान से अंटे स्टोर में!)

बेतार की आवाज पहुंच गई. बेताज बादशाह के पास—क्यूं—जहां रानी, वहां राजा.

"इन लोगों से पूछूं...आ॒॒ प यहां."

"आया तो खड़ा हूं—नहीं?"

"मैं रैने की बोलती हूं."

"और रहता कहां हूं मैं? ले, चुहल छोड़ी, अब बचपना छोड़ तू भी, बच्चों की सोच, बच्चों की."

"हां, जब दिल रोने को आता है, उन्हें ही तो सोचती हूं."

"शाब्बाश!"

"पर—बच्चे भी क्यूं नहीं सोचते इस तरह—क्यों नहीं तड़फड़ाते."

"सोचते तो थे, जब छोटे थे, हमारे बिना कहां रहते थे."

"हां॒॒"

"कोई हमारे बच्चों को बताए कि हमारा उन्हें अपने पास बिठाने को बहुत दिल करता है. समझाए कि—"

"समझेंगे, जब उनके बच्चे भी बड़े होंगे."

"पर तब तक हम कहां होंगे जो वे हमारे पास बैठे सकें."

"ठीक है, बिठा उन्हें, मैं ही उठ जाता हूं."

"टिनक गए? लो, माफी मांगती हूं." (पर मैं जानती हूं तुम मुझे बहला रहे हो.)

"टिनकने की बात ही—मैं जो काले कोसों से तेरी कदम-बोसी और कदम-पोशी के लिए..."

"रब्ब दी सौगंध, मुझे नरक में न डालो—कहा न माफ करो."

"ले—किया. अब 'इधर' की बता—तिलक कैसा है?"

"दुकान गया होगा."

"चलती है?"

"जब तक बिना पिये चलता है, चलती है."

"उसकी बेगम, बच्चे?"

"अरे दीखे नहीं? मिले नहीं अभी तक?"

"नहीं, नीचे ही सुखराम दिखा, सीधा तेरे पास पौंचा गया. नौकर भी समझते हैं, कब किसे कहां पौंचाना, किसकी जगह कहां है? मेरी जगह यहां, तेरे कदमों में."

"फिर ठिठोली, कित्ते की हुई मालूम है?"

"पूरी छब्बीस की."

"मसखरी की भी हद होती है."

"मैं तुझे छब्बीस से एक हफ्ता बढ़ने नहीं दूंगा."

"क्यों भला?"

"क्योंकि छब्बीस की उम्र में तूने तीसरा यानी आखिरी बेटा जाया था. और मैंने तभी बोल दिया था कि आज से तेरे बेटे बढ़ेंगे, तुझे नहीं बढ़ने दूंगा—ले बांध देता हूं, तेरी उम्र की डोरी तेरे चूड़े और चुटीले से."

"सुनो, अब वे दिन कभी नहीं लौटेंगे न?"

"ये ले और मैं इत्ती देर से कर क्या रया हूं. कब से तो तेरी उम्र की पतंग खींचे जा रहूं—धागा लपेटता जा रहा हूं—"

"कहां तक लपेटोगे?"

"तेरी पूरी जिंदगी तक— समेट कर ही जाऊंगा."

"......"

"कुड़िए! तुझे इन हाथों पर उठाऊंगा और चूड़े टिक्के से सजा कर दुलहन की तरह मायके की डोली में बिठा कर विदा करूंगा—"

"और खुद?"

"खुद? याद है? जब अपने बच्चे छोटे थे तो हम उन्हें दर्जा एक की किताब से रटाते थे—तू चल मैं आता हूं—चुपड़ी रोटी खाता हूं. ठंडा पानी पीता हूं—हरी डाल पे बैठा हूं."

"ठठा कर हंसे तो आया न जोर का खांसी का दौरा—जो उम्र से, कुदरत से लड़ते हैं, उनके साथ यही होता है—"

"—कि उसकी बेगम अपने उस 'मायके' जाने का नाम ही नहीं लेती, अपने खाविंद को छोड़कर—"

"सच! चली जाऊं?"

"जा न तभी तो मैं भी आऊंगा... वहां हम साथ-साथ फिर से एक घर बसाएंगे— उस घर की बांहें परायों को भी समेटती होंगी—बीबी, बच्चे, खाविंद, सब एक दूसरे के लिए हंसते-हंसाते और जीते-मरते होंगे—हर एक को दूसरे का इंतजार रहेगा—उनके दस्तूर होंगे, एखलाक होंगे, सपने होंगे, उन सपनों की अदब-लिहाज की गोट-किनारी भी होगी. हर किसी के दुःख-सुख में हर किसी का बराबरी का हिस्सा होगा—हर आंसू के कतरे रोप के बांट लिये जाएंगे."

जा न तभी तो मैं भी आऊंगा.. वहां हम साथ-साथ फिर से एक घर बसाएंगे—उस घर की बांहें परायों को भी समेटती होंगी—बीवी, बच्चे, खाविंद, सब एक दूसरे के लिए जीते-मरते होंगे—

(बात क्या है—)

(या रब्ब! क्या निकल गया मुंह से...)

"कहां से कहां चले गए—किस की बात कर रहे हो?"

"अं? कुछ नहीं, यों ही सड़क-फुटपाथ, दफ्तर, नौकरी के हालातों और घर बाहर..."

"सिर्फ घर की कहो...मेरे सिर की—छिपाना नहीं—"

"छिपाना भी अपने बस में कहां? आधी-आधी रात तक आवाजें आती हैं—वह घर आवाजों का खूंखार जंगल बन गया है—जस्सी बहुत देर गए आने लगा है—"

"क्या कहते हो! इस उम्र में... बहू को चाहिए कि समझाए, मनाए प्यार से—"

"देखा-देखी कहां दोनों में?"

"या रब्ब! देखा-देखी नहीं, बीवी और खाविंद में?"

"बच्चे कित्ते दुःखते होंगे—"

"न-न—बेटे कहां पहुंचते हैं एक-दूसरे के टाइम से—बंटी को मैंने हफ्ते से नहीं देखा—"

"नौज—तुम्हारा दिल कैसे माना—"

"जब तुझे देखे बिना मान जाता है तो उनकी क्या—"

"फिर? सारे दिन..."

"चौकीदार के बूढ़े बाप से, संतरे-केले के ठेले वाले से, बंटों पे कील ठुकाते समय मोची से और पतरे वाली शाओ बाई तो हैं ही—"

"बड़ा और बेटे, बहू नाराज होते होंगे—"

"वे अपने घरों, कमरों, दीवारों के बीच होते कहां हैं—वे बेघर हैं, और उनके बच्चे अनाथ—"

"छिः शुभ शुभ बोलो."

"काश! बोलने से हो जाता—"

"तो करो—आप कुछ—"

"करूंगा—आज दीवारों पर लिख दूंगा, पहचानो यह घर किसका है—"

"यह भी, कि जो सबसे पहले पहचानेगा उसे अनारदाने का चूरन या बादाम की मीठी गिरी—"

"बड़े को दुनिया की सबसे बुरी चीज बादाम की कड़वी गिरी लगती थी न—"

शालें जिनमें छलके मुग़लों की आन-बान सदियों की शान ओर प्राकृतिक अद्भुतता!

जामावार शाहतूश पश्मीना

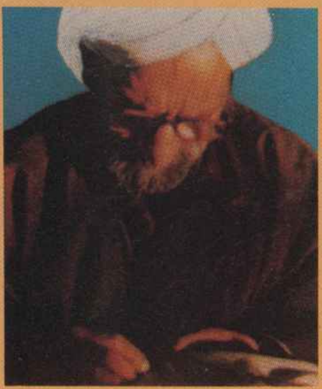

आहूजासंस शालों की दुनिया की वैभवशाली परम्पराओं को आपके सम्मुख गर्व से प्रस्तुत करते हैं। शालें जो सम्राटों, नरेशों और नवाबों की मनमोहक सज्जा की प्रतीक रहीं हैं। शालें जो प्रकृति की उत्कृष्ट कला तथा रंगों को दर्शाती हैं–जिनके प्रत्येक धागे में पिरोया गया है–वैभव तथा सौंदर्य।

आहूजासंस–जिनके लिए शाल कोई व्यापारिक वस्तु नहीं है, बल्कि एक गौरवपूर्ण परम्परा है।

हम क्रेडिट कार्ड स्वीकार करते हैं

आहूजासंस
शाल वाले (प्रा०) लि०

6/44, अजमल खां रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-110 005, फोन : 5720304, 5751850

खुदरा विक्रेता • थोक विक्रेता • निर्यातक

TRENDS/2212/92

"और जाने किस दुकान से तुम एक बार आधा सेर कड़वे बादाम की गिरियां उठा लाए थे—एक के बाद एक, खाता जाता, थू-थू करके चिल्लाता जाता."

अतीत की घाटी से हंसी का एक वत्सल सोता-सा फूटा, बूढ़ा झेंपा.

"लाया तो बड़े के लिए ही था पर लाले ने ठग लिया था न—"

"तब से बड़ा बदाम की 'मीठी गिरी' है न! पूछ कर ही खाता—"

"मंझले को मेवों के नाम से चिढ़ सिर्फ अनारदाने का चूरन और छोटे को मेवा चीलगोजा—"

"शक्ल का भी—"

"पहुंच गया कैलीफोर्निया अब तो—"

"मां के पल्लू से लिपट-लिपट कर पिनकने वाला—"

"हां८८ हम बच्चों की ही बातें करें—"

"तब के, कि अब के—"

"तब के—"

"तो ले ये घुमा दी मैंने जादू की छड़ी, पहुंच गया छोटा कैलीफोर्निया से तेरी पल्लू के साये में—दुलार ले जितना दिल चाहे क्या मालूम, सुबह की फ्लाइट हो उसकी—अब्ब? तेरे इस घर वाले को भी?"

"हां—"

"क्यों? लड़ते तो मेरी तरफ वाले हैं न—ये तो तेरे साये के तले ही नहीं."

उदास आंखों ने स्वीकार किया—"इधर सन्नाटा है, खौफनाक सन्नाटा है... जीत की बीवी को शक है कि बिके गोदाम के रुपये जानबूझ कर उसके अकाउंट में नहीं डाले गए. शक बढ़ता है. और अब—यह बीवी भी शौहर के बिना रोटी खा लेती है और शौहर बीवी के पलंग पे आए बिना सो लेता है. ये एक साथ, एक रसोई की रोटी के टुकड़े कभी खाते ही नहीं—कोई कुछ खाता है, कोई कुछ—कोई कभी—कोई कभी—कोई कभी—एक दूसरे को नकारते, कतराते हुए. सिर्फ अपने लिए अपनी खुदी की मचान पर बैठे हुए."

"ये एक थाली में खाते नहीं न इसलिए एक-दूसरे की बात नहीं समझते."

"ये सब इतने नासमझ क्यों हैं?"

"या फिर नामसझ हम थे—जाहिल जपट्ट, गंवार—कांस की थाली परोस झंपती आंखों अपने शौहर का इंतजार करते थे."

"और कोई काम नहीं था न तुम जाहिल औरतों को—"

"और इन्हें क्या है?"

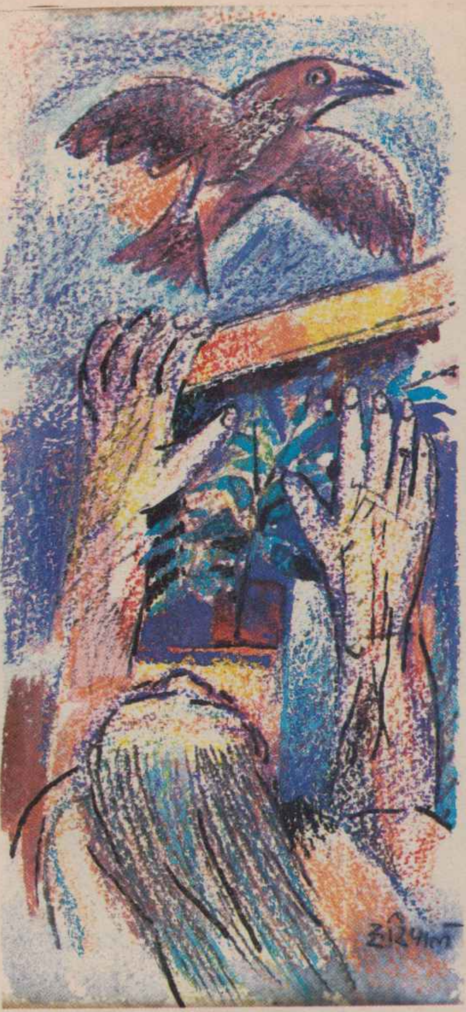

बाहर-बाहर अपनी खुदी ढूंढ़ते हैं जो हमें एक-दूसरे की आंखों में लम्हे भर में मिल जाया करती है." "रब्ब ये नियामतें इन्हें क्यों नहीं बख्शता?"

"बहुत बड़े-बड़े. जमीन-आसमान से लेकर समंदर तक थाहने वाले, (सच्ची? तब जिंदगी का समंदर सूखकर रेगिस्तान कैसे हुआ जाता है!) जो कुछ मर्द भी न करता हो, वह सब भी करने वाले."

"क्या मिला यह सब करके इन्हें?"

"एक सुकून, एक खुशी."

"वह तो हमें भी शौहर के आगे थाली परोस कर और बच्चों को कलेजे से लगाकर मिल जाया करती थी."

"वही तो—मूरख, अपनी कुछ ख्वाहिश, चाहना ही नहीं— हम अपनी चाहना का बिरवा आंगन की मिट्टी में रोप दिया करते थे—और उसी के साये में सब सुस्ताते थे—कितने नासमझ थे हम सब."

"लेकिन यह नासमझी कितनी बेपनाह खुशियों वाली थी."

"थी नहीं, है."

"हां, हम कितने खुश हैं अब भी."

"और ये?"

"अपना घर ही नहीं पहचानते. उसका ही रास्ता भूल गए."

"हम मांओं से उलझते थे. बाप हमें बेटों का बाप बन जाने के बाद भी नालायक करार कर चौखट से बाहर निकाल दिए जाने की धमकी दे दिया करते थे—लेकिन हम भनक-भुन्ना, दोस्तों की महफिल में बाप का ताजिया उतार, वापस घर लौट लिया करते थे, देहरी हमसे छोड़ी ही नहीं जाती थी. पर इनकी दहलीज इन्हें पहचानती ही नहीं जैसे—ये सब के सब अजनबी हो लिये एक-दूसरे के लिए."

"बाहर-बाहर अपनी खुदी, अपनी पहचाने ढूंढ़ते हैं जो हमें एक-दूसरे की आंखों में लम्हें भर में मिल जाया करती है."

"रब्ब ये नियामतें इन्हें क्यों नहीं बख्शता?"

"बख्शेगा, आ हम मालिक से इन बच्चों पे मेहरबान होने की दुआ करें—आ, हम अपनी संतानों की खुशआमदी की मन्नतें मांगें."

"सिर्फ इनके लिए? ...अपने लिए नहीं?"

"हां, हमारा भी तो दुकान उठाने का वक्त आ गया. अब सारी जमा पूंजी भरे हाथों लुटा कर, हंसते-हंसते शहर देना है...तो ला हथेली पे हथेली, रिहर्सल कर लें—कि खुश रहो अहले वतन, अब हम तो..."

कोठरी में डूबते सूरज की उजास फैली थी और उन दो कांपती दुआओं से लदी हथेलियों में प्यार से लबालब रिश्तों का एक पूरा समंदर समा गया था. ■

The Thapar Group

जब हर बात हो लाजवाब . . .

. . . अंदाज़ हो तो जेसीटी.

आलीशान, सुलझे अंदाज़ के मेरे सूट के साथ
नये ज़माने की जवां धड़कन सा वेस्टकोट । और
उसके लहराते, बलखाते लिबास के शोख रंग।
वही बेजोड़, नपा-तुला तालमेल। जैसा हम दोनों
के बीच है । और रहेगा।

JCT FABRICS

सूटिंग्स • शर्टिंग्स • ड्रैस मटीरियल्स

Anthem/JCT/235 Hin

शेरपुर १५ मील

• विजयमोहन सिंह • चित्र: हरिपाल त्यागी

शहरी संस्कृति की छाप अभी जहां नहीं पहुंची है, उन दूरदराज इलाकों में आदमी और आदमी के बीच के रिश्ते में खास बेतकल्लुफी की झलक दिखा जाने वाला कोई-न-कोई अनायास मिल जाता है.

शेरपुर १५ मील!... बाईं तरफ के आधे टूटे और आगे की ओर लटके पत्थर पर लिखा था. धूल से अटी उस सड़क पर दो 'लढ़ियां' (छोटी बैलगाड़ी) एक साथ चल सकती थीं. बीच में अपने आप एक विभाजक पगडंडी बन गई थी. बरसात की उमस भरी सुबह थी. पिछले कई दिनों से बारिश नहीं हुई होगी. हवा नदारद थी और दोनों ओर पेड़ों की पत्तियों पर धूल जमी थी. पेड़ सब जामुन के थे. सड़क के समानांतर दोनों तरफ बैगनी काले जामुनों की कतार भी चल रही थी. कभी-कभी कोई खूब पका रस भरा जामुन टपक पड़ता तो राही झुककर मुंह में डाल लेते थे. वह बहुत देर से उन्हें देख रहा था. रात की नींद पूरी नहीं हुई थी. ट्रेन की थकान और न नहाने-धोने का बासीपन. फिर भी बीच में उसने लढ़िया रुकवाई और नौकर से कुछ जामुन बीन लाने को कहा. नौकर लछमन भी शायद यही चाहता था. वह कूदकर गया और ढेर से अच्छे-अच्छे भौरों की तरह चमकते जामुन गमछे में बीन लाया. लछमन के नाटे बदन पर कारतूस की पेटी जांघों तक लटक रही थी. 12 बोर की डैमस्कस बैरल दोनाली लढ़िया में बेजान पड़ी थी—निरीह तथा अकर्मण्य. जामुन से जीभ और बदजायका हो गई, उस पर जामुन की बैगनी गंदली पर्त भी जम गई होगी. गले में भी कुछ अटकने-सा लगा था. जामुन खाने के बेहूदे प्रलोभन पर उसे कोफ्त हुई. लढ़िया सुस्त रफ्तार से चल रही थी. जितनी कमजोर, संकरी और छोटी वह थी उतनी ही नाटी उसमें जुते दो बैलों की जोड़ी भी. चूंकि इससे तेज वह चल नहीं सकती थी, इसलिए उस पर मन ही मन चिढ़ना भी बेकार था. वह शेरपुर 15 मील के 14 मील होने का इंतजार करता हुआ बैठा रहा. उस निहायत परेशान करने वाली उमस में झपकी लेने या ऊंघने की भी कोई गुंजाइश नहीं थी. वह बेहद त्रासदायक यात्रा थी.

...शेरपुर के 'नवाब साहब' के 'गेस्ट हाउस' में उन्हें ठहराया गया. गेस्ट हाउस की 'प्लिंथ' यानी चबूतरा काफी ऊंचा था. मिट्टी की चारदीवारी के बीच बनी हुई सीढ़ियों पर चढ़कर ही वहां पहुंचा जा सकता था. चूने, मिट्टी और गारे से बने दो-तीन कमरे. एक खपरैल का बरामदा. मिट्टी का आंगन. आंगन के बीचोबीच 'डोल' वाला कुंआ, एक कोने में रसोईघर और दूसरे कोने में 'पैखाना' यानी एक छोटे कमरे के भीतर बने चबूतरे के बीच एक गड्ढा, जिसके नीचे लोहे की बाल्टी. नहाने की सुविधा या तो कुंए के 'जगत' पर थी या बरामदे में ही. कुंए का पानी खूब ठंडा था और बरामदे के एक कोने में बैठकर नहाने के बाद बड़ी राहत महसूस हुई. मूंज की चारपाई पर लछमन ने बिस्तर बिछा दिया और पंखा झलने लगा. तभी बाहर की कुंडी खड़की. एक सांवला नौजवान पठानी सलवार-कमीज में पसीने से तर-ब-तर आया और आदाब कर अदब से खड़ा हो गया, "नवाब साहब लखनऊ गए हैं. कल आएंगे. पहले खबर नहीं थी, इसीलिए गुस्ताखी हो गई. बेगम साहिबा ने कहलाया है, इसका ख्याल न करें. जिस चीज की जरूरत हो, बेहिचक कहला दें. जो भी बन सकेगा किया जाएगा. फिलहाल उन्होंने यह नाचीज-सा तोहफा भेजा है." वह जरी से कढ़ा हुआ एक बटुआ था जिसके मुंह पर दो रेशमी डोरियां लगी थीं. उसमें महीन नफासत से कटे हुए सुपारी के छल्ले, इलायचियां, लौंग और सौंफ थी, जाफरानी खुशबू में बसी हुई. उसने इज्जत के साथ दोनों हाथों से बटुआ ले लिया. "बेगम साहिबा से कहिए कि मैं इसके लिए उनका बेहद शुक्रगुजार हूं. मुझे किसी बात की तकलीफ नहीं है. फिर नवाब साहब तो कल आ ही जाएंगे." वह नौजवान जाहिरा तौर पर नवाब साहब का खास आदमी रहा होगा. धीरे-धीरे वह काफी सहज होकर खुलने लगा और शेरपुर नवाब साहब के खानदान आदि के बारे में काफी जानकारियां उसने दीं. यह भी पूछा कि अगर गोश्त खाते हों तो शाम को किस चीज का गोश्त खाना पसंद करेंगे. मुर्गे और बकरे तो बहुतायत में हैं, काले तीतर भी इधर आसपास ही मिलते हैं. हालांकि उनका शिकार करना थोड़ा मुश्किल होता है, इसलिए मजा भी बहुत आता है. वे बेहद चालाक होते हैं और खूब छकाते हैं. वे ज्यादा उड़ नहीं सकते पर कंटीली झाड़ियों के पीछे छिपते-छिपाते वे आपको इतना पस्त कर देते हैं कि अकसर आप हलकान होकर वापस आ जाते हैं या फिर इतना अंधेरा हो जाता है कि उसमें आप काले तीतर का शिकार कर ही नहीं सकते. अचानक बातूनी हो गया वह सांवला नौजवान उसे काफी दिलचस्प लगा और काले तीतर के बारे में भी उसमें उत्सुकता उत्पन्न हो गई. "ऐसा करो कि शाम को चार बजे या जब भी मुनासिब समझो आ जाओ, काले तीतर के शिकार पर हम भी चलना चाहेंगे."

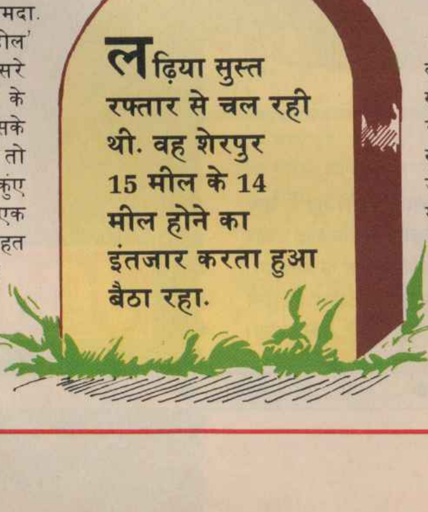

उसके जाने के बाद झपकी-सी आ गई. भूख भी लग रही थी. नहाने के बाद की ठंडक धीरे-धीरे उमस की सीलन में गुम होती जा रही थी.

...वह कुछ ही देर सो पाया होगा कि कुंडी फिर खड़की. कई रकाबियां लिये दो-तीन लोग खड़े थे. रकाबियां, महीन, महंगी लेकिन खस्ताहाल रूमालों से ढंकी थीं. वहां कुछ रंगडड़े स्टूल थे. वे उन्हीं पर रख दी गईं. सुराही में पानी और दो चीनी के गिलास. उनके जाने के बाद लछमन ने रकाबियों से रूमाल हटा दिए. रकाबियों के अंदर बनी कटोरियों में चावल, रूमाली रोटियां, गोश्त तथा लौकी और चने की मिली-जुली सूखी सब्जी थी. खाना कुछ दूर से लाया गया होगा इसलिए थोड़ा ठंडा हो चला था. पर गोश्त वाकई लज़ीज था. उनकी बोटियां बड़ी और हड्डियों वाली

थीं जिन्हें इतमीनान से चूसा जा सकता था. दूरदराज की इस जगह में इस नफासत भरी मेहमाननवाजी के मजे मिल रहे थे.

खाने के बाद वह फिर सो गया. खूब गहरी नींद रही होगी क्योंकि उठने के बाद कुछ देर पता भी नहीं चला कि वह कहां है. एक आंगन, एक बरामदा, एक कुंआ और मिट्टी की ऊंची चारदीवारी. लछमन भी वहीं जमीन पर सो रहा था...उसने तनिक असुरक्षित महसूस किया. लगभग हजार किलोमीटर दूर! सबसे नजदीक का रेलवे स्टेशन भी 15 मील.

...पठान नौजवान चार बजे के बाद आया. वह तैयार था. काली चमकीली नाल वाली बारह बोर की बंदूक को वह बीच से पकड़कर जमीन की ओर झुकाए चल रहा था. उसमें छह नंबर के छर्रे भरे थे जो शायद तीतर के शिकार के लिए काफी थे. एक बार गलती से उसने हारिलों के 'डार' पर एल. जी. से फायर कर दिया था. जमीन पर उनके पंख और जगह-जगह चिपके गोश्त के टुकड़े मिले थे.

वे शेरपुर की गलियों से गुजर रहे थे. गलियों में आदमी इक्के-दुक्के ही थे. औरतें बिलकुल नहीं. इतना सूना और वीरान गांव उसने शायद ही देखा हो. धूल और मिट्टी केवल घरों तथा गलियों में ही नहीं थी, सुस्त रफ्तार चलने वाले आदमियों में भी शामिल थी. गांव के बाहर झाड़-झंखड़ों का एक लगभग अंतहीन सिलसिला था. कंटीली झरबेरियां और बबूल. उन्हीं के बीच से गुजरना था. पठान नौजवान ने कहा कि उन्हें झुककर और लगभग बेआवाज चलना चाहिए. काले तीतर अब कभी भी दिख सकते थे. कुछ देर बाद एक काला तीतर सचमुच दिख गया. छोटे-छोटे पंजे उठाता वह झाड़ियों के बीच चल रहा था. उसने निशाना लिया. अचानक वह फुर्र से उड़ा और झाड़ियों के ऊपर से होता हुआ ओझल हो गया. पठान नौजवान ने उसकी ओर मुस्कराकर देखा. उसने बंदूक झुका ली और झाड़ियों के बीच जिधर भी राह मिली, वे चलने लगे. इस बार तीन काले तीतर एक साथ दिखे. वे झाड़ियों के बीच की अपेक्षाकृत खुली जगह में घूम रहे थे. वह दुबककर पंजों के बल बैठ गया और घुटनों पर कुहनी रखकर निशाना लगाने लगा लेकिन जैसे ही उसने बाईं आंख भींची, तीनों तीतर गायब. अजीब करिश्मा था यह. पठान नौजवान इस बार खुलकर मुस्कराया. ऐसा कई बार हुआ. झाड़ियां धीरे-धीरे स्याह ढूहों में बदल गईं. "साहब वापस चलिए, अब वे नहीं मिलेंगे. अंधेरा हो रहा है." वह शर्मिंदा और पराजित-सा लौट रहा था. थका-हारा भी.

लौटकर उसने फिर नहाया और महीन कुर्ता-पाजामा पहनकर सिरहाने लालटेन रखवाकर पढ़ने लगा... रात काफी हो गई होगी. गांव के लिहाज से तो ज्यादा ही. आंगन की मिट्टी को लछमन ने पानी से तर कर दिया था. चारपाई पर बिछी सफेद चादर और तकिए के गिलाफ चांदनी में चमक रहे थे. बाहर झींगुरों की आवाज आ रही थी और कुत्तों के रोने की... शेरपुर लगभग आधी नींद ले चुका होगा. वह ठीक सामने पड़ता चांद देख रहा था और गांव का आसमान. नहीं लगता था कि आसपास कोई होगा भी...तभी आंगन के बाहर दरवाजे पर कुछ आहटें सुनाई पड़ीं. फिर कुंडी खड़की. लछमन ने दरवाजा खोला तो बाहर शकूर (उस पठान नौजवान का नाम शकूर था) और एक-दो लोग खड़े थे. दोपहर की तरह सबके हाथों में रकाबियां थीं. शकूर कुछ उत्सुक दिख रहा था. स्टूल पर रकाबी रखकर बोला, "साहब बकरे की रान का खास किस्म का गोश्त है. मैंने पकाया है. काले तीतर से कम लजीज नहीं होता." उसके काले होंठों के बीच सफेद दांत चांदनी में चमक रहे थे. उसने रकाबी के ऊपर से क्रोशिये से बुनी रूमाल हटा दी. अंदर तंदूरी रोटियां, रान वाला गोश्त और आलू-मेथी का साग थे. दूसरे आदमी ने अपेक्षाकृत छोटी तश्तरी से रूमाल हटाया और कहा, "साहब ये शामी कबाब है, बेगम साहिबा ने खास तौर पर आपके लिए पकाया है." उसमें अजीब-सी दिलचस्पी और उत्सुकता जगी. उसने तुरंत एक उठाकर मुंह में डाल लिया. मुंह में आते ही वह कुरकुरा कबाब घुलने-सा लगा. चने की दाल और कीमे से बना कबाब. तभी उसे शकूर का ख्याल आया. उसने चम्मच से रान वाले गोश्त का एक टुकड़ा काटा और उसे भी मुंह में रख लिया. उसमें अलग किस्म के मसालों की

खुशबू थी. जायका भी एकदम अलहदा था. वह पसंदगी से मुस्कराया: "शकूर यह रान वाला गोश्त कैसे पकता है?" शकूर आत्मविश्वास और रहस्यमयी मुस्कान से खिल उठा, "साहब, यह बहुत मेहनत और तरद्दुद का काम है. शाम से यही तो कर रहा था. इसीलिए आपके खाने में देर हो गई. दरअसल, बकरे की पूरी रान को ही एक साथ पकाना पड़ता है. उसे पूरी तरह चाकू से गोद लिया जाता है, कई तरह के मसालों तथा दही में लपेट दिया जाता है..." वह किसी खानदानी और माहिर रसोइये की तरह 'रान' पकाने की पूरी प्रक्रिया समझाता रहा जो बेहद दिलचस्प थी.

सुबह उठा तो पता चला कि नवाब साहब आ गए हैं. वह नाश्ता-वाश्ता कर ले, तब वह हाजिर होंगे. दस बजे के करीब नवाब साहब आए. वे मझोले कद के खूबसूरत और फुर्तीले अधेड़ थे. कपड़े-लत्ते और तौर-तरीके में अंग्रेजियत तथा नफ़ासत थी. एक मिली-जुली तहज़ीब की वे उम्दा मिसाल थे. वे बहुत जल्दी बेतकल्लुफ़ हो जाने वाले इंसान थे. उनके पीछे बढ़िया किस्म के दशहरी आमों की टोकरी लिये एक आदमी खड़ा था. टोकरी उसने रखी तो दशहरी आमों की खास नशीली खुशबू फैल गई. "उम्मीद है मेरी गैरमौजूदगी में कोई तकलीफ नहीं हुई होगी आपको?" नवाब साहब के शाइस्तगी से मुस्कराते चेहरे पर तरतीबवार दांतों की खूबसूरत कतार थी. दो दांतों पर सोने की पत्तियां दमक रही थीं. चेहरे पर कृतज्ञता की मुस्कान थी. नवाब साहब ने उठकर आंगन के कोने में एक बंद कमरे का दरवाजा खोला. उसमें ढेर-सा भूसा भरा हुआ था. पीछे से कई लोग कई टोकरे लिये कमरे में घुसे. टोकरों में कच्चे हरे लेकिन खूब कसे हुए पूरी तरह विकसित दशहरी आम थे. उन्होंने आमों को भूसे में डाल दिया और दरवाजा बंद कर दिया. "अब वे जल्दी ही इन आमों की तरह पक जाएंगे. तब तक आप यहीं रहेंगे."

"नहीं-नहीं मुझे फार्म देखने भी तो जाना है," वह घबराकर बोला. "वह तो कल ही इंतजाम हो जाएगा. मुझे अफसोस है मैं आपके साथ नहीं चल सकूंगा. मुझे कुछ जरूरी काम है. कई दिनों बाद वापस लौटा हूं. अब्बा भी बीमार हैं. लेकिन मैंने सारा बंदोबस्त कर दिया है. जब तक आप लौटेंगे, आम भी पक जाएंगे."

...दूसरे दिन वह दोपहर बाद शकूर और लछमन के साथ लढ़िया पर फार्म देखने, जिसे वह अखबारों में विज्ञापन देखकर खरीदने आया था, रवाना हो गया. कुछ दूर तक केवल धूल भरी कच्ची सड़क और धूसर मैदान थे...फिर जंगल शुरू हो गया. पहले छितरे तथा नाटे कद वाले पेड़ थे. उसके बाद सागौन तथा अन्य लंबे दरख्तों वाला घना जंगल. उसके बीच छोटी बैलगाड़ियों के आने-जाने से रास्ता खुद-ब-खुद बन गया था. लढ़िया के बैल सुस्त रफ्तार से चलते रहे. "इस जंगल के बाद वकील साहब का फार्म आएगा. वे भी आपके ही तरफ के रहने वाले हैं. पिछले साल उन्होंने यहां फार्म खरीदा था. हम रात उन्हीं के यहां बिताएंगे. नवाब साहब के दोस्त हैं. अकसर शेरपुर आते हैं," शकूर कह रहा था...अभी अंधेरा नहीं घिरा था, किंतु अचानक रोशनी गायब हो गई. नीम रोशनी में वह एक सुरंग थी. वे उसी में चल रहे थे. उसने अपने आपको पूरी तरह शकूर पर छोड़ दिया था. अचानक सामने से एक मोर अपनी लंबी गरदन और कलगी हिलाता जंगल में गुम हो गया. शकूर रहस्य से मुस्करा रहा था, "साहब रास्ते भर कई जानवर सड़क पार करते रहेंगे शायद हिरन भी, पर गोली मत चलाइएगा. बड़े जानवर भी आसपास ही रहते हैं. लेकिन उन पर बैलों की घंटियों का कोई असर नहीं होता. अभी वे हत्यारे नहीं बने हैं. पर बंदूक की आवाज से वे चौंक जाते हैं और फिर यह बशीर डाकू का इलाका भी है. वे लोग बंदूक की आवाज नहीं बरदाश्त कर सकते." जाहिर था कि शकूर उसे थोड़ा डराना भी चाहता था. लेकिन तब भी वह लगातार मुस्करा ही रहा था. उसके हाथ की गिरफ्त बंदूक पर कड़ी हो गई थी. 'सेफ्टी वॉल्व' अपनी जगह पर था. कुछ आगे जाने पर एक लंबा सांप सरसराता हुआ सड़क पार कर गया. जंगल के हरे अंधेरे से ठंडी नम गंध आ रही थी. सब कुछ चुप था. केवल बैलों के गले की घंटियां अलसाई-सी बज रही थीं. "शकूर, यह जंगल कब खत्म होगा जी?" लछमन ने पूछा. शकूर ने उसे चिढ़ाने वाले अंदाज में कहा, "अभी तो कई पहर रात ढलने तक इसी में चलना है." लछमन झपकी भी ले रहा था और डर भी रहा था. वह खुद भी हल्की आहट होने पर चौंक जाता था. उसकी पीठ अकड़ रही थी. वे पिछले दो घंटों से लगातार चल रहे थे. आखिर जब नहीं रहा गया तो उसने लढ़िया रुकवाई और कुछ दूर आगे जाकर पेशाब करने बैठ गया. लछमन भी बड़ी-सी टॉर्च लेकर उतर आया. शायद यह तलब संक्रामक थी. शकूर और गाड़ीवान भी उतर आए. वह दोबारा लढ़िया पर बैठा तो जेब से बेगम साहिबा वाला बटुआ निकाल लिया और इलायची तथा सुपारी की लच्छियां चबाने लगा.

...कुछ दूर बाद जंगल अचानक खत्म हो गया और वे एक बड़े खेतों वाले मैदान में निकल आए. आसमान में अभी भी हल्की-सी लालिमा शेष थी और वह अंधेरे में डूबती हरियाली पर खूबसूरती से तन गई थी. वकील साहब एक जिंदादिल इंसान थे. वे उसी के पास वाले जिले के थे और वकालत की एकरस दिनचर्या से ऊबकर उन्होंने भी अखबारों में विज्ञापन देखकर यह फार्म खरीद लिया था. वे उस वीराने में उससे मिलकर खुश थे. इसके अलावा वह उन्हीं के 'देश' का आदमी था. उन्होंने फूस और बांस की खपच्चियों से दो-तीन झोंपड़े बनवा रखे थे जिनमें वे तथा खेतों में काम करने वाले लोग रहते थे. शायद एक फसल हो भी चुकी थी. उस इलाके में बारिश ज्यादा होती थी. खेती नई-नई थी और अभी जमी नहीं थी. उस पर

ट्रैक्टर चल चुका था और क्यारियां बना ली गई थीं. एक कुंआ तथा दो हैंडपंप थे. कुएं में रहट लगी थी. चारों ओर नमी थी पर गरमी बिलकुल नहीं. पास के झोंपड़े में ट्रांजिस्टर बज रहा था.

"नवाब साहब ने आपके आने की खबर भिजवा दी थी और मैं इंतजार ही कर रहा था," वकील साहब यारबास लेकिन सुलझे हुए आदमी थे. रात होते-होते हल्की-सी सर्दी उतर आई थी. बीच में लालटेन रखकर वे बांस की चारपाइयों पर बैठे थे. ट्रांजिस्टर वाले झोंपड़े से गोश्त पकने की खुशबू आ रही थी.

"पिछले दो वर्षों में यहां फार्म मिट्टी के मोल बिके हैं. जमींदारी-ताल्लुकेदारी जा रही है और यहां के हजारों एकड़ों के काश्तकार ताबड़तोड़ खेत बेचकर पैसे पा लेना चाहते हैं. 'सीलिंग' भी लगने वाली है. इधर न बैंक है, न बिजली. रुपये-पैसे तिजोरियों में रखे जाते हैं और वहां से निकालकर शहरों के होटलों, शराबघरों, नाचघरों और कभी-कभी नाबदानों में भी जाते हैं. अवध की शानदार परंपरा अभी भी यहां चल रही है. जिंदगी इससे बाहर भी होती है, इसे ये लोग नहीं जानते. वकील साहब ने सिगरेट सुलगा ली थी और अपने विश्लेषण से खुश होते हुए पैकेट उसकी ओर बढ़ाया. "नहीं, शुक्रिया, मैं नहीं पीता." वकील साहब कुछ खिन्न हुए और जरा देर अनमने ढंग से बातें करते रहे. बाहर से एक आदमी बीच-बीच में झांक जाता था. वकील साहब अपनी उलझन दबाते हुए बोले, "आप 'एक-दो घूंट' तो ले ही लेते होंगे. ठाकुर आदमी जो ठहरे." उसने उनकी परेशानी का मजा उठाते हुए मुस्कराकर कहा, "चलिए आज आपकी सोहबत में ले लूंगा. इधर एक अरसे से नहीं ली." हालांकि उसे शराब से परहेज नहीं था. थोड़ी ही देर में गिलास की जगह दो प्याले और जग की जगह 'टी पॉट' में पानी आ गया. एक छोटी-सी चौकी पर 'हाइलैंड चीफ व्हिस्की' की बोतल भी रख दी गई. कुछ और देर बाद बतौर 'चिरवना,' नमक और काली मिर्च में लिपटी तली हुई कलेजियां भी आ गईं. वकील साहब ने लंबी-लंबी दो घूंटें लीं और कुछ तरन्नुम में आ गए. "ठाकुर साहब, आप इधर जरूर आ जाइए. सच पूछिए तो जिंदगी यही है. हम लोग नकली और बीमार जिंदगी जीते हैं. घर, बाजार और चकाचौंध वाली जिंदगी. और एक-दूसरे की जड़ काटने वाली लगातार साजिशें. एक ही घर में एक-दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष करते, कुढ़ते हुए पीले बीमार, खांसते लोग. यहां आकर मैं आज़ाद हो गया हूं. जहां तक निगाह जाती है अपने खेत, जमीन, खुला असीम विस्तार." उन्होंने उसका प्याला उसी की ओर बढ़ाते हुए कहा, "सुबह आपको दिखाऊंगा अपनी सब्जियों के खेत. गोभी, मूली, गाजर, टमाटर, बैगन, भिंडियां—सभी कुछ हैं..." वे रुक गए. "अभी तुड़वाकर कुछ ताजा हरा बनवा दूं?" "नहीं वकील साहब, अभी तो रहने ही दीजिए." "वैसे भी आपके लिए उम्दा पालक-गोश्त बनवा रहा हूं. पालक भी अपने ही खेत का है. दूध, दही, घी सब अपनी ही गाय-भैंसों से बनते हैं."

"वाह, वकील साहब, आपने तो यहां एक निराली दुनिया ही बसा रखी है." "ठाकुर साहब, जरूरी है. बहुत जरूरी है यह. केवल हिम्मत, हौसला और तबीयत चाहिए. मैं वहां दरिद्दर बाजार की एक संकरी-सी गली में रहता था, मटमैला काला कोट और फांसी के फंदे-सी सफेद कलफ़दार 'बो' पहनकर कचहरी जाता था. टिन के शेड के नीचे बजबजाती भीड़ के बीच मुनीमों वाली डेस्क पर कलम-दावात लिये दिन भर 'प्रामेसरी नोट्स' लिखवाता और दाखिल-खारिज करवाता रहता था. बूढ़े, बीमार विधवाएं, वेश्याएं, अपंग—सभी खेत, जमीन, गहने गिरवी रखकर खेत, जमीन के लिए मुकदमे लड़ते थे और हम हरामी, नीच, पापी लोग रात को दांतों के कोटरों से गोश्त के रेशे निकालते हुए शराब की घूंट लेते रहते थे." वकील साहब ने कलेजी का एक बड़ा टुकड़ा अंगूठे और तर्जनी से उठाकर मुंह में रखा और 'हाइलैंड चीफ' की एक घूंट ली. उन्होंने उसके घुटने पर हाथ रखकर कहा, "ठाकुर साहब, बहुत बड़े पाप-पंक से निकलकर आया हूं—अब लौं नसानी, अब ना नसइहों." और वे उसके घुटने पर सिर रखकर रोने लगे. वह कुछ घबरा गया, हालांकि उसे मजा भी आ रहा था. "नहीं, नहीं, वकील साहब, आपने बहुत अच्छा किया. कितने लोग ऐसा कर पाते हैं. आपने बहुत बड़ा निर्णय लिया और उसे जी रहे हैं." ऐसे औचक मौके पर उसे अपनी किताबी भाषा का सहारा लेना पड़ रहा था. वकील साहब कुछ देर वैसे ही हिचकियां भरते रहे फिर प्रकृतस्थ हो गए. "मुझे माफ कीजिएगा ठाकुर साहब, यहां निपट अकेलेपन और वीराने में तरह-तरह के ख्याल सताते हैं. अपना किया, जिया सब बार-बार उमड़ता रहता है. आप जैसे लोग यहां आते कहां हैं? वैसे भी मैंने कोई वानप्रस्थ तो लिया नहीं है. सारी कमाई लगाकर एक नई जिंदगी की शुरुआत कर रहा हूं. पहली बार अपनी तरह से जीने की कोशिश."

...रात बहुत हो गई होगी. कोई आदमी फिर बार-बार झांक जाता था. उसे अचानक शकूर और लछमन की याद आई. उसने पूछा, "वे कहां हैं?" "वे मजे में हैं साहब, आप चिंता न करें," झांकने वाले आदमी ने मुस्कराकर कहा...काफी देर बाद उन्होंने पालक-गोश्त और लकड़ी की आंच पर पकी मोटी-मोटी रोटियां खाईं जो बहुत मीठी थीं. आटा भी शायद उन्हीं के खेत के गेहूं का होगा!

...वह बहुत गहरी नींद में सोया होगा, जब उसने झोंपड़ी के पीछे एक गंभीर हुंकार सुनी. वह हड़बड़ाकर उठ बैठा. नींद और नशे में उसे लगा कि 'वह' झोंपड़ी के ठीक पीछे आ गया है. पास ही वकील साहब की चारपाई थी. बीच में तिपाई पर मद्धिम लालटेन जल रही थी. चारपाई पर उसके उठ बैठने से इतनी तो आवाज़ हुई ही होगी कि वकील साहब की नींद उचट जाए. वे भी उठ बैठे. वह आवाज़ उन्होंने भी सुनी होगी. "वह रोज इसी वक्त बोलता है, आप परेशान न हों, सो जाइए. यह दूर जंगल से उठती आवाज़ है." वह जिस तरह हड़बड़ाकर डरा हुआ उठा था उसी तरह शर्मिंदा, वापस सो गया.

...सुबह हल्की-हल्की बारिश हो रही थी और हवा में खुनक थी. झोंपड़ी के बाहर कीचड़ हो गया था. उन लोगों ने छतरी लगाकर हैंडपाइप के पास जाकर कुल्ला-दतुअन किया. उसे चिंता हुई कि वह 'फार्म' पर कैसे पहुंचेगा. लेकिन जल्दी ही आसमान साफ हो गया और धूप निकल आई. जब वे लढ़िया पर चढ़ने लगे तो वकील साहब ने कहा, "लौटकर रात यहीं बितानी होगी, तब तक शाम हो जाएगी." पत्तों पर पानी की बूंदें अभी भी अटकी हुई थीं. जरा-सी हवा के झोंके से झरझराकर उन पर टपकने लगती थीं. पत्ते धूप में चमक रहे थे. वे फिर घने-घने जंगल में घुस गए. भीगी जमीन और गीले जंगल की मिली-जुली गंध. उसी ताज़गी से सराबोर वे चल रहे थे. "साहब, यहां से दो घंटे का रास्ता और है," शकूर ने कहा. लछमन एक टिफिन कैरियर लटकाए बैठा था. "इसमें क्या है?" उसने पूछा. "वकील साहब ने दोपहर का खाना रखवा दिया है. सुराही में पानी भी है. कह रहे थे, वहां कुंआ तो है, पर रस्सी-डोल कुछ भी नहीं है." ऐसी जगहों पर आकर लोग अचानक कितने आत्मीय और स्वजन हो जाते हैं. सचमुच वे जगहें अब रहने के काबिल नहीं रहीं. वहां जाकर वकील साहब फिर वैसे ही हो जाएंगे. बशीर

Electric fist on your heart. Shrieking with a new energy that's shot with more red power. Molten lava caged in Red.

New Heavy Duty Red Eveready for Cameras and Personal Stereos. Tiger's breath on your ears.

Rediffusion/UC/92/415 f

डाकू और शेरों की दहाड़ के बावजूद ये जगहें अभी भी रहने के काबिल हैं लेकिन यहां भी वकील साहब हमेशा ऐसे ही रहेंगे? और ये जगहें भी? हमेशा?

फार्म पर जब वे लोग पहुंचे तो सूरज सिर पर आ गया था. जंगल अब उतना अपरिचित और आकर्षक नहीं लग रहा था. वह मैदान पहाड़ों की तलहटी में था. उसके पार जंगल का एक टुकड़ा था और फिर पर्वत शुरू हो जाते थे. वे वहां से भी दिख रहे थे. पहले छोटे-छोटे सांवले ढूह फिर क्रमशः ऊंचे होते हुए उनके शिखर धुंध में खो गए थे... मैदान के ठीक बीचोबीच एक कुंआ था और उसके ठीक किनारे एक पेड़. मैदान तक पहुंचने के लिए एक छिछली नदी-सी पार करनी पड़ती थी. वह बाढ़ के दिनों में उमड़कर मैदान के काफी बड़े हिस्से को ढक भी लेती होगी. उसने व्यावहारिक होते हुए सोचा. लेकिन इस वक्त वहां दूर-दूर तक केवल हरी दूब थी और सरकंडों के छोटे-छोटे गुच्छे. लेकिन नदी फिर भी उपयोगी हो सकती है. मैदान उससे काफी ऊंचाई पर था. वे पेड़ के नीचे घास पर बैठ गए. बरसाती धूप तेज थी, लेकिन बादलों के टुकड़े उन्हें बीच-बीच में काफी देर के लिए ढक लेते थे. वह अपनी कल्पनाओं और योजनाओं की उत्तेजना में था. बादलों और पहाड़ों की ओर से उसने आंखें हटाईं तो लगा लछमन, शकूर और गाड़ीवान किसी प्रत्याशा में बैठे हैं. कुछ दूर पर लढ़िया के बैलों को खोलकर उनके सामने चारा डाल दिया गया था. वे गले की घंटियां बजाते हुए उन्हें खा रहे थे. लढ़िया के झुके बाजू जमीन पर फैले थे.

..."शकूर मियां, जगह तो अच्छी है..कुछ खाना-पानी भी हो जाए." शकूर के चेहरे पर संतोष दिखा, शायद इसलिए भी कि साहब को जमीन पसंद आ गई और इसलिए अब कुछ खाया-पिया जा सकता है...लछमन ने टिफिन कैरियर खोलना शुरू किया तो खुशबू की लपटें उड़ने लगीं: सुनहरे परांठे, गोश्त और टमाटर-प्याज के टुकड़े. दो डिब्बों में ढेरों परांठे ठसाठस भरे हुए थे और दो में सुर्ख शोरबे से लबरेज गोश्त के टुकड़े. समस्या उन्हें खाने की थी. शकूर ने आनन-फानन में सागौन के पत्तों के पत्तल बना दिए और शोरबे से तर-ब-तर गोश्त-परांठे खाता हुआ वह अछोर हरियाली देखता रहा...

हवा कभी रुक जाती, कभी चलने लगती, लेकिन गरम नहीं थी....बोरिंग कराना जरूरी होगा. कुछ टेंट्स और बिजली के लिए एक जेनरेटर. आदमी वह वकील साहब की तरह अपनी तरफ से ही लाएगा. ट्रैक्टर वह खुद चलाता रहा है. यहां के लोगों का भरोसा नहीं है. वह उन्हें जानता भी नहीं. अगर मैदान के तीन तरफ झोंपड़ियां बना दी जाएं तो उनमें काम करने वाले आदमी रह सकते हैं. बीच में वह अपना बड़ा टेंट खड़ा कर सकता है. कुछ बैलों की भी जरूरत पड़ेगी ही. यहां के बैल? उसने लढ़िया के मरियल नाटे बैलों को देखते हुए सोचा. "शकूर मियां, यहां किन-किन चीजों की अच्छी खेती हो सकती है?" "जनाब, वैसे तो यह इलाका धान की खेती के लिए मशहूर है मगर, गन्ने और अरहर की भी अच्छी खेती होती है." "यह सब तो अच्छी फसलें हैं, बाजार के लिहाज से भी. मगर बाजार तो यहां से बहुत दूर होगा." उसने दूरदर्शिता से सोचते हुए पूछा. तीन सौ एकड़ के इस हरे-भरे फार्म के लिए एक नया फर्ग्युसन ट्रैक्टर लाना होगा. धान और गन्ने का स्वर्ग है यह... इतनी दूर आकर बेशुमार दौलत वाली इस जमीन को छोड़ना तो निहायत बेवकूफी होगी. लोगों ने कहां-कहां जाकर क्या-क्या करिश्मे नहीं किए हैं. यह बहुत बड़ी चुनौती थी. उस चुनौती के लिए वह सामने ऊंचे पहाड़ों को देख रहा था. वे 'हिमगिरि' तो नहीं थे, पर 'उत्तुंग शिखर' जरूर थे. "नूरपुर तक तो जाना ही होगा और वहां बाजार ही बाजार है. उसके लिए आपको ट्रैक्टर में ट्रॉली भर लगवानी होगी," शकूर ने अपनी हाजिरजवाबी में तुरंत इस मसले का हल ढूंढ़ निकाला. भूखी अंतड़ियां गोश्त और परांठे लील कर आंखों और दिमाग में अलसता उत्पन्न कर रही थीं. हाथ धोने के बाद वह नरम दूब पर तौलिया बिछाकर औंधा हो गया.

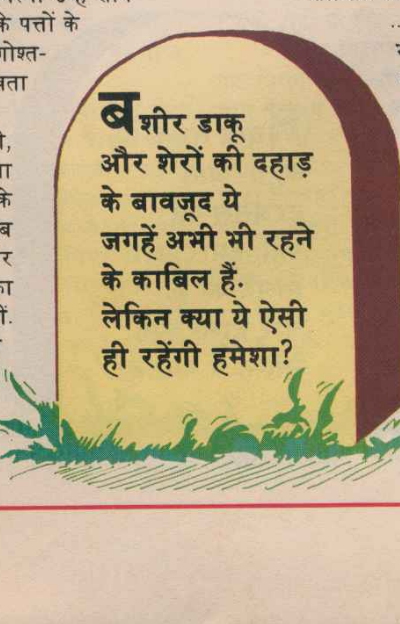

...शकूर ने उसे जगाया, "जनाब, आज रात भी वकील साहब के फार्म पर बितानी होगी और शाम होने से पहले ही वहां पहुंच जाना बेहतर होगा." उसने अपने आसपास और दूर तक ललक और हसरत से देखा. आखिर लौटकर तो यहीं आना है. इसे लहलहाती फसल, ऊपर मंडराते असंख्य पक्षियों, मजदूरों और ट्रैक्टर की फट्फट् से गुंजान करना होगा... "पुनः आऊंगा, भले ही..." और कपड़ों से दूब के तिनके अलग करता हुआ वह उठ खड़ा हुआ. पेट थोड़ा भारी किंतु दिमाग दीप्त था... लढ़िया के बैल भी अलसाए हुए बैठे पागुर कर रहे थे. उन्हें दोबारा जब लढ़िया में जोत दिया गया तो गले की घंटियां मैदान में तरंगों की तरह फैल

गई. तीसरे पहर के सूरज के लिए वहां एकमात्र उनकी और इकलौते पेड़ की परछाइयां थीं.

...लढ़िया में बैठकर वे वापस चले तो वह सपनों और आलस्य से भरा हुआ था. दिन ढलते-ढलते वे वकील साहब के फार्म पर पहुंच गए. कल की तरह वे आज भी उसका इंतजार कर रहे थे. ...''ठाकुर साहब, आपका आना मेरे लिए बहुत शुभ सिद्ध हुआ. पास ही एक अलग किस्म का जंगल है. उसमें कई तरह के पेड़ और लताएं हैं. किस्म-किस्म के जानवर भी. गनीमत है, शेर और भालू अभी वहां नहीं पहुंचे हैं. पर दिक्कत उसमें चलना है. पैदल आप चल नहीं सकते और लढ़िया पर चलते समय कब कोई टहनी आपसे टकरा जाए या कब कोई लता आपको घेर ले, कुछ कहा नहीं जा सकता. वहां वे फंदों की तरह बेशुमार हैं. आपको लगातार अपना सिर भी बचाना पड़ता है. और हाथों को भी सक्रिय रखना पड़ता है. ऐसे में आपको कुछ भी मिल जाए तो आप सौभाग्यशाली हैं, मसलनः तीतर, बटेर, हारिल और कभी-कभी हिरन भी...कल आपके जाने के बाद मैंने सोचा क्यों न आपका स्वागत और विदाई भी अनोखे ढंग से की जाए.'' वकील साहब अपने मिजाज के अनुरूप उत्फुल्ल और उत्साह में थे. ''वकील साहब विदाई कैसी? मैं तो आपका पड़ोसी होकर आ ही रहा हूं.'' ''नहीं भाई साहब, वह बात नहीं. पड़ोसी होकर तो जब आएंगे तब आएंगे. पर भविष्य को कौन जानता है. इसके अलावा यहां यही तो एक शगल है. दोपहर में बंदूक लेकर निकला तो ख्याल आया कि बहुत दिनों से इस नायाब जंगल की सैर नहीं की है, सो चला गया. क्या बताऊं ठाकुर साहब, जंगल क्या है, स्वाभाविक रूप से बना राष्ट्रीय रक्षित वन है. कौन से पशु-पक्षी यहां नहीं हैं. लेकिन जैसा कि मैंने कहा न, शेर, भालू, चीते आदि को छोड़कर, वरना निरीह पशु इतने निर्द्वंद्व होकर नहीं विचरते. तोता, मैना, कोयल, कबूतर आदि से लेकर खरगोश, मोर, नील गाय क्या नहीं हैं वहां....और अचानक मिल गया 'काला तीतर'. नौ नंबर से ढेर कर दिया उसे.'' शकूर की आंखें चमकने लगीं. वही काला तीतर जो हाथ से निकल गया था उस दिन, वकील साहब के 'रसोईघर' में पक रहा है.

शाम धीरे-धीरे ठंडी होती जा रही थी... फिर अचानक स्याह सूनापन छा गया. थकान घिर आई. और उदासी ने सपनों को दबोच लिया....लेकिन वकील साहब मौज में थे. उन्हें 'काला तीतर' नहीं मिल गया था, बल्कि शाम बिताने का एक और 'सामान' मिल गया था. बाहर चूंकि बारिश नहीं थमी थी, उमस भी नहीं थी, इसलिए वहीं टिन की कुर्सियां तथा मेज लगा दी गई थी. पेट्रोमैक्स जलाया जा रहा था जिसकी सफेद रेशमी जाली कभी चमकदार होकर रोशन हो जाती और कभी चमककर लपट बन जाती.

यह खेल कुछ देर यूं ही चलता रहा. घनघोर अंधेरे के बीच उसका ध्यान उसी पर केंद्रित था. वकील साहब ने कल की तरह भुनी हुई कलेजियां और व्हिस्की की बोतल मंगवा ली थीं. कुछ दूर स्टूल पर छोटा-सा ट्रांजिस्टर रखवा लिया था जो खनखनाती आवाज में उस जमाने के फिल्मी गीत उगल रहा था. उसने व्हिस्की पीना शुरू किया तो कुछ देर चुप्पी रही. वकील साहब ने भी अभी बोलना शुरू नहीं किया था... अछोर अंधेरा, पेट्रोमैक्स के सफेद आलोक वृत्त और उस छोटे-से डब्बे से निकलते फिल्मी गीतों के बीच एक अजीब-सा रिश्ता बन गया था... वकील साहब धीरे-धीरे तरन्नुम में आने लगे थे. लेकिन वे अभी भी कम ही बोल रहे थे. उन्होंने व्हिस्की की घूंटों और कलेजी के टुकड़ों के बीच 'युगलबंदी'-सी कायम कर रखी थी और फिलहाल उसी में मगन थे. उन्हें कलेजी में कभी काली मिर्च ज्यादा लगती और कभी नमक कम. और कभी-कभी इसका उलटा भी. कलेजियां खूब अच्छी तरह भूनी नहीं गई थीं इसलिए वह उन्हें लगभग 'च्विइंगम' की तरह खा रहा था. वकील साहब बीच-बीच में वाह-वाह जरूर कर रहे थे, जो पता नहीं कलेजियों के लिए, व्हिस्की के लिए या फिल्मी गीतों के लिए था. गीत 'रेडियो सीलोन' से आ रहे थे. उन दिनों वे वहीं से आते थे.

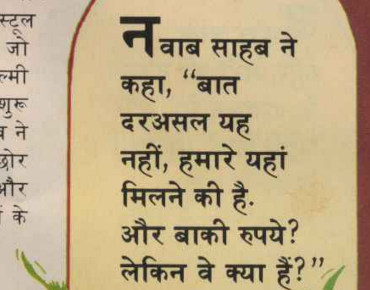

...तभी 'काला तीतर' आ गया. सुर्ख शोरबे में डूबे डैने, गरदन, सीना और ऊपर को उठी हुई दो टांगें. सब सुर्ख. बीच-बीच में कुछ सफेदी लिये हुए झांकते. पता नहीं कैसे उसने मान रखा था कि 'काले तीतर' का गोश्त भी कुछ सांवला होगा—आम तौर पर खाए जाने वाले पक्षियों से अलग. चूल्हे की आंच पर पकी, मोटी, काली लेकिन सोंधी रोटियों के साथ उनके टुकड़े भी कच-कच कर चबाए जा सकते थे. व्हिस्की से तर-ब-तर गले के भीतर उनका स्वाद भी ठीक से अलग करके पहचाना नहीं जा रहा था. ''देखा ठाकुर साहब, आम गोश्त और काले तीतर के गोश्त का फर्क. महीनों बाद मयस्सर हुआ है यह. आपके कदम पड़े और काला तीतर हाजिर.''

...उसे थकान, नींद और नशा जकड़ रहे थे. गीत बंद हो चुके थे और रात के शायद ग्यारह बजे होंगे. बिस्तर आज भी बाहर ही लगे थे. वकील साहब अब भी कुछ बोल नहीं रहे थे, केवल हिल-डुल रहे थे...अंधेरे के बावजूद पता नहीं कहां से हल्की-सी उजास पैदा हो गई थी...कुछ देर बाद वह और वकील अपनी-अपनी मच्छरदानियों की सुरंगों में घुस गए. फिर कुछ देर तक झींगुरों, कुत्तों और चीतलों की मिली-जुली आवाजें आती रहीं.

...सुबह फिर शेरपुर. वकील साहब ने उनके रास्ते का 'पाथेय' बंधवा दिया था. ''ठाकुर साहब जल्दी वापस आकर काम-धाम शुरू कर दीजिए. फसलों का मौसम आ रहा है, बस एक बारिश पड़ने की देर है. बीजों की आप फिक्र मत कीजिएगा, मैं व्यवस्था करा दूंगा.'' उत्साहित होकर वे ऐसे बोल रहे थे जैसे वह कल ही वापस आ रहा हो. ''जरूर-जरूर वकील साहब, एक बार वहां पहुंचकर आवश्यक चीजों का इंतजाम कर लेने दीजिए.'' शकूर बार-बार उनका शुक्रिया अदा कर रहा था कि उन्होंने उसके मेहमानों की इतनी मेहमाननवाजी की.

...यद्यपि उस सुबह यात्रा उन्होंने जल्दी शुरू की थी, पर पता नहीं क्यों लढ़िया के बैल उस वक्त कुछ ज्यादा ही सुस्तरफ्तार थे. शायद लगातार यात्रा से थक-से गए थे. शेरपुर पहुंचते-पहुंचते सूरज फिर सिर पर था. दिन भी कुछ ज्यादा ही गरम था और चूंकि अभी एक दिन पहले ही उसी रास्ते से गुजरे थे इसलिए रास्ता काटे नहीं कट रहा था. जब वे नवाब साहब की अतिथिशाला के चबूतरे पर पहुंचे तो पसीने से लथपथ और अस्वाभाविक-सी थकान से चूर थे. लढ़िया से उतरते हुए उसने याद किया, रास्ते भर कोई कुछ नहीं बोला था.

...अचानक नवाब साहब अपनी 'तपाक वाली' मुद्रा में सामने आ गए, ''देखिए, मैंने कहा था न, दशहरी आम खूब अच्छी तरह पक गए हैं—थोड़ी देर हो जाती तो उतरने लगते. मैंने नूरपुर से बर्फ की सिल्लियां मंगवाकर आमों में लगवा दी हैं. तब तक आप नहा-धोकर थोड़ा आराम कर लें. हमारी तरफ तो आमों का मजा तीसरे पहर के बाद ही आता है. कुछ लोग दोपहर के खाने के साथ भी खाते हैं. उसके बाद दोपहर में सोने का सुख कुछ और ही होता है क्योंकि आम का भी

अपना एक नशा होता है." फिर उन्होंने एक जोर का ठहाका लगाया और जैसे आए थे वैसे ही झपाटे के साथ चले गए.

...उनकी अतिथिशाला का आंगन दशहरी आमों की खुशबू से महमहा रहा था. वह खुशबू कुछ ज्यादा ही थी. इतनी कि दमघोंट भी लग सकती थी...नहाने और खाने के बाद वह सचमुच सो गया—दशहरी आमों वाली सांसों की खुशबू पीता हुआ...शाम को शकूर आया, "जनाब, रात का खाना नवाब साहब के दस्तरखान पर होगा, 'कचहरी' के ऊपर वाले कमरे में."

...कचहरी के ऊपर वाला कमरा कच्ची मिट्टी की दीवारों के ऊपर बना खपरैलों से ढंका एक हॉल था. नीचे गद्दों पर सफेद चांदनी बिछी थी. ऊपर खपरैलों के नीचे सफेद चंदोवा टंगा था. बीचोबीच छत से लोहे की सलाखों के सहारे सफेद रोशनी बिखेरता पेट्रोमैक्स जल रहा था. यानी सब कुछ झकाझक. फर्श पर चांदी की नक्काशीदार ट्रे थी. नवाब साहब खस की खुशबू बिखेरते हुए लखनवी चिकन के कुर्ते-पाजामे में थे. उनका ऊपरी सुनहरा दांत रोशनी में झिलमिला रहा था. चूंकि दीवार से दीवार तक बिछा गद्दा गुदगुदा था इसलिए उस पर चलने में भी परेशानी हो रही थी...उसने नीचे की ट्रे की ओर देखा, वहां 'ब्लैक लेबल' स्कॉच की बोतल खुली थी और 'कट ग्लास' की गिलास में सुनहरी शराब भी झिलमिला रही थी.

"ठाकुर साहब यह शाम आपके नाम! यह कचहरी वाला कमरा भी कभी-कभी ही खुलता है." दरवाजे के बाहर शकूर इसी अंदाज में खड़ा था कि नवाब साहब बज़ा फरमा रहे हैं. चांदी की तश्तरी में शायद 'हर शाम' वाले 'शामी कबाब' थे. "ठाकुर साहब, शकूर ने मुझे बताया कि हमारा फार्म आपको बेहद पसंद आया. यह शाम इसी खुशी में है."

"नवाब साहब, उस फार्म का हकदार बनकर मैं कितना खुश हूं, बयान नहीं कर सकता. मैं बड़बोलापन नहीं करता, पर साल दो साल में ही उस फार्म में आप इतनी तब्दीलियां पाएंगे कि उस खुशी में कुछ शामें वहां के लिए भी सुरक्षित रखनी पड़ेंगी." इस बार दोनों हंसे. छत से लटके पेट्रोमैक्स को लगभग हिलाती हंसी.

"...ठाकुर साहब, रजिस्ट्री वगैरह तो कल नूरपुर में हो जाएगी. वे तो फार्मेल्टीज हैं. असल चीज तो हमारा-आपका यहां होना है." उन्होंने 'ब्लैक लेबल' की बोतल उठाई और उसकी गिलास में ढेर-सी उड़ेल दी और फिर अपनी गिलास में. "ठाकुर साहब, जिस फार्म पर कल आप गए थे, उस फार्म और शेरपुर में कोई फासला ही नहीं था और जिस नूरपुर स्टेशन से आप आए हैं उसमें और शेरपुर में भी कोई फासला नहीं था." ...वे चुप हो गए, शकूर पेट्रोमैक्स में हवा भरने लगा क्योंकि वह बीच-बीच में नारंगी जीभें निकालने लगा था.

...कुछ देर बाद वे बोले, कुछ ऊंची आवाज में, "फासला पैदा कर दिया गया." वे कुछ हांफते से बोले, "मेरी पुरानी पीढ़ियों और आपकी पुरानी पीढ़ियों द्वारा." वह थोड़ा हैरान हो गया—मेरी पुरानी पीढ़ियों और आपकी पुरानी पीढ़ियों द्वारा. "मेरी पुरानी पीढ़ियां? वे तो यहां कभी तशरीफ लाईं नहीं."

"मेरा मतलब है ठाकुर साहब कि वे भी वहां वही कर रहे थे जो मेरी पुरानी पीढ़ियों के लोग यहां कर रहे थे. सब फासले बढ़ा रहे थे, जमीनें बेची जा रही थीं, जागीरें गिरवी रखी जा रही थीं...हमने बचपन से यही देखा है, अलीगढ़ पढ़ने जाने से पहले और अलीगढ़ में पढ़ने के बाद भी." पेट्रोमैक्स तमतमाने लगा था. अपनी सफेदी में एक गुलाबी धब्बा-सा.

"हमने तालीम हासिल करने के बाद लौटकर पाया क्या? फासलों के बढ़ने और सिमटने का सिलसिला. मेरा बेटा भी अलीगढ़ में है. तालीम पा रहा है. अगले हफ्ते वह गर्मियों की छुट्टियों में आ रहा है. वह पाएगा कि एक 'फासला' आप ले गए."

...अचानक वे दस्तरखान की ओर झुकने लगे. तब तक वे बिरियानी खाने लगे थे. उसे हैरानी के साथ थोड़ा अजीब भी लगा कि नवाब साहब का हाथ दस्तरखान की ओर न बढ़कर चिकन के कुर्ते की जेब की ओर बढ़ रहा था लेकिन वहां पहुंच नहीं पा रहा था. केवल उसके इर्द-गिर्द घूम रहा था. उसने घबराकर कहा, "नवाब साहब बिरियानी बेहद लज़ीज है, केसर के खुशबुओं में बसी और रोगनी रोटी तो कमाल की है, घर के तंदूर में पकी लगती है."

..."रुकिए ठाकुर साहब बात दरअसल यह नहीं है, बात हमारे यहां मिलने की है. और बाकी रुपये. वे बीस-पच्चीस हजार जो आपने फार्म के लिए दिए? वह फार्म तो आपका हो गया या कल तो हो ही जाएगा. लेकिन वे क्या हैं?" अचानक वे उठे और लोहे की सलाखों से लटके पेट्रोमैक्स के नीचे जाकर कुर्ते की जेब से नोटों का बंडल निकालकर पेट्रोमैक्स पर रख दिया. इसके पहले कि वह कुछ सोच पाता, कचहरी वाला कमरा जलते कागजों की रंगीन गंध से भर गया. शकूर नवाब साहब को सम्हालने दौड़ा. वे चांदी के ट्रे की बिरियानी पर झुके पड़े थे ...उस सुबह जब वह लढ़िया पर बैठने जा रहा था तो सुबह तो रह नहीं गई थी पर धूप अभी भी कोमल थी. नवाब साहब 'शार्क स्किन' के क्रीम कलर सूट में तरोताजा खड़े थे. "तो चलिए नूरपुर की कचहरी में दस-साढ़े दस तक पहुंच जाना है."

...कुछ घंटे बाद लढ़िया वहां खड़ी थी, जहां से एक सड़क कचहरी की ओर जाती थी और दूसरी जिसके किनारे झुके हुए पत्थर पर लिखा हुआ था... शेरपुर-१५ मील. ■

ठंडा दखल

• गिरिराज किशोर • चित्र: गोपी गजवानी

बेहद अंतरंग क्षणों में किसी भूले बिसरे की याद पति-पत्नी के रिश्ते में कितना ठंडापन पैदा करती है... मगर उन यादों से पीछा छुड़ाना भी कितना मुश्किल होता है...

विभा पति के परिवर्तित व्यवहार से चकित थी. अठारह वर्ष बाद विनय उनके मन में कहां से कौंध गया. कब विनय से मिले थे! शायद शादी के कुछेक दिन बाद, जब वे दूसरी बार विभा को लेने गए थे. विनय सहृदय व्यक्ति था. वह अपना हृदय उड़ेलकर मिलता था. शायद उसने विभा को लेकर कुछ भावुक वाक्य भी कह दिए थे—हमारी विभा लाखों में एक है, एकदम निर्बोल. विनय के जाने के बाद उन्होंने कई एक सवाल पूछ डाले थे—यह विनय कौन है? अजीब तरह बोलता है. तुम इसे कैसे जानती हो? उसने उनके सब सवालों का जवाब एक सादे, छोटे वाक्य में दे दिया था—विनय मेरा सहपाठी भी है और पिता जी के अभिन्न मित्र रज्जन बाबू का बेटा है. बंगाली है इसलिए भावुक है. उस दिन जब रात को वे बिस्तर पर थे और नितांत आत्मीय क्षणों में डूबे थे तो उन्हें एकाएक विनय की याद आ गई थी. लेकिन इस बार उनका अंदाज एकदम बदला हुआ था. जैसे उन्होंने पहली रात को उसका वक्ष छूते समय पूछा था—पहले किसी ने नहीं छुआ? वह स्तब्ध रह गई थी. पर गरदन झुकाए-झुकाए गरदन हिलाकर मना कर दिया था. हालांकि कहने के लिए उसके दिमाग में कई बातें आई थीं. उसे लगा था कि पूछने का यह अंदाज उसी से मिलता-जुलता है. वे बोले, "ताज्जुब है विनय ने तुमसे विवाह की इच्छा जाहिर नहीं की. इतनी सुंदर और लाखों में एक..." उसने आंखें बंद कर ली थीं. उसकी बंद पलकों के नीचे पानी की एक रेखा खिंच गई थी. प्यार करने का जो अंतर्भाव बना हुआ था वह अंतर्ध्यान हो गया था.

वे बोले, "तुमने कोई जवाब नहीं दिया?"

उसने थरथराती आवाज से कहा था, "नहीं."

"नहीं! यह कैसे हो सकता है?"

"ऐसा ही हुआ है. आपको ऐसा क्यों लग रहा है?" उसे लगा वह रो भी सकती है. पर उसने अपने को संभाला.

"तुम्हे अपमान महसूस नहीं हुआ? किसी सुंदर और नौजवान लड़की से कोई जवान और योग्य लड़का मिलता-जुलता हो और वह विवाह का प्रस्ताव न रखे यह अपमान नहीं तो क्या है?"

"विनय उस तरह का लड़का नहीं—वह सम्मान करना जानता है."

वे हो-होकर हंस दिए थे. फिर बोले थे, "तो वह सम्मान करता था, प्यार नहीं. यह तो और भी ज्यादा अपमान की बात है. या फिर उसमें कोई कमी रही होगी."

"अगर आप ऐसा सोचते हैं तो यही सही!" उसकी आंखों में बड़े-बड़े आंसू थे जो टपक नहीं रहे थे. वे शायद समझ गए थे कि बात को ज्यादा बढ़ाना ठीक नहीं.

"अच्छा छोड़ो, बेकार विनय का राग ले बैठे. हमें उससे क्या लेना-देना. पहले जो भी रहा हो, अब तो तुम हमारी हो. आओ."

उसका मन उस अंतरंगता से विरत हो गया था. अंदर तक आहत था. वह स्थिर रही. बिना बोले समर्पित-सी. बाद में भी जब कभी ऐसे अवसर आए तो उसे उस दिन वाली बात याद आ जाती रही. अजीब स्वभाव होता है. वह न अपने प्यार को खुलकर कह सकती है और न अपनी घृणा को. सब प्रतिक्रियाओं को मन-ही-मन झेलती है. वे भी गाहे-बगाहे विनय का जिक्र कर देते थे, खास तौर से जब वे बिस्तर पर होते थे. धीरे-धीरे विभा में एक तरह का ठंडापन व्याप्त होता जा रहा था. जो उल्लास पहले रहता था वह एक तरह के ठहराव में बदलता जा रहा था. एक-दो बार उन्होंने इस बात को समझा भी और कहा भी, "मैं बेकार मौके-बेमौके विनय का जिक्र ले बैठता हूं. यह जानते हुए भी कि उसके नाम से तुम्हें कुछ हो जाता है."

वह कहना चाहती थी कि आप इतना भी नहीं जानते कि ऐसे में किसी तीसरे आदमी की उपस्थिति का जो प्रभाव पड़ता है कमोबेश वही असर उसके जिक्र का भी होता है. लेकिन वह बात को बढ़ाना पसंद नहीं करती थी. वह जानती थी कि जहां भावना में पहले ही प्रदूषण हो वहां जहर घोलने से क्या लाभ!

लेकिन धीरे-धीरे बात पुरानी पड़ती गई और विनय का जिक्र होना बंद होता गया. विभा भी सामान्य होती गई. अलबत्ता, जिस मौके पर पहले जिक्र होता था जब उससे मिलता-जुलता मौका आता था तो कभी-कभी उनके द्वारा किया गया वह जिक्र उसके मन पर पित्ती की तरह उछल आता था. दोनों के बीच एक नाता-सा बन गया था. विनय के जिक्र की एक धुंधली छाया हिलती नजर आने लगती थी. बाद में तो इस प्रकार के मौकों की आवृति वैसे ही कम होती गई थी. उस दिन शादी के अठारह वर्ष बाद, बंबई से लौटकर उन्होंने विनय का जिक्र किया तो विभा थोड़ी परेशान-सी हो गई. हालांकि परेशान होने की कोई बात नहीं थी. फिर भी वे सब स्थितियां घूम गईं जिनसे वह पहले कई बार आहत हो चुकी थी. इस बार का जिक्र उतना आहत करने वाला नहीं लगा. उसे लगा कि विनय का जिक्र करते हुए वे स्वयं अस्थिर से हैं. उसने खास ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी.

वे चेहरे पर लापरवाही लाते हुए बोले, "तुम्हारा विनय तो बड़ा अजीब आदमी है. उसने हमें पहचाना तक नहीं. हमने उसे देखा पर उसने ऐसे दिखलाया जैसे वही सब कुछ है, हम कुछ हैं ही नहीं. कोई बता रहा था कि हजरत यू.एस. में हैं. बार्क में किसी

वे भी गाहे-बगाहे विनय का जिक्र कर देते थे, खास तौर से जब वे बिस्तर पर होते थे. धीरे-धीरे विभा में एक तरह का ठंडापन व्याप्त होता जा रहा था. सब प्रतिक्रियाओं को मन-ही-मन झेलती.

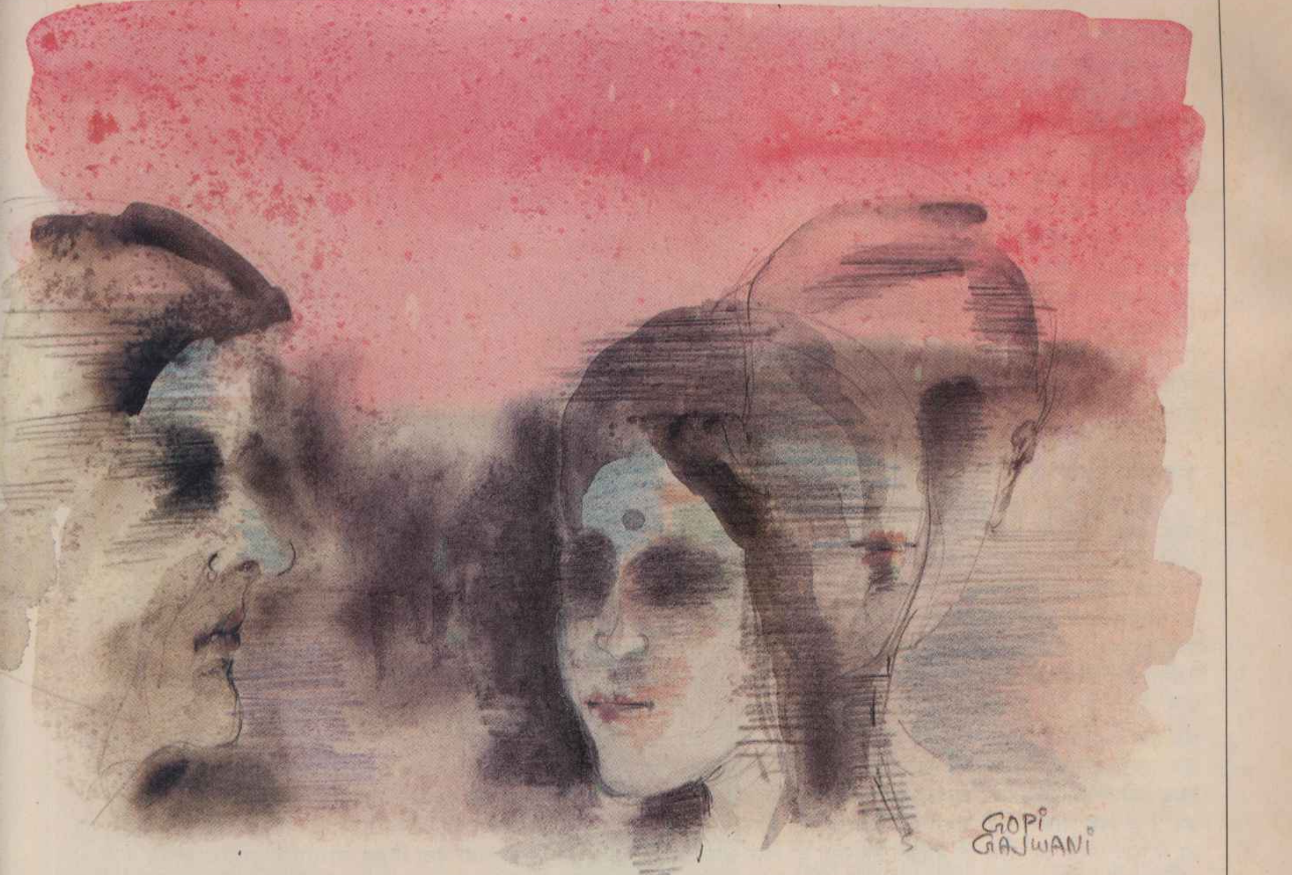

प्रोजेक्ट के सिलसिले में आए हैं. हमें ही क्या जरूरत थी—वह मुंह मोड़कर चल दिया—हम तो पहले मुंह मोड़ने वालों में हैं." वे थोड़ा परेशान से लगे.

उसका मन हुआ उनसे पूछे कि वह कैसा है? वैसा ही दुबला-पतला है या कुछ मोटा हुआ? शादी हो गई या नहीं? कितने बच्चे हैं? लेकिन वह फौरन संभल गई. जब बात ही नहीं हुई तो वे सवालों का क्या जवाब देंगे. और फिर बात का बतंगड़ बनता फिरेगा. उसने सिर्फ "अच्छा" कहा.

वे बोले "तुम्हें बुरा नहीं लगा?"

"नहीं, बुरा क्यों लगेगा. इतनी पुरानी बात हो गई—एक ही बार तो आपसे मिला था. वैसे, अठारह साल में शक्लें भी बदल गई होंगी. विदेश जाकर तो सुना लोग अपने देशवासियों को भूल जाते हैं."

उसे अपने ऊपर आश्चर्य हुआ. मन ही मन तय करने के बावजूद वह विनय के बारे में इतना कैसे बोल गई.

वे विचित्र दुख भरे स्वर में बोले, "हां, भूल ही तो गया." फिर स्वर को तेज करके कहा, "ठीक है, सैकड़ों फिरते हैं ऐसे चपड़कनातिए. विदेश क्या कोई स्वर्ग है, जहां पहुंचकर आदमी धरती के लोगों से मुंह फेर लेता है. ठीक है रहे स्वर्ग में." कहकर वे थोड़ा झिझके. फिर बोले, "वहां की दुनिया तो बिन चेहरों के लोगों की दुनिया है—यहां तो हमारे चेहरे हैं और उन चेहरों के साथ हमारी घृणाएं और प्यार हैं." वह चकित थी उन्हें क्या हो गया. इस तरह की बातें करते हुए उसने उन्हें पहली बार सुना था. वह बोली, "होगा, हमसे उसका क्या मतलब?"

"वाह मतलब क्यों नहीं? तुम्हारे साथ पढ़ा, इतने साल साथ रहा... कोई इस तरह अचानक मुंह मोड़ता है?"

विभा को लगा इस घटना ने उसके मन का दबा हुआ दर्द तो नहीं जगा दिया. पुरानी चोट पुरवइया चलते ही चसकने लगती है. पर यहां तो पंखा चल रहा है. फिर उसे अपने पर ही शर्म आई. बेकार की बात सोचने लगती है. बोली, "नहीं पहचाना तो नहीं सही, पहचान भी लेता तो हमें क्या. वह अपने घर सुखी, हम अपने घर."

"सुखी! कहां?" फिर संभलकर बोले, "यह सुख की बात नहीं... अनजान आदमी से भी मिलकर खुशी होती है. वह तो जानने वाला था. हम उससे पूछते, वह हमसे पूछता. तुम्हारे बारे में पूछने की क्या उसकी इच्छा नहीं होगी?"

"वक्त की बात है," उसके मुंह से एकाएक निकल पड़ा. उसने तत्काल जीभ काट ली.

"मैं भी तो यही कहता हूं..." वे सुस्त हो गए.

वह बीच ही में बोली, "अच्छा, हाथ मुंह धोकर चाय पी लो."

वह नाश्ता बनाने चली गई. उसने उन्हें कभी इतना भावुक और संलग्न नहीं देखा था जितना विनय को लेकर आज हो गए थे. साफ लग रहा था विनय का न पहचानना उनके लिए कितना तकलीफदेह साबित हुआ.

बाद में उन्होंने विनय का जिक्र नहीं किया, जैसे वे डरने लगे हों. एक-आध बार ऐसा अवश्य हुआ कि वे विनय पर एकाएक ऐसे उबल पड़े जैसे वह उनके सामने हों—"धोखेबाज, दुनिया में कोई इस तरह करता है कि मुंह फेरकर चल दे." विभा को लगता था जैसे वे उससे सुनाने के लिए कह रहे हों कि वह उसकी पैरवी करेगी. उसका मन हुआ पूछे कि अजनबी हो चुके आदमी को बार-बार क्यों इस तरह नमूद करने की कोशिश करते हैं. अकसर देखने में आता है कि औरतें उधड़े-अनउधड़े सभी को ऐसे छिपा लेती हैं कि देखना तो देखना,

किसी दूसरे के लिए छूना भी मुश्किल हो जाता है.

उसके बाद तो यह हालत हो गई कि जब भी वे किसी सुदूर यात्रा पर जाते तो विनय उन्हें जरूर मिल जाता. अठारह साल के वैवाहिक जीवन में विनय पहले कभी उन्हें नहीं मिला पर अब जहां भी जाते, वहां से एक अदद विनय को साथ लेकर लौटते हैं. पहले वाले से भिन्न!

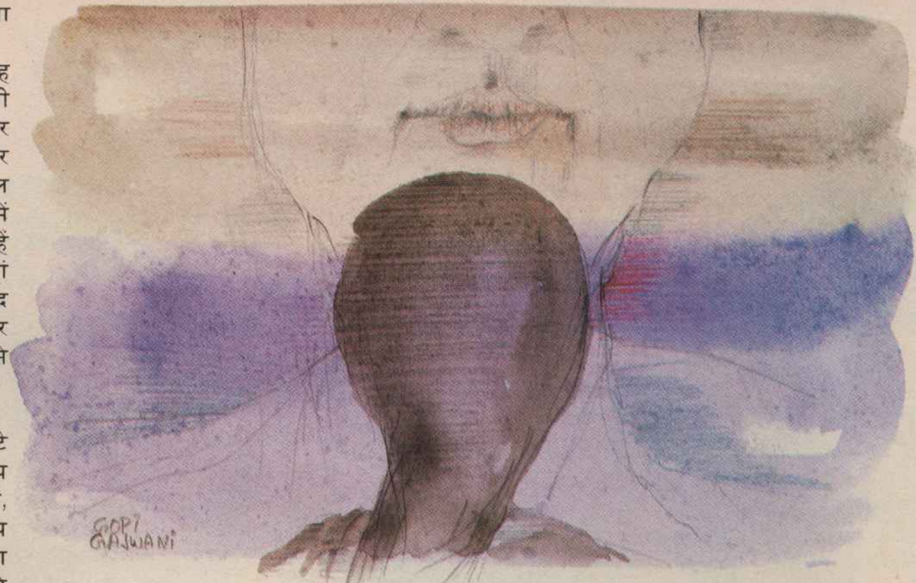

एक बार मद्रास से लौटे तो एक नया विनय साथ लाए. आते ही बोले, "मैंने कहा नहीं था विनय बन रहा था. बन नहीं रहा था तो इस बार उसने मुझे कैसे पहचान लिया? पहले तो वह मेरी तरफ टकटकी लगाकर देखता रहा, जब मैंने टकटकी लगाकर देखना शुरू किया तो हंस पड़ा. अपने आप ही बोला, पिछली बार बंबई में मैंने आपको देखा था. तब मैं जल्दी में था. गाड़ी पकड़नी थी. चाहते हुए भी बात नहीं कर पाया. माफ कर दीजिएगा. फिर वह तुम्हारी बात करने लगा, विभा जी कैसी हैं? और बच्चे? मैं बोला, आपको अकसर याद करती हैं. वह आश्चर्य भरे स्वर में बोला—मुझे! फिर कहा, अब तो मैं याद करने की चीज ही बनकर रह गया हूं. फिर अपने आप ही बोला मैं फ्लोरिडा में हूं—विश्वविद्यालय में. मेरे पूछने से पहले ही बोल पड़ा, आपके पूछने से पहले मैं ही बता दूं कि मैंने शादी नहीं की. मैंने हंसकर पूछा, क्या किसी की बेवफाई के शिकार हो गए? वह मुस्करा दिया—नहीं, मैंने खुद ही अपने से बेवफाई की—दरअसल मैं एक बीमार इंसान हूं—शादी कर भी लेता तो दूसरे की जिंदगी खराब करता. काम से काम रखता हूं. आपको क्या रोग है? दुनिया में एक-से-एक विचित्र रोग हैं. उनमें से एक मुझे भी है."

विभा ने पूछा, "उसने बताया नहीं?"

"क्या बताता—"एक सर्द-सी आह उनके मुंह से निकल गई.

"क्यों?"

"मैंने पूछा भी नहीं. सोचा, शायद तुम्हें पता हो," उनकी आवाज में एकाएक तुर्शी आ गई.

"मुझे कैसे मालूम हो सकता था."

"क्या पता, है भी या नहीं—कुछ लोगों में दूसरे की सहानुभूति बटोरने की आदत होती है. वह कह रहा था मैं साल भर के लिए भारत आया हूं—न्यूक्लीयर फीजिक्स का एक प्रोजेक्ट है. उसी के सिलसिले में आना पड़ा. बस घूमता रहता हूं—कभी यहां, कभी वहां." फिर रुककर बोले, "इसे कहते हैं शेखी बघारना. बात-बे-बात अपना महत्व जताना. लोग दूसरे का ध्यान आकर्षित करने के लिए जान तक दे देते हैं. मैंने तो पूछा नहीं था, कि तुम हिंदुस्तान क्यों आए हो. वह मुझे बताना चाहता था, देखो मैं कहां से कहां पहुंच गया और तुम...!"

उसका मन हुआ पूछे कि अजनबी हो चुके आदमी को बार-बार क्यों इस तरह नमूद करने की कोशिश करते हैं... अकसर देखने में आता है कि औरतें उधड़े-अनउधड़े सभी को ऐसे छिपा लेती हैं कि...

"तुममें क्या कमी है," विभा सहलाती-सी आवाज में बोली.

"विदेश में रहने वाले भारतीयों को भारत में रहने वालों में वही कमी नजर आती है जो ब्रितानियों को देसी लोगों में आती थी. इसीलिए वे अपनों से ही मुंह मोड़कर चल देते हैं. मुझे ऐसे लोगों की जरा भी चिंता नहीं." फिर बोले, "विनय कह रहा था कि पता नहीं विभा जी को मेरी याद है भी या नहीं. उनसे कहिएगा रज्जन बाबू का बड़ा बेटा विनय खास्तगीर तुम्हारा क्लास-फेलो—तुम्हें नमस्कार कह रहा था. आप ही बोला, कभी लखनऊ गया तो मिलूंगा. हालांकि लखनऊ में मेरा कोई काम नहीं—यूपी के लोगों ने ऐसा कुछ किया ही नहीं कि वहां काम से जाऊं. अजीब आदमी है—मान न मान मैं तेरा मेहमान. पहली बार मुंह फेर लिया था—इस बार पहुंचे पर हाथ पहुंचा रहा था. इस बार वह कुछ कमजोर नजर आ रहा था—जब कोई अपनी बीमारी छिपाता है तो जरूर कोई खतरनाक बीमारी होती है. क्या पता एड्स ही हो!"

वह चौंकी, "एड्स—ऐसा क्यों कहते हो."

"अगर ऐसी-वैसी बीमारी हुई होती तो शादी न कर लेता."

"कोई और बीमारी भी तो हो सकती है. वह तो बहुत गंदी बीमारी है. वैसे भी वह अच्छे खानदान का है. उसके पिता तो बहुत नियम-धर्म वाले व्यक्ति थे."

"मैं उन्हें थोड़े ही कुछ कह रहा हूं. विदेश में तो विवाहितों को एड्स हो जाता है—वह तो अविवाहित था. विदेशों में तो यह महामारी की तरह फैलती जा रही है—ताज्जुब नहीं किसी दिन सुनने को मिले कि प्रेसिडेंट को एड्स हो गया."

"फिर भी किसी के लिए हम ऐसी अशुभ बात मुंह से क्यों निकालें? हमारा उसने क्या बिगाड़ा."

"हमारा क्या बिगाड़ा—खूब कहा! तुम क्या जानो उसने क्या बिगाड़ा हमारा ही नहीं—पूरी कौम का. देश छोड़कर चला गया." इधर विनय को लेकर वे जिस तरह की बातें करने लगे थे वह विभा की समझ

सिर्फ़ चॉकलेट्स को ही क्यों दोषी ठहराया जाय?

ये तो ज़्यादा झाग पैदा करने वाला घटक है जो दांत की बीमारियों के द्वारा खोलता है

२००० से भी अधिक वर्षों से समय की सीमाओं को पार कर चलता चला आया है जीवन का वो विज्ञान, आयुर्वेद है जिसका नाम. आयुर्वेद विरासत है भारत देश के गौरवशाली प्राचीन काल की जब ऋषियोंने कुदरत के रहस्यों को जाना था और मानव जाति के लाभ के लिए उपयोग किए जा सकनेवाले इसके गुणों को पहचाना था.

विको वज्रदंती पेस्ट है असली आयुर्वेदिक पेस्ट. विको को है आपके मुख का पूरा ख्याल, तभी तो यह है असरदार, कारगर फिर भी पूरी तरह कुदरती. विको रखता है मसूड़ों को स्वस्थ, दांतों को मजबूत. क्योंकि विको के हर टयूब में मौजूद हैं २० शुद्ध व गुणकारी जड़ी-बूटी सत्व जो कि प्राचीन काल की आयुर्वेदिक जड़ी बूटी परम्पराओं में दांतों, मुख और मसूड़ों के लिए अच्छे माने गये है. सदियों पुरानी आयुर्वेदिक रीतियां कुदरत के उन तत्वों को अपनाती है जो मानव के लिए सबसे ज़्यादा लाभदायक होते हैं, और उन रीतियों को अपनाते हैं हम. तभी तो विको पेस्ट को बनाया जाता है जड़ी बूटियों, छालों, जड़ों फूलों से.... न कोई कृत्रिम पदार्थ, न ही खुरदुरे रगड़वाले पदार्थ या फ्लोराइड्स... बस, इसमें हैं मसूडों और दांतों की परेशानियों को दूर रखनेवाले सर्वोत्तम पदार्थ. विको का कंसेंट्रेटेड फॉर्मूला चलता है ज़्यादा और देता है सुहाना स्वाद. विको है दसियों सालों से दुनियाभर का मनपसंद. विको है शाकाहारी, इसमें नहीं हैं जानवरों से प्राप्त पदार्थ.

विको उत्पाद : कुदरती - इसीलिए बेहतर भी.

विको
लैबॉरेटरीज़

दादर, बम्बई ४०० ०१४, भारत.

Modern-93 HIN

से परे थीं. वह उन्हें देखती रह जाती थी.

अंतिम बार वे उससे बंगलूर में मिले थे. उन्होंने लौटकर बताया कि वे दोनों ही दिल्ली फ्लाइट की प्रतीक्षा कर रहे थे. दरअसल, विनय काउंटर पर कॉफी पी रहा था. उसकी नजर एकाएक उन पर पड़ गई. वह तत्काल बोला, ''कॉफी पीजिए—इस बार काफी दिन बाद मुलाकात हुई. क्या बताऊं मैं चाहकर भी लखनऊ नहीं आ पाया. आपका कैसे आना हुआ?''

''एक सेमिनार था, उसमें पर्चा पढ़ना था.''

''आप भी दिल्ली इसी फ्लाइट से जा रहे हैं—यह तो बहुत अच्छा है—रास्ते में खूब बातें होंगी''

वे बोले, ''मैं तो एकॉनॉमी क्लास में हूं.''

विनय ने तपाक से कहा, ''तो क्या हुआ इसे वापस करके एक्जीक्यूटिव क्लास का टिकट खरीद लेते हैं.''

''मैंने मना कर दिया. वह समझता था कि वह धन्ना सेठ है. मन तो हुआ कि दो-चार खरी-खोटी सुना दूं. पर तुम्हारा लिहाज कर गया.'' वे कहते जा रहे थे, ''जो लोग डॉलर कमाने लगते हैं वे दूसरी मुद्रा कमाने वालों को समझते हैं वे सब भूखे-नंगे हैं, डॉलर की झपकी दिखाकर उनसे कुछ भी कराया जा सकता है. विनय कह रहा था, पता नहीं अब वापस आना हो या न हो. घर भी एक बार ही जा पाया. विभा जी से मिलना चाहता था वह भी नहीं हो सका. फिर एक भारतीय मुहावरा मारा—पंछी और पानी की क्या प्रतीति. ये लोग बातों के बने होते हैं. जो आदमी अपने घरवालों से ही एक बार मिले वह विभा जी से क्या मिलेगा. बकता था. उसे किसी से नहीं मिलना-जुलना. वह तो विदेशी है—बल्कि विदेशियों से भी गया-गुजरा. मुंह छिपाया और चल दिया.''

विभा की नजर एकाएक अखबार की एक पुरानी कतरन पर पड़ी. उसे लगा उस पर किसी का फोटो छपा है. एकाएक उसके मुंह से निकला, अरे यह तो विनय है. उसने इबारत पढ़नी शुरू की. चेहरे का रंग बदलता गया.

विभा का मन हुआ कि पूछे कि क्या आपने बीमारी के बारे में पूछा था. फिर यह सोचकर चुप हो गई, क्या फायदा उसे तो कह ही रहे हैं—चार बात मुझे भी सुनाएंगे. अगर बीमारी का भी पता चल जाएगा तो क्या फर्क पड़ेगा. हर आदमी को अपने दुख-दर्द का हिसाब खुद ही साफ करना पड़ता है. इसमें न उधार चलता है, न पेशगी. वे बताते जा रहे थे, ''कह रहा था आप अमेरिका आइएगा. मैंने कहा मेरा अमेरिका में क्या काम. वह बोला, आप आइएगा तो काम भी निकल आएगा. यू.एस. तो ऐसा मुल्क है कि वहां हर एक के लिए काम निकल आता है. फिर बोला, विभा जी को भी लाइए. उनका भी परिवर्तन हो जाएगा. वहां पहुंचने के बाद किसी तरह की कोई तकलीफ नहीं होगी बशर्ते कि आप मेरे जीवित रहते ही आएं.'' कहकर उन्होंने विभा की ओर देखा. फिर बोले, ''मैंने तो साफ कह दिया—हम लोगों के पास इतना पैसा कहां रखा है. रुपये और डॉलर में बहुत फर्क है. विनय बोला इसीलिए तो मैं कह रहा हूं—अमेरिका एक ऐसा मुल्क है जहां पहुंचना ही मुश्किल है. एक बार पहुंच जाए तो हरेक के लिए गुंजाइश हो जाती है. हालांकि अमेरिका पर कर्ज बहुत है, पर उतने ही साधन भी हैं.''

विभा बोली, ''आपको इतनी बातें करने की क्या जरूरत थी? उसने कह दिया था तो कह दिया था. पैसा होगा तो चले ही जाएंगे. कोई कहे या न कहे. सच पूछिए तो हमें अपना देश ही भाता है.''

''मुझे दिखावा बिलकुल पसंद नहीं. जब करना नहीं तो कहना क्या! फिर एक बीमार आदमी—मैं तो उसके पास खड़ा होने में डरता हूं—उसके पास खड़ा होकर कॉफी जरूर पी रहा था पर डर लगा हुआ था कि कहीं छूत न लग जाए. इसीलिए मैं उसके साथ एक्जीक्यूटिव क्लास में नहीं बैठा. क्या मैं बैठ नहीं सकता था? दिल्ली हवाई अड्डे पर भी मुलाकात हुई थी. बैगेज का इंतजार कर रहे थे. वह पिए हुए था. लोग इसीलिए एक्जीक्यूटिव क्लास में सफर करते हैं...मरने का पूरा इंतजाम था. जब कोई इस तरह चुपचाप मरता है तो जरूर कोई ऐसी-वैसी बात होती है.''

''बात?'' विभा ने पूछा.

''हां—नहीं तो कोई अपने को क्यों मारने लगा. अच्छा हुआ शादी नहीं की. नहीं तो बच्चे भी अल्पबुद्धि पैदा होते...''

विभा एकाएक बोली, ''आप मुझे ये बातें क्यों सुनाते हैं. वह अच्छा-बुरा जैसा भी हो हमारा उससे क्या लेना-देना. किसी के लिए भला न सोचें तो बुरा क्यों सोचें. उसका और उसके बच्चों का क्या होता, हमसे क्या मतलब.''

''ठीक है, आगे से नहीं कहूंगा—सोचता था जब तक हो सकता है, अपने बीच बनाए रखें. तुम नहीं चाहती तो न सही. कल उसे कुछ हो जाए तो.''

उसने मुंह पर हाथ रख दिया, ''किसी के लिए बुरा क्यों कहते हो—हम सभी मिट्टी के ढेर हैं बिखरने के लिए जरा-सी ठसक चाहिए.''

उस दिन के बाद न विभा ने विनय का जिक्र किया और न उन्होंने. कहीं बाहर भी गए तो भी इस बारे में उन्होंने मौन ही धारण किए रखा. विभा ने भी सोच लिया विनय अमेरिका लौट गया होगा. जब मिलता था तो जिक्र कर देते थे. वैसे भी एक आदमी जो अनजान हो चुका उसमें 'जान' डालने से क्या फायदा. बस विभा को कभी-कभी एक बात का जरूर ध्यान आता था आखिर उसे क्या बीमारी थी—वह जिंदा है भी या नहीं? पता नहीं इन्होंने एड्स क्यों कहा था. नहीं, विनय को भला एड्स क्यों होने लगा. जो मुंह में आया कह दिया.

एक दिन उन्हें बंबई जाना था. वे विभा से कह गए कि उनके कपड़े लगाकर रखें. उनकी बंबई वाली फाइल भी जरूर रख दें. उन्होंने हर नगर के नाम से अलग फाइल बनाई हुई थी. अगर उस शहर में कुछ खरीदारी करते थे तो भी उसका कैशमेमो उसी फाइल में लगाते थे. सेमिनार के नोट्स बनाते थे तो उन्हें भी उसी फाइल में रखते थे. किसी खास आदमी से मिलते थे तो उसका इंदराज भी उस फाइल में होता था.

विभा को ध्यान आया, साल भर पहले जब वे बंबई से लौटे थे तभी उन्होंने विनय को बार्क में देखने की बात कही थी और जो मुंह में आया था बका था. हो सकता है इस फाइल में भी कुछ हो. वह वर्के पलटने लगी. रिंग वाली फाइलों में वर्के पलटना खास मुश्किल पैदा नहीं करता. विभा की नजर एकाएक अखबार की एक पुरानी कतरन पर पड़ी. उसे लगा उस पर किसी का फोटो छपा है. एकाएक उसके मुंह से निकला, अरे यह तो विनय है. इनकी फाइल में और विनय. उसे आश्चर्य हुआ. उसने इबारत पढ़नी शुरू की. चेहरे का रंग बदलता गया—आंखों में एक तरह धुंधलका उतर आया—लिखा था—भारतीय वैज्ञानिक विनय खास्तगी का फ्लोरिडा के अस्पताल में देहांत हो गया. वे अपनी लैब में अंत तक काम करते रहे. उनकी अंतिम इच्छा थी कि उनके शरीर को जलाया न जाए, रिसर्च के लिए किसी इंस्टीट्यूट को दे दिया जाए. उनके घरवालों को इसकी सूचना दे दी गई है...'' ■

UNITED
UNITED PRESSURE COOKER
अनेकों साईज़ में
सबकी पसन्द
हर जगह
UNITED
UNITED
UNITED
GROUP OF INDUSTRIES
माईक्रो ओवन
से 53%
अधिक जल्दी
पकाता है
यूनाईटेड®
प्रेशर कुकर एवम् प्रेशर पॅन

तख्ती

विद्यार्थी जीवन जब ए बी सी डी से नहीं तख्ती पर क ख ग घ से शुरू होता था तब कैसे-कैसे दर्दनाक और दिलचस्प अनुभवों से गुजरता था!

- **असग़र वजाहत**
- चित्र: माधवी पारेख

लोग अकसर मुझसे कहते या पूछते हैं या सिर्फ इस हकीकत की तरफ इशारा करते हैं कि मुझे बहुत-सी आवश्यक जानकारियां नहीं हैं. गणित, व्याकरण, खगोलशास्त्र, पुरातत्व जैसे बहुत से विषयों के बारे में मुझे कुछ नहीं मालूम. यही नहीं, सामान्य जानकारियां भी नहीं हैं. उदाहरण के लिए आप कहें कि मैं दस चिड़ियों, फूलों, मछलियों या पत्थरों के नाम बता दूं तो नहीं बता सकता. यदि आप पूछें कि विश्व की दूसरी प्राचीनतम सभ्यता कौन-सी थी या भूमध्यरेखा कहां से गुजरती है तो मैं मुंह खोल दूंगा. शायद यही वजह है कि कहा जाता है, मेरी शिक्षा कुछ ठीकठाक नहीं हुई. लोग उन स्कूलों और विश्वविद्यालयों के नाम पूछना चाहते हैं जहां मैं पढ़ा हूं. कुछ लोग मेरे गुरुजनों के नाम जानने की धृष्टता करते हैं. अब मैं क्या कहूं, कमीनेपन की भी हद होती है.

बहरहाल, इन सवालों से चिंतित होकर मैंने एक यात्रा शुरू की है जिसमें चाहता हूं आप मेरे साथ चलें. लेकिन कोई मजबूरी नहीं है. लेकिन आप इनकार करें तो कोई खूबरसूत-सा बहाना जरूर तलाश करें. यह मुझे पसंद है. समझ जाऊंगा कि बहाना बना रहे हैं लेकिन दिल नहीं दुखाना चाहते. आज के जमाने में यह भी बड़ी बात है. मैं बिलकुल बुरा नहीं मानूंगा. लेकिन यदि आप मेरे साथ चलेंगे तो उसमें कम-से-कम आपको कोई नुकसान न होगा. हां अगर आप मेरी धारणा के विपरीत समय को मूल्यवान समझते हों तो बात दूसरी है. अगर आप ऐसा नहीं समझते तो मेरे साथ चलें. बकौल नासिर काजमी—सब मेरे दौर की मुंहबोलती तस्वीरें हैं/ कोई देखे मेरे दीवान के किरदारों को.

कहा जाता है जब मैं सात-आठ साल का था तो मेरी पढ़ाई का सवाल उठा. इतनी देर से इसलिए कि परिवार में कई पीढ़ियों ने पढ़ने-लिखने की कोई जरूरत न महसूस की थी. दादा को तो कलम-कागज से ऐसी नफ़रत थी कि वे अपनी जमींदारी का हिसाब-किताब करने वाले मुंशियों तक को लिखते-पढ़ते देखना बर्दाशत न कर पाते थे. लेकिन दादा के दादा बहुत समय तक परिवार के आदर्श न बने रह सके. हां यह धारणा जरूर बची रही कि लोग नौकरी करने के लिए पढ़ते हैं और चूंकि हमारे पास अल्लाह का दिया सब कुछ है, हम किसी की नौकरी नहीं करेंगे तो हम क्यों पढ़ें. घर की पढ़ाई बहुत है. थोड़ी फारसी, थोड़ा हिसाब, थोड़ी अरबी आ जाए तो बहुत है. हमारे दादा के पिता जी ने अपने दोनों लड़कों को घर की पढ़ाई के बाद पहली बार स्कूल भेजा था. उस वक्त बड़े लड़के की उम्र सोलह साल और छोटे की चौदह साल थी. यह उन्नीसवीं सदी के चलचलाव का जमाना था. बड़े लड़के की स्कूली तालीम इस तरह अंजाम तक पहुंची कि उसकी किसी टीचर से कहा-सुनी हो गई. टीचर ने गाली दे दी. उसने टीचर को उठाकर पटक दिया, हाथ-पैर तोड़ दिए और घर आ गया. दादा के पिता ने इस मामले को बहुत गंभीरता से नहीं लिया. सोचा जहां बारह मुकदमे चल रहे हैं वहां तेरहवां भी चलेगा, बस. छोटे बेटे की तालीम बड़े सुखद कारणों से अंजाम तक पहुंची. यानी उनकी शादी हो गई. चौथी के बाद उन्होंने स्कूल जाना छोड़ दिया.

जिंदगी के आखिरी दौर में तो नहीं बल्कि उससे पहले ही हमारे दादाजान की समझ में यह बात आ गई थी कि स्कूली अंग्रेजी शिक्षा जरूरी है. इसकी वजह यह थी कि वे शहर के रईस होने के नाते अंग्रेज अफसरों से उनकी कोठियों, दफ्तरों, क्लबों में मिलते थे और देखते थे कि उनके दरबारों में आमतौर पर उन काले लोगों को सम्मान मिलता है जो टूटी-फूटी ही सही, गोराशाही ही सही, लेकिन अंग्रेजी बोलते हैं. पर चिड़िया खेत चुग चुकी थी. यानी दादाजान अपने पढ़ने का सुहाना समय गंवा चुके थे इसलिए उन्होंने हमारे पिता जी की पढ़ाई का पक्का ध्यान रखा. पिता जी छोटे ही थे कि उनको पढ़ाने के लिए सुबह मौलवी साहब, दोपहर के वक्त एक मास्टर अंग्रेजी पढ़ाने और शाम के वक्त एक मास्टर हिसाब पढ़ाने आने लगे. इस तरह दादाजान का इरादा था कि पिता जी की जड़ें मजबूत कर दी जाएं ताकि आगे कोई दिक्कत न हो. नतीजा यह हुआ कि अब्बा गणित से इतना डरने लगे जितना लोग अल्लाह से भी नहीं डरते. अंकगणित और बीजगणित उन्हें दो ऐसे जिन्न लगते थे जो उन्हें दबाकर बैठ गए हों और लगातार मार रहे हों. नतीजा यही निकला कि आठवीं में दो बार लुढ़क गए. दसवीं में थे कि आज़ादी मिल गई—उनको नहीं, देश को. दसवीं ही में थे कि गांधी जी की हत्या हो गई. फिर दसवीं ही में थे कि जमींदारी खत्म हो गई. और कुछ ऐसे जरूरी काम थे जो उनके दसवीं में लगातार रहने की वजह से रोके नहीं जा सकते थे जैसे उनकी शादी. इस तरह दसवीं तब समय पास की जब दो बच्चों के बाप बन चुके थे.

अब्बा ने मेरी पढ़ाई की तरफ समय से ध्यान दिया. अब चूंकि जमींदारी नहीं थी, किसी-न-किसी को नौकरी करनी थी. इसलिए पढ़ाई जरूरी हो गई थी. मेरी जड़ें मजबूत करने का काम उतने बड़े पैमाने पर नहीं हुआ जितना अब्बा का हुआ था. मुझे पढ़ाने एक मास्टर आते थे. उनका नाम शराफत हुसैन था. प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे. पान के रसिया. जब पढ़ाते तो पान मुंह में इस कदर भरा रहता था कि मुंह से आवाज़ के बजाय पान की छीटें निकलती थीं. पढ़ाई के दौरान कई बार वे मुझे घर के अंदर पान लाने भेजते थे, "जाओ पान लगवा लाओ." मैं खुशी-खुशी उठकर भागने वाला होता तो कहते, "इससे पहले जो पान लाए थे वो किससे लगवाया था?"

"अम्मा से"

"अबकी बड़ी बिटिया से लगवाना." बाकी डिटेल मुझे याद थीं. माट साब के पान में कत्था कम, चूना ज्यादा, डली कम, किमाम ज्यादा...

माट साहब अच्छे आदमी थे. मुझ पर विश्वास करते थे. एक बार पढ़ाने के बाद पूछते थे, "क्यों समझ गए?" मैं कहता था, "हां समझ गया." और वे विश्वास कर लेते थे. कहते थे, "लड़का जेहीन है, जल्दी समझ जाता है, तरक्की करेगा." मैं यह जानता था कि यह पूछने के बाद कि समझ गए, वे और कुछ नहीं पूछेंगे इसलिए 'हां' कर दिया करता था. मुझे लगता था जैसे 'हां समझ गया' कहकर मैंने अपनी जिंदगी को आसान बना लिया है वैसे ही दूसरे लोग क्यों नहीं

करते. मुझे बचपन में कुंए से पानी भरकर लाने वाले भिश्ती से बड़ी हमदर्दी थी. मैं यह चाहता कि मेरे काम की तरह उसका काम भी हल्का हो जाए. लड़कपन में कुंए के पास जाने की मनाही थी. एक दिन चला गया था. कुंआ घर के बाहंर कोने में था. वह मुख्य घर से करीब हजार डेढ़ हजार फीट दूर था. वहां भिश्ती करीमउद्दी पानी भर रहा था. मैंने उससे गिड़गिड़ाकर दरखास्त की थी कि क्या एक बाल्टी मैं भी खींच सकता हूं. उसने मुझे ऐसा करने दिया था और तब से मैं सोचा करता था कि अल्लाह मियां तू करीमउद्दी का काम हल्का क्यों नहीं कर देता. बहरहाल, बात हो रही थी माट साब की. तो माट साहब मुझ पर विश्वास करते थे. मैं माट साब पर विश्वास करता था. अब्बा जब भी पूछते थे कि माट साब जो पढ़ाते हैं वो समझ में आता है तो मैं कहता था कि हां आता है जबकि हकीकत यह थी कि जब माट साब पढ़ाते थे तो मैं करीमउद्दी के बारे में सोचा करता था. यह सोचा करता था कि फूलों को अगर बहुत जोर से मसला जाए तो रंग निकाला जा सकता है. और उस रंग से बड़ी अच्छी तस्वीर बन सकती है. या सोचा करता था कि अबकी कमल तोड़ने के लिए किस तालाब में जाना चाहिए. या तैरना सीख लूं तो कितना अच्छा हो. वगैरह-वगैरह.

लड़कपन में माट साब के अलावा कभी-कभी जब जी चाहता था तो अब्बा भी पढ़ाते थे. वह वक्त मेरे ऊपर बहुत ही सख्त गुजरता था जब अब्बा कहते थे कि अपनी किताबें-कापियां लेकर आओ. अब्बा हिसाब नहीं पढ़ाते थे. हालांकि वे हाइस्कूल थे, मैं पांचवीं में पढ़ता था. अब्बा का ख्याल था कि अंग्रेजी अच्छी होनी चाहिए. अब्बा साल-छह महीने में जबरदस्ती यह ऐलान करते थे कि वे मुझे पढ़ाने जा रहे हैं तो उसका असर घर में कुछ उसी तरह होता था जैसे हवाई हमले के सूचक सायरन का असर किसी सैनिक अड्डे पर होता है. मतलब अम्मा जानमाज़ बिछाकर बैठ जाती थी और दुआ मांगती थी कि आज की पढ़ाई के परिणामस्वरूप हिंसा भयंकर न हो. घर में खाना पकाने वाली औरत मेरी पसंद का खाना चढ़ा देती थी कि पिटने के बाद मुझे वह खिलाया जा सके. एक नौकर अर्रे की पतली छड़ी ले आता था क्योंकि अब्बा छड़ी सामने रखकर ही पढ़ाते थे. मेरे साथ गेंद खेलने वाले नौकरों के लड़के भाग जाते थे. कोई जोर-जोर से बात नहीं करता था. बहुत साफ करके एक लालटेन पास रख दी जाती थी कि अंधेरा होने पर फौरन जलाई जा सके. एक नौकरानी हल्दी पीसने लगती थी कि पढ़ाई के बाद मेरी चोट पर लगाई जाएगी...जनाबेवाला हो सकता है कि यह विवरण देने में मैं कुछ अतिशयोक्ति से काम ले रहा हूं लेकिन यह सच है कि अब्बा ने

जब मैं सात-आठ साल का था तब मेरी पढ़ाई का सवाल उठा... कई पीढ़ियों ने पढ़ने-लिखने की जरूरत ही नहीं महसूस की थी. पर अब जमींदारी चली गई तो किसी-न-किसी को नौकरी...

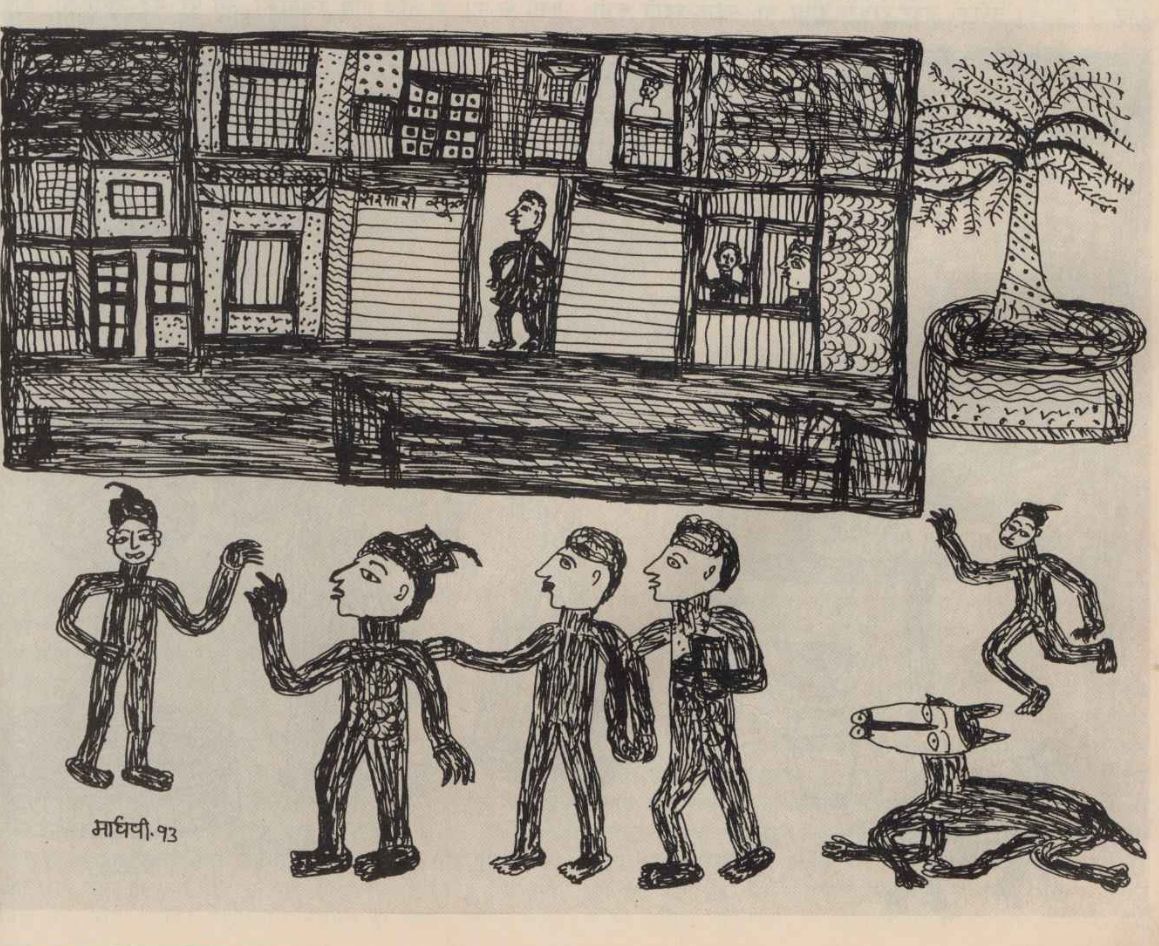

मुझे किस तरह पढ़ाया था आज तक याद है. क्या पढ़ाया था वह भूल चुका हूं.

जब पांचवीं पास करने के बाद मैं छठी में आया तो पुराने माट साब को निकाल दिया गया और उनकी जगह एक नए माट साब, जो सरकारी स्कूल में अध्यापक भी थे, घर पढ़ाने आने लगे. उनका वेतन उस जमाने के हिसाब से बहुत ही ज्यादा था जिसका उलाहना मुझे दिया जाता था कि तुम्हारी पढ़ाई पर इतना पैसा खर्च किया जा रहा है, तुम ठीक से पढ़ा करो. नए माट साब का नाम शुक्ला माट साब था लेकिन लड़के इन्हें इनके पीछे बग्गड़ माट साब कहा करते थे. माफ कीजिएगा मैं अपने गुरु का नाम बिगाड़कर उसका अपमान नहीं कर रहा हूं. न तो मैंने उन्हें यह नाम दिया था और न मैं इसे अच्छा समझता था. मैं तो केवल बताने के लिए बता रहा हूं. पाप उन पर पड़ेगा या पड़ा होगा जिन्होंने यह नाम रखा था. तो साहब, बग्गड़ माट साब की उम्र चालीस-पैंतालीस के बीच रही होगी. कद औसत था. जिस्म गठीला था. आंखें छोटी और अंदर को धंसी हुई थीं. होंठ पतले थे. क्लीन शेव रहते थे. गालों के ऊपर वाली हड्डियां कुछ अधिक उभरी हुई थीं. माथा छोटा था. सिर के बाल बड़े अजीबोगरीब थे. यानी बिलकुल खड़े रहते थे. काले और बेहद मजबूत थे. रोज ही उनसे सरसों के असली तेल की सुगंध आती थी. उनकी गरदन छोटी थी. शायद उनके बालों के कारण ही लोग उन्हें बग्गड़ कहते थे. बहरहाल, खुदा जाने क्या वजह थी.

जैसा कि ऊपर बताया गया, बग्गड़ माट साब के बाल बहुत खास थे. उन्हें अपने बालों पर गर्व था. अकसर उसका प्रदर्शन भी करते रहते थे जिसका तरीका बड़ा रोचक होता था. पढ़ाते-पढ़ाते कभी बालों की चर्चा छिड़ जाती तो पूरे एक घंटे का भाषण और प्रैक्टिकल हमेशा तैयार रहता था. विषय की थ्योरी में मेरी अधिक रुचि नहीं थी. प्रैक्टिकल में मजा आता था यानी बग्गड़ मास्टर अपना सिर झुका लेते थे और मुझसे कहते थे कि मैं उनके बाल पूरी ताकत से खींचूं. कभी-कभी मैं इतनी जोर से उनके बाल खींचता था कि मेरा चेहरा लाल हो जाया करता था लेकिन बग्गड़ माट साब का एक बाल भी न टूटता था. वे मुस्कराते रहते थे. उसका रहस्य छिपा था थ्योरी में. बग्गड़ माट साब कहते थे कि वे साबुन से नहीं नहाते, सिर में हमेशा शुद्ध—अपने सामने पिराया—सरसों का तेल लगाते हैं. तेल रोज सुबह लगाते हैं. कंघा कभी नहीं करते आदि-आदि. बग्गड़ माट साब रोज शाम पांच बजे आते थे. घर के बाहर अहाते में कच्ची कोठरी को लीप-पोत कर 'स्टडी' बनाया गया था. उसमें लकड़ी की मेज-कुर्सियां और एक अच्छा-सा मिट्टी के तेल का लैंप रखा रहता था. बग्गड़ माट साब रोज एक घंटे के लिए आते थे. इतवार छुट्टी होती थी. कभी-कभी उनसे नागा भी हो जाता था. वह सबसे सुहावनी शाम होती थी.

बग्गड़ माट साब में और चाहे जितने दोष रहे हों वे हिंसक नहीं थे, जबकि स्कूल के दूसरे अध्यापक जैसे त्रिपाठी माट साब, खरे माट साब, संस्कृत के पंडित जी, आर्ट के माट साब वगैरह खाल उधेड़ने के लिए मशहूर थे. लेकिन इन सबके हिंसक होने के अलग-अलग कारण हुआ करते थे और हिंसा व्यक्त करने के तरीके भी जुदा-जुदा थे. जैसे किसी को छड़ी चलाने का अच्छा अभ्यास था. कोई कुर्सी के पाए के नीचे हाथ रखवाकर उस पर बैठ जाता था. कोई

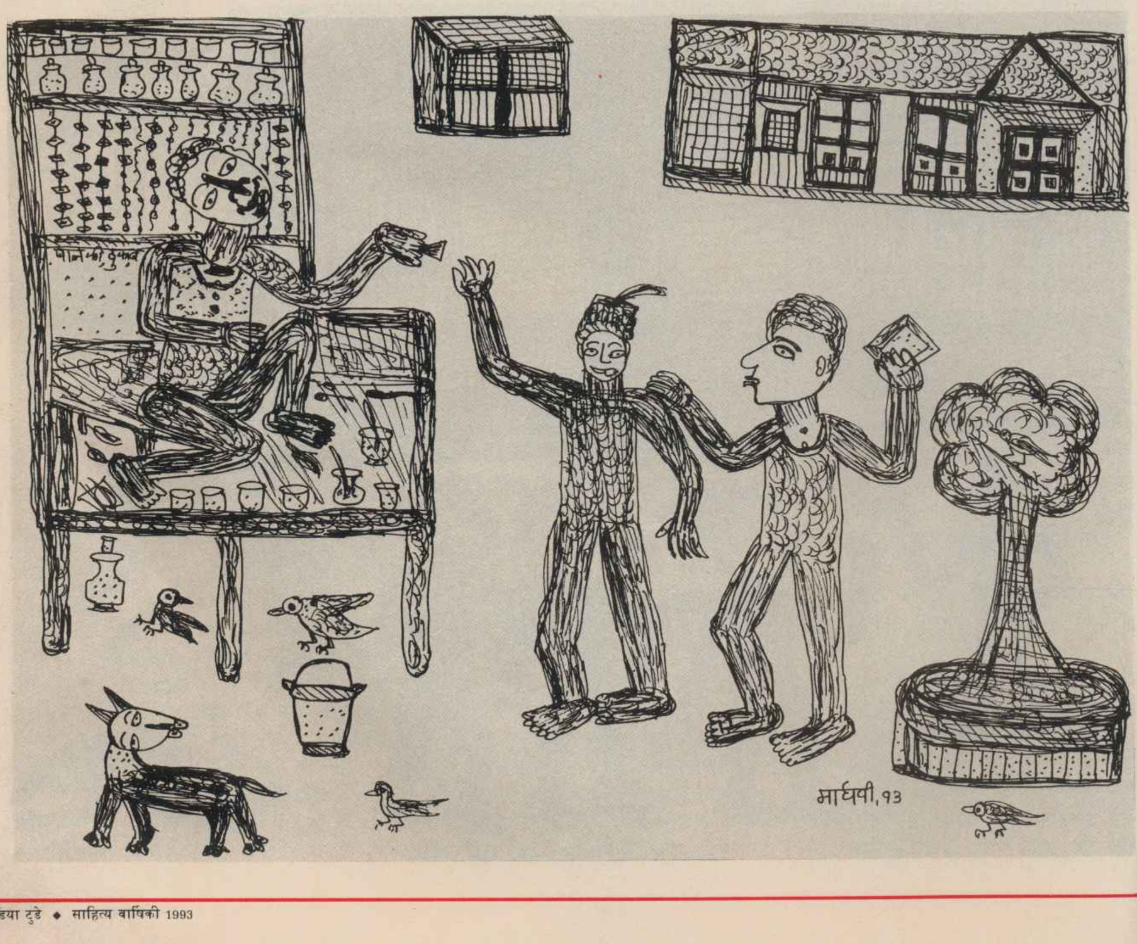

तमाचे लगाने और कान खींचने में निपुण था. कोई मुर्गा बनाकर ऊपर बोझ रखवा दिया करता था. कोई उंगलियों के बीच में पेंसिल रखकर उंगलियों को दबा कर असह्य पीड़ा पैदा करने का हुनर जानता था. बहरहाल, एक ऐसा बाग था जिसमें तरह-तरह के फूल खिले थे. हां, त्रिपाठी माट साब का तरीका बड़ा मौलिक और रोचक था. वे कुर्सी पर बैठकर लड़के का सिर अपने दोनों घुटनों के बीच दबा लेते थे और उसकी पीठ पर अपने दोनों हाथों से दोहत्तड़ मारते थे. यह करते समय वे 'बोतल-बोतल' कहा करते थे. पता नहीं बोतल क्यों कहते थे. लड़कों ने इस सज़ा का नाम 'बोतल बनाया' रखा था.

एक दिन का किस्सा है, त्रिपाठी माट साहब ने बैजू हलवाई के लड़के को बोतल बनाने के लिए उसका सिर घुटने में दबाया और दोहत्तड़ मारा. पता नहीं लड़के को चोट बहुत ज्यादा लगी या वह तड़पा ज्यादा या त्रिपाठी माट साहब ने उसे ठीक से पकड़ नहीं रखा था, वह छूट गया. उठकर भागा. माट साब उसके पीछे दौड़े. वह खिड़की से बाहर कूद गया. माट साब भी कूद गए. वह भागकर स्कूल के गेट से बाहर निकल गया. माट साहब भी निकल गए. उन्हीं के पीछे पूरी क्लास 'पकड़ो-पकड़ो' का शोर मचाती निकल गई. भागदौड़ में माट साहब की धोती आधी खुल गई और उनकी चोटी भी खुल गई. पर वे सड़क पर उसका पीछा करते रहे. स्कूल के सामने तहसील थी. उसके बराबर कुछ हलवाइयों की दुकानें थीं. बैजू हलवाई की दुकान और उसके पीछे घर था. लड़का दुकान में घुसा और घर के अंदर चला गया. पीछे-पीछे माट साहब पहुंचे. माट साब कहने लगे, "निकालो ससुरऊ को बाहर...अब तो जब तक हम दिल भर के मार न लेब, हमें खाया-पिया हराम है."

"पर बात का भई माट साहिब?" बैजू ने पूछा.

"हमार अपमान किहिस ही... और का बात है."

बैजू समझ गया. उसकी पत्नी भी समझ गई. लोग भी समझ गए. तहसील के सामने वकीलों के बस्तों पर बैठे मुंशी भी उठकर आ गए. थोड़ी ही देर में मजमा लग गया. माट साब जिद ठाने थे कि लड़के को बाहर निकालकर उन्हें सौंप दिया जाए. बैजू बहाने बना रहा था. अंत में उसने कहा कि लड़के ने घर के अंदर से जंजीर लगा ली है और खोल नहीं रहा है. यह जानकर त्रिपाठी माट साहब और गरम हो गए. इस नाजुक मौके पर मुंशी अब्दुल वहीद काम आए, जो त्रिपाठी के साथ उठते-बैठते थे. मुंशी जी ने कहा, "ठीक है त्रिपाठी जी लड़का तुम्हें दे दिया जाएगा. जितना मारना चाहो मार लेना पर यह तमाशा तो न करो. तुम अध्यापक हो. यहां इस तरह भीड़ तो न लगाओ." फिर उन्होंने सब लड़कों को डांटकर भगा दिया. और बैजू से कहा, "माट साब के हाथ-मुंह धोने को पानी दे." इशारा काफी था. बैजू ने एक बड़ा लोटा ठंडा पानी दिया. माट साब ने हाथ-मुंह धोया. फिर बैठ गए. बैजू ने करीब डेढ़ पाव ताजा बर्फी सामने रख दी. एक लोटा पानी और रख दिया. त्रिपाठी जी का गुस्सा कुछ तो पानी ने ठंडा कर दिया था. कुछ बर्फी ने कर दिया.

बैजू हलवाई ने कहा, "आप चिंता न करो. साला जाएगा कहां. समझा-बुझा के आपके पास ले आएंगे. दंड तो ओका मिलबे न चाही." उसी वक्त स्कूल का चपरासी आया और कहा कि त्रिपाठी माट साहब को हेड मास्टर साहब याद करते हैं.

कुछ दिनों बाद यह पूरा किस्सा एक बड़े रोचक मोड़ पर आकर धीरे-धीरे खत्म हो गया. बैजू हलवाई के लड़के को एम.ए. की डिग्री मिल गई. यानी उसका शिक्षाकाल समाप्त हो गया. त्रिपाठी माट साब महीने में दो-तीन बार स्कूल आते वक्त जब जी चाहता था बैजू हलवाई की दुकान की तरफ मुड़ जाते थे, उन्हें देखते ही बैजू का लड़का घर के अंदर चला जाता था. बैजू से माट साब पूछते थे, "कहां गवा ससुरा?" बैजू बहाना बना देता था. माट साहब भी समझते थे कि टाल रहा है. तब बैजू उन्हें एक दोना जलेबी या बेसन के लड्डू या कलाकंद पकड़ा देता था. माट साब बेंच पर बैठकर खाते और पानी पीते थे. बैजू और उनके बीच कुछ गहरे आध्यात्मिक विषयों पर बातचीत होती थी. धीरे-धीरे सब खत्म हो गया.

छह महीने में जबरदस्ती अब्बा यह एलान करते कि मुझे पढ़ाने जा रहे हैं तो उसका असर घर में उसी तरह होता जैसे हवाई हमले की सूचक सायरन का सैनिक अड्डे पर होता है

संस्कृत सर छड़ी की प्रयोग करते थे. उनकी कोशिश यह होती थी कि जल्दी से जल्दी कितने लड़कों को गलत साबित करके सज़ा दे दी जाए. आते ही एक सिरे से राम के रूप पूछना शुरू कर देते थे. हमारी समझ में यह बिलकुल नहीं आता था कि यदि हम रामः, रामहु, रामहः वगैरह-वगैरह सीख भी लेंगे तो क्या होगा. कुछ दिनों बाद विश्वास हो गया था कि कभी न सीख सकेंगे. और कुछ दिनों बाद इस नतीजे पर पहुंचे थे कि व्याकरण पैदा ही इसलिए हुई है कि हमें पीटने के अवसर मिलते रहें.

अगर मैं सभी अध्यापकों के सज़ा देने के तरीकों का पूरा विवरण दूं तो बहुत से पन्ने काले हो जाएंगे. आप ऊब जाएंगे. लगेगा मैं स्कूल का नहीं बल्कि पुलिस थाने का विवरण दे रहा हूं. इसलिए मुख्तसिर लिखे को बहुत जानो.

हमारे स्कूल का नाम गवर्नमेंट नार्मल स्कूल था. नाम शायद स्कूल खोले जाने के बाद रखा गया था क्योंकि वहां हर चीज 'एबनार्मल' थी. लेकिन शहर के अन्य स्कूलों की तुलना में यह बहुत आदर्श स्कूल माना जाता था क्योंकि यहां कमरे, कुर्सियां, ब्लैकबोर्ड आदि थे. अध्यापक भी दूसरे स्कूलों की तुलना में पढ़े-लिखे तथा प्रशिक्षित थे. हम अकसर गर्व भी किया करते थे कि हम शहर के सबसे अच्छे स्कूल में पढ़ते हैं. बग्गड़ माट साब गर्व करते थे कि वे सरकारी नौकर हैं. रिटायर होने के बाद उन्हें बाकायदा पेंशन मिलेगी.

मेरा विषय चूंकि गुरुजनों पर केंद्रित है इसलिए लौटकर फिर बग्गड़ माट साब पर आता हूं जिनका प्रभाव आज तक मुझ पर है. यानी उन्होंने मुझे जो सिखाया या नहीं सिखाया, जो बनाया या बिगाड़ा वह आज तक मेरे अंदर झलकता है. मैं उनका आभारी हूं. बग्गड़ माट साब अनौपचारिक शिक्षा के महत्व को उस जमाने में भी बहुत गहराई से समझते थे. यही कारण था कि अकसर गणित पढ़ाते-पढ़ाते वे अपनी घरेलू समस्याओं तक पहुंच जाते थे. उनकी एक समस्या, छोटी-सी उलझन यह थी कि उन्हें दूध बाजार में पीना पड़ता था. कारण यह था कि उनके बच्चे अधिक थे. घर में यदि दूध मंगाते तो सभी को थोड़ा-थोड़ा देना पड़ता. और इस तरह बग्गड़ माट साब के हिस्से में छटांक भर ही आता. यह सब सोच-समझकर वे बाजार में दूध पीते थे. किसी हलवाई की दुकान के सामने खड़े होकर डेढ़ पाव गरमागरम दूध पीने के बाद ही वे घर लौटते थे. लेकिन इसमें एक दिक्कत थी. हलवाई की दुकान पर दूध पीते उन्हें यदि कोई देख लेता था तो बग्गड़ माट साब को बड़ी शर्म आती थी. फिर उसे आमंत्रित करना पड़ता था. फिर शहर में खूब चर्चा होती थी कि बग्गड़ माट साहब रात में ट्यूशन पढ़ाने के बाद जब लौटते हैं तो हलवाई के यहां खड़े होकर दूध पीते हैं. यह बात उड़ते-उड़ते घर भी पहुंच जाती थी जिससे बग्गड़ माट साब की उनकी पत्नी से लड़ाई तक हो जाया करती थी तथा इस लड़ाई में लड़के, जिनमें जवान लड़के से लेकर दो साल की उम्र तक के शामिल थे, अम्मा का पक्ष

लेते थे.

बग्गड़ माट साब बी.ए.-बी.टी. थे. पता नहीं उनके मन में क्या आई कि हिंदी में प्राइवेट एम.ए. करने के लिए फॉर्म भर दिया. वे स्कूल में लड़कों से तथा घर में मुझसे कहते थे कि यह हम लोगों के लिए गर्व की बात होगी कि हमारे अध्यापक एम.ए. पास हैं. कुछ दिनों के बाद यह होने लगा कि बग्गड़ माट साब अपने साथ एक मोटी-सी किताब लाने लगे. जब पढ़ाने बैठते तो कहीं-न-कहीं से अपनी एम.ए. की पढ़ाई का जिक्र छेड़ देते और फिर एक मोटी-सी पुस्तक निकालकर जोर-जोर से पढ़ने लगते. मेरी समझ में वह बिलकुल न आती थी. लेकिन खुश होता था कि चलो मैं खुद पढ़ाई से बच रहा हूं. एक पुस्तक का नाम अभी तक याद है जो बग्गड़ माट साब लाया करते थे—'पद्मावत'. वे जो पंक्तियां पढ़ते थे उसकी व्याख्या भी करते जाते थे. जब तक उन्होंने एम.ए. पास नहीं कर लिया तब तक उनकी पढ़ाई और मेरी पढ़ाई साथ-साथ होती थी. इसका मतलब यह नहीं कि वे एक घंटे के बजाय दो घंटे बैठते थे. एक दिन उन्होंने बताया कि वे एम.ए. पास हो गए हैं. डिवीजन पूछने पर बोले, "मैंने डिवीजन के लिए एम.ए. थोड़ी ही किया है. मेरा ध्येय है कि कभी जब मैं प्रिंसिपल बनूं तब तख्ती पर मेरे नाम के साथ जो डिग्रियां हों उनमें बी.ए.-बी.टी., एम.ए. होना चाहिए." इस तरह वे अपने मकसद में कामयाब हो गए थे. स्कूल में अन्य अध्यापक कहते थे कि बग्गड़ माट साब की थर्ड डिवीजन आई है.

बग्गड़ माट साब में और चाहे जितने दोष रहे हों वे हिंसक नहीं थे, जबकि स्कूल के दूसरे अध्यापकों के हिंसक होने और हिंसा व्यक्त करने के तरीके भी जुदा-जुदा थे

बग्गड़ माट साब ने मुझे कक्षा छह से लेकर दस तक पढ़ाया था. नवीं तक मैं बराबर पास होता रहा. इसमें उनकी पढ़ाई का योगदान था या मेरी बुद्धि का चमत्कार, नहीं कह सकता. लेकिन नवीं तक सब ठीक-ठीक चलता रहा. दसवीं में जब पहुंचा तो बग्गड़ माट साब ने यह घोषणा कर दी कि मैं दूसरे सभी विषयों में पास हो जाऊंगा लेकिन वे गणित में पास होने की गारंटी नहीं लेते. अब्बा को जब यह पता चला तो उन्होंने इसे सहज ही लिया. वे जानते थे कि मैं गणित में बहुत कमजोर हूं. मैंने यह लाइन ले ली थी कि गणित की जो कमजोरी मुझे 'विरसे' में मिली है उसके जिम्मेदार अब्बा हैं. मतलब यह कि बग्गड़ माट साब की तरफ से, मेरी तरफ से, अब्बा की तरफ से यह तैयारी पूरी थी कि यदि मैं गणित में फेल हो गया तो अचंभा किसी को नहीं होगा.

गणित से मेरी कभी नहीं पटी. गणित ने अपने कृपा के द्वार मेरे लिए सदा बंद रखे हैं. और इसका आरोप बिलावजह मेरे ऊपर लगाया जाता था. सब, सबसे ज्यादा अब्बा कहा करते थे कि मैं 'कूड़मग्ज' हूं. मैं इस शब्द का मतलब यह समझता था कि मेरे दिमाग में कूड़ा भरा हुआ है. गणित पढ़ते समय यह संदेह विश्वास में बदल जाता था. मैं अपने गणित न सीख पाने का रहस्य समझ चुका था. लगता था कि अब प्रयास करना भी बेकार है. जब दिमाग में साला कूड़ा भरा हुआ है तो हम क्या कर सकते हैं. फिर खुशी भी होती थी कि चलो इसकी जिम्मेदारी हम पर नहीं आती क्योंकि कोई अपने आप तो अपने दिमाग में कूड़ा नहीं भर सकता. अकल कम है वाली धारणा मेरे अंदर बहुत गहराई में जाकर बैठ गई थी.

जिस दिन मेरे गणित का पेपर था उस दिन अब्बा ने कहा कि वे नमाज पढ़ेंगे. मैंने कहा मैं भी पढूंगा. तब अब्बा ने कहा, नहीं तुम गणित पढ़ो. वे चाहते थे कि काम बंट जाए. बहरहाल, दोनों तरफ से तैयारियां पूरी थी. मैं सुबह साढ़े छह बजे शहीदों वाली मुद्रा में घर से निकला. इतना ज्यादा पढ़ लिया था कि कुछ भी याद न था. सेंटर दूसरी जगह था. वहां गया. बरामदे में सीट लगी थी. पीछे की सीट पर एक दादा किस्म का लड़का बैठा था. उसने इम्तिहान शुरू होने से पहले मुझसे कहा कि ठीक एक घंटे के बाद मैं पेशाब करने के लिए जाऊं और पेशाबखाने की खिड़की के पीछे नकल कराने आए लोगों में से कोई करीम मुझे हल किया पर्चा दे देगा. मैंने कहा पर मैं करीम को पहचानूंगा कैसे...? उसने कहा तुम आवाज देना, करीम. वह रोशनदान से पर्चा दे देगा. कहना, सल्लू दादा ने भेजा है. पर्चा ले आना.

खैर साहब घंटा बजा. पर्चा बांटा गया. देखा तो मामला पूरा गोल यानी कोई सवाल नहीं आता था. सल्लू दादा ने पर्चा बनाने वाले की मां-बहन को याद किया और पंद्रह मिनट बाद पर्चा जेब में ठूंसकर पेशाबखाने की तरफ दौड़े. उन्होंने इसकी इजाजत भी नहीं ली, जो जरूरी थी. बहरहाल, उनके हाव-भाव से सब समझ चुके थे कि वे दादा हैं और कुछ भी कर सकते हैं. इसलिए बेचारे सूखे मरियल अध्यापक उन्हें बड़ी से बड़ी सीमा तक बर्दाश्त करने के लिए तैयार थे. वे पर्चा ले आए और कापी पर इस तरह झुककर लिखने लगे जैसे सारी जान उसी में लगा देंगे. मैंने भी यही किया. जब पूरा एक घंटा हो गया तो उन्होंने मुझसे कहा कि मैं जाऊं. मैं बाकायदा इजाजत लेकर गया तो मेरे पीछे-पीछे एक अध्यापक भी गए. और नतीजे में काम नहीं हो पाया. सल्लू दादा से मैंने बता दिया कि ऐसा हुआ. उन्होंने चुनिंदा गालियों का पिटारा खोल दिया. उठे और पेशाबखाने की तरफ बढ़ गए. अध्यापक उनके पास तक आया. कुछ बात हुई और फिर लौट गया. मतलब सल्लू दादा की विजय. वे आए. नजरों में विजय का हर्षोल्लास था, बिलकुल नेपोलियन की तरह. इसके बाद उन्होंने काम शुरू कर दिया. करीब एक घंटे इंतजार के बाद फिर मेरी बारी आई. जिंदगी में पहली बार यह पवित्र काम कर रहा था. हाथ कांप रहे थे. होंठ सूख रहे थे. लिखा कुछ था, दिखाई कुछ दे रहा था. और एक ही घंटा रह गया था. निगरानी बढ़ गई थी. पकड़े जाने पर तीन साल के लिए निकाले जाने का डर था. बहरहाल, तनाव इतना था कि कह नहीं सकता. पर मरता क्या न करता.

गर्मियों की छुट्टियों के सुखद दिनों में एक तनावपूर्ण सप्ताह आया जब बताया गया कि 'रिजल्ट' आने वाला है. साइकिलों पर बैठकर लड़के स्टेशन जाते थे, जहां सबसे पहले अखबार पहुंचता था. एक दिन गए, नहीं आया. बताया गया दो दिन बाद आएगा. फिर गए. नहीं आया. फिर एक दिन आया. खुद देखने की हिम्मत न थी. किसी ने बताया, साले, तुम पास हो गए हो. अपनी खुशी का हाल मैं क्या बताऊं. लेकिन श्रेय सल्लू दादा को जाता है.

हाइस्कूल करने से पहले ही मेरे भविष्य के बारे में बड़ी-बड़ी योजनाएं बननी शुरू हो गई थीं. योजनाएं बनाने वालों के कई गुट हो गए थे. अब्बा मुझे एयरफोर्स में भेजना चाहते थे. हाइस्कूल के बाद ही कोई ट्रेनिंग होती थी जो मुझे करनी थी. अम्मा इसकी सख्त विरोधी थी. उसका मानना था कि मुझे डॉक्टर बनना चाहिए. अब्बा मान गए कि चलो ठीक है, मैं डॉक्टर बन जाऊं. एक छोटा-सा गुट यह भी कहता था कि कृषि विज्ञान में कुछ करना चाहिए ताकि घर की खेती-बाड़ी संभाल सकूं. तीसरे गुट की राय यह थी कि वकालत पढ़ लूं क्योंकि हम लोगों के बहुत से मुकदमे चला करते थे. बहरहाल, जितने मुंह उतनी बातें. आखिरकार राय यह बनी कि मुझे डॉक्टर ही बनना चाहिए और घर पर रहकर प्रैक्टिस करनी चाहिए. इस तरह मैं घर की खेती भी देख सकूंगा, मुकदमेबाजी भी कर सकूंगा वगैरह-वगैरह. मजेदार बात यह है कि मुझसे कभी कोई नहीं पूछता था कि तुम क्या

बनना चाहते हो. मुझे मालूम था कि अगर मुझसे पूछा जाता और मैं अपनी मर्जी का पेशा बता भी देता तो मुझे वह न बनने दिया जाता. मैं दरअसल आर्टिस्ट बनना चाहता था—कलाकार, पेंटर. लेकिन चित्रकारों या कहें हर तरह के कलाकर्मियों के बारे में अब्बा की राय बहुत ज्यादा खराब थी. वे लेखकों, शायरों, चित्रकारों आदि को बहुत ही घटिया और निम्न कोटि के लोग मानते थे—ऐसे लोग जो अनैतिक होते हैं, भ्रष्ट होते हैं, शराब पीते हैं, कई-कई औरतों से संबंध रखते हैं, खुदा को नहीं मानते वगैरह-वगैरह. मतलब अगर मैं मुंह से यह बात निकाल भी देता तो डांट पड़ती. अब मैं आपको लगे हाथों एक मजेदार बात बता दूं. स्कूल में मुझे केवल कक्षा आठ तक आर्ट पढ़ाई गई थी. लेकिन मैं आगे भी पढ़ना चाहता था. पर थी ही नहीं. तब मैं चाहता था कि रंग का एक डिब्बा खरीद लूं. लेकिन यह भी जानता था कि रंग का डिब्बा इतना बड़ा अपराध होगा कि उसकी माफी न मिलेगी क्योंकि मुझे पेंसिल से तस्वीरें बनाते देखकर ही अब्बा को बेहद गुस्सा आ जाता था. करीब-करीब मारते-मारते छोड़ते थे. शायद यही वजह है कि आज तक सफेद कागज और रंग मेरी कमजोरी हैं. सफेद कागज मुझे ऐसी अद्वितीय सुंदरी जैसा लगता है जिसका अलौकिक सौंदर्य विवश कर देता है. और कलम या रंग देखकर मेरी पहली तीव्र इच्छा उसे ले लेने की ही होती है. मैंने कागज़ की जितनी चोरी की है उतना शायद कुछ और नहीं चुराया. कागज़ से मेरा प्रेम बढ़ती हुई उम्र के साथ बढ़ता ही गया. करीब दस साल पहले अमेरिका में एक धनाढ्य महिला ने मुझसे पूछा कि मैं न्यूयॉर्क में क्या देखना या करना चाहता हूं. वह महिला मेरी मदद या खातिर वगैरह करना चाहती थी. वह समझ रही थी कि कम पैसा और कम साधन होने के कारण जो कुछ मैं अपने आप देख या खरीद नहीं सकता, उसमें वह मेरी मदद करेगी. मैंने उसे बताया कि मैं न्यूयॉर्क में कागज, कलम, रंग आदि मतलब स्टेशनरी की दुकानें देखना चाहता हूं. वह प्रसन्न हो गई और मुझे कई दुकानें दिखाईं.

देखिए बात कहां से कहां जा पहुंची. इसी तरह बग्गड़ माट साब भी बात को कहीं से कहीं पहुंचाकर कहीं से कहीं ले आते थे. हाइस्कूल में मेरे पास होने के बाद बग्गड़ माट साब मुझसे बिछुड़ गए. उन्होंने इच्छा व्यक्त की थी कि विदाई 'समारोह' में उन्हें एक घड़ी उपहारस्वरूप दी जाए जिस पर खुदा हो कि क्यों, कब, कैसे, कहां, किसने दी है. मैंने उनकी यह इच्छा अब्बा के सामने रख दी थी. उन्होंने कहा था घड़ी बहुत महंगी आती है. बग्गड़ माट साब को कुछ दिया गया था.

विश्वविद्यालय में जब दाखिल हुआ तो डॉक्टर बनने की योजना के अंतर्गत साइंस के विषय ही दिलाए गए. हॉस्टल में रहने की जगह मिली. पहली बार आज़ादी मिली. हाथ में पैसा आया. डर खत्म हो गया. जल्दी ही 'हाबीज़ वर्क्सशाप' में पेंटिंग सीखने का कोर्स ज्वाइन कर लिया. यहां कलीम साहब नामक अध्यापक थे. काफी दोस्ताना माहौल में काम करते थे. हम तीन लड़कों से, जो आपस में दोस्त और क्लास फेलो थे, इनकी अच्छी खासी दोस्ती हो गई थी. हद यह है कि थोड़ा उधार-व्यवहार तक चलने लगा था. कलीम साहब ने लखनऊ आर्ट कालिज से पढ़ाई की थी और 'ज़ुलाजी डिपार्टमेंट' में आर्टिस्ट के पद पर काम करते थे. शाम को 'हाबीज़ वर्क्सशाप' में क्लास लेते थे. कुछ ही महीनों में हमें पता लगा कि कलीम साब

आदमी अच्छे हैं लेकिन आर्ट-वार्ट से उनका रिश्ता वाजबी-वाजबी-सा ही है. खैर, क्या किया जा सकता था. वैसे भी उनको जितना आता था उतना हम सीख लेते तो बड़ी बात थी. लेकिन धीरे-धीरे यह भी पता चला कि कलीम साहब चतुर भी हैं. जैसे एक बार हमारे एक दोस्त को एक विशेष साइज में चित्र बनाना था. कलीम साहब ने उसका खरीदा कैनवस इस तरह काट दिया कि वह उसके लिए बेकार हो गया लेकिन कलीम साहब के काम आ गया. हमें यह बुरा लगा. पर कलीम साहब हमें कभी-कभी अपने घर खाने के लिए भी बुलाते थे. और यह हमारे ऊपर इतना बड़ा उपकार होता था कि हम हमेशा उसके बोझ से दबा महसूस करते थे.

एक दिन मैं कलीम साहब के घर पहुंचा तो देखा कि बड़ी मोटी-सी डिक्शनरी लिये बैठे हैं. पूछने पर कि क्या कर रहे हैं, बोले कि 'कंटम्प्लेशन' का मतलब देख रहा हूं....

"क्या कुछ पढ़ रहे थे?"

"नहीं भाई," उन्होंने एक ठंडी सांस लेकर कहा, "ये लफ्ज कहीं देखा था. पसंद आया. सोचा कि इस पर एक पेंटिंग बनाऊं."

कलीम साहब ने हम लोगों को दो-तीन साल ही सिखाया. उसके बाद विश्वविद्यालय में 'आर्ट क्लब' नामक संस्था खुल गई थी जिसके हम सब सदस्य हो गए थे.

कोर्स में दूसरे विषयों जैसे केमिस्ट्री, बॉटनी आदि के अध्यापक बहुत साहब किस्म के लोग थे. पूरा सूट-टाइ वगैरह पहनकर आते थे. लेक्चर थिएटर में टहल-टहलकर लेक्चर देते थे. कभी-कभी चाक से कुछ लिखते भी थे. फिर चले जाते थे. यानी उन्हें न हमसे कोई ताल्लुक था और न हमें उनसे कोई मतलब था. हम समझ रहे हैं या नहीं, इसकी वे चिंता नहीं करते थे. बस हमसे अपेक्षा की जाती थी कि हम चुपचाप क्लास में आकर बैठ जाएंगे, रोल नंबर पुकारने पर 'यस सर' बोलेंगे. पैंतालीस मिनट खामोश बैठेंगे और घंटा बजने पर चले जाएंगे. इस व्यवस्था से हम लोग भी खुश रहते थे और अध्यापक भी.

मजेदार बात यह है कि मुझसे कभी कोई नहीं पूछता था कि तुम क्या बनना चाहते हो. अगर मुझसे पूछा जाता और मैं अपनी मर्जी का पेशा बता भी देता तो मुझे वह न बनने दिया जाता

अन्य विषयों के अतिरिक्त हम लोगों को धर्मशास्त्र की शिक्षा भी दी जाती थी. हमें धर्मशास्त्र मौलाना घोड़ा पढ़ाते थे. मौलाना का असली नाम क्या था यह शायद कागज़ात को ही मालूम था. सारी यूनिवर्सिटी में वे मौलाना घोड़ा कहे, पुकारे जाते थे. इस नाम के पीछे शायद उनकी शक्ल का हाथ था. बहरहाल, मौलाना लड़कों के साथ बहुत दोस्ताना व्यवहार करते थे. मौलाना को पान खाने की लत थी और अकसर वे पानों की डिबिया-बटुआ भूल आते थे. उनकी क्लास अकसर इस तरह शुरू होती थी—भई आज सुबह से मैं बड़ी बेचैनी महसूस कर रहा हूं. हुआ यह कि रोज बेगम मेरी शेरवानी की जेब में पानों की डिबिया और बटुआ रख देती हैं. आज पता नहीं क्या हुआ कि भूल गई. मै जब यहां पहुंचा तो देखा दोनों चीजें नहीं हैं. खैर, फर्स्टईयर की क्लास आ गई. उनको पढ़ाया. फिर तुम लोग आ गए. अब मैं तुम लोगों से भी पान नहीं मंगा सकता क्योंकि तुम लोग जूनियर हो. थर्डईयर के तालिबेइलम जब आएंगे तो उनसे कहूंगा. मौलाना घोड़ा के इस वक्तव्य पर शोर मच जाता था. लड़के कहते थे कि ये नहीं हो सकता. वे अभी जाकर पान ले आएंगे. मौलाना 'ना-ना' करते थे, लड़के 'हां-हां' करते थे. काफी खींचातानी, बहस-मुबाहिसों के बाद आखिरकार बहुत कलात्मक ढंग से मौलाना घोड़ा हथियार डाल देते थे. एक लड़का उठता था. मौलाना उसे बाजार जाकर पान लाने की इजाजत देते थे. वह अनुरोध करता था कि वह अकेला नहीं जा सकता, कम से कम एक लड़के को उसके साथ जाने दिया जाए. ऐसा हो जाता था. फिर कुछ लड़के कहते थे कि उन्हें भी पान की तलब महसूस हो रही है. जाहिर है, तलब तो तलब है. उसके महत्व से कौन इनकार कर सकता है. मौलाना उन लड़कों को भी जाने की इजाजत देते थे. तब कुछ और लड़के खड़े हो जाते थे कि उन्हें सिगरेट की तलब लगी है. इस तरह होता यह था कि पूरी क्लास अपनी 'तलब' पूरी करने चली जाती थी और दो लड़के साइकिल पर जाकर मौलाना घोड़ा के लिए दो पान ले आते थे.

साइंस की पढ़ाई में मेरा ही नहीं, हम तीनों दोस्तों का दिल न लगता था. हम सब अपने आपको आर्टिस्ट समझने लगे थे. क्लास में न जाना, प्रॉक्सी हाजिरी लगवाना, आवारागर्दी करना, चाय पीना, रातों में टहलना, सिगरेट पीना, शेरो-शायरी में दिलचस्पी लेना, लड़कियों को देखने के लिए मीलों चले जाना, कलाकारों जैसे कपड़े पहनना, किराये की साइकिल पर शहर की वर्जित सड़कों के चक्कर काटना, साहित्यिक-सांस्कृतिक कामों में जान लड़ा देना, अपने से बड़ी उम्र के लोगों से दोस्ती करना, धर्म में अरुचि, ईश्वर है या नहीं इस विषय पर विवाद करना आदि-आदि काम हम करते थे. इसलिए जाहिर है साइंस की पढ़ाई के लिए वक्त न मिलता था.

अध्यापकों से हमारा रिश्ता भी दिलचस्प था. जो हमें नहीं पढ़ाते थे, उनसे हमारे बड़े अच्छे संबंध थे. मतलब विज्ञान पढ़ाने वाले अध्यापकों को हम जानते भी न थे पर साहित्य और कला के अध्यापकों से हमारी मित्रता थी. केमिस्ट्री प्रैक्टिकल में हम कभी न जाते थे लेकिन कला प्रदर्शनी में जाना अपना पहला कर्तव्य समझते थे. नतीजा जो निकलना था वही निकला. पहले साल में फेल, दूसरे साल में सोचा सिफारिश कराई जाए. यह पूरा प्रसंग कुछ इस तरह मुड़ गया कि सिफारिश करने वाला ही असुविधा में पड़ गया. हमें मालूम था कि केमिस्ट्री प्रैक्टिकल में हम फेल हो ही जाएंगे. पढ़ाने और परीक्षा लेने वाले अध्यापक के पास हम दोनों मित्र सिफारिश करने वाले सज्जन के साथ पहुंचे. सिफारिश करने वाले सज्जन ने बातचीत शुरू की, "ये दोनों आपके स्टूडेंट मुझे यहां लाए हैं..." अध्यापक बात काट कर बोले, "ये दोनों? नहीं ये तो मेरी क्लास में नहीं हैं." सिफारिश करने वाले अध्यापक सटपटाए. जल्दी ही समझ गए कि मामला क्या है. उन्होंने हम लोगों की तरफ अजीब नजरों से देखा. उन्हें लगा कि हमने उन्हें बहुत गलत काम के लिए राजी कर लिया था और धोखा दिया था. हमने नजरें झुकाकर भरी आवाज में कहा, "जी हम आपकी क्लास में ही हैं."

अध्यापक ने फिर ध्यान से देखकर बड़ी उपेक्षा भरी आवाज में कहा, "नहीं, ये लोग मेरी क्लास में नहीं हैं. इन्हें क्लास में कभी नहीं देखा."

अब काटो तो खून नहीं. बेशर्मों की तरह सिर झुकाए खड़े रहे. ये सच है कि हम तीनों दोस्त क्लास में न जाते थे. उसके अलावा हमें कहीं भी देखा जा सकता था. बीएससी के दूसरे साल में थे. सेशन समाप्त हो गया था. हाजिरी निकली तो हम सबकी हाजिरियां कम थीं और इम्तिहान में नहीं बैठ सकते थे. पढ़ाई या इम्तिहान की तैयारी नहीं थी. हॉस्टल तथा फीस आदि का जो पैसा चुकाना था वह बहुत ज्यादा था क्योंकि हम उसे उड़ा गए थे. हम तीनों हॉस्टल के कमरे में बैठे सोच रहे थे कि इस मुसीबत से कैसे निबटा जाए. कोई रास्ता न नजर आता था. फिर एक ने सलाह दी

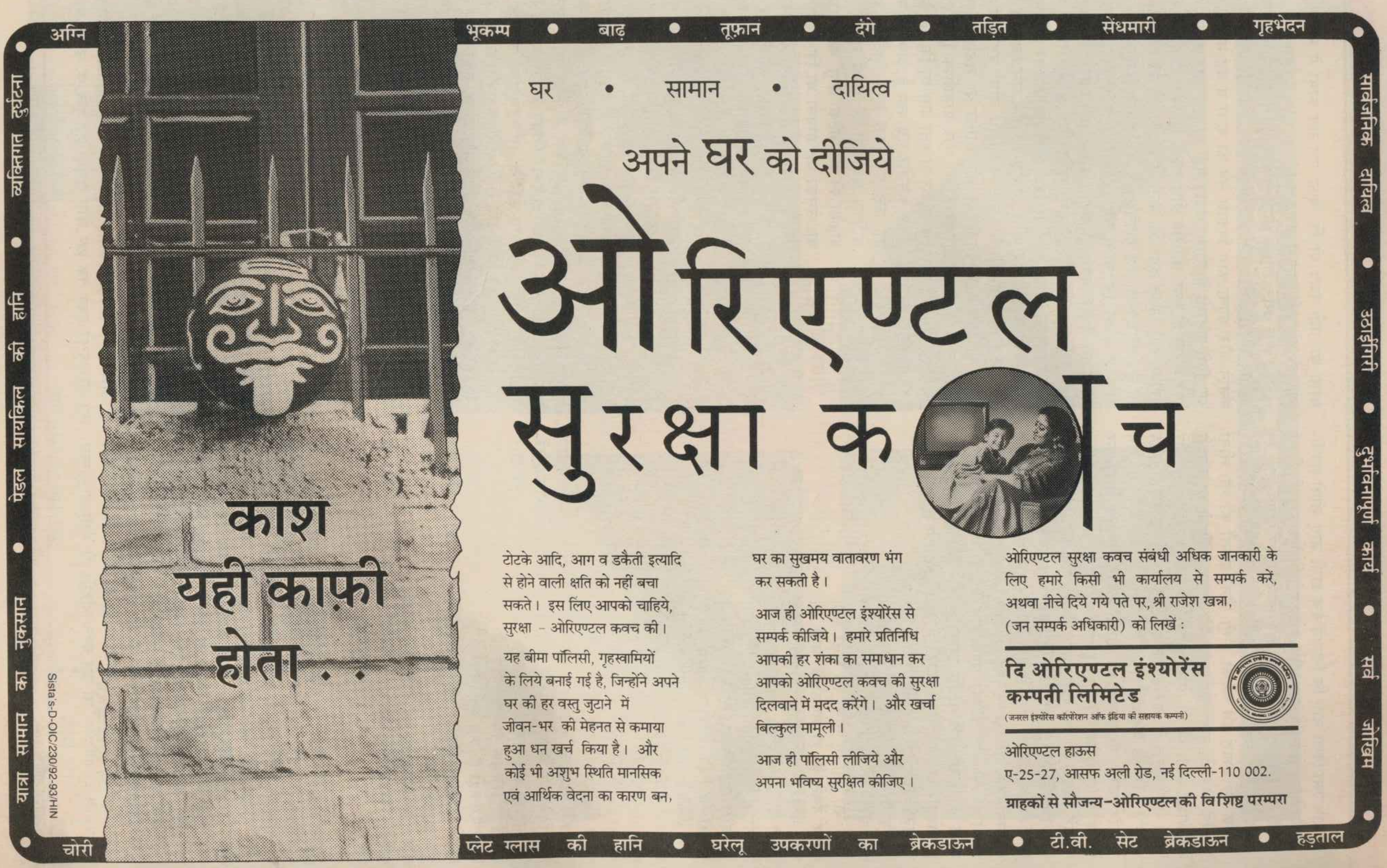
अग्नि • भूकम्प • बाढ़ • तूफ़ान • दंगे • तड़ित • सेंधमारी • गृहभेदन
सार्वजनिक दायित्व • उठाईगिरी • दुर्भावनापूर्ण कार्य • सर्व जोखिम
चोरी • प्लेट ग्लास की हानि • घरेलू उपकरणों का ब्रेकडाऊन • टी.वी. सेट ब्रेकडाऊन • हड़ताल
व्यक्तिगत दुर्घटना • पेडल सायकिल की हानि • यात्रा सामान का नुकसान
घर • सामान • दायित्व
अपने घर को दीजिये
ओरिएण्टल
सुरक्षा कवच
काश
यही काफ़ी
होता . .
टोटके आदि, आग व डकैती इत्यादि से होने वाली क्षति को नहीं बचा सकते। इस लिए आपको चाहिये, सुरक्षा - ओरिएण्टल कवच की।
यह बीमा पॉलिसी, गृहस्वामियों के लिये बनाई गई है, जिन्होंने अपने घर की हर वस्तु जुटाने में जीवन-भर की मेहनत से कमाया हुआ धन खर्च किया है। और कोई भी अशुभ स्थिति मानसिक एवं आर्थिक वेदना का कारण बन, घर का सुखमय वातावरण भंग कर सकती है।
आज ही ओरिएण्टल इंश्योरेंस से सम्पर्क कीजिये। हमारे प्रतिनिधि आपकी हर शंका का समाधान कर आपको ओरिएण्टल कवच की सुरक्षा दिलवाने में मदद करेंगे। और खर्चा बिल्कुल मामूली।
आज ही पॉलिसी लीजिये और अपना भविष्य सुरक्षित कीजिए।
ओरिएण्टल सुरक्षा कवच संबंधी अधिक जानकारी के लिए हमारे किसी भी कार्यालय से सम्पर्क करें, अथवा नीचे दिये गये पते पर, श्री राजेश खन्ना, (जन सम्पर्क अधिकारी) को लिखें :
दि ओरिएण्टल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड
(जनरल इंश्योरेंस कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया की सहायक कम्पनी)
ओरिएण्टल हाऊस
ए-25-27, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110 002.
ग्राहकों से सौजन्य–ओरिएण्टल की विशिष्ट परम्परा
Sista's-D-OIC/230/92-93/HIN

कि यार ऐसा किया जाए कि किताबें बेच डाली जाएं. तीनों अपनी-अपनी किताबें बेचेंगे तो इतने पैसे आ जाएंगे कि एक रम की बोतल खरीदी जा सके, एक फिल्म देखी जा सके और घर वापस जाने का टिकट आ जाए. यह राय सबको पसंद आई. वैसा ही किया गया.

नशे की आदत हम सबको यानी तीनों दोस्तों को थी. तीनों सिगरेट पीते थे. कभी-कभी जब पैसे ज्यादा होते थे या घर से मनीआर्डर आता था तो 'ब्लैक फॉक्स' की तंबाकू खरीदते थे और पाइप पिया करते थे. शराब की आदत तो न थी पर पीना पसंद करते थे और जब पैसे होते थे तो शहर जाते थे जहां एक 'भगवान रेस्टोरेंट' नाम का होटल था. उसके पिछले केबिनों में बैठकर शराब पी जा सकती थी. वही हमारा अड्डा होता था.

मैंने जिंदगी में जब पहली बार पी तो मुझे बहुत मजा आया. जिस मित्र ने पिलाई थी उससे मैंने बहुत शिकायत की कि उसने पहले क्यों न पिलाई. शहर से शराब पीकर रात में दस-ग्यारह बजे सुनसान सड़क पर टहलते हुए हम लोग हॉस्टल वापस आते थे. लगता था कि पूरा 'इंडिया अपने बाप' का है. यानी ऐसी मौज-मस्ती की हालत होती थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता. इस तरह सड़कों पर शराब के नशे में टहलते हुए हम लोग 'मजाज़' की नज्म 'आवारा' गाया करते थे.

एक बार पैसे कम थे और हम शराब पीना चाहते थे. उतने पैसे में क्वार्टर भी न आता था. इसलिए सोचा कि चलो भांग खाकर देखते हैं, हो सकता है मजा आ जाए. पानवाले की दुकान पर भांग मिला करती थी. हमने उससे पूछा कि कितनी-कितनी गोलियां खाना चाहिए कि मजा आ जाए. उसने कहा चार-चार गोलियां खा लो. मैं समझ गया कि साला अपनी भांग बेचने के लिए हमें चूतिया बना रहा है. लेकिन मेरे दूसरे दोस्तों ने कहा कि नहीं यार जब वह चार-चार कह रहा है तो चार-चार ही खाना चाहिए. गोलियां काफी बड़ी, यानी कंचे की बड़ी गोलियों जैसी थीं. बहरहाल, हमने चार-चार खा ली. पानी के साथ गटक गए और सिनेमा में जाकर बैठ गए. थोड़ी देर के बाद मुझे लगा कि मेरे पैर नहीं हैं और जब इंटरवल होगा तो मैं कैसे उठूंगा? मैंने दूसरे दोस्तों से पूछा कि क्या उनके पैर हैं? उन दोनों ने भी बताया कि उनके पैर नहीं हैं. अब बड़ी समस्या खड़ी हो गई. खैर, फिल्म खत्म होने के बाद हम किसी तरह बाहर आ गए और फिर हम तीनों का बुरा हाल हो गया. उल्टियां करते-करते पस्त पड़ गए. कान पकड़ने और तौबा करने लगे कि कभी भांग खाएंगे. भांग खाने के प्रयोग के बाद एक बार कम पैसे में नशा करने की गरज से हम ताड़ी पीने भी गए थे.

> **बहरहाल, मौलाना लड़कों के साथ बहुत दोस्ताना व्यवहार करते थे. मौलाना को पान खाने की लत थी और अक्सर वे पानों की डिबिया-बटुआ भूल आते थे.**

हम तीन दोस्तों में एक बड़ा पुराना पापी था. हम सब उसे इसी वजह से पापी कह कर पुकारते थे. पापी का असली नाम नामदार हुसैन रिज़वी था. लेकिन दोस्त उसे पापी कहते थे. पापी शायरी भी करता था. उसका तखल्लुस 'वफ़ा' था. जिस मंडली में उसे थोड़ा सम्मान दिया जाता था उसमें उसे 'वफ़ा' या 'वफ़ा साब' कहकर पुकारा जाता था. दूसरों के सामने हम लोग भी उसे 'वफ़ा' कहते थे. 'वफ़ा' भी एक तरह से हमारा अध्यापक था. उसने हमें सिगरेट पीना, शराब पीना और रंडियों के कोठों पर जाना सिखाया था. 'वफ़ा' एक पुराने ताल्लुकेदार का इकलौता लड़का था. वह ग्यारह-बारह साल का ही था कि उसके अब्बाजान का इंतकाल हो गया था. मां उसे बहुत चाहती थी. पैसा भी अच्छा खासा था. यही वजह थी कि 'वफ़ा' उन सब कामों में माहिर हो गया जो हमें नहीं आते थे.

मेरा एक और शिक्षक मेरा तीसरा दोस्त था. उसका नाम वाहिद था. वह चित्रकार था. अच्छे चित्र बनाने, लड़कियों को फंसाने और अपना काम निकाल लेने की कला में वह माहिर था. इन तीनों कलाओं में उसका जवाब नहीं था. एक बार उसका एक पेपर खराब हो गया. हम सब सोच रहे थे कि किस तरह उसे पास कराया जाए. उसने कहा कि किसी सिफारिश की जरूरत नहीं है, वह खुद परीक्षक के पास जाएगा और अपनी सिफारिश करेगा. हम लोगों ने सोचा कि साला पागल हो गया है. जरूर बुरी तरह अपमानित होकर वापस आएगा. लेकिन वह गया और आकर बोला कि पास हो जाएगा. हमें यकीन नहीं आया. लेकिन जब रिजल्ट निकला तो वह पास था. फिर उसने हमें विस्तार से बताया कि उसने परीक्षक से क्या बात की थी और कैसे उसे इस बात पर तैयार कर लिया था कि उसे पास कर दिया जाए. लड़कियों को फंसाने की कला में भी वह माहिर और शातिर था. लड़कियों और औरतों के बारे में उसकी राय अंतिम और प्रामाणिक सिद्ध हुआ करती थी. जैसे लड़कियों को देखकर ही बता देता था कि वह कैसी है? क्या पसंद करती है, उसके कमजोर पक्ष क्या हैं, अच्छाई क्या है? उस पर किस तरह 'अटैक' लेना चाहिए. लड़कियों से संबंध बनाने की प्रक्रिया को वह 'अटैक लेना' कहा करता था. उसका यह मानना था कि संसार में किसी भी आदमी को पटाया जा सकता है. उससे काम निकाला जा सकता है. लेकिन सबको पटाने का रास्ता एक नहीं है. हर आदमी के अंदर तक पहुंचने के लिए एक नए रास्ते की खोज करनी पड़ती है. वह केवल ऐसी बातें ही नहीं करता था बल्कि प्रयोग करके भी दिखाता था. एक बार एक लड़की को हम तीनों ने किसी कला प्रदर्शनी में देखा. लड़की पसंद आई. हमने उसे चुनौती दी, उससे कहा कि वह लड़की को हमारे साथ चाय पीने के लिए तैयार करके दिखा दे तो हम जानें कि वह बड़ा लड़कीमार है. उसने कहा कि चाय पिलाने के पैसे उसके पास नहीं हैं. अगर हम दोनों उसे पैसे दे दें तो वह लड़की को चाय पीने के लिए आमंत्रित कर सकता है. हम तैयार हो गए. वाहिद गया और आया और बोला, चलो तैयार है.

वाहिद की दसियों लड़कियों से दोस्ती थी और वे सब यह समझतीं थी कि वह बहुत सीधा-सादा, सम्मानित और कलाकार किस्म का आदमी है. वह कभी-कभी झोंक में आकर लड़कियों के बारे में अपने मौलिक विचार बताया करता था. कहता था हर औरत प्रशंसा पसंद करती है पर यह प्रशंसा कैसी हो, किस गुण की हो और कितनी हो या बहुत गंभीर बात है. दूसरी बात यह बताता था कि हर औरत एक बंद चहारदीवारी की तरह होती है. लेकिन आप जिधर से चाहें रास्ता खोल सकते हैं. यदि चहारदीवारी को वास्तव में आपने चहारदीवारी समझा तो कभी सफल नहीं हो सकते. इसी तरह की न जाने कितनी बातें वह किया करता था. कभी-कभी उसकी बातें 'वेग' भी हुआ करती थीं जैसे कहता था औरतें जो सबसे ज्यादा चाहती है उससे सबसे ज्यादा डरती हैं. औरतों से 'एप्रोच' करने की पहली शर्त वह मासूमियत मानता था. वह कहता था कि कहीं धोखे से भी आपने अपने को घाघ सिद्ध कर दिया तो औरत पास नहीं आएगी.

आमतौर पर महीने के पहले हफ्ते में घर से मनीआर्डर आता था और दूसरे हफ्ते तक हम लोग खलास हो जाते थे. उसके बाद

ठंडी हवाएँ, लहरा के आएँ!

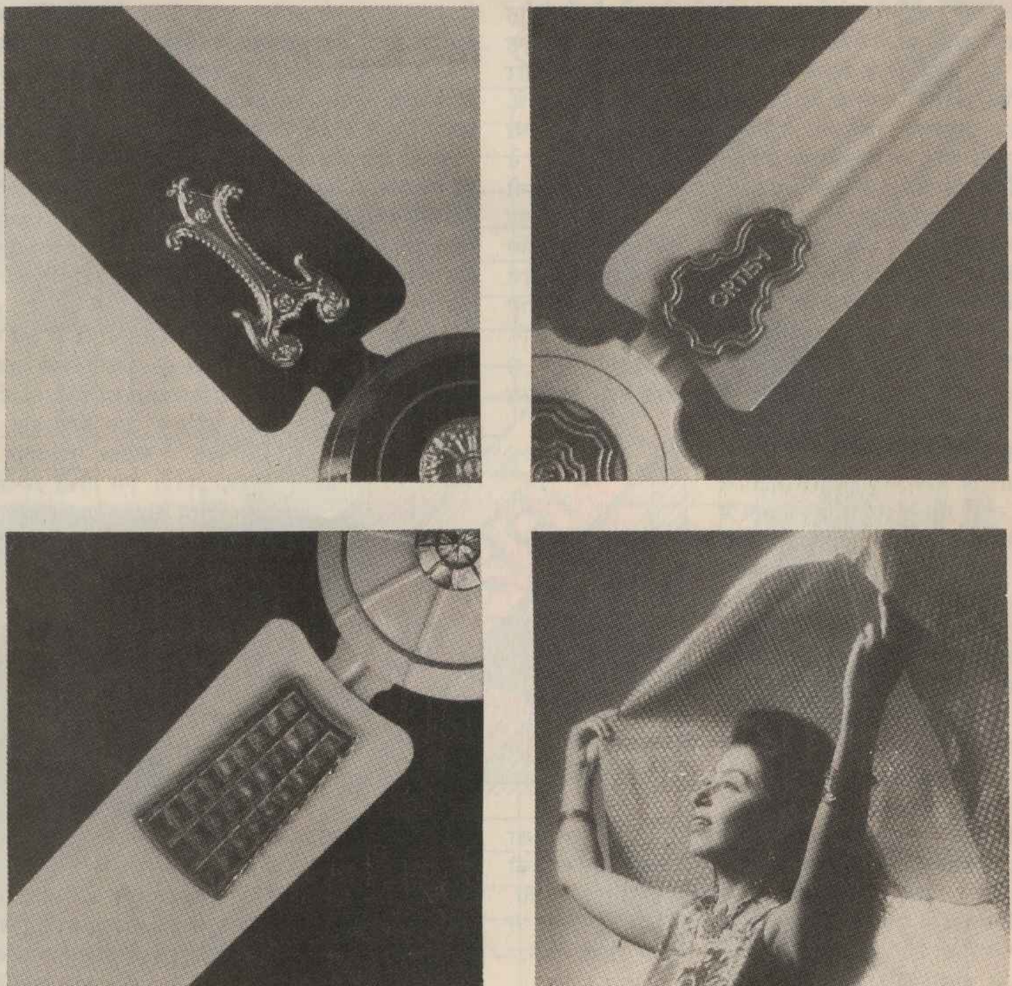

ऑरटम के प्रत्येक पंखे का कलात्मक डिज़ाइन एवं शीतल रंग,
चलने से पहले ही शीतलता का एहसास जगाए।

ऑरटम-शीतल शक्ति

M

ORTEM

मेट्रो एप्लायंसिज़ लि.

517, देविका टावर, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110019

फोन: 6448242, 6448248

ISI

अब
डी जी एस एण्ड डी
रेट कॉन्ट्रेक्ट पर भी
उपलब्ध।

INTERADS/D/93

शाम की चाय के पैसे न होते थे. मुफ्त चाय पीने के चक्कर में हम लोग परिचित लोगों के घरों के चक्कर काटते थे. अकसर तो ये भी होता था कि कई घरों के चक्कर काटने और कई मील का पैदल सफर करने के बाद भी चाय न मिल पाती थी. वैसे, हमारे चाय पीने के इतने अधिक अड्डे थे कि कहीं-न-कहीं कामयाबी हो ही जाती थी. जब हर तरफ से थक-हार जाते थे तो यूनीवर्सिटी कैंटीन आ जाते थे. कैंटीन के ठेकेदार खां साहब से हमारे अच्छे संबंध थे. वे न सिर्फ चाय बल्कि विल्स फिल्टर की सिगरेट और शानदार पान तक खिलाया करते थे. खां साहब शायर थे. अच्छे शायर थे. 'कमाल' तखल्लुस रखते थे. रामपुर के रहने वाले थे. 'खां साहिबयत' और 'शेरिअत' उनके व्यक्तित्व में बड़े कलात्मक ढंग से घुल-मिल गई थी. वे उर्दू में एम.ए. थे. वैसे भी बहुत अनुभवी आदमी थे. बातचीत करने के बेहद शौकीन थे. पैसे को हाथ का मैल समझते थे. शायरी, राजनीति और दुनिया के अनगिनत विषयों पर बड़े धड़ाके से बातचीत करते थे. उन्होंने दरअसल क्लासिकी शायरी की तरफ हम लोगों को खींचा था. कभी-कभी मीर तक़ी 'मीर' के शेर सुनाते थे. शेर सुनाने से पहले कहते थे कि यह शेर किसी लोकप्रिय गज़ल का नहीं है. उन्होंने 'कुल्लियात' से खुद ढूंढकर निकाला है. शायरी पर उनकी बातें बहुत दिलचस्प और मौलिक हुआ करती थीं. उनकी कैंटीन में विश्वविद्यालय के दूसरे शायर भी आते थे और रात देर तक महफिल जमी रहती थी. खां साहब अपने आप में एक संस्था थे. एक शेर पर चर्चा करते-करते कभी रात के बारह तक बज जाया करते थे. शायरी के अलावा खां साहब अपने जीवन के लंबे अनुभवों का निचोड़ बताया करते थे. हमें लगता था कि जीवन अपनी परतें खोल रहा है.

खां साहब फिल्मों के भी रसिया थे. खासतौर पर अच्छी कलात्मक फिल्में दिखाने हम सबको ले जाते थे. तरीका काफी शाही किस्म का होता था. रिक्शे बुलवाए जाते थे. हम सब सिनेमा हॉल पहुंचते थे. पूरा खर्चा खां साहब करते थे. हद यह है कि इंटरवल में चाय के पैसे भी किसी को न देने देते थे. फिल्म के बाद उस पर विस्तार से बातचीत होती थी. विश्वविद्यालय के सभी नामी-गिरामी शायरों से उनकी दोस्ती थी जो अकसर शामें उनकी कैंटीन में गुजारते थे. खां साहब को हर चीज या काम उसकी चरम सीमा तक करने में मजा आता था. कहते थे तुम लोग क्या पीते हो, मैंने एक जमाने में इतनी पी है कि छह महीने तक नशा ही नहीं उतरने दिया.

> **आवारागर्दी करना, चाय पीना, लड़कियों को देखने के लिए मीलों चला जाना, साहित्यिक-सांस्कृतिक कामों में जान लड़ा देना, धर्म में अरुचि, आदि काम हम करते थे**

खां साहब की कैंटीन के अलावा हमारे मुफ्त चाय पीने के अड्डे प्राध्यापकों के घर थे. मजेदार बात यह कि वे सब प्राध्यापक वे न थे जो हमें साइंस के विषय पढ़ाते थे. साइंस पढ़ाने वाले प्राध्यापकों के बारे में हमारे बहुत अच्छे विचार न थे. हम उन्हें बिलकुल खुर्रा, नीरस और शुष्क समझते थे. साहित्य पढ़ाने वाले लोगों के घरों में दिलचस्प साहित्यिक चर्चाएं होती थीं. चाय पीने का मजा आता था. इन घरों के अलावा हमारा चाय पीने का अड्डा एक और भी था. शहर से कुछ दूर एक पुराने किस्म की कोठी में एक पुराने जमाने के रईस—जिनका नाम राजा मोहिसन अली खां उर्फ मीर साहब रंगेड़ा और राजा साहब छदामा था, रहते थे. उनकी उम्र पचास के आसपास थी. उनसे हम लोगों की दोस्ती हो गई थी. राजा साहब सनकी और औबाश किस्म के आदमी थे. हमेशा अतीत के नशे में चूर रहा करते थे. लेकिन बीते जमाने के किस्से सुनाने की कला में बड़े ही माहिर थे. उनका बयान बहुत रोचक और छोटी-छोटी 'डिटेल्स' से भरा होता था. उनकी स्मरण शक्ति भी जबरदस्त थी. मिसाल के तौर पर वे यह बताते थे कि तीस साल पहले जब वे किसी आदमी से मिलने गए थे तो उन्होंने किस रंग का सूट पहना था और कफ़ में जो बटन लगाए थे वे कैसे थे. राजा साहब की आर्थिक हालत खस्ता हो चुकी थी. अब वे सिर्फ बातों के धनी थे. उनके मनपसंद किस्से उनकी अय्याशियों की लंबी दास्तानें थीं. वे अनगिनत थीं. दास्ताने बताते हुए वे पूरा मजा लेते थे. औरतों के नख-शिख वर्णन में उन्हें महारत हासिल थी. उसके साथ ही साथ संभोग का वर्णन काफी मनोयोग से करते थे.

कभी-कभी राजा साहब के यहां एक प्याली चाय और दालमोठ बहुत महंगी पड़ जाया करती थी. जैसे एक दिन चाय की लालच में हम थके-हारे उनके घर पहुंचे तो पता नहीं उनका क्या मूड था. बिना कुछ कहे-सुने एक अंग्रेजी की किताब के बीस पन्ने पढ़कर सुना दिए. फिर बताया, यह 1891 का पटियाला गजेटियर है. इसमें मेरे खानदान का जिक्र है.

उनकी कई सनकें थीं. उनमें से एक यह थी कि वे अब तक अपने आपको बहुत बड़ा सामंत समझते थे. उन्होंने काले मखमल पर सुनहरे बेलबूटों वाला एक कोट सिलवाया था जिसे वे 'चीफ कोट' कहा करते थे. उस 'चीफ कोट' को पहन वे रिक्शे में बैठकर पूरे शहर का एक चक्कर लगाते. ऐसे मौकों पर उनके साथ होने में हम लोगों को बड़ी शर्म आती थी. लेकिन एक प्याली चाय की खातिर सब कुछ करना पड़ता था.

चाय पीने का एक और अड्डा गर्ल्स कालेज की एक सुंदर प्राध्यापिका का घर भी था. प्राध्यापिका बहुत सुंदर थीं. इतनी सुंदर कि उन्हें पहली बार देखकर ही हम तीनों दोस्त उन पर आशिक हो गए थे. और तय किया था कि वे इतनी सुंदर हैं कि उन पर कोई अपना अकेला अधिकार नहीं जमाएगा. जब भी कोई उनके पास जाएगा, अकेला नहीं जाएगा. इस समझौते पर हम कायम रहे. सुंदर प्राध्यापिका गर्ल्स हॉस्टल के अंदर रहती थीं. वे वार्डेन थीं. अकेली रहती थीं. उनके घर में शामें गुजारना इतना सुखद होता था जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती. लेकिन हम इतना तो सीख ही गए थे कि तांत को इतना नहीं तानते कि वह टूट जाए. इसलिए महीने में दो-तीन ही बार उनके पास आते थे. उनकी हंसी ऐसी थी कि हम सिर्फ उसी पर फिदा थे.

किसी भी विश्वविद्यालय की यह विशेषता होती है कि जो उससे चिमटे रहते हैं वे उपकृत होते हैं. हम फेल होते थे. हाजिरी कम होती थी. इम्तिहान में नहीं बैठाए जाते थे लेकिन विश्वविद्यालय से चिमटे हुए थे. इस तरह रगड़ते-रगड़ते बी.एस.सी. पास हो गए. हम तीन दोस्त थे और तीनों को तीन तीन डंडे मिले थे. यानी तीन नंबर हमारी किस्मत में लिख गया था. लेकिन हम खुश थे. मेरे दो अन्य मित्रों को जैसे ही डिग्री मिली उन्हें अपने राष्ट्रपति तक हो जाने के रास्ते साफ नजर आने लगे और उन्होंने पढ़ाई को धता बताई.

मैंने सोचा कि मैं विश्वविद्यालय में कुछ और पढ़ूं. क्या पढ़ूं, इसका पता न था. इतना तो तय था कि साइंस के किसी विषय में एम.एस.सी. करने से अच्छा था कि कहीं डाका मारता और जेल चला जाता. इसलिए साहित्य ही बचता था. किसी ने कहा उर्दू में एम.ए. कर डालो. लेकिन समस्या यह थी कि उस समय तक मैं हिंदी में लिखने लगा था. हाइस्कूल तक की पढ़ाई हिंदी में हुई थी. उर्दू

उत्कृष्ट टी.टी. उत्पादनों की एक झलक—

टी.टी.

अंडर वियर, बनियान, ब्रा, पैंटी, टी शर्ट, जुराबें

25 वर्षों से अधिक श्रेष्ठता का प्रतीक

T.T.

Parichay

बहुत कम और लिखना तो बिलकुल नाम बराबर को जानता था. इसलिए सोचा उर्दू से अच्छा है हिंदी में एम.ए. किया जाए. किसी ने कहा साहित्य में ही एम.ए. करना है तो अंग्रेजी में करो. लेकिन उस समय तक अंग्रेजी विरोधी बन गया था इसलिए कि अंग्रेजी बिलकुल न आती थी. या इतनी कम आती थी कि मुझे उससे ज्यादा शर्म आती थी. बहरहाल, हिंदी के पक्ष में अधिक मत पड़े.

जब बी.एस.सी. में पढ़ता था उस जमाने में हिंदी विभाग से कोई विशेष लेना-देना न था. हां मुझे साहित्य लिखने की प्रेरणा देने वाले और विश्वविद्यालय की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के महत्वपूर्ण व्यक्ति रामपाल सिंह हिंदी में पी.एच.डी. कर रहे थे. दरअसल उन्होंने ही मुझे हिंदी में लिखने और छपने आदि की प्रेरणा दी थी. डॉ. सिंह के बयान के बगैर यह पूरा विवरण अधूरा है. इसलिए मैं उनका बयान सामने रखना चाहूंगा. डॉ. सिंह विश्वविद्यालय में इस रूप में जाने जाते थे कि जिसका कोई नहीं है उसके डॉ. सिंह हैं. उनके पास कोई भी जा सकता है, कोई भी कुछ कह सकता है और कोई भी मदद की पूरी उम्मीद कर सकता है. मैंने हिंदी में जब लिखना शुरू किया था तो उनके पास गया था. और उन्हें उनकी साख के अनुरूप ही पाया था. दरअसल विश्वविद्यालय की साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों की वे एक महत्वपूर्ण कड़ी थे. उन्होंने भी मुझसे कहा कि हिंदी में एम.ए. करो.

लेने को तो मैंने हिंदी में दाखिला ले लिया था लेकिन एक बहुत बड़ी दिक्कत थी जो मुझे बाद में पता चली. वह यह कि जिस विश्वविद्यालय में मैं पढ़ता था वहां हिंदी की स्थिति अन्य विषयों की तुलना में 'अछूत' जैसी थी. लोग मानते थे कि सबसे गए गुजरे, सबसे बेकार या कहें कंडम या कहिए कूड़ा या कहिए बोगस या कहिए मूर्ख या कहिए घोंचू या कहिए बेवकूफ या कहिए मंदबुद्धि या कहिए गधे ही हिंदी पढ़ते और पढ़ाते हैं. मतलब यह कि हिंदी की सामाजिक स्थिति बहुत ही खराब थी. जब मैं लोगों से कहता था कि मैंने हिंदी में दाखिला लिया है, तो मेरी तरफ इस तरह देखते थे जैसे मैं पागल हो गया हूं या अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार रहा हूं. या लोग सिर्फ मुस्कुराते थे या मेरे नाम के बाद 'दास' शब्द जोड़ कर मुझे कबीरदास और तुलसीदास जैसा कहकर मजाक उड़ाते थे. मैं इससे काफी परेशान हो गया था.

नशे की आदत हम तीनों दोस्तों को थी. शहर से शराब पीकर रात में सुनसान सड़क पर टहलते हुए हम लोग हॉस्टल वापस आ जाते थे. लगता कि पूरा 'इंडिया अपने बाप' का है

हिंदी के बारे में लोगों के मन में न केवल बड़े पूर्वाग्रह थे बल्कि एक अजीब तरह की घृणा और उपेक्षा के भाव भरे हुए थे. मैं यह समझ पाने में असमर्थ था.

हिंदी विभाग में पढ़ाई शुरू हुई. पहले दिन एक प्राध्यापक के कमरे में गया. क्लास को देखा. दो लड़कियां थीं यह देखकर जान में जान आ गई. एक बुर्का पहने थी. खैर कोई बात नहीं, थी तो लड़की ही. प्राध्यापक कुछ मजेदार, मसखरे लेकिन बहुत सरल आदमी थे. उन्होंने हम सबसे कहा कि हम क ख ग घ लिख डालें. पहले तो हम समझे कि वे मजाक कर रहे हैं पर उन्होंने गंभीरता से कहा था. पूरी क्लास ने क ख ग घ लिखा तो पता चला कि नब्बे प्रतिशत लड़को को क ख ग घ लिखना नहीं आता. प्राध्यापक महोदय ने कहा कि यह कोई अजीब बात नहीं है. हिंदी में जो एम.ए. कर चुके हैं उन्हें भी क ख ग घ लिखना नहीं आता. यह पहला पाठ था. हमें हमेशा याद रहा कि हमें कहां से शुरू करना है. लेकिन सारे प्राध्यापक ऐसे न थे जो जीवन भर के लिए एक पाठ पढ़ा दें. एक वरिष्ठ प्रोफेसर हमें हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ाते थे. वे विभाग के सबसे बड़े और वरिष्ठ प्रोफेसर थे. उनकी कक्षा कभी-कभी ही होती थी क्योंकि अच्छी चीजें प्रायः नहीं मिलतीं. उन्होंने इतनी कुशलता और लगन से पढ़ाया कि यदि उनका अनुकरण कोई और हिंदी अध्यापक करे तो जरूर नौकरी से निकाल दिया जाए. उन्होंने हमें कुल जमा चालीस मिनट में हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ा दिया था. वरिष्ठ होने के कारण प्राध्यापक महोदय सदा व्यस्त रहते थे. व्यस्त रहने के कारण उनका क्लास नहीं हो पाता था. होते-हुआते परीक्षाएं निकट आ जाती थीं. तब वह सुनहरा अवसर आता था कि क्लास होती थी. दुबले-पतले, शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा और खद्दर की टोपी धारण किए प्रोफेसर साहब अपने विशाल कमरे की विशाल मेज के पीछे विशाल कुर्सी में इस तरह लेट जाते थे कि कभी-कभी हमें केवल उनकी टोपी का ऊपरी भाग दिखाई देता था. वे रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' खोल लेते थे. पढ़ाई इस तरह शुरू होती थी—आदिकाल, इसे वीरगाथा काल भी कहा जाता है. वीरगाथा मतलब वीरों की गाथा. स्पष्ट है. है न?' हम सब एक स्वर में कहते थे, 'जी हां स्पष्ट हैं.' अब भक्तिकाल. 'भक्ति तो तुम सब जानते ही हो.. अरे वही राम भक्ति, कृष्ण भक्ति.. समझे? सूर पढ़ा है तुम लोगों ने. तुलसीदास पढ़ा है, जायसी को पढ़ा है... वही भक्तिकाल है.' प्रोफेसर साहब इस विद्वतापूर्ण भाषण के दौरान किताब के पृष्ठ तेजी से पलटते जाते थे. 'अब आता है रीतिकाल... रीतिकाल पर वे हंसते थे. उनके पीले, बड़े-बड़े दांत बाहर निकल आते थे. क्लास के लड़के मुस्कराते थे. लड़कियां शरमाती थीं. 'तो रीतिकाल मैं तुम लोगों को पढ़ा देता पर नहीं पढ़ाऊंगा क्योंकि तुम्हारी क्लास में कन्याएं हैं... दांतों से तरल पदार्थ बहने लगता था. दांत शांत हो जाते थे. 'चलो आगे बढ़ो, आधुनिक काल...आधुनिक का मतलब है मॉडर्न. तुम सभी मॉडर्न हो.. जब तुम सब स्वयं मॉडर्न हो तो मैं तुम्हें मॉडर्न काल क्या पढ़ाऊं? मैं तो तुम्हारी तुलना में मॉडर्न नहीं हूं.' दांत उनके मुंह में चले जाते थे. किताब बंद हो जाती थी. हिंदी साहित्य का इतिहास खत्म हो जाता था. तब प्रोफेसर कहते थे—तुम लोग सौभाग्यशाली हो. आराम से हॉस्टल में रहते हो. पका-पकाया खाना मिल जाता है. टहलते हुए क्लास में चले आते हो. पुस्तकालय उपलब्ध है. बिजली की रोशनी है, नल का पानी है. तुम लोग क्या जानो कि मैंने शिक्षा प्राप्त करने के लिए कितने कष्ट उठाए हैं. मेरा गांव बहुत छोटा था. वहां कोई स्कूल न था. आठ मील दूर, नदी के उस पार एक बड़ा गांव था जहां पाठशाला थी. हमारे गांव से दो-तीन लड़के पाठशाला जाते थे. हमें अंदर घुसकर नदी पार करनी पड़ती थी. कभी-कभी पानी ज्यादा होता था तो कपड़े और रोटी की पोटली सिर पर रख लेते थे. नदी के उस पार छह मील चलना पड़ता था. तब पाठशाला पहुंचते थे. पंडित जी के चरण छूते थे. पंडित जी हमें जंगल से लकड़ी बीनने भेज देते थे. किसी को कुंए से पानी भर लाने भेजते थे. मैं छोटा था तो मुझसे कपड़े धुलवाते थे. किसी से चूल्हा जलवाते थे. मतलब हम सब मिलकर पंडित जी का पूरा काम करते थे. वे भोजन करते थे. हम लोग भी इधर-उधर बैठकर रोटी खाते थे. उस गांव में बंदर बहुत थे. कभी-कभी बंदर हमारी रोटी ले जाते थे. तब हमें दिन भर भूखा रहना पड़ता था वापसी पर काफी देर हो जाती थीं. तो भेदियों का डर होता था. समझे?'' हमें यह लगता था कि प्रोफेसर

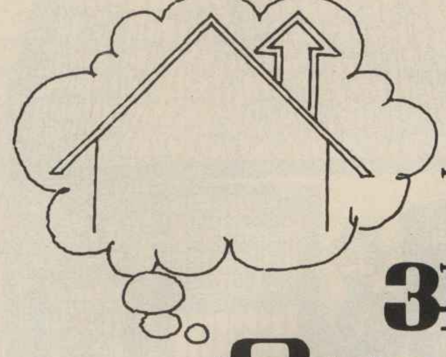

कितना अच्छा हो... कि गृह-ऋण मिले तो तुरंत और आसानी से! कैसे?

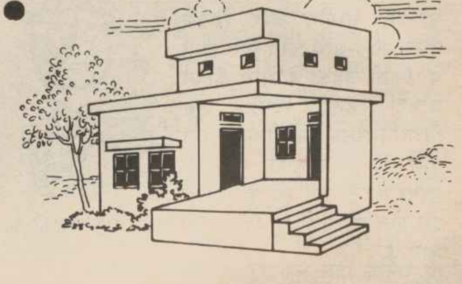

अपने सपनों का घर पाने की योजना बनाएं. फिर चाहे फ़्लैट हो, रो-हाउस या बंगला. आजही **एच डी एफ़ सी** के नजदीकी कार्यालय से संपर्क करें और पूरी जानकारी पाएं. घर नहीं चुना तो भी ऋण के लिए फौरन अर्जी भर दें. लौटा सकने की क्षमता के अनुसार, कम-से-कम समय में आप रु.१० लाख तक ऋण प्राप्त कर सकते हैं. ऋण के अनुसार ब्याज १२.०% से १६.५% वार्षिक तक. तो देर कैसी, घर की योजना तो अभी बना डालें. किसी भी शाखा से आजही संपर्क कीजिए.

एच·डी·एफ़·सी

हाउसिंग डिवेलपमेंट फाइनैंस कार्पोरेशन लिमिटेड

रजिस्टर्ड ऑफ़िसः रेमन हाउस, १६९, बॅकबे रेक्लेमेशन,
बम्बई ४०० ०२०. फ़ोनः २२०२८२, (८ लाइनें)

उत्तरी क्षेत्रः चंडीगढ़: दूसरी मंजिल, एस सी ओ १११०, ११११, सेक्टर २२-बी, चंडीगढ़ १६० ०२२. फ़ोनः ४०६६४, ३२४२०. **इंदौरः** ९/१/१, एम.जी. रोड, फ़िल ऍण्ड फ्लाय पेट्रोल पंप के पास, इंदौर ४५२ ००१. फ़ोनः ४३३७७६, ४३३७८४. **जयपुरः** ०-१९ए, अशोक मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर ३०२ ००१. फ़ोनः ३६३८९५, ३६४३६२. **कानपुरः** भगवान निवास, १६/१९ डी, सिविल लाइंस, (डी.एम. निवास के पास), कानपुर २०८ ००१. फ़ोनः ३११४६८, ३१०२६४, ३१००४९. **लखनऊः** पिलिभीत हाउस, दूसरी मंजिल, ६, शाहनजफ़ रोड, लखनऊ २२६ ००१. फ़ोनः २४७५०५, २३५०५५, २३२५२८ (केवल जमा के लिए) **नई दिल्लीः** एच डी एफ़ सी हाउस, बी-६/३, सफदरजंग एनक्लेव, डी डी ए कमर्शियल कॉम्पलेक्स, (डीयर पार्क के सामने), नई दिल्ली ११० ०२९. फ़ोनः ६०३१४६, ६०१९७८.

ULKA-16903-HIN

साहब हम लोगों से बदला ले रहे हैं या इस पर खिन्न हैं कि वे बदला नहीं ले सकते. लेकिन सचाई यह है कि वे हमें इस योग्य ही नहीं समझते थे कि हमसे बदला लें. वे केवल शोध छात्रों को यह सम्मान देते थे. उनके शोध छात्रों के बारे में कहा जाता था कि वे अपने विषय के पंडित होने के अतिरिक्त भैंसों की देखभाल करने की कला में भी निपुण हो जाते थे. कितना अच्छा था कि उनके सामने दो रास्ते खुल जाते थे. हिंदी के अध्यापक न बन पाते तो भैंस पालने का व्यवसाय शुरू कर सकते थे.

एम.ए. में हमारे साथ दो लड़कियां भी थीं. एक लड़की बुर्का वाली, दूसरी लड़की कई बुर्के उतार कर क्लास में आती थी. एक और लड़का भी क्लास में था जो साहित्यिक रुचि का था. हम तीनों की दोस्ती हो गई थी. मैं आमोद और किरण बंसल साथ-साथ चाय पीने जाते थे. किसी लड़की के साथ कैंटीन जाना उन दिनों उस विश्वविद्यालय में इतनी बड़ी बात थी कि उसकी चर्चा हो जाया करता थी. सो विभाग में इस बात की चर्चा थी कि हम दो लड़के एक लड़की के साथ चाय पीने जाते हैं.

विभाग में एक और वरिष्ठ अध्यापक थे. उनका क्लास सुबह सवा आठ बजे होता था. वे हमेशा लेट आते थे. हम लोग भी हमेशा लेट जाते थे. जाड़े के दिनों में लेट आकर वे धूप खाने तथा दूसरे अध्यापकों से गप्प मारने लॉन के एक कोने में खड़े हो जाते थे. दूसरे कोने में क्लास के लड़के भी यही पवित्र काम करते थे. लड़कों को देखकर प्राध्यापक महोदय कहते थे, चलो क्लास में बैठो, मैं आता हूं. पर हमें मालूम था कि यदि हम ठंडी क्लास में जाकर बैठ भी गए तो वे घंटा बजने में पांच मिनट पहले ही क्लास में आएंगे. हम न जाते थे. आखिरकार घंटा बजने में पांच मिनट पहले वे तेजी से क्लास की तरफ बढ़ते थे. हम उनसे पहले भागकर क्लास में चले जाते थे. वे हाजिरी लेने के बाद कहते थे—हिंदी में एम.ए. पास करना संसार का सबसे सरल काम है. तुम लोग चिंता न करो. यह वाक्य वे अकसर बोलते थे. हम ही से नहीं, जो लड़के पास हो चुके थे वे भी बताते थे कि उनको भी उन्होंने यही सूत्र दिया था. कभीकभार जब उनका मन होता था तो पढ़ाते भी थे. मगर अनमने मन से.

तीसरे वरिष्ठ प्राध्यापक पी.पी.पी. शर्मा थे. शक्ल तो उनकी कुछ खास न थी, पर बने-ठने रहते थे. कभी सूट, कभी बंद गले का कोट पहनकर आते थे. बालों को बहुत जमाकर कंघी करते थे. उन्होंने हाल ही में किसी जवान औरत से दूसरी शादी की थी. वे क्लास में स्त्री-पुरुष संबंधों की चर्चा अकसर छेड़ देते थे और उस पर बहुत गंभीर होकर अपने विद्वतापूर्ण विचार व्यक्त करते थे; लेकिन बीच-बीच में कुछ इस तरह हंसते थे कि विद्वता का आवरण छिन्न-भिन्न हो जाया करता था. लेकिन फिर वे तुरंत गंभीर हो जाया करते थे. उनका नाम हम लोगों ने श्री पी रख लिया था. उन्होंने अकसर ढके शब्दों में यह भी कहा था कि वे हम दो लड़कों और एक लड़की का साथ कैंटीन जाना पसंद नहीं करते. लेकिन शुक्र है लड़की धाकड़ थी और उसने हम दोनों से साफ-साफ कहा था कि हमारी सिर्फ मित्रता है और मित्र के साथ चाय पीना अपराध नहीं है, लेकिन श्री पी उसे भयंकर अपराध मानते थे. इस तरह वे मुझसे, आमोद और किरण से कुछ नाखुश रहा करते थे और मौका आने पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता का डंडा उठा लेते थे.

एक अत्यंत निरीह किस्म के प्राध्यापक थे जो हमें ब्रजभाषा की रीतिकालीन कविता पढ़ाते थे. पता नहीं क्या रहस्य था, क्या चमत्कार था, क्या अजीब बात थी, क्या न समझ में आने वाली गुत्थी थी कि उनकी क्लास में मुझे बहुत नींद आती थी. लगता था कि मैं वर्षों से सोया नहीं हूं और इससे अच्छी लोरी मैंने कभी सुनी ही नहीं है. मैं अपने चुटकी काट लेता था. आंखें फाड़ता था. क्लास शुरू होने से पहले ठंडे पानी से मुंह धोता था. मुंह में कुछ रखकर बैठता था. लेकिन सब बेकार. अंत में मैंने यह तरकीब निकाली थी कि मैं बुर्के वाली लड़की के बराबर बैठता था और जब नींद आने लगती थी तो उसे छू लेता था. उसके छूने से नींद गायब हो जाती थी और कविता भी अच्छी तरह समझ में आती थी. लेकिन यह डर बना रहता था कि कहीं लड़की ने किसी से कुछ कह दिया तो लेने के देने पड़ जाएंगे. पर उसने कभी किसी से नहीं कहा. शायद उसकी भी वही समस्या रही होगी जो मेरी थी. दीगर बात यह है कि मैं बहुत शालीन ढंग से छूने

के अतिरिक्त कभी और आगे नहीं बढ़ा. वह जान गई कि यह लड़का अपनी सीमाएं समझता है.

एक प्राध्यापक घोषित कवि थे. घोषित इसलिए कि बाकी प्राध्यापक भी कविता करते थे पर घोषित नहीं थे. मतलब स्वत: सुखाय वाला मामला था. पर 'मधु' जी अपने को स्थापित कवि समझते थे. मधु जी वैसे तो उपन्यास के विषय हैं. उन पर कुछ पंक्तियां या पृष्ठ लिखकर केवल उनका अपमान ही किया जा सकता है. लेकिन अपनी खोज में यह पाप भी करना पड़ेगा. पर आशा है कि 'मधु' जी की आत्मा मुझे क्षमा करेगी.

मधु जी का पूरा नाम ऐसा था कि उन्होंने हाइ स्कूल करने के बाद ही उसे बदलने की जरूरत महसूस कर ली थी और माता-पिता का दिया नाम बदलकर पेन नेम 'मधुकर मधु' रख लिया था. अब बहुत जरूरी कागज़ात के अलावा या उन्हें छेड़ने के प्रयासों के अतिरिक्त उसका इस्तेमाल कहीं नहीं होता था. अपना पुराना नाम लिखा देखकर मधु जी को सख्त चोट पहुंचती थी. क्रोध आ जाता था. उनके शत्रु यह जानते थे. शत्रुओं की संख्या भी अच्छी-खासी थी. इसलिए शत्रु कोशिश करते रहते थे कि मधु जी का पुराना नाम बराबर चलता रहे तो दूसरी ओर मधु जी अपना पुराना नाम जड़ से मिटा देने के प्रयासों में जुटे रहते थे. कभी-कभी उन्हें गुमनाम पत्र मिलते थे जिनके लिफाफों पर उनका पुराना नाम लिखा होता था. कभी-कभी स्थानीय समाचार पत्रों में कवि सम्मेलन की खबरों में उनका पुराना असली नाम तथा उपनाम 'मधु' छाप दिया जाता था. बहरहाल, नाम वाला कांटा 'मधु' जी की जिंदगी का एक नासूर बना हुआ था.

मधु जी रसिक थे. प्रमाण आठ बच्चों के इकलौते पिता होने के दावेदार के अतिरिक्त उनके प्रेम प्रसंग भी चर्चा में आते रहते थे. कुछ सामान्य थे. कुछ रोचक थे. एक रोचक प्रसंग कुछ इस प्रकार था—'मधु जी की एक शोध छात्रा थी. जब उसका शोध प्रबंध पूरा हो गया तथा नौबत यहां तक पहुंची कि उसे मधु जी के हस्ताक्षरों की आवश्यकता पड़ी तो मधु जी को उसमें सैकड़ों दोष दिखाई देने लगे. एक दिन एकांत में उन्होंने शोध प्रबंध के सबसे बड़े दोष की ओर इशारा किया. दोष यह था कि शोध छात्रा को ठीक से साड़ी बांधना न आता था. मधु जी ने उससे कहा कि शोध छात्रा एक दिन, जब उनकी पत्नी और बच्चे मंदिर गए हों तो, उनके घर आ जाए और उनसे साड़ी बांधना सीखकर दोषमुक्त हो जाए.

जब मैं लोगों से कहता था कि मैंने हिंदी में दाखिला लिया है, तो मेरी तरफ इस तरह देखते थे जैसे मैं पागल हो गया हूं या अपने पैर कुल्हाड़ी मार रहा हूं. या लोग सिर्फ मुसकराते थे

जैसा कि होता है, लड़की सेमीनार रूम में बैठकर रोने लगी. कुछ लड़कों ने उसे सलाह दी कि वह विभागाध्यक्ष से यह सब कहे. विभागाध्यक्ष ने कहा—मधु जी पुरुष हैं और तुम नारी हो. मैं इसके बीच कहां आता हूं?'' यह जवाब सुनकर लड़की और अधिक रोने लगी. अंततः मामला पुरानी कहानियों जैसे सख्त आइ.सी.एस. उपकुलपति के पास पहुंचा. ये उपकुलपति बदतमीज होने की सीमा तक सख्त थे. उन्होंने विभागाध्यक्ष तथा मधु जी से कहा कि यदि यह मामला न सुलझाया गया तो उन दोनों को 'सस्पेंड' कर दिया जाएगा. उसके बाद विभागाध्यक्ष के कमरे में एक नाटक हुआ जिसमें तीन पात्र थे, दर्शक कोई न था. लेकिन श्रोता केवल दीवारें न थीं. नाटक का अंत इस तरह हुआ कि मधु जी ने शोध छात्रा को बहन मान लिया. विभागाध्यक्ष ने उसे बेटी माना. शोध छात्रा ने उन दोनों का चरण स्पर्श किया और मधु जी को भाई तथा विभागाध्यक्ष को ताऊ माना.

इस तरह के छोटे-बड़े प्रसंग मधु जी की कविता के लिए कच्चे माल का काम करते थे. ऐसे प्रसंग बहुत थे. लड़कों की एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को अमूल्य विरासत के रूप में ये प्रसंग 'पासऑन' करती रहती थी.

विभाग के एक और वरिष्ठ प्राध्यापक कृष्ण भक्त थे और वे केवल कृष्ण भक्ति काव्य पढ़ाते थे. उसके अतिरिक्त कोई और पेपर वे न पढ़ाते थे. क्लास में प्राय: मस्त हो जाया करते थे. कहते थे यह प्रभु की कितनी कृपा है कि मेरा पूरा जीवन भक्तिमय है. भक्ति की भक्ति होती रहती है और व्यवसाय का व्यवसाय है. यह भी कहते थे कि घर में भी कृष्ण भक्ति में लीन रहता हूं. इनकी अध्यापन शैली बहुत सरल थी. केवल काव्य पाठ करते थे. उसमें स्वयं डूबे रहते थे. हमसे भी यह आशा करते थे कि हम भी डूब जाएं. उसके अतिरिक्त किसी अन्य पक्ष पर बात करना उन्हें पसंद न था.

जैसे-जैसे समय बीत रहा था मेरी, आमोद और किरण की मित्रता बढ़ रही थी. आमोद कविताएं लिखता था. मस्त किस्म का लड़का था. कभी-कभी कई-कई दिन दाढ़ी न बनाता था. चप्पलें पहनना पसंद करता था और झूम-झूमकर चलता था. नई कविताएं सुनाया करता था. बोहेमियन जैसा लगने की कोशिश करता था. मैं यह प्रतीक्षा कर रहा था कि किरण उसकी कविताओं में कब आती है. लेकिन अब तक ऐसा न हुआ था.

एक दिन यह हुआ कि किरण और आमोद श्री पी के कमरे में गए. श्री पी दो अन्य अध्यापकों के साथ गप्प-शप्प मार रहे थे. इन दोनों को कमरे में आते देखकर श्री पी ने हंसकर कहा—तुम कनक किरण के अंतराल में लुक-छिपकर चलते हो क्यों? 'प्रसाद' की इस पंक्ति को सुनते ही अन्य प्राध्यापकों ने ठहाका लगाया. आमोद और किरण को काटो तो खून नहीं. दोनों उलटे पैरों लौट गए. श्री पी बुलाते रहे. सेमीनार रूम में जाकर किरण ने श्रीपी की को हिंदी, उर्दू, पंजाबी में गालियां देनी शुरू कर दी. प्रमोद भी बहुत नाराज था. दोनों शिकायत करना चाहते थे. पर केस नहीं बनता था. बनता था तो बहुत ही साधारण. अब क्या किया जाए? इसी नाजुक मोड़ पर कहानी में एक नया पात्र आता है—किरण का भाई राकेश. खाते-पीते परिवार का होने के कारण उसके पास मोटरसाइकिल थी. वह अकसर उस पर बैठकर आता था. इतिहास में एम.ए. कर रहा था और विश्वविद्यालय के रंगबाज टाइप के छात्रों में था. गुंडा या बदमाश नहीं था. लेकिन उसकी अच्छी धाक थी. छात्र संघ के चुनाव में उसका दबदबा रहता था और धाकड़ के रूप में उसकी ख्याति थी. किरण ने श्री पी वाली बात उसे बताई.

श्री पी साइकिल से घर लौट रहे थे. सड़क पर कुछ सन्नाटा था. सामने से एक तेज रफ्तार मोटर साइकिल आ रही थी. श्री पी ने मोटर साइकिल के लिए पूरा रास्ता छोड़ रखा था पर जैसे-जैसे वह पास आ रही थी उसकी रफ्तार बढ़ रही थी और दिशा बिलकुल उनके सामने. वे डर गए. लेकिन इससे पहले कि कुछ कर सके. मोटर साइकिल बिलकुल उनके सामने आ गई. फिर जोर का ब्रेक लगा. तेज आवाज आई. मोटर साइकिल का अगला पहिया श्री पी की साइकिल के अगले पहिए से एक दो इंच के फासले पर ठहर गया. श्रीपी के दिल की धड़कनें तेज थीं ही लेकिन राकेश को देखते ही और बढ़ गई. वे सब कुछ एक झटके में समझ गए. राकेश ने बड़े क्रूर ढंग से मोटर साइकिल खड़ी की और तेजी से उनकी ओर बढ़ा. वे कांप गए. राकेश ने अपने मजबूत हाथ से उनकी पुरानी साइकिल का हैंडिल पकड़ लिया.

''नमस्ते सर'' राकेश ने भारी-भरकम आवाज में कहा.

''नमस्ते...नमस्ते...'' उनका गला सूख रहा था-कैसे हैं सर?

"ठीक हूं भइया...ठीक हूं.. तुम कैसे हो."

"मुझे क्या होगा.. आप बताइए... घर जा रहे हैं." राकेश ने इस तरह कहा जैसे कह रहा हो, आप घर जा रहे हैं लेकिन मैं चाहूं तो आप अस्पताल पहुंच सकते हैं. "और तो सब ठीक है न?"

"हां हां ठीक है."

"अच्छा नमस्ते.." वह जाने के लिए मुड़ा लेकिन फिर श्री पी की तरफ घूम गया और बोला—ठीक ही रहना चाहिए." श्री पी कांपने लगे. राकेश तेजी से मोटर साइकिल पर बैठा और बड़े क्रूर ढंग से एक झटके के साथ आगे बढ़ गया.

श्री पी ने अगले दिन क्लास में छायावाद नहीं पढ़ाया. छायावाद बहुत अमूर्तन हो गया था. उन्होंने अपने प्रिय विषय सेक्स पर भी बातचीत नहीं की. उन्होंने अपने पिता जी की महानता और विद्वता के किस्से भी नहीं सुनाए. वे केवल यह बताते रहे कि वे कितने अच्छे, सच्चे, सीधे, सरल, भोले आदमी हैं. वे छात्रों और विशेष रूप से छात्राओं का बहुत सम्मान करते हैं. उन्हें भारतीय संस्कृति के अनुसार देवियां समझते हैं. जब उन्होंने देखा कि देवी कहने से भी बात नहीं बन रही है तो बोले मैं तो क्लास की ही नहीं पूरे विश्वविद्यालय की सभी लड़कियों को बहन समझता हूं. उनका इतना सम्मान करता हूं कि उनको अपमानित करने की बात सोच भी नहीं सकता. श्री पी ने ऐसा शानदार अभिनय किया कि अभिनेताओं को वैसा करने के लिए काफी अभ्यास और दसियों टेक देने पड़ते . उनकी उच्चकोटि की मार्मिक भावनाओं के प्रति अपनी पूरी सदाशयता दर्शाते हुए क्लास के सभी लड़कों ने श्री पी को आदर्श भारतीय, आदर्श प्रोफेसर, आदर्श व्यक्ति, आदर्श पति, आदर्श पिता, मतलब यह कि आदर्श की साक्षात मूर्ति स्वीकार किया. हम लोग भी भावुक हो गए. श्री पी तो भावुक थे ही. माहौल कुछ बिदाई समारोह जैसा हो गया. अब स्थिति यह हो गई कि श्री पी जो कहते थे हम उनकी 'हां' में 'हां' मिलाते थे. हम जो कुछ कहते थे श्री पी उसकी हां में हां में मिलाते थे. लगने लगा कि हम एक-दूसरे से इतना सहमत हैं जितना सहमत हो पाना असंभव है. यानी हमने असंभव को संभव कर दिखाया था. इस सबके बावजूद मजे की बात यह थी कि हम सब और शायद श्री पी सभी जानते थे कि हम सब जो कुछ कह रहे हैं, उसका मतलब वह नहीं है जो है. जो है वह नहीं है. यही एक सूत्र था जो मैंने पकड़ा था. इसी सूत्र के आधार पर मैंने अपनी शिक्षा को जांचा तो पता चला कि जो दिखता है वैसा नहीं है. अपने आपको को भी देखा तो यही पाया. अपने परिवेश को भी पाया जो दिखता है वह नहीं है. यहीं से मेरी समस्याएं शुरू हो गईं. अब तो जैसी मेरी शिक्षा हुई थी वह आप जान ही गए हैं. उस पर सोने में सोहागा यह कि वह वैसी नहीं थी जैसी लगती थी. जब मुझे यह लगने लगा कि मैंने जो कुछ भी अब तक पढ़ा है वह 'ढोंग' था तो मुझे बहुत खुशी भी हुई. अपने अध्यापकों के प्रति मेरे मन में सम्मान भी जागा. क्योंकि यदि वे वास्तव में गंभीरता से पढ़ा देते तो शायद मैं कहीं का न रहता. ■

एक अत्यंत निरीह किस्म के प्राध्यापक थे जो हमें ब्रजभाषा की रीतिकालीन कविता पढ़ाते थे उनकी क्लास में मुझे बहुत नींद आती थी. लगता वर्षों से सोया नहीं हूं

उपहार का अनोखा ढंग बढ़ता रहे आपके बच्चे के संग.

"आज का दिन मेरी ज़िन्दगी का एक सबसे प्यारा दिन है।" मेरी 20 वर्षीय बेटी के मुंह से ये उद्गार बरबस निकल पड़े थे उस दिन ममता जमा योजना का अनूठा उपहार पाकर. यह सचमुच एक ऐसा उपहार है जो आपके बच्चे का भविष्य बनाए, उसे संवारे.

इस योजना में, यदि आप 5 साल तक हर महीने 100/- रुपये जमा करते हैं तो यूं तो आप केवल 6,000/- रुपये जमा करेंगे, लेकिन परिपक्वता अवधि पूरी होने पर आपके बच्चे को मिलेगी कुल मिलाकर

34,279 रुपये की एकमुश्त विशाल राशि, जो आपके आरंभिक अंशदान की 5.71 गुना है. ये एकमुश्त राशि आपके बच्चे की उच्च शिक्षा, शादी-ब्याह या कैरियर की शुरूआत में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगी. और जब आपका बच्चा खुशी से 'वाह-वाह' कर उठेगा तो आपसे ज़्यादा प्रसन्नता और किसे होगी?

अधिक जानकारी के लिए, बैंक ऑफ इंडिया की नज़दीकी शाखा से सम्पर्क करें.

ममता
जमा योजना

बैंक ऑफ़ इंडिया
आपकी सेवा में सदैव तत्पर...

MAGNUMS/14/HIN/93

भवन निर्माण सामग्री और उत्पादों में बेहतर मुनाफ़े के लिए बाज़ार में गहरे पैठना पड़ता है. डायरेक्टरी ऑफ बिल्डिंग मेटेरियल्स ऐंड प्रोडक्ट्स आपके लिए यह काम करने को तत्पर है. यदि आप भवन निर्माण सामग्री के व्यापार और उससे जुड़े उत्पादों के आयात से संबंध रखते हैं तो आप इंडियन डायरेक्टरी ऑफ बिल्डिंग मेटेरियल्स द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे विपणन (मार्केटिंग) के अवसर की अनदेखी नहीं कर सकते.

यह एक ऐसी निर्देशिका है जो 'यलो पेजेज़' से कहीं आगे की चीज है. यह देश में निर्माण तकनीक, उत्पादकों के बारे में विवरणों, सामग्रियों, उत्पादों, मानकों और मानदंडों की सबसे विस्तृत संदर्भ निर्देशिका होगी. सामग्रियों और पुर्ज़ों आदि के लिए प्रथम संदर्भ सूत्र के रूप में यह निर्देशिका बड़े पैमाने पर ख़रीद के मामले में भवन निर्माताओं, वास्तुविदों, योजनाकारों, ठेकेदारों, व्यापारियों, इंजीनियरों और उत्पादों का उपयोग करने वालों के फ़ैसलों को निश्चित रूप से प्रभावित करेगी.

इस पथप्रदर्शक प्रकाशन का प्रयोजन शहरी विकास मंत्रालय की बिल्डिंग मेटेरियल्स ऐंड टेक्नॉलॉजी प्रोमोशन काउंसिल (बी.एम.टी.पी.सी.) कर रही है. इसमें अपने ब्यौरे आप निःशुल्क दर्ज करा सकते हैं बशर्ते आप इसकी योग्यता शर्तों को पूरा करते हों.

योग्यता शर्तों को पूरा करने के प्रथम कदम के रूप में कृपया साथ के कूपन को भरकर निम्नलिखित पते पर भेजें:

The Executive Director, STEM
35, 17th Main, 6 Block,
Koramangala, Bangalore-560095.
Or call 080-533664, or fax at
080-533358 (Attn. 072).

आपका भरा कूपन मिलने पर हम उक्त निर्देशिका में आपके ब्यौरे शामिल करने के लिए विस्तृत आवेदन पत्र भेजेंगे. ब्यौरों को शामिल करने का अंतिम निर्णय, संबंधित मामलों के विशेषज्ञों के दल द्वारा किया जाएगा.

कृपया जल्दी करें! 1994 वर्ष की निर्देशिका के लिए अंतिम ब्यौरे प्राप्त करने की आख़िरी तारीख़ नज़दीक आ रही है.

We're Building Business Material for the Building Material Business

Yes, I want to enlist in the Directory of Indian Building Materials & Products

Product Description/Category (attach more details, if necessary)

☐ Manufacturer ☐ Importer/Distributor ☐ Other

Organisation details (Fill in or attach business card)

Name (First) (Last)

Designation

Organisation Name

Organisation Address

City PIN State

Phones Fax Telex

BMTPC/2/IT

BUILDING MATERIALS AND TECHNOLOGY PROMOTION COUNCIL bmtpc

MINISTRY OF URBAN DEVELOPMENT, GOVT. OF INDIA, NEW DELHI 110011

अपनी चमड़ी

• अमृत राय
• चित्र: महेंद्र सोनी

आदमी को सबसे अधिक चिंता अपनी चमड़ी की ही रहती है. उसे बचाने के लिए वह हर कीमत पर झुकने को तैयार रहता है. आत्मसम्मान की कीमत पर भी.

अपने इस शहर इलाहाबाद की सिविल लाइंस का जवाब नहीं. ऐसा छोटा-सा कस्बेनुमा शहर और उसकी ये लंबी-चौड़ी सिविल लाइंस. अंग्रेजों ने सचमुच बड़े प्यार से बसाया होगा इसको. जभी तो सुना है एक समय वो भी था जब काला आदमी यहां घुस नहीं सकता था... यहां अंग्रेज बहादुर रहता है. वो सब तो जैसे अब एक बीते युग की कहानी है लेकिन इसमें शक नहीं कि इस जगह की आन-बान ही कुछ और है.

और सवेरे घूमने वालों के लिए तो ये जगह बिलकुल जन्नत है. कहां से कहां तक जाने वाली ये लंबी-लंबी सड़कें जो भोर के समय मुंह अंधेरे ऐसी खाली-खाली मिलती हैं कि जी खुश हो जाता है. कभी अपने ही जैसा कोई हवाखोरी का शौकीन मिल जाता है वर्ना वो भी नहीं. अकेले घूमो तो अकेले घूमो, दुकेले घूमो तो दुकेले घूमो. आप अपने मन के राजा हैं, चाहे जिधर निकल जाइए.

सड़कों के दोनों ओर, और दोनों ओर नहीं तो कम-से-कम एक ओर तो जरूर, बड़े-बड़े, जाने कितने पुराने-पुराने छतनार पेड़ खड़े हैं. नीम के, इमली के, बरगद के, पीपल के, और भी पता नहीं क्या-क्या. बड़ी तरी मिलती है उनसे. और फिर बाग-बगीचे का भी शौक है लोगों को. बड़े-बड़े वही पुराने साहबों के बंगले हैं लोगों के पास, ढेरों-ढेरों जमीन के साथ. अब जो जितना शौकीन हो, जितनी जिसकी समाई हो, लोगों ने अपने बगीचे लगा रखे हैं...फूलों की क्यारियां भी हैं, साग-सब्जी के खेत भी हैं, कुछ पेड़ आम-अमरूद, नींबू-नारंगी-मुसंबी के भी खड़े हैं. अच्छा है, अपना ये कस्बाती शहर बहुत अच्छा है. हमें महानगर नहीं बनना.

मैंने पहले कभी ये शहर नहीं देखा था, इसलिए जब मेरे तबादले का हुक्म आया तो मैंने सिर पीट लिया... ये किस कालेपानी में फेंक दिया कम्बख्तों ने! लेकिन अब कोई मुझसे पूछे, इन्हीं चार महीनों के बाद! अब मेरा बस चले तो मैं कहीं जाऊं ही नहीं, यहीं से रिटायर करूं और फिर यहीं बस भी जाऊं. मगर खैर, ये सब तो अभी आगे की बातें हैं, खयाली पुलाव पका लो जो पकाना हो, कौन जाने क्या होगा.

जो हो, अभी कम-से-कम हमारा नसीब अच्छा रहा कि संयोग से हमें घर भी मिल गया बड़ी अच्छी जगह, अशोकनगर में. सीधे अपने इसी हेस्टिंग्स रोड पर निकल जाते हैं हाइकोर्ट तक और फिर वहीं से घूम जाते हैं मिलिटरी एरिया में—जहां और भी सफाई, और भी हरियाली मिल जाती है. अच्छा-खासा तीन-चार मील का घूमना हो जाता है जिसकी तरावट फिर सारे दिन बनी रहती है.

आजकल तो खैर मौसम भी बहुत अच्छा चल रहा है. दिन तो जरूर कुछ गरम हो जाता है मगर उतने सवेरे एक हल्की-सी बड़ी सुहानी खुनकी रहती है हवा में. ऐसे तरोताजा होकर हम लौटते हैं कि पूछो मत. जी खुश हो जाता है. फिर प्रिया चाय बनाकर ले आती है और हम दोनों बरामदे में बैठकर उसका मजा लेते हैं. सचमुच अच्छा नसीब था मेरा जो शादी के कुछ ही महीने बाद मेरा तबादला इस शहर का हो गया.

आज भी हम दोनों अपनी इसी हाइकोर्ट वाली सड़क पर बातें करते, हंसते-हंसाते चले जा रहे थे कि एक जगह जहां बहुत घने पेड़ों के कारण अभी हल्का-सा अंधेरा था, तीन गुंडों ने पता नहीं कहां से अचानक निकलकर हम दोनों को घेर लिया. दो के हाथ में अपने यही देसी तमंचे थे और तीसरे ने पीछे से अपना छुरा मेरी कमर से लगा रखा था. डर के मारे प्रिया मुझसे और भी आ सटी थी और मैंने जैसे उसे आश्वस्त करते हुए अपनी बांह में घेर लिया था.

तभी उस सामने वाले आदमी ने, जो शायद उनका सरदार था, आगे बढ़कर प्रिया को पकड़ लिया और डपटकर मुझे हुक्म दिया—"छोड़ दो इसको, अब ये हमारी है! ..." ये कहते हुए उसने आगे बढ़कर प्रिया को अपनी ओर घसीटना चाहा लेकिन प्रिया ने उसका हाथ झटक दिया. तब उस आदमी ने आव देखा न ताव, एक जोर का झांपड़ उसे रसीद किया और दोबारा उसे पकड़कर अपने कब्जे में ले लिया... मेरी आंखों में खून उतर आया पर मैं कुछ न कर सका. एक आदमी मेरी पीठ से अपना छुरा लगाए खड़ा था और मेरे सामने खड़े हुए उन दोनों खूनियों के हाथ में अपने-अपने तमंचे, वही देसी कट्टे थे!

गुस्से के मारे मैं भीतर ही भीतर उबल रहा था पर ऐसा गुस्सा किस काम का जो कुछ कर न सके. छी छी! इतनी शर्म आ रही थी मुझे अपनी इस जिल्लत पर कि मैं बता नहीं सकता. लानत है ऐसी जिंदगी पर...

तभी मैंने उस आदमी को बोलते सुना—"अब तुम पलटो और तेजी से भाग जाओ. और अच्छी तरह कान खोलकर सुन लो. अगर तुमने जरा भी शोर मचाया और किसी पुलिस-फुलिस को खबर दी तो इसको तो हम मार ही देंगे, तुम्हारी भी बोटी-बोटी काटकर फेंक दी जाएगी. किसी धोखे में नहीं रहना. हम झूठी धमकी नहीं देते."

> **एक रात ये रूप की रानी तुम्हारी, हमारा बिस्तर गरम करेगी...कल सवेरे इसी समय यहां आ जाना, तुम्हारा माल तुम्हें मिल जाएगा!"**

और फिर जैसे मुझको अंतिम रूप से जलील करते हुए चलते-चलते कहा—"जाओ अब तुम.. एक दिन और एक रात ये रूप की रानी तुम्हारी, हमारा बिस्तर गरम करेगी.. कल सवेरे इसी समय यहां आ जाना, तुम्हारा माल तुम्हें मिल जाएगा!"

और मैं पिटे हुए कुत्ते की तरह अपने घर आ गया.

अगले दिन मैं निश्चित समय से आध घंटा पहले ही वहां पहुंच गया. मेरा जी धड़क रहा था. आएंगे भी कि उड़ा ले गए, हमेशा के

लिए उड़ा ले गए, मुझे झांसा देकर. झांसा देकर? भांग खा गए हो क्या? झांसा देकर नहीं, डंके की चोट पर उड़ा ले गए! गुर्दे में दम था तो रोक क्यों नहीं लिया? बहुत से बहुत छुरा ही तो भोंक देता. वो भी अच्छा होता इस जिल्लत की जिंदगी से! अब कभी आंख तो मिला नहीं सकोगे प्रिया से. हां अपनी चमड़ी जरूर तुमने बचा ली!

किसी करवट मुझे चैन न मिल रहा था. मैंने घड़ी पर नजर डाली...पौने छह बजा था. समय तो हो गया. पता नहीं साले आएंगे भी कि नहीं. गुंडों की बात का क्या ठिकाना! ... कि तभी एक मोटर वहां आकर रुकी और उसी आदमी ने जिसने प्रिया को थप्पड़ ही थप्पड़ मारे थे और जरूर अपनी टोली का सरदार था, प्रिया को गाड़ी से उतारते हुए मुझसे कहा, "लो अब संभालो अपनी चीज! ..." और मोटर तेजी से आगे निकल गई."

चेहरे पर झाड़ू फिरी हुई, मैंने डरते-डरते जरा-सा आगे बढ़कर उसका हाथ अपने हाथ में लेना चाहा, लेकिन प्रिया ने शेरनी की तरह गरजते हुए कहा, "खबरदार, जो तुमने मुझे हाथ लगाया."

मैं ठिठक गया. मेरे चेहरे पर तो कालिख पुती हुई थी. आगे बढ़ता भी कैसे! भिनभिनाते हुए मैंने कहा, "तुम्हें तो मैंने कोई दोष नहीं दिया प्रिया."

अपनी उसी बिफरी हुई आवाज में प्रिया ने तुर्शी से जवाब दिया, "तुम? दोष दोगे? मुंह भी है तुम्हारा? दोष तो मैं तुम्हें देती हूं. इसी बूते पर तुम मुझे ब्याहकर लाए थे, मेरी मांग में सेंदुर डाला था! गुंडे-बदमाश तुम्हारी आंखों के सामने मेरी आबरू के साथ खेलते रहे और जरा-सी गरमी नहीं आई तुम्हारे खून में! छी छी! और तुम मर्द कहते हो अपने को! अब जाओ, अपने उसी दड़बे में दुबककर बैठो और अगर कुछ भी लाज-शरम बाकी है तो डूब मरो चुल्लू भर पानी में. मैं चली जाऊंगी जहां मुझे जाना होगा. दुनिया बहुत बड़ी है. मेरी फिकर मत करो. औरत को जब तक अपनी आबरू की चिंता रहती है, तभी तक उसको खतरा है. एक बार वो बाजार में निकल जाती है और कोठे पर जा बैठती है, तब दुनिया उसके पैर चूमती है. तुम तो जानते होगे, बड़े से बड़े लोग कोठों की सैर करते हैं, तुम भी चले आना किसी रोज़, जब तुम्हारा जी न माने! अब वहीं पर अपनी भेंट होगी. तुम्हारे घर में अब मेरे लिए कोई जगह नहीं... वो आदमी जो मुझे ब्याहकर लाया था, कल सबेरे मर गया!"

बड़ी-बड़ी चिरौरी की मैंने, बहुत-बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, पर उसने एक नहीं सुनी मेरी. सच तो ये है कि आज की ये प्रिया मेरी प्रिया न थी, ये कोई दूसरी ही औरत थी. वो जैसे आपे में न हो. जैसे कोई भूत सवार हो उस पर. वो लंबे-लंबे डग भरती हुई तेजी से आगे निकल गई और मैं बस देखता रह गया, पांव पकड़कर भी न रोक सका उसे.

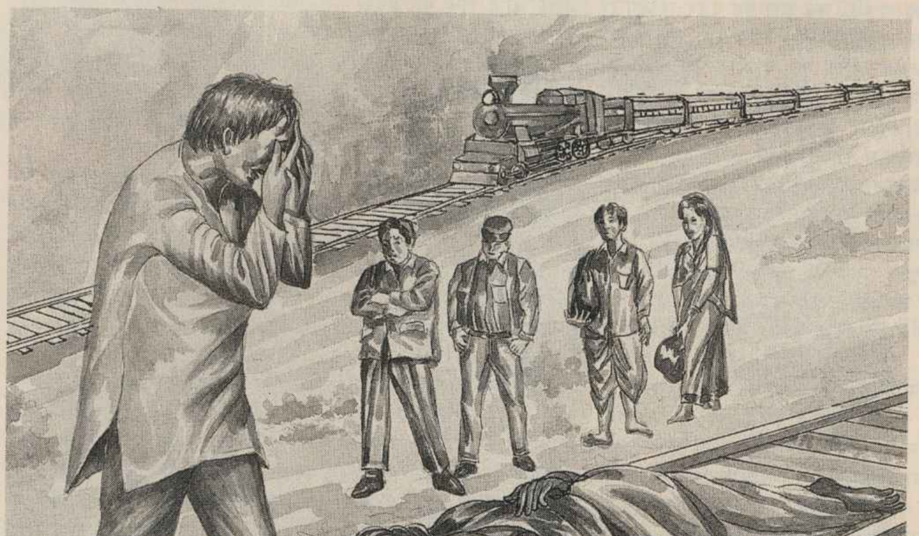

मैं कैंटूनमेंट थाने में रिपोर्ट करने के लिए भागा. मगर अपनी पुलिस का जो हाल है, पचास जिरह करने के बाद जब तक वो मेरी रिपोर्ट लिखे और ज़रा-सी हरकत उसमें आए, प्रिया जाने कहां, किस दिशा में चली गई होगी.

अगले दिन सवेरे मैं बिसूरता बैठा था कि अखबार आया. इलाहाबाद वाले पन्ने पर एक खबर छपी थी उसमें कि एक जवान औरत दिन के करीब बारह-एक बजे बमरौली के आगे और मनौरी से पहले कहीं पर कालका मेल से कटकर मर गई. चेहरा बेतरह कुचल गया था. लाश पहचानी न जाती थी.

मैंने खबर पढ़ी और वहीं कुर्सी पर बैठे-बैठे मुझे चक्कर आ गया. पता नहीं कितनी देर मैं उसी नीम-बेहोशी की हालत में पड़ा रहा और जब ज़रा-सा होश संभला तो बस एक ही बात मेरे मुंह से निकली—हे भगवान! ये क्या हुआ...

जाने क्यों मेरे शरीर की रग-रग पुकार-पुकारकर कह रही थी कि ये औरत और कोई नहीं, मेरी प्रिया ही थी. कोठे-वोठे पर बैठने की बातें बस बातें थीं, वो मौत थी जिसकी झलक मैंने भोर के उस धुंधलके में कल सवेरे उसकी आंखों में देखी थी!

मैंने मोटर उठाई और उसे पागलों की तरह दौड़ाता हुआ दस-बारह मिनट में ही बमरौली के आगे उस छोटे-से गंवई स्टेशन पर पहुंच गया, जहां वारदात हुई थी. भीड़ को चीरते हुए भीतर घुसकर मैंने एक नजर उस लाश पर डाली. खबर सही थी. चेहरा बेतरह कुचल गया था. पर मुझे पहचानते देर नहीं लगी और मैं सिर पकड़कर बैठ गया. ■

पलंग

जीवन की सांझ में जब सारे सहारे छूट जाते हैं तब पूरा जीवन कुछ स्थूल प्रतीकों के इर्दगिर्द केंद्रित हो जाता है और व्यक्ति के पूरे अस्तित्व के लिए वह जीवन-मरण का बहाना बन जाता है. उसकी मां शादी में जो पलंग लेकर आई थी वह उसके बुढ़ापे में उसके लिए ऐसा ही प्रतीक बन गई थी.

• प्रियंवद
• चित्र: स्वागता सेनगुप्ता

उस साल जब पलाश की नंगी छितरी शाखों पर पहला फूल खिला तब मां पूरी तरह स्वस्थ थी...जब पूरा पेड़ दहकता जंगल बन गया तब तक मां बीमार पड़ चुकी थी और जिस रात अकस्मात भयानक बारिश से सारे फूल टूटकर गिर गए थे और पेड़ के नीचे कुचले सुर्ख फूलों का दलदल बन गया था, मां मर गई थी.

वह एक छोटा-सा... पुरानी, सीलन भरी उखड़ी पपड़ियों वाला तीन कोनों का कमरा था जिसमें हम रहते थे. एक कोने में मां थी, दूसरे में मैं और तीसरे में एक बड़ा-सा पलंग जिस पर मैं मां के साथ सोता था. उस कमरे के अपने कोनों पर हमारा पूरा अधिकार था और हम दोनों में कोई भी दूसरे के इस अधिकार में दखल नहीं देता था. मां अपने कोने में अपना पूरा साम्राज्य फैलाए रहती थी. एक छोटी-सी चौकी, उस पर उसके भगवान... पुराने जमाने के टिन के दो बक्से... दो गठरियां... कुछ मर्तबान... कुछ पुराने कपड़े...एक जोड़ी माला... टॉर्च... हाथ का पंखा... कुछ पुराने सिक्के वगैरह. मेरे हिस्से में कुछ खास नहीं था. कुछ किताबें... लकड़ी की पुरानी अलमारी... उसके अंदर सस्ती शराब की बोतलें... कुछ कपड़े और मेरी पकी उमर पर हमेशा फैली रहने वाली अदृश्य चुप्पी...लगभग उदासी या मनहूसियत के बीच की-सी कोई चीज. छोटी-सी खिड़की के पास तीसरा कोना था और उसमें वही बड़ा-सा पलंग था जो उस पूरे कमरे को अपनी भव्यता से आक्रांत किए रहता था. मां उसे अपनी शादी में लाई थी. मां को उस पलंग पर बड़ा गर्व था. पुराने जमाने का एक विशाल पलंग जिस पर मां कभी मेरे पिता के साथ सोती थी. उस पलंग से उसके कई बीते हुए दिन जुड़े थे जो अकसर रात को उसके आसपास जीवित हो जाते थे. कई रातों को मैंने चुपचाप मां को उन दिनों से बातें करते देखा और सुना था. अचानक यूं ही मुस्कराते...रोते और कभी-कभी लजाते हुए भी. मुझे अकसर लगता था कि मां मुझसे ज्यादा पलंग के नजदीक है और अकसर बहुत कुछ जो वह मुझसे नहीं कहती, चुपचाप पलंग के साथ बांट लेती है.

अकसर छुट्टियों में पूरे दिन या सुबह के खाली समय में चुपचाप मां को देखा करता था. वह बहुत सबेरे उठती और अपना काम पूरा कर देती थी. उसकी पूरी कोशिश होती थी कि उसकी आहट से मेरी नींद न खुले पर मैं अकसर जागकर उसे देखता रहता. उसकी हर गतिविधि इतनी नियंत्रित और निश्चित थी कि मैं आंखें बंद किए हुए भी समझता रहता कि वह क्या कर रही होगी. अब सफाई...अब कपड़े धोना...माला फेरना...या ऐसा ही कुछ. सुबह उठकर वह सबसे पहले अपना कोना साफ करती...फिर मेरा हिस्सा...फिर नहाती. नहाने में वह बहुत समय लेती. सफाई के लिए वह लगभग विक्षिप्तता की हद तक आग्रही थी. हर चीज को दो-तीन बार साफ करती...पूरा फर्श...दीवारें...बाल्टी...कपड़े और अपनी देह भी. अकसर वह सफाई करते-करते बाहर कमरे में चली आती...कुछ भूली चीज लेने या अंदर कुछ साफ करते-करते बाहर कुछ साफ करना याद आ जाने पर. मैं चुपचाप लेटा उसे देखता...उसकी झुकी कमर...लटकी झुर्रियां...सिकुड़ा हुआ मुंह और उस पर चिपका रहने वाला एक शाश्वत संशय. अकसर वह बाहर इस तरह आकर सिर्फ एक वस्त्र में ही ऐसा करने लगती, अपनी लगभग निर्वसनता से बेखबर. मैं तब आंखें बंद कर लेता और मुंह घुमा लेता.

उस पलंग से उसके कई बीते हुए दिन जुड़े थे जो अकसर रात को उसके आसपास जीवित हो जाते थे. रातों को मैंने मां को उन दिनों से बातें करते देखा था— मुस्कराते... रोते और कभी-कभी लजाते हुए भी.

मां की यह स्थिति मेरे अंदर हमेशा विचित्र-सी जुगुप्सा पैदा कर देती. मैं चाहता था उसे इस तरह अव्यवस्थित होने से रोकूं...अपनी घृणा व्यक्त करूं...पर मैं उससे कुछ स्पष्ट नहीं कह पाता था. यह मां की वर्षों की दिनचर्या थी. मुझे लगता था कि कुछ भी कहने पर वह अचानक इतनी लज्जित और असहज हो जाएगी कि उसके जीवन का पूरा संतुलन नष्ट हो जाएगा. वह सब जो वह इतनी आश्वस्ति और निश्चितता के साथ करते हुए सहज जीवन जीती है, बिखर जाएगा. मैं कुछ कहता नहीं पर फिर भी अपनी जुगुप्सा को छिपा नहीं पाता. पलंग से उठने के बाद उससे कुछ नहीं बोलता और चेहरे पर एक तरह की विकृति लिये बैठा रहता. मुझे वह भय और दुख से चुपचाप देर तक देखती रहती. कभी हिम्मत कर पूछ लेती, "क्या हुआ?"

मैं कुछ नहीं कहता. सिर झुकाकर सिगरेट फूंकता रहता. मैं नहीं चाहता था कि मैं कुछ कहूं....मेरे एक बार कुछ भी बोलने से वह उत्साहित हो जाती थी और फिर बहुत कुछ बोलना शुरू कर देती, जो मेरे और उसके बीच की मौन लेकिन स्वीकृत स्थितियों को अस्त-व्यस्त कर देता था. मेरी तनाव भरी खामोशी से उसके चेहरे की पीड़ा, अंदर की बेचैनी और बढ़ जाती.

"तबीयत खराब है?" वह एक बार फिर साहस करती. कुछ कड़वा बोलने के लिए मैं सिर उठाता पर उसके चेहरे की कातरता और उम्र का शैथिल्य देखकर चुप हो जाता. वह तब सचमुच कांप रही होती...इस आशंका से कि कहीं मैं हां न कह दूं. मेरी किसी भी पीड़ा की कल्पना से वह इसी तरह कांपने लगती.

मेरी इस चुप्पी से वह शायद कुछ अंदाज लगा लेती. मुझे यह कभी समझ में नहीं आया कि मां मेरे अंदर का सब कुछ कैसे जान लेती है...कौन-सा सूत्र होता है उसके पास. वह फिर सतर्क रहने लगती. अकसर उस अवस्था में बाहर नहीं निकलती या निकलती भी तो इस आश्वस्ति के साथ कि मैं सो रहा हूं. यह निश्चित करने के लिए शायद वह बहुत देर तक दरवाजे की आड़ से चुपचाप मुझे देखती रहती.

एक दिन मैंने कुछ ज्यादा शराब पी ली

थी...इसलिए कि जिस औरत से मैं शादी करना चाहता था और जो मुझसे शादी करना चाहती थी, उससे मेरा झगड़ा हो गया था. वैसे, हम बहुत दिनों से एक-दूसरे को प्यार करते थे...इतने दिनों से कि मेरी तरह वह भी धीरे-धीरे अधेड़ होने लगी थी. एकाध बाल सफेद हो गया था और छाती बिलकुल ढीली हो गई थी. थककर लगभग संवेदनहीनता की हद तक वह प्यार में निष्क्रिय रहने लगी थी. उस कमरे में एक चौथा कोना होता तो मैं उससे शादी कर लेता. इसी बात से वह अकसर मुझसे लड़ लेती. उसका कहना था कि पलंग को वहां से हटाकर हम उस कोने में रह सकते हैं. पर मैं जानता था कि

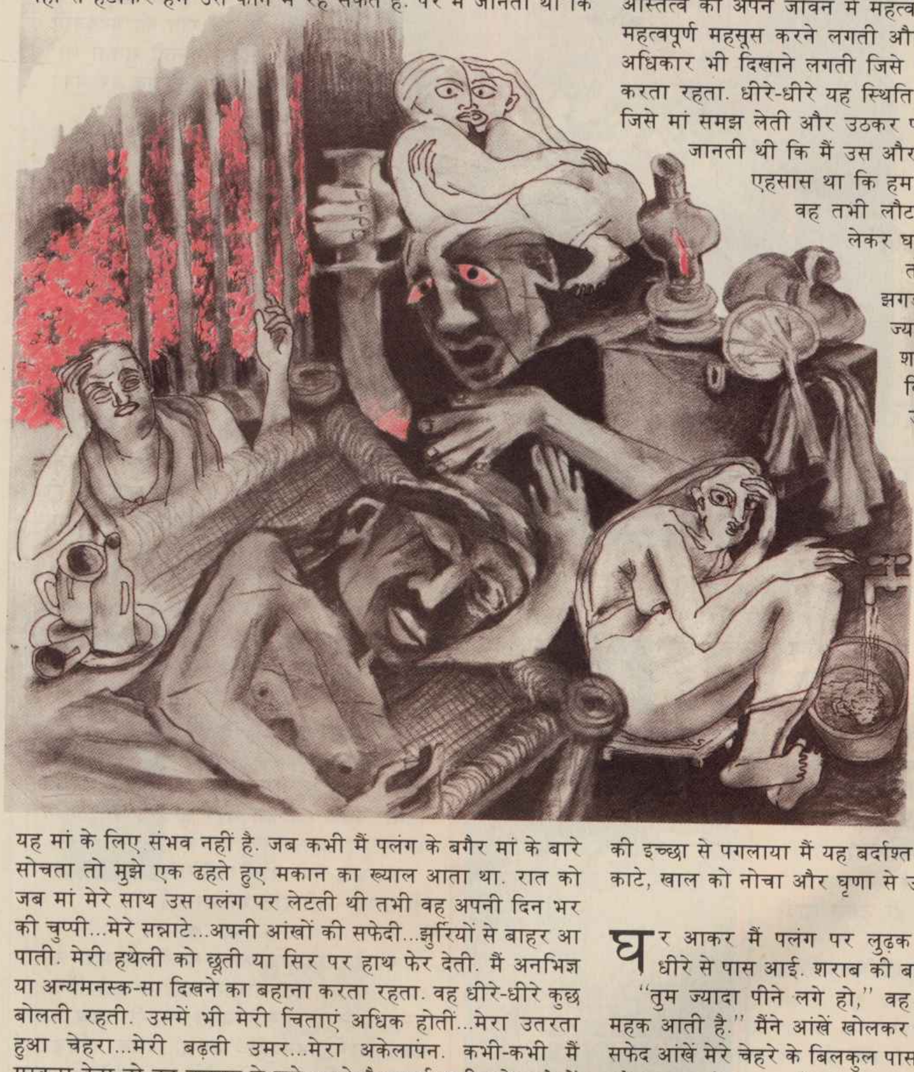

यह मां के लिए संभव नहीं है. जब कभी मैं पलंग के बगैर मां के बारे सोचता तो मुझे एक ढहते हुए मकान का ख्याल आता था. रात को जब मां मेरे साथ उस पलंग पर लेटती थी तभी वह अपनी दिन भर की चुप्पी...मेरे सन्नाटे...अपनी आंखों की सफेदी...झुर्रियों से बाहर आ पाती. मेरी हथेली को छूती या सिर पर हाथ फेर देती. मैं अनभिज्ञ या अन्यमनस्क-सा दिखने का बहाना करता रहता. वह धीरे-धीरे कुछ बोलती रहती. उसमें भी मेरी चिंताएं अधिक होतीं...मेरा उतरता हुआ चेहरा...मेरी बढ़ती उमर...मेरा अकेलापन. कभी-कभी मैं मुस्करा देता तो वह उत्साह से मुझे अपने वैभवपूर्ण अतीत के बारे में बताने लगती कि कैसे इसी पलंग पर वह इसी तरह लेटती थी और कैसे मैं इसी पलंग पर पैदा होने के बाद इसी जगह लेटता था. पलंग एक तरह से उसके अस्तित्व की अभिव्यक्ति था...उपस्थिति की सार्थकता...अर्थवत्ता था. पलंग पर ही उसे मेरा सामीप्य मिलता था जो उसकी बची हुई उमर का शेष इकलौता सुख था.

वैसे, मां भी उस औरत को जानती थी. मैं अकसर उसे अपने साथ कमरे में लाता था. वह मां से मिलती थी. उसे देखकर मां सचमुच खुश होती थी. उसे अपने कोने में बैठाती थी और खूब बातें किया करती थी... वह सब बातें जो वह या तो रात को पलंग से करती थी या जो मुझसे न कह पाने के कारण अपने अंदर जमा रखती थी. संभवतः मां के अंदर हमारे संबंधों के कारण स्वयं को लेकर कोई अपराधबोध था जिसे वह उस औरत से अधिक बातें करके, अधिक स्वागत करके दबाए रहती थी. अपने कोने में बैठा हुआ मैं उनकी बातें सुनता और चुपचाप सिगरेट पीता हुआ बीच-बीच में मुस्करा देता. मेरे मुस्कराने से मां इतराने-सी लगती और मुझसे और अधिक बातें करतीं. मेरे जवाब देने से उसे बहुत ज्यादा शांति मिलती क्योंकि वह यह मान लेती कि मैं स्वस्थ, सुखी व संतुष्ट हूं और उसके अस्तित्व को अपने जीवन में महत्व देता हूं. वह अचानक अपने को महत्वपूर्ण महसूस करने लगती और इस भावना से मेरे ऊपर कुछ अधिकार भी दिखाने लगती जिसे मैं अनिच्छा से चुपचाप स्वीकार करता रहता. धीरे-धीरे यह स्थिति मेरे लिए असहनीय होने लगती जिसे मां समझ लेती और उठकर पड़ोस के घर में चली जाती. वह जानती थी कि मैं उस औरत को घर में क्यों लाता हूं. उसे एहसास था कि हम क्यों एक लंबा एकांत चाहते हैं. वह तभी लौटती जब काफी देर बाद मैं उसे लेकर घर से चला जाता.

तो उस रात मेरा उस औरत से झगड़ा हो गया था. उस रात ठंड कुछ ज्यादा थी. इतनी कि मैंने वहीं शराब की दुकान पर कुछ घूंट पी लिए थे. बाकी शराब बचाकर मैं उसके घर गया था. मेरे अंदर उसके शरीर की तीव्र इच्छा हो रही थी. वह अपने कमरे में लेटी थी. शायद कुछ देर पहले रोकर चुप हो चुकी थी. उसकी आंखों में कीचड़ था और बाएं गाल पर एक आंसू चिपका था. मैंने उसे अपने घर चलने के लिए कहा. उसने मुझे दुत्कार दिया कि जब तक मैं उस पलंग को हटाकर उसे वहां नहीं रखता वह कभी मेरे घर नहीं जाएगी. शराब की गरमी और उसके शरीर की इच्छा से पगलाया मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सका. मैंने उसके होंठ काटे, खाल को नोचा और घृणा से उसे धकेलकर चला आया.

घर आकर मैं पलंग पर लुढ़क गया. मां जाग रही थी. वह धीरे से पास आई. शराब की बदबू से उसका मुंह टेढ़ा हो गया.

"तुम ज्यादा पीने लगे हो," वह धीरे से बुदबुदाई, "सुबह तक महक आती है." मैंने आंखें खोलकर उसे देखा. उसकी झुरियां और सफेद आंखें मेरे चेहरे के बिलकुल पास थीं. मुझे वह अच्छी लगी. दया और ममता से उसका चेहरा चमक रहा था. उसके अंदर की पीड़ा उसके चेहरे पर उतर आई थी. उसने धीरे से मेरे सिर पर हाथ फेरा. मेरे पकते हुए शरीर को अच्छी तरह देखा.

"वह नीच है," मैं बड़बड़ाया, "सो जाओ तुम."

मां कराहती हुई उठी और पलंग के दूसरे हिस्से पर लेट गई.

शराब की अधिकता से मैं उस रात सोया नहीं. दो बार उल्टी हुई. छाती मलता रहा. उस रात मैंने मां को ध्यान से देखा. बहुत बूढ़ी हो चुकी थी वह. बाल बिलकुल सफेद थे. चेहरे पर झुर्रियों का जंगल था. गाल अंदर धंसे थे. सोते समय उसका पोपला मुंह थोड़ा खुला था, जिससे बहुत धीमी अजीब-सी आवाज आ रही थी. मैं बहुत देर उसे

देखता रहा. सचमुच वही एक औरत थी दुनिया में जो मुझे प्यार करती थी. वह मुझे बहुत पवित्र लगी.

उस रात मैं सोया ही नहीं. मां रोज की तरह बहुत जल्दी उठ गई. बिलकुल अंधेरा था तब. उसी तरह वह अपने सब काम करने लगी. मैं चुपचाप आंखें खोले उसे देख रहा था. उसी तरह मां ने सफाई की...अंदर गई और नहाने लगी. फिर अचानक वह कुछ लेने के लिए बाहर निकली. मैंने उस क्षण मां को देखा. मैं सन्न रह गया फिर एकदम से चीख पड़ा...वह पूरी तरह निर्वसन थी. उसे बिलकुल भी एहसास नहीं था कि मैं जाग रहा हूं. पूरी ताकत से मैं पलंग से उछला और उसे बाहर धकेलने लगा. "निकल बाहर...इसी तरह निकल," मैं पागलों की तरह सिर झटक रहा था. मां ने एक बार मुझे देखा और मेरे चेहरे की घृणा देखकर उसी क्षण जैसे मुर्दा हो गई. बिलकुल नंगी वह मेरे सामने खड़ी थी. गली हुई खाल में कंकाल की तरह...खाली सफेद आंखों से कुछ देर देखती रही फिर एकदम से मेरे पैरों पर गिर पड़ी. मेरे दोनों पंजे उसने पूरी ताकत से पकड़ लिए. वह गिड़गिड़ा रही थी, "एक बार...बस एक बार माफ कर दो."

उसने सिर उठाया. वह रो रही थी. उसके चेहरे पर सिर्फ हीनता थी. किसी भी सीमा तक पराजित...क्षरित होने की हीनता...ऐसी याचना थी जो मनुष्य की आत्मा का पूरा सत्व सूख जाने के बाद पैदा होती है. सब कुछ बेहद पारदर्शी था, उसकी ग्लानि...भय...लज्जा और हीनता. मैंने उसे घृणा से धकेला और बाहर निकल गया. सीधा उस औरत के घर गया और उससे कह दिया कि मैं जल्दी ही उससे शादी कर लूंगा.

उसी दिन पलाश की नंगी छितरी शाखों पर पहला फूल खिला था.

◆ ◆ ◆

उसके बाद से मां जैसे राख हो गई थी. बिलकुल चुप-सी. अपने कोने में और ज्यादा सिमट गई थी. न मुझे उस तरह प्यासी आंखों से देखती, न नजर मिलाती. उसके चेहरे पर एक तरह का कालापन उतर आया था. मैं कमरे में होता तो वह बहुत ज्यादा सहमी होती. सिर झुकाए चुपचाप धीरे-धीरे कुछ करती रहती—आतंकित... किसी अनिष्ट की आशंका से भयभीत...अपने अस्तित्व को कहीं छुपाने की कोशिश करती हुई. उसका अपने ऊपर विश्वास पूरी तरह खत्म हो चुका था. मेरे लिए खाना रखती और कुछ भी नहीं पूछती. रात को मेरे साथ सोती पर अब उसने मुझे बहाने से छूना भी छोड़ दिया था. अतीत का कुछ भी याद नहीं दिलाती...पलंग के एक हिस्से में पूरी तरह दुबक जाती. उसने शायद अब पलंग से बात करना भी छोड़ दिया था. मैं उसे रात को बुदबुदाते या हंसते भी नहीं सुनता था. उसके अंदर जैसे सब मर चुका था. शायद पलंग भी.

वह रो रही थी. उसके चेहरे पर सिर्फ हीनता थी. किसी भी सीमा तक पराजित... क्षरित होने की हीनता... ऐसी याचना थी जो मनुष्य की आत्मा का पूरा सत्व सूख जाने के बाद पैदा होती है. सब कुछ बेहद पारदर्शी था.

उन्हीं दिनों पलाश पर सुर्ख जंगल खिलना शुरू हुआ और साथ ही मां बीमार हो गई.

◆ ◆ ◆

उस रात बेहद तेज बारिश हो रही थी. मैंने शाम से ही शराब पीनी शुरू कर दी थी. मां चुपचाप पलंग पर चादर ओढ़े लेटी थी. अपनी जगह पर बहुत ज्यादा सिकुड़ी हुई. मैं उसके पास आकर लेट गया. वह लंबी सांसें ले रही थी जैसे उसे बेहद तकलीफ हो रही हो. मैंने उठकर उसे देखा. बहुत दिनों बाद मैं उसे ध्यान से देख रहा था. उसकी झुर्रियां बेहद घनी हो गई थीं. मैंने धीरे से उसे छुआ. उस दिन के बाद से पहली बार. वह एक बार कांपी फिर मेरी तरफ सिर घुमाया. कुछ क्षण मुझे देखती रही फिर बुदबुदायी, "तुम कमजोर हो गए हो बहुत. बूढ़े-से दिखने लगे हो."

मैं उसे देखता रहा फिर धीरे से बोला, "मैं शादी कर रहा हूं." वह कुछ नहीं बोली. "उसी से...वह भी बूढ़ी होने लगी है."

मां मुझे उसी तरह देख रही थी. उसने पूछा नहीं पर उसकी आंखों में प्रश्न था, संशय भी. "वह यहीं रहेगी...पलंग को हम यहां से हटा देंगे," मैंने कांपते हुए कहा.

मां कुछ नहीं बोली. धीरे से आंखें बंद कर ली उसने. उसी रात मां मर गई.

◆ ◆ ◆

मां के बाद वह कोना खाली हो गया था. हमने मां का सब सामान वहां से हटा दिया. उसके टिन के पुराने बक्से, गठरी, हाथ का पंखा, टॉर्च, भगवान, माला... सब बांधकर ऊपर रख दिए. मां के कोने पर उसने अपना सामान रख दिया. मां का अब कोई चिह्न शेष नहीं था. मां अब कहीं नहीं थी.

रात को वह मेरे साथ उसी पलंग पर लेटी. उसी जगह जहां मां सोती थी. वह बेहद खुश थी. खिलखिलाते हुए उसने मेरी नाक चबाई और कपड़े उतारकर निर्वसन हो गई. मैंने सिर घुमाकर पलंग पर पसरे उसके नंगे शरीर को देखा और एकदम से चीख पड़ा.

मां वहीं थी. ■

देव आनंद और नूतन – १९५६ की यादगार फ़िल्म पेइंग गेस्ट में.
एक अविस्मरणीय फ़िल्म, जिसके उमंग भरे गाने आप सुनना चाहेंगे बार-बार

अपनी यादों के फूलों को महकाइए
एच एम वी के पांच नए संकलनों से

द गोल्डन कलेक्शन, एच एम वी का प्यार भरा गुनगुनाता गुलदस्ता. सदाबहार गानों का अनोखा संकलन. लगभग ६ हज़ार फ़िल्मों से लिए गये चुनिन्दा गाने. अब उपलब्ध हैं दो और चार कैसेट सेट्स पर.

द गोल्डन कलेक्शन. श्रेष्ठ सुमधुर संगीत का अनोखा ख़ज़ाना. माधुरी (१९३२) जैसी चिरनवीन फ़िल्म से लेकर ताजातरीन हिट धनवान (१९९३) तक. साथ ही पेइंग गेस्ट के यादगार नग़मे भी, जिनमें से एक गाना "द गोल्डन कलेक्शन – एस. डी. बर्मन" में शामिल है.

विन्टेज फ़ेवरिट्स फ्रॉम फ़िल्म्स

१९३२-१९४२ की हिन्दी फ़िल्मों के हिट गाने. मास्टर कृष्ण राव, अनिल विश्वास, गुलाम हैदर, पन्नालाल घोष और इन ही जैसे कई महान संगीतकारों की अलबेली धुनों से सुसज्जित.

एस. डी. बर्मन

५७ जज्बाती नग़में, जिनमें शामिल हैं रूप तेरा मस्ताना (आराधना), चाँद फिर निकला, (पेइंग गेस्ट), दिन ढल जाए (गाइड).

फिमेल स्टार्स इन हिन्दी फिल्म्स

५७ अनमोल रत्न. जी हां, जैसे बैजू बावरा में मीना कुमारी, मुग़लेआज़म में मधुबाला, दो रास्ते में मुम्ताज़ और राम लखन में माधुरी दीक्षित पर फ़िल्माये गये शानदार गाने.

दी एवर वर्सार्टाइल आशा भोसले

४३ जादुई नग़मे. जैसे काली घटा छाए (सुजाता), मैं हूं प्यार तेरा (तीसरी मंज़िल) और आशा भोसले की कॉमेन्टरी भी.

मेमोरेबल ग़ज़ल्स एण्ड गीत्स

बीस ग़ैरफ़िल्मी ग़ज़लें और गीत. नज़र हुसैन, गुलाम अली, आर. डी. बर्मन और अन्य कलाकारों की धुनों पर आशा भोसले की सदा जवां आवाज़ में.

आज ही भेट किजीए

The Golden Collection

(द गोल्डन कलेक्शन)

साठ संगीतमय सालों का सुनहरा सफ़र

HMV

RPG ENTERPRISES

कुछ गोल्डन कलेक्शन्स जिनका यहां ज़िक्र नहीं हो सका जैसे **आशा-रफ़ी डुएट्स, लता मंगेशकर, रफ़ी डुएट्स, तलत महमूद डुएट्स, मन्ना डे डुएट्स, गज़ल्स फ्रॉम फ़िल्म्स** और **सेंटीमेंटल फ़ेवरिट्स**

Trikaya Grey Direct.HMV.2E.

हर
तन पे
सजे
Dora RIBCO V·E·S·T
डोरा रिबको, बेदाग सफेद, अल्ट्राकोंब्ड्
बेजोड़, बारीक व नर्म रेशों
से निर्मित, डोरा की कार्यक्षमता और
जर्मन की अत्युत्तम तकनीक का
विशिष्ट संगम, डोरा समूह की एक
गौरवशाली भेंट और
आपके विश्वास का प्रतीक
COMFORTABLE
Ultra Combed
FLEXIBLE
डोरा®
रिबको
ब · नि · या · न
... सही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर
एच.पी. टेक्सटाईल मिल्स
कलकत्ता • नई दिल्ली • अहमदाबाद • कानपुर • बंबई • तिरुपुर
Ankur/993/Hin/R

खेल

जब किसी का शव सामने हो तो उस माहौल की गंभीरता मृत्यु के शाश्वत सत्य का जैसे साक्षात्कार करा देती है. सारा का सारा जीवन ही निरर्थक आने लगता है. वहीं बड़ों की उपस्थिति में बच्चे वही करते हैं जो बड़े-बुजुर्गों को करते देखते हैं. चाहे वह गंभीरता हो, वयस्कता हो या अनजाने में खेला गया खेल.

• **पंकज बिष्ट** • चित्र: विमल सरकार

इधर सड़क थी, हृदय से सीधे निकली किसी धमनी की तरह दपदपाती. दीवार भर के फासले पर यथार्थ का दूसरा ही रुख था—आतंककारी पर अनिवार्य सत्य और अवश्यंभावी नियति के रूप में, जिसकी अमानवीय गंध सड़क के साथ-साथ कई किलोमीटर की दूरी तक आने-जाने वालों को डराए रखती थी. उसे न जाने क्यों लगा था कि सड़क के दोनों ओर गंधवाले इस टुकड़े पर ये गाड़ियां किसी अदृश्य दबाव से स्वयं ही तेज हो जाती हैं. फिर भी न जाने कैसे पेट्रोल और डीजल के कसैले काले धुंए और अपनी ही गरमी से तपते इंजनों की भभक को क्लीव कर, बंद गाड़ियों के शीशे भेद, ये गंध लोगों को दूर तक दौड़ा ले जाती है. दीवार ऐसे परदे की तरह ठीक द्वार के बीचोबीच बनी थी कि उस ओर का सब कुछ इस तरह ढका रहता था मानो किसी ने टेलिस्कोप के सिरे पर ढक्कन लगा दिया हो.

रास्ता इस पंद्रह-बीस फुट की लंबी और उतनी ही ऊंची दीवार के दोनों छोरों पर था. प्रकाश भार्गव ने, इस असार संसार और नाशवान शरीर पर गीता और संतों की वाणियों से दोनों ओर पटी पड़ी दीवार के बाईं ओर से घूमकर प्रवेश किया. दीवार के ऐन पीछे दाईं ओर बीचोबीच बने चबूतरे पर शव रखा था—बारीक सफेद ऊनी चादर में लिपटा. गेंदे के कुछ फूल ऊपर रखे हुए थे और कुछ बिखर भी गए थे. साथ खड़े सभी चेहरे अपरिचित थे. भार्गव अंदाज नहीं लगा पाए कि वह उन्हीं का शव हो सकता है. यद्यपि वह इस शहर में नहीं रहते थे पर उनका लड़का यहीं किसी बैंक में था. इसलिए उनका आना-जाना बना रहता था. यदाकदा कॉफी हाउस भी जाते थे. साल में एकाध बार उनसे पहली मुलाकात और पिछले साल आखिरी मुलाकात भी वहीं हुई थी. पर इस बार उन्हें इलाज के लिए लाया गया था. कुछ भी हो, लेखक के नाते वे एक-दूसरे को जानते थे. और यही रिश्ता सबसे बड़ा था. इसीलिए प्रकाश भी आए थे. उनके किसी घर वाले को प्रकाश नहीं जानते थे. उन्हें गलती का एहसास होने लगा, इतनी जल्दी नहीं आना चाहिए था. वह दुविधा में थे कि क्या किया जाए? वहां खड़े किसी आदमी से यह पूछने का विचार मात्र कि क्या यह उन्हीं का...प्रकाश को बड़ा अजीब लग रहा था. इससे पहले कि किसी निर्णय पर पहुंच पाते, लगा उधर झाड़ियों की ओर कोई हाथ हिला है. और इस हाथ का हिलना ऐसा था मानो कहीं सुदूर समुद्र में डूबते किसी यात्री को लहरों के बीच लाइफ बोट नजर आ गई हो. डॉ. शर्मा थे—कवि विमलेश शर्मा. किसी कॉलेज में हिंदी पढ़ाते थे. यू.जी.सी. के नियमों की मजबूरी के चलते पिछले दिनों ही पीएचडी हुए थे, इस पर भी डॉक्टर कहलाने के ज्यादा ही शौकीन थे. यद्यपि भार्गव डॉक्टर-डॉक्टर कहकर शर्मा की मौका लगते ही खिल्ली उड़ाया करते थे पर इस समय वह शर्मा को पूरी गंभीरता से डॉक्टर मान रहे थे. असल में कई सारी चिताओं की पृष्ठभूमि में रोते-बिलखते या विषाद के सन्नाटे में खड़े लोगों को अकेले देखना भर जीवन की निर्रथकता का ऐसा गहरा आभास छोड़ता है कि यदि आपकी वयस्कता में कुछ भी कमी हो तो बहुत संभव है कि आप दूसरे सिद्धार्थ ही न बन जाएं. ऐसे में

बिलखते या विषाद के सन्नाटे में खड़े लोगों को देखना भर जीवन की निरर्थकता का ऐसा गहरा आभास छोड़ता है कि आप दूसरे सिद्धार्थ न बन जाएं.

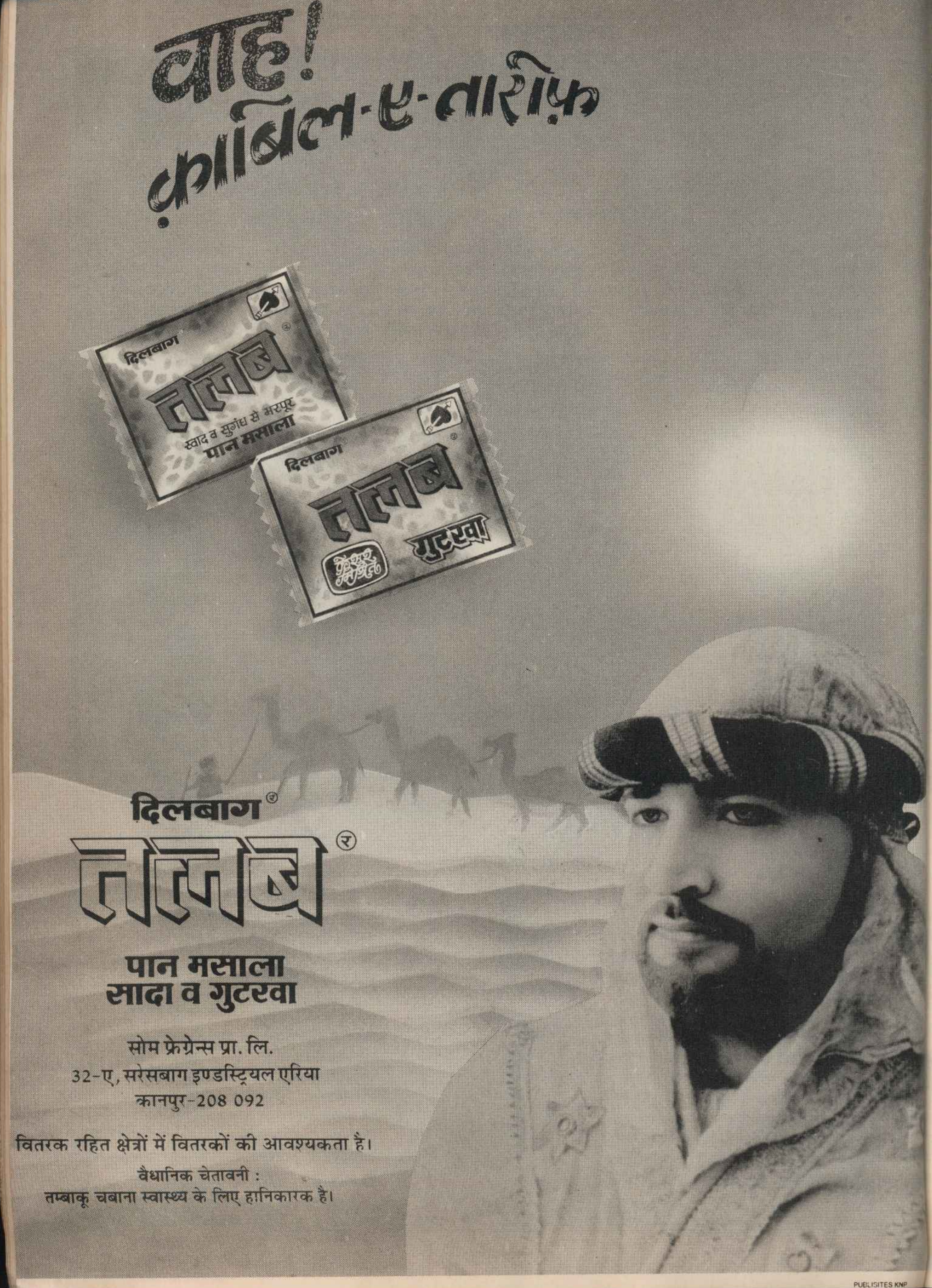
वाह!
क़ाबिल-ए-तारीफ़
दिलबाग
तलब
स्वाद व सुगंध से भरपूर
पान मसाला
दिलबाग
तलब
गुटखा
दिलबाग®
तलब®
पान मसाला
सादा व गुटखा
सोम फ्रेग्रेन्स प्रा. लि.
32-ए, सरेसबाग इण्डस्ट्रियल एरिया
कानपुर-208 092
वितरक रहित क्षेत्रों में वितरकों की आवश्यकता है।
वैधानिक चेतावनी :
तम्बाकू चबाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।
PUBLISITES KNP

शर्मा क्या, परिचित कुत्ते का भी मिलना सुकून देने वाला था.

भार्गव लपककर उनके पास जा पहुंचे. डॉ. शर्मा ने भी तत्काल उनका हाथ अपने हाथ में ले लिया. शर्मा चाहे डॉक्टर हिंदी के रहे हों पर डॉक्टर तो थे. भार्गव की मानसिक स्थिति समझने में उन्हें देर नहीं लगी. वह कुछ देर भार्गव का हाथ गरमजोशी से दबाते रहे फिर फुसफुसाकर बोले, "तुम्हें पता चल गया था. मैंने मैसेज छोड़ा था. मैं चिंता में था." भार्गव अभी सामान्य नहीं हो पाए थे, पर उन्होंने हां में सिर जरूर हिला दिया.

वहां माहौल से तारतम्य बैठाते हुए उन्हें समय नहीं लगा. चीजें जल्दी ही ज्यादा स्पष्ट और अपने सही रूप में नजर आने लगीं थीं. वे मैदान के चारों ओर बाड़ लगी झाड़ियों के साथ वाली बेंच पर बैठ गए. मृतक और उनके परिवार के लोग सामने थे—एक अनिवार्य किस्म की मातमी व्यवस्था में लगे. कोई पंडित से बात कर रहा था तो कोई लकड़ी का प्रबंध करने लपकता हुआ जा रहा था. दो बच्चे भी आए हुए थे. भार्गव मन-ही-मन आश्चर्य करने लगे कि लोग बच्चों को आखिर ऐसी जगहों पर ले कैसे आते होंगे. "ये बच्चे कौन. हैं?" समझते हुए भी उन्होंने शर्मा जी से पूछा.

"इनके, पोता-पोती हैं, वो जो है न," शर्मा का इशारा कमीज के ऊपर ही जनेऊ को डाले व्यक्ति की ओर था, "बड़ा बेटा है, उसी के बच्चे हैं."

दोनों बच्चों में एक-डेढ़ साल का अंतर रहा होगा—सात और नौ के आसपास. लड़की बड़ी थी. दोनों बच्चे माहौल की गंभीरता से सहमे से, बड़े लोगों की व्यस्तता देख रहे थे कि अचानक बाहर की ओर से कोलाहल की लहर-सी उठी. "रामनाम सत्य है" स्वर स्पष्ट होने लगा. अपनी यात्रा के अंतिम पड़ाव पर एक और शव जुलूस के साथ प्रकट हुआ. तीस-पैंतीस साल की वह औरत दहाड़ भी मारती आ रही थी. दो औरतों ने उसे बाजुओं से संभाल रखा था. इस औरत का मृतक से क्या संबंध हो सकता है?

> **उन्होंने मन-ही-मन सोचा. ये चीजें एक तरह से इतनी बुरी भी नहीं हैं. पता तो चल ही जाता है कि कौन किसकी शोक सभा में आया था. फिर मिलना-जुलना भी हो ही जाता है.**

यद्यपि भार्गव किसी भी तरह का अनुमान नहीं लगाना चाहते थे फिर भी उनकी कल्पना रह-रहकर हर तरह के अनुमान लगा उन्हें परेशान किए चली जा रही थी. वह अपनी उम्र की तुलना अनजाने ही उस मृतक से करने लगे थे, जिसको उन्होंने कभी देखा तक नहीं था. और इस अनचाही तुलना ने उन्हें परेशान कर दिया. उनके बच्चों और पत्नी का चेहरा, बारी-बारी से उनके दिमाग में कौंधने लगा था. तभी उनकी नजर संभवतः अपने बच्चों की चिंता में उन बच्चों पर जा टिकी. वे दोनों भी टकटकी लगाए उस जुलूस को, जो अब तक उन लोगों के सामने से गुजरकर ठीक बीचोबीच बनी छतरी की ओर बढ़ रहा था, देख रहे थे. यद्यपि वे अपने घर में ही और आज ही इस सारी प्रक्रिया को देख चुके होंगे, इस पर भी उनकी उत्सुकता कम नहीं हुई लगती थी. भार्गव को उन लोगों की बुद्धि पर फिर अफसोस होने लगा. मूर्ख कहीं के, आखिर बच्चों को यहां लाने की क्या आवश्यकता रही होगी? क्या यह बच्चों के लायक जगह है? "राम नाम सत्य है" का मातमी कोलाहल, शोक-विह्वल आत्मजनों का रुदन, धधकती चिताओं की कतार और उन से उठती मानव शरीर को अनुष्ठानिक गंध. यह अजीब दुनिया तो वयस्कों तक को बेचैन करने के लिए काफी है. आखिर ये बच्चे किस तरह इस सबसे तालमेल बैठा पा रहे होंगे? बच्चों की हिम्मत दाद देने लायक थी. उन्होंने सोचा मेरे बच्चे होते तो डर से बेहोश ही हो गए होते.

"लगता है हम जल्दी आ गए," शर्मा ने अचानक घड़ी देखते हुए कहा, "देखो, लोग तो अब आ रहे हैं." अग्रवाल और कुमार खरामा-खरामा चले आ रहे थे.

"अभी कितनी देर लगेगी?" भार्गव ने घड़ी देखते हुए कुछ बेचैन स्वर में पूछा. पर उसे जवाब नहीं मिल पाया. इसी बीच मनोहर भाटिया डॉ. शर्मा को पकड़कर किनारे की ओर ले गए. भार्गव को समझते देर नहीं लगी. भाटिया की नई किताब आई है. गोष्ठी का चक्कर है. शर्मा से पर्चा लिखवाना होगा.

अब तक कई परिचित चेहरे आ चुके थे, किसी को रेडियो के माध्यम से पता चला था तो किसी को किसी ने टेलीफोन द्वारा सूचित किया था. शहर की लेखक बिरादरी ऐसे में कोशिश करती है कि जैसे भी हो, पहुंचो. आज भी पर्याप्त संख्या में लोग जमा हो ही जाएंगे, उन्होंने सोचा था. उनकी बात गलत भी साबित नहीं हुई. गुप्ता, प्रसाद, अबरार सिंह, यहां तक कि उमा आनंद और कल्पना भी आई थीं. कुल मिलाकर उपस्थिति अच्छी ही थी. उन नकचढ़ों का कोई क्या कर सकता है जो लेखक की दुख-तकलीफ का पैमाना भी उसकी रचना को मानते हैं. एकाध अखबारी कवि भी दिखलाई दे रहे थे. इससे यह तो था कि कल समाचार तो छपेगा और आपका नाम भी हो सकता है. उन्हें बाईं ओर की अलग से बनी साफ-सुथरी चितास्थली दी गई थी. संभवतः यह लेखक होने के नाते रहा हो. तभी एक हलचल मची. शव को उठाकर नदी की ओर ले जाया जाने लगा और इससे पहले कि वह नदी के किनारे पहुंचते, लोगों ने शव को निर्दिष्ट स्थान के नजदीक रख दिया था. अब तक लकड़ी की पहली खेप, एक हाथ ठेले में लाकर चबूतरे के साथ ही डाली जा चुकी थी.

"अब तो देर नहीं लगेगी." कमलेश गुप्त ने घड़ी देखते हुए कहा. उनकी चिंता शायद किसी टीवी कार्यक्रम को लेकर रही होगी. उनके पास टीवी रिव्यू का साप्ताहिक कॉलम है. किसी ने आश्वासन दिया, "नहीं, ज्यादा देर नहीं लगेगी."

लोग अब कुछ खुलकर भी बोलने लगे थे. बीच-बीच में कोई मुस्करा भी देता था. अब देर थी भी नहीं. ज्यादा से ज्यादा एक घंटा लगना था. बस चिता ने ही तो जलना था. यह अच्छा है कि ठंडी होने का इंतजार नहीं किया जाता वरना बारह बजते.

लोग फिर से बातों में लग गए थे. अलग-अलग, अपनी-अपनी दोस्ती या जरूरत के हिसाब से गुट बन गए थे और उसी हिसाब से बातें हो ही रही होंगी.

अचानक किसी ने भार्गव के कान में कहा, "कल शोक सभा है. मंडी हाउस आ जाना." साथ ही जोड़ा, "कुछ लोग कॉफी हाउस में भी करने जा रहे हैं." अब एकाध हफ्ते शोक सभाओं का सिलसिला चलने वाला है, उन्होंने मन-ही-मन सोचा. ये चीजें एक तरह से इतनी बुरी भी नहीं हैं. पता तो चल ही जाता है कि कौन किसकी शोक सभा में आया था. फिर मिलना-जुलना भी हो ही जाता है अन्यथा सबकी अपनी-अपनी दुनिया है. इतना बड़ा शहर. किसी को फुरसत कहां है, समय आखिर अमूल्य है. बेमतलब के मिलने का क्या अर्थ है. मिलने में मिलना तो होना ही चाहिए. बेकार की गप्पबाजी में क्या रखा है. देखिए, लोगों ने किस तरह अपने को ढाल लिया है. यहां भी काम की गुंजाइश निकाल ही ले रहे हैं. कोई गोष्ठी, कोई पत्रिका, कोई लेख, कोई कविता शोक के अनवरत

दबाव के बावजूद रह-रह के चर्चा में आ ही जा रही थी.

अब उन्हें जोर से घर की याद आने लगी थी. पत्नी से कह नहीं पाए थे. कहते भी कैसे, कोई इलहाम तो हो नहीं रहा था कि आज श्मशान जाना पड़ सकता है. घर पहुंचकर लड़ाई लाजमी थी. बच्चों ने उसे परेशान कर रखा होगा और वह सोच रही होगी कि मियां जरूर कहीं दारू पीने या कुछ नहीं तो गप्प ठोकने बैठ गया होगा. वह जैसे ही कहेगा, एक कवि का देहांत हो गया था तो जवाब होगा, कुछ न कुछ तो कारण होगा ही. न जाने कौन-कहां मर रहा है. और जहान की तुम्हें चिंता है. आखिर लेखक ठहरे. हम जो मर रहे हैं उससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है.

गुस्से के मारे उनसे जवाब देते नहीं बनेगा. थकन, हताशा और गरमी की मार रही-सही कसर पूरी कर देगी. नहाते-नहाते याद आएगा कि टीवी तो बच्चे नहीं छोड़ेंगे. पर ट्रांजिस्टर लगाकर पत्नी को सुनाया जा सकता है कि वाकई किसी का देहांत हुआ है. यद्यपि इसमें भी खतरा है. मान लो रेडियो ने इसे अपने मुख्य बुलेटिन के लायक ही नहीं समझा. कोई अभिनेता तो थे नहीं. खैर देखा जाएगा, सोचकर वह फिर से चिता के मंच की ओर देखने लगे. चिता का बिस्तर बन चुका था और शव को उस पर रखने के लिए उठाया जाने लगा था. काम आगे बढ़ रहा था, उसने चैन की सांस ली. उन्होंने फिर घड़ी देखी और एक बार फिर आश्वस्त हो गए. नहीं, अब ज्यादा समय नहीं लगना है.

"अंतिम दर्शन कर लीजिए," पंडित जी ने कहा और शव के मुंह से कपड़ा हटा दिया. परिवार के लोगों के साथ ही कई कदम बढ़े, पर वह हिले तक नहीं. किसी बेजार दर्शक की तरह जो कोई बहुत ही उबाऊ नाटक देखने को बाध्य हो, सारे क्रिया-कलाप को तटस्थ देखते रहे. ये लोग ऐसा कैसे कर देते हैं. लेखक होकर भी हर औपचारिकता में हर वक्त बढ़-चढ़कर शामिल होने को लालायित.

चिता से अनवरत धुंए का उठना, पुजारी का घूम-घूमकर आग को व्यवस्थित करना, लपटों का धीरे-धीरे उठना बच्चों को बांधे रखने के लिए काफी था.

एक रिश्तेदार बच्चों को समेटकर अंतिम दर्शन के लिए आगे ले आया था. पिता ने दोनों बच्चों को बारी-बारी से दादा जी को अंतिम प्रणाम करने का निर्देश देते हुए आगे बढ़ाया. बच्चों ने किसी तरह प्रणाम किया और तत्काल स्वयं ही पीछे खिसक मंच से उतर थोड़ी दूर, ईंटों की पगडंडी के पार जा खड़े हुए. उसे लगा, बच्चे बड़े ही अनुशासित हैं. फिर लगा, यह डर भी हो सकता है. बच्चों की आंखों में एक विस्मय भी था. माहौल के अजनबीपन और औघड़ता ने उन्हें उनके बचपने से ऊपर उठा दिया था. संभवतः आज के बाद कम-से-कम ये बच्चे वो बच्चे तो नहीं रहेंगे जो यहां आने से पहले तक थे. यथार्थ का यह क्रूर रूप किसी को भी बदलने के लिए काफी है. स्वयं उन्हें लगा है, हर बार जब भी यहां आना पड़ा है, लौटने के बाद उनके अंदर कहीं गहरे कुछ ऐसा बदला है जो जिंदगी के प्रति उनके दृष्टिकोण, उनकी मान्यता उनके विश्वासों में से कहीं कुछ छिजा गया है.

वह गलत नहीं थे. बच्चों की आंखों का आतंक दूर से भी नजर आ रहा था. वहां विस्मय भी था पर औघड़ता का आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींच रहा था. वे मंत्रबिद्ध-से लगभग स्थिर नजरों से देखे चले जा रहे थे. भार्गव को अंदर ही अंदर डर लगने लगा, कहीं इन्हें कुछ हो ही न जाए.

पूरे माहौल में अब एक व्यावसायिक किस्म की दक्षता और यांत्रिक गति थी, जो सबको संचालित कर रही थी. शव के चारों ओर अब लकड़ियां लगाई जाने लगी थीं.

पंडित जरूरत के मुताबिक कभी छोटी और कभी बड़ी लकड़ी की मांग कर रहा था और कई सारे लोग पुण्य कमाने में लगे थे. एक अजीब रेलमपेल होने लगी थी. इतने सारे लोगों की जरूरत नहीं थी, किसी को कैसे रोका जा सकता था. तभी उन्होंने देखा कि बच्चे भी भीड़ में शामिल हो गए हैं और लकड़ियां उठा-उठाकर देने लगे हैं.

संभवतः बच्चे इस नए काम में सबसे ज्यादा मशगूल हो गए थे. यहां तक कि वे अपनी सामर्थ्य और क्षमता से भी कहीं अधिक भारी लट्ठे उठाने का प्रयास कर रहे थे. कोई वरिष्ठ हाथ उठता और इससे पहले कि बच्चे उसे उठाकर ले जाने की स्थिति में आ पाते, भारी लट्ठा थाम लेता. पर बच्चे उससे मुक्त होने से पहले अपनी भागीदारी पूरी तरह निभा चुके होते थे. फिर वे ऐसे हाथ झाड़ते मानो रिकॉर्ड भार उठाने के बाद कोई भारोत्तोलक बाजुओं को झटक रहा हो. भार्गव उनके इस क्रिया-कलाप में रम गए थे. वे अब सिर्फ बच्चों को देख रहे थे. बच्चों को पता भी नहीं चला. लकड़ियां जैसे अचानक कहीं गायब हो गई थीं. वह मुस्कराए. बच्चे किस तरह से हतप्रभ नजर आ रहे थे.

उमस भरी बरसात की बेरंग शाम बेमतलब खिंची जा रही थी. उन्होंने फिर घड़ी देखी. पंद्रह मिनट और खिसक चुके थे. चिता जलाने से पहले के मंत्र शुरू हो रहे थे. अब बच्चों के पास कोई काम नहीं रहा था. वे रेलिंग से सटकर खड़े हो बड़ों का कारोबार देखने लगे थे. उनके चेहरों पर वही पहले वाली आश्चर्य मिश्रित आतंक, विस्मय और उत्सुकता आ गई थी. क्या होने जा रहा है? और कैसे होने वाला है की अनिश्चित उत्सुक घबराहट थी.

किसी बिगड़े टेप-रिकॉर्डर की आवाज से अर्थहीन मंत्र हवा में फैलने लगते थे. कमीज पर जनेऊ डाले उनके बेटे के हाथ में फूस की मशाल पकड़ा दी गई थी. उसने चिता के चक्कर काटने शुरू किए. बच्चे पंजों पर खड़े होकर इस पूरी विधि का आखिरी चरण देखने लगे थे. चिता को आग लगा दी गई. औपचारिकता पूरी होते ही मशाल फिर पंडित के हाथ में थी. उसने मौकों की जगहों पर मशाल लगाई जिससे कि व्यवस्थित ढंग से आग चारों ओर बढ़ सके और लकड़ियों की बरबादी न हो.

कुछ देर को बातचीत का सिलसिला थम-सा गया. लोग घी, हवन सामग्री और लकड़ियों के धीरे-धीरे बढ़ते मिले-जुले धुंए को देखने लगे. डूबते सूरज में इतना-सा धुंआ भी घनी छाया का एहसास दे रहा था. आग बढ़ने में समय नहीं लगा. वैसे भी सफेदे में होता क्या है! माचिस की तिल्ली की तरह फफक उठता है.

चिता से अनवरत धुंए का उठना, पुजारी का उसके चारों ओर घूम-घूमकर आग को व्यवस्थित करना, लपटों का धीरे-धीरे उठना और अंततः पूरे वेग से जलने लगना. बच्चों को बांधे रखने के लिए काफी था. कुछ ही देर बाद पंडित अपने गमछे से पसीना पोंछ थोड़ा पीछे आ खड़ा हुआ. उसने एक बार चारों ओर से आग को तौला और किनारे की दीवार पर निश्चिंत बैठ चांदी की डिबिया से तंबाकू निकाल मसलने लगा. उसने हथेली से तंबाकू के मोटे टुकड़ों को अलग किया और खैनी को मुंह में दबा लिया. गमछे से हाथ झाड़ वह उठा और थोड़ा और पीछे की ओर खिसक गया. शायद लपटें उसकी ओर आने लगीं थी.

उसकी आंखें अपनी जिम्मेदारी के प्रति लगातार सचेत थीं. सब

दीवानी प्यास
मस्तानी प्यास
Limca
जब आप अपने नए रूप में खुशी से दीवाने शहर का चक्कर काटते-काटते या फिर मस्त कलंदर बने लेटे-लेटे थक कर प्यास से बेहाल हो जायें... तब किटाणुरहित लिम्का पी कर अपनी प्यास बुझायें क्योंकि इसमें आयसोटॉनिक सॉल्ट है आपकी दिवानी और मस्तानी प्यास बुझाने के लिए.
लिम्का — प्यासी पसंद
नींबू जल-सा मज़ेदार पेय
ठंडा-बर्फीला पिएं-पिलाएं
CONTAINS ADDED FLAVOUR. CONTAINS NO FRUIT JUICE/PULP. NO BVO USED.
RADEUS/PE/L/646/12-93 HIN

ठीकठाक चल रहा था. उसकी नजर यों ही जमीन पर पड़ी. वह आदतन झुका और उसने सामने पड़े लकड़ी के एक बड़े से छिलके को, जिसे संभवत: अफरा-तफरी में कोई उठाने वाला नहीं मिला था उठाकर जलती चिता की ओर उछाल दिया. छिक्कल का वह टुकड़ा, ठीक चिता के बीचोबीच इस तरह से जाकर गिरा मानो हैंडबॉल के किसी सिद्धहस्त खिलाड़ी ने गोल किया हो.

बच्चों की नजर लगातार पंडित पर थी. सारे क्रिया-कलाप की धुरी ही वही था. क्रिया-कलाप भी ऐसा जो बच्चों की कल्पना में भी नहीं आ सकता था. पंडित तब बीच अर्थी के बांस को तोड़ने में लग गया था, और दो जने उसका हाथ बंटा रहे थे. कुछ अनुभवी लोग बीच-बीच में उन्हें कुछ हिदायतें देते जा रहे थे—अरे ऊपर से, इधर से नहीं. इसे पटको, अपने आप अलग हो जाएगा. हां ऐसे... आदि. अचानक बच्चों के साथ खड़ा एक और आदमी झुका. उसने भी पंडित की ही तरह वहां रह गए छिक्कल को उठाकर चिता की ओर उछाल दिया. बच्चों के साथ भार्गव जी ने भी देखा कि वह टुकड़ा चिता के बीच गिरने की जगह किनारे को छूता हुआ वापस बाहर आ गया था. पर फेंकने वाले का ध्यान उस ओर नहीं था. उसने जो करना था बस कर दिया था.

काम काफी निबट चुका था. बस कपाल-क्रिया की देर थी और लोग जा सकते थे. भार्गव जी ने घड़ी देखी. साढ़े छह ही बजे थे. उस तरह से देखा जाए तो देर भी नहीं हुई थी. साढ़े पांच तो दफ्तर ही छूटता था. घर, कितनी ही जल्दी करो, पौने-सात, सात से पहले पहुंच नहीं पाते थे, स्कूटर के बावजूद. आधे घंटे का झमेला और था. अब जल्दी जाना भी ठीक नहीं था. उन्होंने हिसाब लगाया आज भी वह ज्यादा से ज्यादा पौने आठ तक पहुंच जाएंगे. इसने उन्हें संतोष और विश्वास से भर दिया. उन्हें लगने लगा कि भूख बढ़ रही है. दोपहर में लंच भी ठीक से नहीं कर सके थे. सिर भारी हो गया था और इसका कारण भूख ही थी. वैसे भी 'एसीडिटि' के रोगी हैं. पेट खाली होते ही गड़बड़ करने लगता है. वह भूले नहीं कि बौद्ध विहार नजदीक ही है. कई दिन से चाऊ-चाऊ भी नहीं खाया है. सूप तो ये लोग लाजवाब बनाते हैं. और इतना सस्ता कि अगर कोई साथ हो लिया तो वहां जाया जा सकता है. और फिर ज्यादा समय भी नहीं लगेगा. उन्होंने निर्णय किया कि डॉ. शर्मा से पूछकर देखेंगे. खाने-पीने का वह वैसे ही बड़ा शौकीन आदमी है. मना नहीं ही करेगा.

भार्गव ने देखा बच्चों के बीच प्रतियोगिता तेज होती जा रही थी. वे अब दौड़-दौड़कर छिक्कल के टुकड़े ढूंढ़ते और एक निश्चित स्थान पर खड़े होकर चिता की ओर उछालते.

अभी वह योजना बना कर निबटे भी नहीं थे कि देखा दोनों बच्चे बीन-बीनकर छिक्कल ला रहे हैं और चिता की ओर बारी-बारी से फेंक रहे हैं. मुश्किल से ही उनका फेंका छिक्कल चिता तक पहुंच पाता था. अकसर रह जाता था. धीरे-धीरे यह उन दोनों के बीच की प्रतियोगिता में बदल गया.

भार्गव उन्हें देखते जा रहे थे. बच्चों के बीच प्रतियोगिता तेज होती जा रही थी. वे अब दौड़-दौड़कर छिक्कल के टुकड़े ढूंढ़ते और एक निश्चित स्थान पर खड़े होकर चिता की ओर उछालते. लड़की द्वारा फेंके टुकड़े तो एकाध बार वहां तक पहुंच भी गए पर लड़के के लिए, जो कि अभी काफी छोटा था, वहां तक सीधे फेंक पाना संभव नहीं हो पा रहा था. इससे उसकी हताशा ही नहीं बढ़ रही थी, उसके अंदर भी कुछ करने की इच्छा और भी बलवती हो, उसे उत्तेजित करती जा रही थी. इस बार का टुकड़ा उसने पूरा दम लगाकर फेंका और न जाने कैसे वह सीधा चिता के बीचोबीच जाकर गिरा. देखा बबली! देखा! लड़का चीखा. उसका हाथ हवा में लहराया. विजय पताका की तरह और फिर वह खुशी में ताली बजाने लगा. जलती लकड़ियों की चटक के बीच में, जहां बाकी सब लोग मात्र फुसफुसा रहे हों, पूरे वेग से उठा वह बच्चा-स्वर ही काफी था. एक साथ कई जोड़ा आंखें उस पर आ टिकीं. भार्गव जी का दिल हुआ लपककर लड़के को अपने पीछे छिपा लें. पर इससे पहले ही एक हाथ झपटा था और उसने बच्चे को झकझोरकर इस तरह खेंचा जैसे बाघ मेमने को उठा ले जाता है. सन्नाटे में आए बच्चे के मुंह की आवाज ही कहीं गायब हो गई थी. डरी हुई लड़की भी घसीटे जाते भाई के पीछे चल पड़ी थी.

बच्चों को कहीं इस तरह खेंचा जाता है, भार्गव को बुरा लगा. उन्हें समझाया जाना चाहिए था कि यहां खेल नहीं होता. ■

ढलान पर

• स्वयंप्रकाश • चित्र: अर्पणा कौर

काल की कुल्हाड़ी काटती तो है पर आवाज़ नहीं करती. उम्र का एक मोड़ अचानक ऐसा आता है कि आपके प्रति आपके परिवेश की प्रतिक्रिया बदल जाती है और आप हाथ से छूटे दौर को फिर से पकड़ लेने को बेताब हो उठते हैं.

शुरुआत शायद उसी दिन हो गई थी जिस दिन सिर में पहला सफेद बाल दिखाई दिया था. नहीं, शुरुआत शायद उस दिन हुई थी जब बस में एक बड़ी-सी लड़की ने अंक़ल कहा था और उसके साथ वाला लड़का उन्हें सीट देने के लिए उठ खड़ा हुआ था. नहीं, शुरुआत शायद उस दिन हुई थी जब उन्हें

लगा था कि ड्राइवर गाड़ी बहुत तेज चला रहा है, देखना अभी एक्सीडेंट करेगा. सभी महत्वपूर्ण चीजें ऐसे ही बेआवाज शुरू हो जाती हैं. उनका जन्मदिन नहीं मनाया जा सकता. काल की कुल्हाड़ी काटती तो है पर आवाज़ नहीं करती.

शुरू-शुरू में यह मजा लेने की बात थी. अच्छा! तो अब मैं आदरणीय हो गया हूं! अच्छा! तो अब मेरी इज्जत की जाएगी, लिहाज किया जाएगा! कन्सेशंस दिए जाएंगे!

फिर बहुत दिनों बाद आईना इतने ध्यान से. बाल पतले पड़ गए हैं. कनपटियों पर हिमपात. आंखों के नीचे झांई. चेहरे की रंगत में पकाव. दांत लंबे हो रहे हैं.. मसूढ़े कट रहे हैं... अन्नकण फंसते हैं. अब माउथवाश. खुद की हथेली मुंह के आगे आती है और 'हाऽऽ' की बदबू सहती है. दाढ़ी की खूंटियां सख्त. माथे पर सलवटें. होंठों के दोनों तरफ मजबूर मुस्कराहटों की खरोंच!

फिर यह एक कभी न रुकने वाले सिलसिले जैसा बन गया था. हरी सब्जियां.. प्रचुर मात्रा में सलाद.. नींबू... प्राकृतिक जीवन.. कम चाय.. कम सिगरेट.. अधिक चीनी नहीं. अधिक गरम या ठंडा नहीं. मिर्च मसाला नहीं.. क्यों? किसलिए विधि निषेध? क्यों अब तक जिनकी परवाह करना कभी जरूरी नहीं लगा, अचानक महत्वपूर्ण लगने लगे? क्यों हर समय अपनी शक्ति, क्षमता, सीमा, सामर्थ्य की परीक्षा करने का मन होने लगा?

लेकिन वह आ रहा था और अपने आने को तरह-तरह से अभिव्यक्त कर रहा था. चिढ़ाने के लिए नहीं. उसकी भी मजबूरी थी. अपना आना वह छिपा ही नहीं सकता था.

कमउम्र दोस्तों के साथ घूमने जाने में अब ऊब लगती. वे ठिलवई करते. बगैर सिर-पैर की नीरस बातें. अबौद्धिक. या नौजवानों के बीच वे स्वयं उपदेशात्मक या संस्मरणात्मक होने लगते. दूसरी तरफ बुजुर्गों को उनकी सोहबत अच्छी लगने लगी. एक दिन बुजुर्ग उनकी सोहबत में रसिकता की बातें करने लगे. बुजुर्गों को बिलकुल संकोच नहीं हुआ. बल्कि एक बुजुर्ग के मुंह से तो गाली भी निकली जिससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ.

फिर कुछ और भी परिवर्तन हुए. फिल्मों में उनकी रुचि खत्म हो गई. गानों या गज़लों की जगह शास्त्रीय संगीत ज्यादा अच्छा लगने लगा. फिक्शन यानी कथा-कहानी की जगह विश्लेषणात्मक

लेख अधिक आकर्षित करने लगे. पर्वतारोहण और अन्य जोखिम भरे खेल पागलपन लगने लगे. यात्रा के नाम से डर लगने लगा, स्वाद की तुलना में पौष्टिकता ज्यादा महत्वपूर्ण लगने लगी. नौकर पर कई बार चोर होने का संदेह हुआ और भुलक्कड़पन बढ़ने लगा.

ऐसा ही होता है. तो क्या ऐसा ही होता है? तो क्या ऐसा ही होता जाएगा? एक दिन घर आए और आईने के सामने खड़े हो गए और लगभग सारे कपड़े उतार डाले और अलग-अलग कोणों से अपने प्रतिबिंब को निहारने लगे. और आश्चर्य कि उसमें बहुत ही कम आकर्षण था. और जिस मात्रा में वह छवि आकर्षक थी, उसी मात्रा में जुगुप्साजनक भी. धड़ किसी और का लग रहा था, सिर किसी और का. बदन पीला और चेहरा कत्थई. तोंद आगे निकली हुई और नीचे को लुढ़की पड़ रही. टांगें बगुले की तरह पतली-पतली.. बाजू सूखी हुई लौकी की मानिंद.. गाल पिचके हुए... त्वचा कांतिहीन.. सीने के बालों में सफेदी.. सीना कॉलरबोंस के लिए जगह बनाता हुआ.. पीठ जरूर सुतवां थी, पर पीठ का क्या करें?

क्या यही वह शरीर है जिस पर उन्हें नाज था? जिसकी मालिश की गई थी? जिसके लिए वर्जिश की गई थी? जो सु.या.रे. के लिए आकर्षण का अखूट स्रोत था? वह बॉडीबिल्डर या पहलवान कभी नहीं रहे. पर सुगठित जरूर थे. कुछ-कुछ सुकुमार भी. उस समय के नायक भी ऐसे ही होते थे. लेकिन इस देह का नमक कहां गया?

कुछ नहीं. झटक दो. झटक दो यह पस्ती का ख्याल. बस जरा व्यायाम. बस जरा शीर्षासन. बस जरा योगा. फिर देखना. लहक उठेगा स्टेमिना. दीप्त हो उठेगा प्रच्छन्न यौवन. देह में.. आचरण में.. भाव में.. धारणा में. शायद वह शारीरिक श्रम से कट गए हैं. दिन भर दफ्तर में कुर्सी में बैठे रहते हैं, शाम घर आकर आरामकुर्सी में धंसकर अखबार पढ़ने लगते हैं. दीवान पर पसरकर फोन करने लगते हैं या टीवी देखने लगते हैं. खाने के बाद फर्लांग दो फर्लांग टहलते भी हैं तो जैसे खुद को लुढ़काते हुए से. और फिर आकर सो जाते हैं—एक पनीली, बेस्वाद नींद. नहीं, ऐसे नहीं चलेगा. उन्हें व्यायाम करना चाहिए. जॉगिंग करना चाहिए. रस्सी कूदना चाहिए. खूब पैदल चलना चाहिए. बस, यही बात है. बस, इतनी-सी बात है.

वह आ रहा था और अपने आने को तरह-तरह से अभिव्यक्त कर रहा था. चिढ़ाने के लिए नहीं. उसकी भी मजबूरी थी. अपना आना वह छिपा ही नहीं सकता था.

उस रात उन्होंने सपना देखा कि वह कैनवस के जूते और सफेद टीशर्ट-निकर पहने मॉर्निंग वॉक पर जा रहे हैं.. तेज तेज.. खट-खट.. और कुछ बूढ़े उनके साथ लग लिये.. लाठियां ठुकठुकाते. अपनी नौकरियों के दिनों के किस्से दोहराते.. अपनी पोतियों के लिए योग्य वर का सुराग सूंघते.. पीली बलगम थूकते.. और जितना चलते उससे ज्यादा थक जाने पर पुलिया पर बैठ जाते.... ये लोग रोज दाढ़ी क्यों नहीं बनाते? उन्होंने सोचा और बूढ़ों को छोड़कर भाग लिये... और सब्जी मंडी पहुंच गए और लौटते समय एक बड़ी-सी लौकी उठा लाए और घर आकर बीबीसी सुनने लगे.

जागे तो बेचैन! सपने में जो दिखाई दिया वह कौन था? वह खुद? या उनके बाप? या दोनों का मिला-जुला कोई तीसरा रूप?

उस दिन सुबह कमर में कुछ दर्द था. कमर दर्द में वर्जिश नहीं की जा सकती, अतः उस दिन वर्जिश रद्द हो गई और रोज ऐसे ही किसी कारण से रद्द होने लगी.

दिनचर्या बदलने के पूरे एक असफल महीने के बाद आखिर उन्होंने खुद को इस निष्कर्ष पर पहुंचाया कि मामला शारीरिक नहीं, दरअसल मानसिक है. आदमी बूढ़ा तभी होता है जब वह सोचता है कि वह बूढ़ा हो रहा है. जिसका मन जवान उसका तन जवान. उन्हें टीवी का एक विज्ञापन याद आया—साठ साल के बूढ़े या साठ साल के जवान! तो वह अपने मन को जवान रखेंगे. बालों में खिजाब लगाएंगे, दाढ़ी खूब ध्यान से बनाएंगे, दिनचर्या नियमित रखेंगे.. नहीं, दिनचर्या नियमित रखना तो बूढ़ों जैसा हो जाएगा.. हां, बस मस्त रहेंगे, खेलेंगे, खाएंगे.. खूब हंसेंगे.. हंसाएंगे.. जोक्स की बुक लाएंगे...

उस दिन मालिश की, बाल रंगे, दाढ़ी चिकनी बनाई, ठंड में ठंडे पानी से नहाया, रंगीन टीशर्ट पहनी, गले में चटख रंग का स्कार्फ बांधा, क्रीजदार सफेद पतलून और ब्लेज़र पहना, कैनवस जूते डाटे और दफ्तर गए. देखा कि कितने प्रशंसा भाव से देख रहे हैं सब.. महिलाएं भी.. लड़कियां भी.. बल्कि लड़कियां तो बात करते-करते थोड़ा इतराईं भी.. उन्हें बहुत अच्छा लगा. शाम को क्लब गए, एक गेम बैडमिंटन का खेला..थक गए. फिर कुछ यंग लोगों के साथ बैठकर दारू पी.. ठहाके लगाए. दूसरों के साथ मिलकर एक सीधे आदमी को बुली किया.. खूब चटपटा खाना खाया और देर रात वापस आए.

वापस आए तो टांगों में थोड़ी थरथराहट महसूस की. जैसे सिर घूम रहा हो. सीढ़ियां चढ़ने में कुछ थकान लगी. लेटे तो आंखें बंद करते ही सारा कमरा तेजी से घूमने लगा. घबराकर आंखें खोल लीं. थकान के मारे आंखें खोले रखना भी मुश्किल हो रहा था हालांकि. उठे..पानी पिया..मुंह धोया.. सिगरेट जलाई.. टीवी चलाया. टीवी पर कुछ था.. पता नहीं क्या था.. आंखें खुल नहीं रही थीं. आखिर उल्टी आ गई. हड़ड़ हड़ड़. हाथ-मुंह धोकर कटे पेड़ से बिस्तर पर गिरे और पता नहीं कब नींद में गुड़क गए.

सुबह उठे तो सिर में भयंकर दर्द. पेट में गुड़गुड़. पतले दस्त. एसिडिटी. छाती में जलन और टांगों में कंपकंपाहट. छुट्टी लेनी पड़ी.

छुट्टी ले ली और खूब बोर हुए. एक समय था जब छुट्टी बहुत सारे बकाया काम निबटाने और बहुत दिनों बाद बहुत-से भूले-बिसरे शगल दोहराने का दुर्लभ अवसर होता था. कार साफ की, पुरानी किताबों की धूल झाड़ी, मित्रों को पत्र लिखे, भूतपूर्व प्रेमिकाओं को याद किया, डटकर नहाया, पुराने जमाने के पसंदीदा रेकॉर्ड सुने, रसोई में कुछ प्रयोगशील-प्रगतिशील पकाया, नौकर को छुट्टी दे दी, खामखा खुश हुए, निरुद्देश्य घूमने निकल लिये... मौसम का मजा लिया... फूल.. चिड़िया.. गिलहरी.. पतंग.. बच्चा.. कितनी सारी खूबसूरत चीजें होती हैं यहीं कहीं आसपास.. दिनचर्या की भगदड़ में जिन पर नजर नहीं ठहरती! छुट्टी इस निरंतर अहर्निश अविराम मेरी गो राउंड का ठाठदार विश्राम होता है.

लेकिन आज क्या था? यह था कि बार-बार सोच रहे थे कि एक पेग बना लें.. एक और एनासिन खा लें.. एक बार और टॉयलेट हो आएं... कमजोरी.. सिरदर्द..मुंह का बकटापन.. और ऊब! व्यायाम नहीं किया जा सकता क्योंकि कमर में दर्द रहता है. गिज़ा नहीं खा सकते क्योंकि हाजमा खराब है. दिनचर्या में कोई भारी परिवर्तन संभव नहीं क्योंकि वर्तमान दिनचर्या बहुत सुविधाजनक है. सुविधा.. अभ्यास.. सुविधा का अभ्यास.. अभ्यास की सुविधा.. न घुटनों में रस है, न मन में लोच. काश सु. या. रे. या उन जैसी कोई होती जीवन में, अब भी. सब हो जाता. अब क्या हो? क्यों हो? होकर भी क्या होगा? नहीं हुआ तो भी क्या फर्क पड़ जाएगा? चलने दो जैसे चल रहा है. जैसे चल रहा है वैसे ही चलता रहेगा. कुछ भी कर लो.. बुढ़ापा स्थगित भले हो जाए, निरस्त तो नहीं ही होगा. दिक्कत यह है कि आप अकेले बूढ़े नहीं होते... आपके साथ आपके विचार, आदर्श, मूल्य.. एक पूरी दुनिया बूढ़ी होती चलती है. इसके लिए क्या व्यायाम है?

याद करने की कोशिश की कि उनकी उम्र क्या हो गई? बहुत

दिनों से यह नहीं किया. हिसाब लगाया. जाने-बूझे को फिर से जानने की कोशिश की. हो सकता है एकाध साल का घपला रह गया हो.. एकाध साल मुफ्त में मिल जाए. देश की आजादी के दो साल पहले पैदा हुए थे. यानी? कितने साल के हो गए? अड़तालीस? जैसे किसी ने छाती में मुक्का मारा.

अगर मैं अड़तालीस का हो गया तो सेवानिवृत्त होने में कितने साल रह गए? उसके बाद क्या करूंगा? कहां रहूंगा? सुबह से शाम तक क्या करूंगा? किसके घर जाऊंगा? कौन मेरे घर आएगा? किसको टेलीफोन करूंगा? कौन मुझे टेलीफोन करेगा? लेकिन घर और टेलीफोन भी तो सरकारी है! सेवानिवृत्त हो जाएगा. सेवानिवृत्ति के साथ ही छिन जाएगा. हद से हद छह महीने में. फिर?

ये प्रश्न असुविधाजनक थे. पहली बार उठे हों मन में, ऐसी बात नहीं, पर जब-जब भी ऐसे सवालों ने सिर उठाया, उन्होंने इन

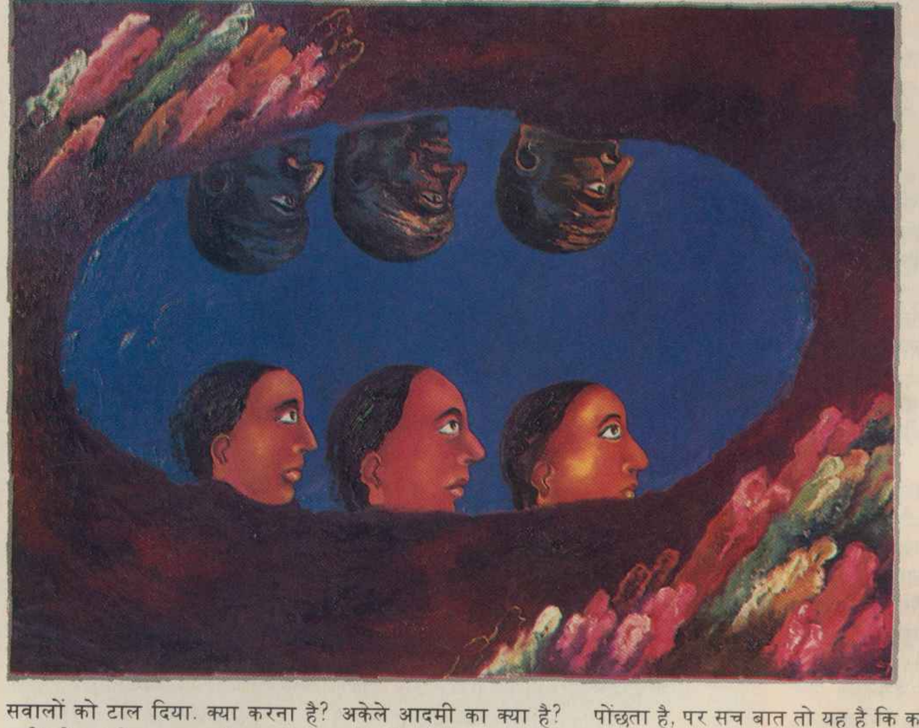

सवालों को टाल दिया. क्या करना है? अकेले आदमी का क्या है? कहीं भी रह लिया, कुछ भी खा लिया. सभी तो इसी भाषा में सोच रहे हैं. लोन लेकर मकान बनवा रहे हैं.. पीएफ का पैसा प्लॉट में घुसा रहे हैं.. कम उम्र में बेटियों की शादियां कर रहे हैं.. अपने सपने अपने बच्चों पर थोप रहे हैं.. उन्हें अपनी जाति और पसंद की लड़की से शादी करने पर मजबूर कर रहे हैं.. दहेज लेकर खुश हो रहे हैं.. नातेदारी और मोहल्लेदारी के नाम पर बुसे हुए बदबूदार बुरादा भरे भेजे रात-दिन बर्दाश्त कर रहे हैं! किसी अच्छी कला-संगीत-फिल्म-किताब या लड़की के लिए उनके जीवन में कोई जगह नहीं बची है. बीवी से भी वस्तुओं की, दफ्तर की, अखबार की बातें करने वाले ये लिलिपुट नॉनएन्टिटी ...जठरजीवी! क्या वह भी इन्हीं की जमात में शामिल हो जाएं? कभी नहीं.

सवाल टालने का एक कारण और था. इस सवाल के साथ एक सवाल और जुड़ा हुआ था. शादी नहीं करके उन्होंने कोई गलती तो नहीं की? क्या सु. या. रे. उनके अच्छी तरह चाहने भर से आज उनके बच्चों की मां नहीं होती? लेकिन क्या करें! जीवन की शुरुआत हुई थी एक चीथड़ा-चीथड़ा बचपन से.. वह नहीं चाहते थे कि जिसे सबसे अधिक प्यार किया उसे भी अपने दलिद्दर में घसीट लें... और एक ठीकठाक-सी सम्मानित-सी जिंदगी हासिल करने में आधी उम्र बीत गई. उन्होंने सोचा था कि वह दिखा देंगे कि बगैर नेता या उद्योगपति का पुत्र हुए और बगैर आइएएस पास किए भी सिर्फ अपनी लगन, मेहनत, प्रतिभा और ईमानदारी के बल पर वह कुछ बन सकते हैं. उन्होंने दिखा भी दिया. लेकिन सिर्फ एक हद तक. और उसे भी देखने वाला अब कौन है? सिर्फ उपन्यासों या फिल्मों में इतने लंबे समय तक प्रतीक्षा करती हैं नायिकाएं.. उस दुनिया में नहीं जिसमें सु. या. रे. रहती हैं.

फिर ऐसा होने लगा कि वे, जिन्होंने शादी नहीं की, मकान नहीं बनवाया, बीमा नहीं करवाया, किसी सहकर्मी या रिश्तेदार को कभी कोई भाव नहीं दिया... अचानक यह सोचने लगे कि उन्हें ग्रेच्युटी का कितना पैसा मिलेगा? बैंक में कितना पैसा है? फिक्स्ड डिपाजिट कितने हैं? एनएसएस और एनएससी में कितना है? इस सबका ब्याज करीब कितना प्रति माह हो सकता है? क्या शेयर या.. उन्हें तो यह भी याद नहीं कि उन्हें तनख्वाह कितनी मिलती है. वह तो बस यह जानते हैं कि जब जितनी जरूरत होती है, चेक काटकर दे देते हैं, पैसा आ जाता है.. आज तक कोई चेक उनका बाउंस नहीं हुआ. क्या उन्होंने ठीक नहीं किया? परेशान होकर सोचा क्यों न कुछ रोज छुट्टी लेकर कहीं घूमने चले जाएं? दिन भर यही सोचा-विचारी चलती रही. किसी काम में मन नहीं लगा.

शाम को घर लौटे तो अचानक और शायद पहली बार उन्हें लगा कि उनका घर काफी से ज्यादा बड़ा है. एक-एक कमरे में गए. नौकर है, जो पूरे घर को झाड़ता-पोंछता है, पर सच बात तो यह है कि कम से कम दो कमरों का कोई इस्तेमाल नहीं होता. दरअसल वे खुद कई दिनों बाद उन कमरों में गए थे. ड्राइंगरूम, बेडरूम, बालकनी और किचन.. इतने में ही पसरा है उनका बोरिया-बिस्तर. घर का बाकी हिस्सा संदूक में अवेरकर रखी गई जरी गोटे वाली भारी साड़ियों की तरह निष्काम और अनुपयोगी है. उन्हें यह भी लगा कि घर काफी सूना-सूना है. जहां बहुत सारे लोग नहीं रहते वहां भी जीवन की कुछ-न-कुछ हलचल तो होती ही है. चिड़िया तिनका-तिनका लाकर घोंसला बनाती हैं.. चींटियां पंक्तिबद्ध आती हैं और सामने से आती पंक्ति के नायक से गले मिल बाजू से निकल जाती है... भंवरे गुनगुनाते हैं. मक्खियां भन-भन करती हैं.. कॉकरोच अपनी लंबी मूंछों से टोह लेते आते हैं.. चुहिया कहीं से झांकती है. सामने आती है और आहट पाते ही छिप जाती है... बिल्ली दबे पांव आकर दूध पी जाती है.. कुत्ता पूंछ हिलाता है.. इस अपेक्षा से कि आप उसे प्यार करेंगे. उनके यहां तो कुछ नहीं! किसी को इस घर में कुछ मिले तो वह आए! उन्होंने सोचा कल से एक खिड़की खुली छोड़ जाएंगे और डाइनिंग टेबल पर कुछ ब्रेड का चूरा या शक्कर के दाने बिखरा जाएंगे.

आईने के सामने गए और खुद को निहारा. कपड़े नहीं उतारे. शायद डर के मारे. टाई तक नहीं खोली. दाहिने-बाएं मुड़े नहीं, कपड़े पहनकर तो अब भी स्मार्ट दिखते हैं. एक हद तक दिलफरेब. कम-से-कम कमउम्र विधवाएं तो आकर्षित हो ही सकती हैं. काश! कोई विधवा अभी दरवाजा खटखटाती! अभी परीक्षा हो जाती.

किचन में जाकर चाय का पानी चढ़ाया और टाई-कोट खोल हाथ-मुंह धोने लगे. तभी दरवाजे की घंटी बजी. दरवाजा खोला तो देखा कि --विधवा! !

एक स्थूलकाय मोटी महिला.. सफेद साड़ी.. सफेद ब्लाउज.. हाथ में बैग.. कलाई में प्लास्टिक की चूड़ियां.. माथे पर पसीने की बूंदें.. खूब तेल डली कस्सी चोटी... दो-चार चंदेरी बाल... नहीं, ऐसा मज़ाक नहीं करना चाहिए. कैसे कह सकते हो वह विधवा ही होगी.

"नमस्ते."

"कहिए?"

"मेमसाब नहीं हैं?" महिला ने उनके आजू-बाजू की हवा में नजर से छेद कर भीतर झांकते हुए पूछा.

"...मैं अकेला ही रहता हूं."

महिला दुविधा में पड़ गई. कुछ-कुछ निराश मानो.

"आपको कोई काम है?"

"जी मैं सोहराब सोप कंपनी की तरफ से आई हूं. हमारे नए डिटर्जेंट पाउडर का डिमॉन्स्ट्रेशन देने."

"आइए... बैठिए!" वह भीतर आए, महिला को भीतर आने का इशारा किया और किचन में चले गए. उबलते पानी को केतली में निकालते हुए सोचा, यह भी तो चाय पिएगी! "आप चाय पिएंगी?" कहते हुए लौटे तो देखा महिला अभी तक दरवाजे पर ही खड़ी है. "आइए न!"

"नहीं थैंक्यू!" महिला ने वहीं खड़े-खड़े नम्रता से कहा और खड़ी रही. वह भी खड़े रहे. जा रही है या आ रही है? किचन की तरफ मुड़ने लगे तो महिला ने कहा, "अंकल! एक गिलास पानी मिलेगा?"

चौंक गए. चिढ़ गए. चुपचाप किचन में आ गए. पानी का गिलास ले जाकर उसे दिया. उसने पिया. गिलास लौटाया. नमस्ते करके थैंक्यू करके चली गई. दरवाजा बंद किया. वापस किचन में आ गए. साली विधवा! गिलास कैसे पकड़ रही थी, जैसे उंगलियां छु गई तो मैं उसे वहीं दबोच लूंगा. गधी. सौ बार विधवा!

डाइनिंग टेबल पर अकेले बैठे चाय पीने लगे. गोदी में अखबार था. उसे अभी कुछ देर बाद पढ़ेंगे. बालकनी में बैठकर. खयाल आया कि अभी जो औरत उन्हें जूता मार गई, उसकी उम्र क्या रही होगी? शायद पैंतीस से चालीस के बीच. सु की उम्र क्या हो गई होगी? क्या सु भी.. ठहरो.. सु. की उम्र उन्हें याद है. सु उनसे तीन साल छोटी है. यानी? पैंतालीस?! और.. रे छह साल छोटी. यानी बयालीस! ? क्या रे की कमर पर भी इतनी ही चर्बी चढ़ गई होगी जितनी इस विधवा की कमर पर थी? क्या उसकी आंखों के नीचे भी जाले पड़े गए होंगे? गरदन पर झुर्रियां? बालों में चंदेरी लकीरें? स्तन बेडौल? बाल पूंछड़ी? हथेलियां खुरदरी? नाखूनों में मैल? एड़ियों में बिवाइयां? कोहनियों पर काले घट्टे? सांस में बदबू?

लेकिन क्यों? लेकिन क्यों नहीं? लेकिन क्या जरूरी है? लेकिन दूसरी संभावना भी क्या है? लेकिन हो सकता है उसने खूब व्यायाम किया हो, नियमित आहार रखा हो, मेंटेन किया हो खुद को? हां, हो सकता है. बालों में खिजाब, शरीर पर उबटन, चमड़ी पर क्रीम, नाखूनों पर पॉलिश, मुंह में माउथवाश सब हो सकता है.. लेकिन मांसपेशियों का तना हुआ नियंत्रण? गरम खून की गर्दिश? मन का छलछलाता हुआ उत्साह? कुछ पूरा का पूरा पा लेने की अदम्य आकांक्षा? कुछ पहली बार जानने की उत्कंठा... कुछ छककर भोग लेने की प्यास.. कुछ शिखर छू जाने का रोमांच... कुछ नया हो जाने का असमंजस.. कुछ अशरीरी.. अव्याख्येय रचा जा चुकने की पुलक...? क्या वह भी वहां शेष होगी? क्या इसकी कोई संभावना भी वहां शेष होगी? बल्कि... हकीकत का तकाजा तो यह है कि क्या इसकी कोई स्मृति भी वहां शेष होगी? और स्मृति हो भी... तो क्या उस स्मृति के लिए कोई सम्मान भी शेष होगा? या उन अलौकिक क्षणों की स्मृति भी पछतावे और आत्मघृणा और पाप और 'गंदी बात' और गोपनीय की कीचड़ में सन गई होगी? उन्हें लगा, जानना ही चाहिए हकीकत क्या है? क्या झाग है, और क्या तलछट? वह अकेले ही डूब रहे हैं या उनके साथ एक पूरी दुनिया भी?

सिर झटक, अखबार ले बाहर बालकनी में आ गए और अखबार पढ़ने की जगह नीचे गली में चल रहा बच्चों का फुटबाल का खेल देखने लगे. बच्चे शोर मचाते हुए खेल रहे थे. आनंद में आकंठ डूबे. न कहीं डी थी, न सेंटर लाइन, न बाउंड्रीलाइन न गोलपोस्ट. यह तक पता नहीं चल रहा था कि कौन खिलाड़ी किस तरफ है. अभी-अभी जो गोलकीपर होता, दूसरे ही पल फॉरवर्ड लाइन में पहुंच जाता. हा हू. पर खेल मजे से चालू था. उन्हें अपना बचपन याद आया. महाराजा शिवाजीराव स्कूल के ग्राउंड पर वे लोग भी इसी तरह खेलते थे. बल्कि कई बार तो फुटबाल भी नहीं होती थी, टेनिस बाल से ही खेलते थे. कुछ जूते उधर, कुछ इधर रखकर मान लिया जाता था कि यह गोलपोस्ट है. खिलाड़ियों की संख्या का कोई बंधन नहीं था. कुल बच्चे छह हुए तो तीन इधर, तीन उधर और मैदान कुछ छोटा. कुल बच्चे तीस हुए तो पंद्रह इधर, पंद्रह उधर और मैदान कुछ बड़ा. क्या मजा था!

खेल देखते पता नहीं कितना समय बीत गया. अचानक दरवाजे की घंटी बजी. कंधे पर गाउन डालते हुए दरवाजा खोलने गए. कहीं विधवा दोबारा न आ गई हो!

जे था. "हलो अंकल."

"हाय! कमॉन!"

"मे आइ डिस्टर्ब यू फॉर अ मिनिट?"

"प्लीज डू. बैठो जरा.. मैं आया एक मिनिट."

जे यानी जयकिशन. उनके एक सहकर्मी का चौबीस वर्षीय बेटा. सब उसे जे ही कहते हैं. वह खुद भी. किताबें मांगने आया था. किसी कंपिटीशन की तैयारी कर रहा है. और सबसे कठिन विषय लगता है उसे हिंदी साहित्य. "पता नहीं क्यों जीके में भी चार-पांच क्वेश्चंस हिंदी साहित्य के घुसेड़ देते हैं ये लोग? देखना तो पड़ेगा ही अंकल! और आपसे ज्यादा इस बारे में कौन हेल्प कर सकता है?"

वह बैठ गए और विस्तार से पूछने लगे कि कौन-सी परीक्षा है, कौन-सा प्रश्नपत्र, किस काल के साहित्य के बारे में जानकारी चाहिए? पुस्तकें पढ़नी हैं या सिर्फ उनके बारे में जानकारी ही चाहिए? या सिर्फ नाम और लेखकों के नाम.. आदि. जे के पास यह सब बताने का समय नहीं था. धैर्य नहीं था. उसे पता ही नहीं था कि उसे क्या पता करना है. "एनीथिंग अंकल. इन जनरल. यू नो. समथिंग अबाउट एवरीथिंग."

उन्हें समझ में नहीं आया कि इस तरह हिंदी साहित्य के बारे में क्या बताया जा सकता है? या कौन-सी ऐसी पुस्तक हो सकती है जो

> **दिनचर्या में कोई भारी परिवर्तन संभव नहीं क्योंकि वर्तमान दिनचर्या बहुत सुविधाजनक है. सुविधा.. अभ्यास.. सुविधा का अभ्यास..**

किसी विषय के बारे में समथिंग अबाउट एवरीथिंग.. इन जनरल.. बता सके! यथासंभव मिजाज को ठंडा रखते हुए उन्होंने पूछा, "तुम जल्दी में हो क्या? जे?"

जे ने शरमाते हुए जवाब दिया कि नीचे कुछ दोस्त खड़े हैं उसके. उन्हें बहुत बुरा लगा, गुस्सा आया कि यह साला उन्हें और हिंदी साहित्य को समझता क्या है? यह क्या कोई चना-मूंगफली खरीदना है कि दोस्तों को नीचे खड़ा रहने को कहा कि दो मिनिट में आता हूं हिंदी साहित्य लेकर! और ले गए?

मुस्कराकर उन्होंने पूछा, "किसी खास जगह जाने का कार्यक्रम है क्या?"

"नहीं अंकल. बस यूं ही जरा. इन जनरल."

"शाम गुजारने? सम कोजी रेस्तरां? ऑर डिस्कोथे मे बी और अ बीयरशॉप?"

"हां अंकल, ऐसा ही समझ लीजिए."

"तो अपनी शाम यहीं क्यों नहीं गुजारते? हमारे साथ? वी विल हैव अ लॉट ऑफ म्यूजिक ऐंड अ लॉटॉफ चिल्ड बीयर ऐंड अ लॉटॉफ फन! व्हाट डू यू से?"

"ओके अंकल. थैंक्यू!"

जे उठकर चला गया. वह अपनी चतुराई पर संतोष से मुस्कराए. देखें क्या है इनमें जो उनमें खुद में नहीं. किस तरह ये लोग उनसे ज्यादा नौजवान हैं?

वह उत्साह से थोड़े चंचल हो गए. सारी चीजें चेक करने लगे कि पर्याप्त हैं या नहीं? बीयर, बर्फ, नमकीन, अंडे, काजू, पानी... था. सब था. बहुत दिनों से था. अच्छा होगा कि आज काम आ जाएगा.

इससे पहले कि बच्चे ऊपर आते, उन्होंने ड्राइंगरूम में फ्रेशनर छिटक दिया.. हल्की-हल्की रोशनी कर दी.. अपनी पसंद की क्लिफ रिचर्ड की कुछ रिकॉर्ड्स छांटकर अलग रख लीं.. और बैठ गए. फिर सिगरेट जला ली. मन ही मन कुछ सूत्र दोहराने लगे. नई चीजों को ग्रहण न कर पाने की सामर्थ्य खो देना बुढ़ापा है. हर पुरानी चीज को अच्छा और नई को बुरा समझना बुढ़ापा है. नई चीजों से तालमेल नहीं बिठा पाना और परिप्रेक्ष्य को माइनस कर हर नई चीज की पुरानी से तुलना करने लगना बुढ़ापा है. अपनी परंपरागत पसंद-नापसंद को छोड़ने बदलने की लचक खो देना बुढ़ापा है. सिखाने का उतावलापन और न सीखने का अड़ियलपन बुढ़ापा है... वगैरह.

लेकिन उन लोगों को ऊपर आने में काफी समय लगा. मानो जे को उन्हें इसके लिए तरह-तरह से मनाना पड़ा हो. जे समेत तीन लड़के थे और एक लड़की. बाद में एक लड़का और आ गया. वे लोग झिझकते हुए आए, उन्होंने बहुत अदब से अभिवादन किया और वे बहुत तमीज से बैठ गए. जे ने परिचय कराया तो सिर्फ नाम बताए. दिस इज सुधीर.. शी इज मीरा. पर खैर. बाकी बातें उन्होंने खुद एक-एक से पूछ लीं. वे क्या करते हैं, किस-किस कक्षा में पढ़ते हैं, क्या बनना चाहते हैं, क्या-क्या उनकी रुचियां और शौक हैं.. उन्हें क्या अच्छा लगता है.. घर में कौन-कौन हैं वगैरह.

सारी बातें अंग्रेजी में ही हो रही थीं. लेकिन उन्हें अच्छा लग रहा था. बच्चे स्मार्ट हैं. आंखों में आंखें डालकर बात करते हैं. आत्मविश्वास के साथ बात करते हैं. ठोस पसंद-नापसंद रखते हैं और उसे प्रकट करने में भी झिझकते नहीं. इनकी आंखें चमकदार हैं... दांत साफ-सफेद और मजबूत.. कपड़े चुस्त और फबते हुए. बातचीत का तरीका शालीन, लेकिन घिघियाहट नहीं.. हकलाहट नहीं.. चिपचिपाहट नहीं... स्वाभिमान की लहर पर लहर. सब निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के बच्चे हैं. जरा कपड़े हटाकर देखो तो एकदम घरेलू. क्या वह स्वयं इस उम्र में किसी से भी इतने ढंग से बात कर पाते थे? नहीं.. तुलना नहीं. नो कंपेरिज़न प्लीज.

फिर उन्होंने बातों में से निकलता हुआ एक संदर्भ उठाकर एक जोक मारा जरा करारा-सा. वे सब हंसे. माहौल खुशनुमा बना देने वाली हंसी. हालांकि एक क्षण के लिए उन्हें यह संदेह भी हुआ कि शायद जोक उनका सुना हुआ है और वे सिर्फ उनका दिल रखने के लिए हंसे हैं. पर वे उठ गए और भीतर आ गए और गिलास और बीयर की बोतलें ले जाकर मेज पर रख दीं. काजू और नमकीन की प्लेटें भी. किचन में आकर बॉटल ओपनर उठाया और लड़की के लिए लेमोनेड बनाने लगे. अचानक ड्राइंगरूम से फुसफुसाहट की आवाजें आईं और किसी ने कहा—अंकल! एक गिलास कम है.

हाथ ठिठक गए उनके. तो क्या लड़की भी बीयर पिएगी? फिर मुस्कराए. क्यों नहीं? क्या उनके जिद करने पर सु. नहीं मार लेती थी दो-चार घूंट? फिर खुद को आगाह किया—नो कंपेरिज़न प्लीज.

खाली गिलास और बॉटल ओपनर लेकर बाहर आए, क्लिफ रिचर्ड की रिकॉर्ड चालू कर दी... बोतलें खोलकर गिलास भरे और अपना गिलास उठाकर बोले, "सो? चीयर्स फॉर द ब्रेव न्यू वर्ल्ड!"

कुछ देर तक संचालन के सूत्र उन्हीं के हाथ में रहे. वह जोक सुनाते.. किस्से ...बहस चालू करते.. घुमाते... और बीयर लाते... और नमकीन लाते.. रेकॉर्ड्स बदलते.. बार-बार उठते, बार-बार बैठते, बार-बार भीतर जाते.. बार-बार बाहर आते... अपने नौजवान मेहमानों की कंपनी को एंजॉय करते रहे. हालांकि एक बार उन्हें लगा कि काश! कोई कहता कि अंकल, हम कुछ हेल्प करें? लड़की ही कहती! उनके दोस्त आते हैं तो.. और अगर दोस्त की पत्नी भी साथ हुई तब तो उन्हें कुछ करने ही नहीं दिया जाता लेकिन... नहीं, तुलना नहीं.

चलता रहा. मजा आ रहा था. लेकिन कुछ देर बाद उन्होंने लक्षित किया कि वे लोग आपस में ही बातें करने लगे हैं और उनसे सिर्फ अंकल पानी प्लीज या अंकल सम मोर बीयर प्लीज ही कहा जा रहा है. पहले वे लोग सिर जोड़कर खुसफुस बातें करते रहे.. फिर पसरते गए... ऐंठते गए.. उनकी आवाजें खुलती गईं.. और उन्होंने औपचारिकता के लिए भी अपने मेजबान की तरफ देखना बंद कर दिया. अब वे सिर्फ अंकल, थोड़ा नमकीन और उठा लाइए.. या अंकल, मेरा गिलास भर दीजिए.. जैसे हुक्म झाड़ रहे थे. बीच में एक लड़का अचानक किसी बात पर गुस्सा हो गया और चिढ़कर बोला, "स्टॉप दैट जंक प्लीज!" उसका इशारा क्लिफ रिचर्ड की तरफ था.

उन्होंने उठकर रेकॉर्ड प्लेयर बंद कर दिया और चुपचाप अपनी जगह पर आकर बैठ गए.

लड़की भांप गई. वह उठकर उनके पास आ बैठी. उसने पैकेट में से एक सिगरेट निकालकर उनके होंठों में दबाई और सुलगा दी. फिर लाड़ से मुस्कराने लगी. यह क्या नर्स है? यह क्या मुझे अपाहिज समझ रही है?

लेकिन इससे पहले कि वह ठीक से नाराज हो पाते, लड़की ने उनके कंधों पर बाज़ू फैला दिया और बोली, "कैन वी प्ले अ कैसेट ओवर हीयर?"

"श्योर!" उन्होंने कहा.

लड़की ने फुर्ती से अपने पर्स में से एक कैसेट निकाला और बोली, "हे! कमॉन! लेट्स डांस! आय हैव गॉट द म्यूजिक. द लेटेस्ट फ्रॉम टीना टर्नर!"

सेंटर टेबल वगैरह हटाई गईं, कैसेट ऊंची आवाज में बजा दिया गया और वे सब नाचने लगे. उसे नाच ही कहना पड़ेगा क्योंकि उस नियमहीन, अनुशासनहीन, व्याकरणहीन शारीरिक हरकत के लिए अभी कोई और नाम ईजाद नहीं हुआ है.

कुछ देर बाद लड़की ने हाथ पकड़कर उन्हें उठाया और डांस करने लगी. वह यथासंभव भद्रता के साथ लड़की की कमर पर हाथ लपेट संगीत की तेज ताल से कदम मिलाते हुए नाचने लगे और अपने नथुनों में लड़की के बदन से फूटती कच्चे दूध की बास महसूस करने लगे. उन्हें अच्छा लगने लगा. उन्हें बीस साल पहले की रे याद आने लगी और वह रोमेंटिक होने लगे. बल्कि वे डूबने लगे.

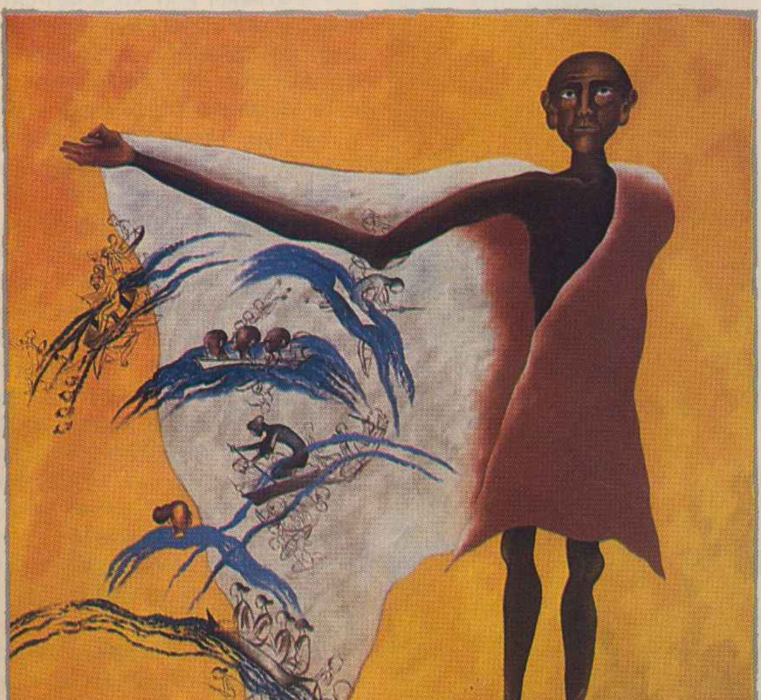

तभी अचानक एक लड़का बड़ी जोर से हंसा. हंसते-हंसते गिर पड़ा. हंसते-हंसते बोला, "अंकल! यू डोंट डांस प्लीज! फॉर गॉड्स सेक! प्लीज डोंट ट्राय टु डांस!" और फिर हंसने लगा. हंसते-हंसते उसकी आंखों में आंसू आ गए. जे ने उसे आंखें दिखाईं तो पड़ा-पड़ा ही बोला, " ही लुक्स सो फनी यार!" और फिर हंसने लगा आंसू पोंछ-पांछकर.

वह सकपकाकर बैठ गए. लड़की ने टेप बंद कर दिया. बाकी लोग जैसे खड़े थे.. वैसे ही खड़े रह गए. हंसने वाला लड़का भी सकपकाकर खड़ा हो गया.

"लेट्स गो!" जे बोला. सब अपना सामान उठाने लगे.

टेप बंद होते ही सन्नाटे जैसा हो गया था. वह कुछ कहना चाहते थे, पर उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहना चाहते हैं. चुपचाप जो हो रहा था, उसे देख रहे थे.

थैंक्यू अंकल! थैंक्स अंकल! थैंक्यू अंकल! वी हैड ए वंडरफुल ईवनिंग! अंकल, अवर रिटर्न ट्रीट इज ड्यू. एक बार आपको भी हमारे साथ आना होगा... आदि बातें जाते समय उन्होंने कहीं. हंसनेवाला लड़का इट वाज़ फन ओल्डमैन कहकर लड़खड़ाता हुआ सीढ़ियां उतर गया. लड़की ने उनका नाम लेकर मिस्टर... कहकर धन्यवाद दिया और गाल पर चुंबन देकर मुस्कराते हुए चली गई.

जब सब चले गए तो उन्होंने देखा कि उनके ड्राइंगरूम का लगभग सत्यानास हो चुका है. कालीन पर नमकीन और पानी और बीयर और गिलास ही नहीं.. सिगरेट के मसले हुए टुकड़े भी पड़े हैं... जिनमें से एक अब तक सुलग रहा है. ■

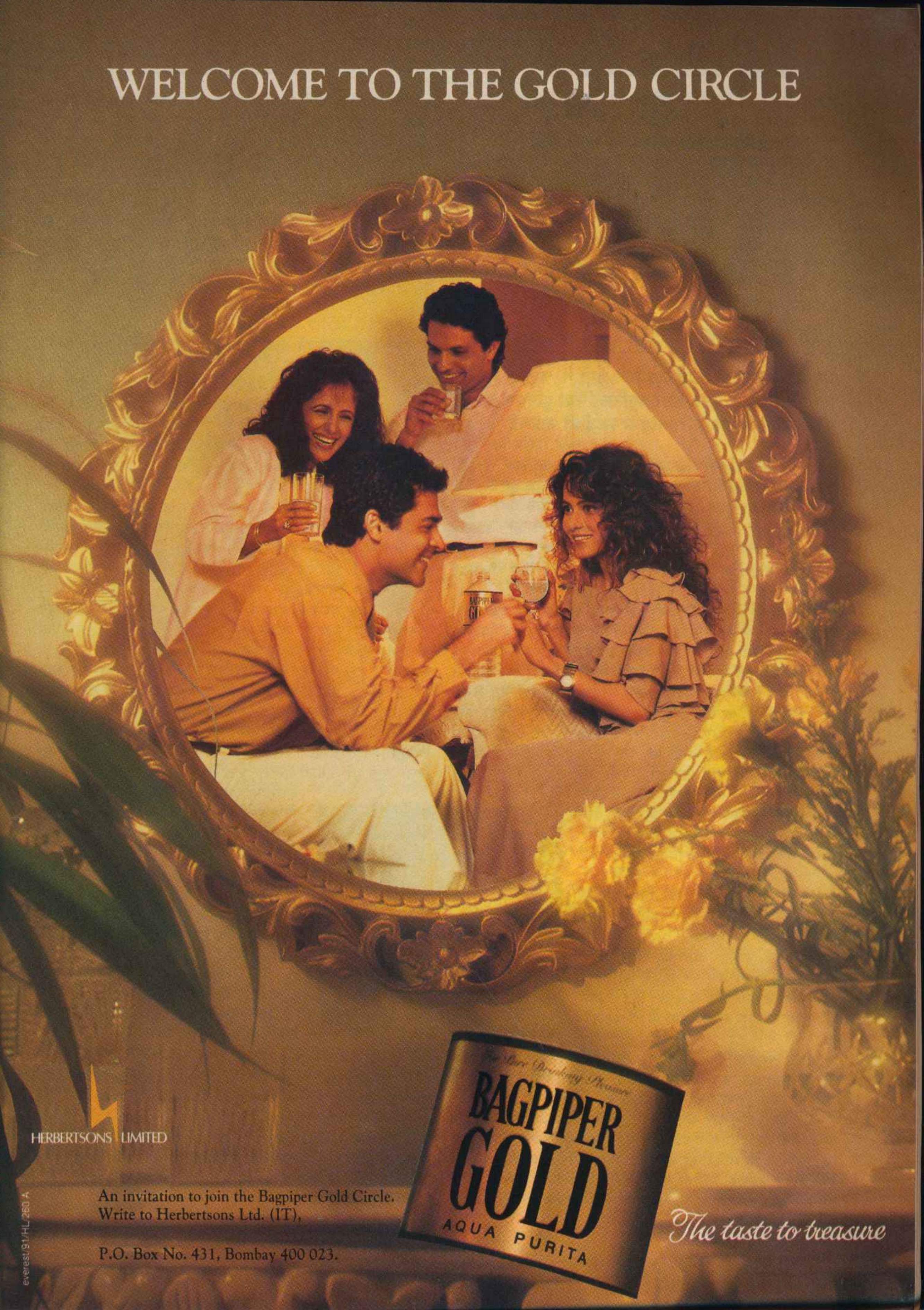
WELCOME TO THE GOLD CIRCLE
HERBERTSONS LIMITED
An invitation to join the Bagpiper Gold Circle.
Write to Herbertsons Ltd. (IT),
P.O. Box No. 431, Bombay 400 023.
BAGPIPER GOLD
AQUA PURITA
The taste to treasure
everest/91/HL 260 A

लंठ

• अब्दुल बिस्मिल्लाह

• चित्र: हरिपाल त्यागी

गांव भर में आरिफ़ मियां लंठ माने जाते थे. न कोई शर्म, न हया. न काम, न धंधा. मगर आरिफ़ मियां दुनियादारी के दंगल में क्या हारे, गांव से लंठई ही उठ गई.

हां तो भाई किहनी शुरू हो रही है. जो कहे सो लंठ, जो सुने सो लंठ. जो ना सुने सो भी लंठ. जो सच माने वो लंठ, जो झूठ माने वो लंठ. जो कुछ ना माने वो भी लंठ.

एक था लंठ. लंठई में उसका कोई सानी नहीं था. बड़े-बड़े लंठाधिराज उसके आगे पानी भरते थे. वो तो कहिए लंठई का कभी कोई दंगल नहीं हुआ, वरना वह आसपास के सारे लंठों की लंठई भुलवा देता.

एक कहावत तो सुनी ही होगी, कि 'आंख के अंधे नाम नयनसुख.' सो, पता नहीं क्या सोच-समझकर मां-बाप ने हमारे लंठराज का नाम आरिफ़ रख दिया था. आरिफ़ यानी ज्ञानी. लेकिन अरिफवा की किस्मत देखिए कि माता-पिता बालपन में ही उसे छोड़कर बहिश्त चले गए और बेचारे को जिंदा रहने के लिए न जाने क्या-क्या करना पड़ा. कभी किसी के खेत में घुसे हुए जानवर को हंका दिया और अपनी बहादुरी का बखान करके मालिक से दो रोटियां झटक लीं तो कभी किसी की उड़ गई साड़ी को तहा-तुहाकर मालकिन के सामने पेश कर दिया और हाथ फैलाकर चवन्नी मांग ली. न कोई शर्म, न हया. काम किया तो मजूरी मिलनी ही चाहिए. कुछ न मिले तो गाली ही सही. वह भी भारी लगती हो तो थप्पड़ मार लीजिए. मगर आरिफ़ मियां को मेहनताना चाहिए ही चाहिए.

> **गांव के लोग सोचते थे कि बड़ा होने पर इसे अकल आ जाएगी मगर लोगों का यह विश्वास टूटता गया. उम्र के साथ-साथ अरिफवा की लंठई में भी इजाफा हुआ.**

एक बार की बात है, पं. दीनानाथ जी के बाग में कुछ स्त्रियां दिशा-फराकत कर रही थीं. अरिफवा ने तत्काल पंडित जी से शिकायत की. बोला, "महराज, आम पकने वाले हैं, चुएंगे तो मैले पर गिरेंगे कि नहीं. फिर कौन जाएगा उन्हें उठाने? और ई तो देखिए महराज कि ऊ सब आप ही के घर की औरतें थीं."

इतना सुनना था कि पंडित जी ने उसकी गरदन पकड़ी और पीठ पर एक घूंसा तान कर रसीद कर दिया. अरिफवा मुस्कराया. बोला, "बस महाराज इतना मेहनताना काफी है."

और फिर धीरे-धीरे यह मशहूर हो गया कि अरिफवा आरिफ़ यानी ज्ञानी नहीं, बल्कि एकदम लंठ यानी मूर्ख है. एक दिन क्या हुआ कि—रमज़ान के महीने की घटना है—अरिफवा ने घोषणा की कि आज वह रोजे से है. मौलवी बशीरुद्दीन ने पूछा, "सेहरी खाए हो?" बोला, "हां!" फिर पूछा, "अफ्तार में क्या खाओगे?" बोला, "जो आप खिलाएंगे. मौलवी साहब आगे बढ़ गए. सोचा, शाम को आएगा तो घुघनी-पकौड़ी खा लेगा और क्या? मगर भैया कहां का अफ्तार और कहां की शाम? अरिफवा गांव की गलियों में टहल रहा था कि एक राहगीर ने पूछा, "बीड़ी पियोगे?" बोला, "लाओ!" और हज़रत शान से बीड़ी फूंकते हुए चार बजे ही मौलवी साहब के द्वार पर हाजिर हो गए. मौलवी साहब ने दस सलवातें सुनाईं और यह कहकर भगाने की कोशिश की कि अब इधर दिखाई पड़े तो टांग तोड़ दूंगा. अरिफवा ने सिर झुका लिया और पूछा, "कोई गलती हो गई क्या मौलवी साहब?" इस पर मौलवी साहब इतना गरजे, इतना गरजे कि शोर सुनकर वहां अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठी हो गई. मगर वह टस से मस नहीं हुआ. आखिर हारकर मौलवी साहब ने उसे घुघनी-पकौड़ी खिलाई, तब जाकर वह टला वहां से.

गांव के लोग सोचते थे कि बड़ा होने पर इसे अकल आ जाएगी और यह अपने आप ठीक हो जाएगा. मगर लोगों का यह विश्वास टूटता चला गया. उम्र के साथ-साथ अरिफवा की लंठई में भी इजाफ़ा हुआ. तब ग्राम-प्रधान के बड़े बेटे दयाल बाबू ने सोचा कि अगर इसे शहर भेज दिया जाए तो यह ठीक हो जाएगा, इसकी जिंदगी भी बन जाएगी. सिटी मजिस्ट्रेट को एक घरेलू नौकर की जरूरत थी. दयाल बाबू का उनके यहां आना-जाना था. अरिफवा को उन्होंने सिटी मजिस्ट्रेट की सेवा में नियुक्त करा दिया.

सिटी मजिस्ट्रेट ने बंगले के अहाते में एक झोंपड़ी डलवाकर उसमें जर्सी गाय पाल रखी थी, जो प्रतिदिन सोलह किलो दूध दिया करती थी. आरिफ़ मियां की ड्यूटी यह थी कि वह उनकी गाय को सानी-पानी तो दे ही, रोज एक बार शहर के बाहर चराने भी ले जाया करे. एक दिन क्या हुआ कि वह रेलवे लाइन के उस पार गाय चरा रहा था, उसने देखा बंगले के बाग में नटों का डेरा पड़ा हुआ है और खूब ऊंचा धुआं उठ रहा है. आरिफ़ को लगी थी भूख. सोचा, जरूर वहां खाना-वाना पक रहा होगा. और वह डेरे के पास जाकर खड़ा हो गया. फिर क्या था, डेरे का आलम देखकर तो वह ठगा-सा रह गया. एक तरफ ईंटों से बने चूल्हे पर भात पक रहा था. दूसरी तरफ कोई स्त्री छाती खोले बच्चे को दूध पिला रही थी. आदमी लोग तंबुओं में बैठे बीड़ियां फूंक रहे थे. लड़कियां अपने घाघरे फहराती फुदकइया चिड़ियों की तरह फुदक रही थीं. एक लड़की खटोले पर लेटी पांव हिला रही थी. गोरी-चिट्टी, उम्र यही कोई चौदह-पंद्रह साल, कलाइयां लाख की चूड़ियों से भरी हुई, पांव में खूब चौड़े पायल, लाल छींट की कसी हुई चोली और गाढ़े पीले रंग का घाघरा, घाघरे से निकली हुई रोएंदार पिंडलियां... आरिफ़ मियां उस दृश्य में इस कदर तन्मय हो गए कि फिर कहां की जर्सी गाय और कहां के मजिस्ट्रेट साहब! होश तब आया जब तंबू से निकलकर एक नट ठीक उसकी नाक के आगे खड़ा हो गया.

"क्या देख रहा है बे?"

"ऊं!" आरिफ़ चौंका.

नट ने अपनी लाल-लाल आंखें फैलाई.

"क्या देख रहा है?"

"ये क्या तुम्हारी ही लड़की है? बहुत अच्छी है."

इतना कहना था कि नट ने उसे ताबड़तोड़ पीटना शुरू कर दिया. गालियां ऊपर से. जब वह पिट चुका तो मुस्कराया. बोला—

"कुछ खाने को दे दो ना, भूख लगी है."

"अभी पेट नहीं भरा क्या बे?" नट उसे फिर पीटने लगा. तब वह समझ गया कि इससे ज्यादा यहां कुछ नहीं मिलेगा. और अच्छी तरह पिटाई हो जाने के बाद वह बंगले की ओर रवाना हो गया.

"गाय कहां है?"

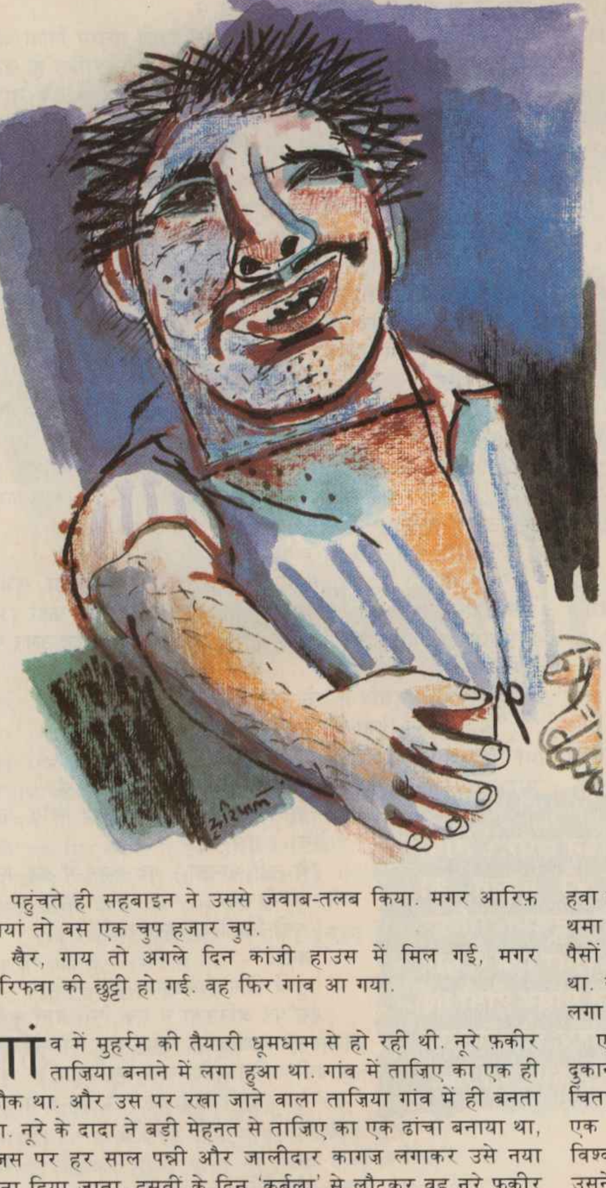

पहुंचते ही सहबाइन ने उससे जवाब-तलब किया. मगर आरिफ़ मियां तो बस एक चुप हजार चुप.

खैर, गाय तो अगले दिन कांजी हाउस में मिल गई, मगर अरिफवा की छुट्टी हो गई. वह फिर गांव आ गया.

गांव में मुहर्रम की तैयारी धूमधाम से हो रही थी. नूरे फ़कीर ताजिया बनाने में लगा हुआ था. गांव में ताजिए का एक ही चौक था. और उस पर रखा जाने वाला ताजिया गांव में ही बनता था. नूरे के दादा ने बड़ी मेहनत से ताजिए का एक ढांचा बनाया था, जिस पर हर साल पन्नी और जालीदार कागज़ लगाकर उसे नया बना दिया जाता. दसवीं के दिन 'कर्बला' से लौटकर वह नूरे फ़कीर के दालान में रख दिया जाता और उस पर पुरानी चादरें बांध दी जातीं. उन दिनों ताज़िए का नवीनीकरण हो रहा था और पन्नी कागज घट गया था. एक रोज नूरे फ़कीर ने आरिफ़ से कहा कि साइकिल से शहर जाकर पन्नी कागज़ खरीद लाओ, तो वह खुशी-खुशी तैयार हो गया.

गांव से बाहर दूर-दूर तक रेह का फैलाव था. बस कहीं-कहीं इक्के-दुक्के बबूल के झाड़ भर खड़े थे. गर्मियों के दिन थे. आरिफ़ साइकिल चलाता हुआ, कुछ गुनगुनाता हुआ बढ़ा जा रहा था. आगे दो पगडंडियां एक दूसरे को बीच में काटती थीं, जहां ठीक बीचोबीच एक बड़ा-सा पत्थर रखा था. आरिफ़ साइकिल से उतर गया. उसने साइकिल एक तरफ खड़ी की और खुद पत्थर के पास खड़ा हो गया. पत्थर पर एक समूचा नारियल, चुनरी का टुकड़ा, पांच लड्डू और एक चवन्नी के साथ दो अठन्नियां रखी हुई थीं. खुशी के मारे उसका दिल बल्लियों उछलने लगा. सबसे पहले तो उसने लड्डुओं को चट किया, फिर नारियल तथा पैसों को कब्जे में ले लिया. उसके बाद साइकिल उठाई और वापस लौट लिया.

"अरे बहुत जल्दी लौट आए? ले आए पन्नी कागज़?"

नूरे फ़कीर ने आश्चर्य के साथ पूछा तो आरिफ़ मियां ने नारियल उसके सामने रख दिया और पूरी कहानी कह सुनाई. पन्नी कागज़ की उसने कोई बात नहीं की.

"क्या?" नूरे चौंका, "तुमने चौगड्डे पर रखे लड्डू खाए? अब क्या होगा जानते हो?"

"क्या होगा?"

"अरे पागल, किसी ने 'निकारा' किया होगा, समझे. और तुमने 'निकारे' की चीजों को न सिर्फ छुआ, बल्कि खा भी लिया. तुम्हारी अक्ल पर एकदम पत्थर पड़ गया है क्या? न जाने कहां के भूत-प्रेत होंगे. अब देखते जाओ, क्या-क्या होता है? अपनी मौत बुला रहे हो और कुछ नहीं. ठीक है बाबा, मरो जाकर. पन्नी कागज़ के पैसे इधर लाओ, मैं किसी और को भेजूंगा शहर."

आरिफ़ ने जेब से पन्नी कागज़ के पैसे निकाले तो साथ में पत्थर पर से उठाई गई चवन्नी और अठन्नियां भी निकल आईं. उसने सारे पैसे नूरे के आगे रख दिए और चल पड़ा वहां से.

एक अधपक्की-सी सड़क ने गांव को शहर से जोड़ दिया था. सड़क बनते ही गांव के कुछ बेरोजगारों को रोजगार करने का मौका मिल गया था. किसी ने चाय-नमकीन की, तो किसी ने पान-बीड़ी की दुकान खोल ली थी. कुछ दिनों बाद दसरथ विश्वकर्मा ने जब साइकिल-मरम्मत की दुकान खोली तो अरिफवा को उसने सहायक के रूप में रख लिया. उसका काम था पंक्चर ट्यूब को टायर के भीतर से निकालना, चेन में ग्रीस लगाना तथा अन्य पुर्जों में तेल डालना! बाद में उसने पंक्चर ठीक करना भी सीख लिया था. दोनों पहियों में हवा भरने के बीस पैसे और एक पंक्चर ठीक करने का एक रुपया रेट था. मगर जिस रोज दसरथ दुकान में न होता, लोग उससे हवा मुफ्त में भराते थे और पंक्चर ठीक करने के पच्चीस-पचास पैसे थमा देते थे. आरिफ़ किसी से कोई शिकायत नहीं करता था. हां, उन पैसों को वह खुद रख लेता था, दसरथ को मांगने पर भी नहीं देता था. कहता, "तुम्हें यह भी दे दूंगा तो खाऊंगा क्या?" दसरथ चुप लगा जाता.

एक बार हुआ क्या कि दसरथ विश्वकर्मा अचानक गायब हो गया. दुकान बंद रहने लगी. पता चला, वह बंबई भाग गया है. लोगों को चिंता हुई, "बेचारे आरिफ़ का अब क्या होगा?" मगर आरिफ़ ने एक दिन ऐसा कारनामा किया कि जिसने भी सुना उसने तब तक विश्वास नहीं किया जब तक कि खुद अपनी आंखों से देख नहीं लिया. उसने दुकान का ताला तोड़ दिया था और दसरथ विश्वकर्मा की जगह खुद बैठने लगा था. लोगों ने कहा, "चलो इसी बहाने भला इसे कुछ अक्ल आ जाए. पैसा आने लगता है तो बेवकूफ़ियां अपने आप भाग जाती हैं."

दसरथ के घर वालों ने कहा, "अरे हमारे लिए क्या फरक पड़ता है? वही क्या देता था कमा कर. दुकान चल गई तो यह शायद कुछ दे भी. अपनों से पराये भले."

बस क्या था, आरिफ़ मियां दुकान मालिक हो गए. और दुकान मालिक को भला कौन टोकता, कि यह क्या कर रहे हो? हवा भरने के लिए जो पंप मांग ले गया, उसने पंप रख लिया. जिसने पंक्चर बनवाए, उसने उधारी कर दी. दो-तीन ठीकठाक ट्यूब पड़े हुए थे, लोग उन्हें भी उठा ले गए. ग्रीस, तेल और पंक्चर जोड़ने का सलूशन तक गायब हो गया. दुकान में सिर्फ फालतू की चीजें ही बच रहीं, कुछ

जंग लगी तीलियां, टूटी हैंडिलें, फटी सीटें और टायर-ट्यूब की बेतरतीब कतरनें. एक रोज तो ताला भी गायब हो गया.

आरिफ़ अब अपने घर में कैद हो गया. उसे भी लगा कि वह किसी काम का नहीं है. वह सचमुच लंठ है.

घर क्या था, बस मिट्टी की दीवारें थीं, जो गिरने-गिरने को थीं. लिपाई-पुताई तो होती नहीं थी, इसलिए फ़र्श भी धूल हो गई थी. वह दिन भर अपनी दालान में पड़ा रहता. बस शाम को गांव में निकलता और जहां कुछ पा जाता, खा-पी लेता! बच्चे और नौजवान ही नहीं, बूढ़े भी उसे छेड़ा करते; मगर वह सिवा मुस्कराने या लजाकर सिर झुका लेने के और कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता था.

एक रोज किसी ने कहा, "अरे आरिफ़, अब तुम कोई काम-धंधा भी नहीं करते, मुफ्त का खाना तो तुम्हारा स्वभाव नहीं था." बात उसे लग गई. और एक बार वह फिर सक्रिय हो उठा.

वह अब रात में निकलता. घर-घर के किवाड़ धकेलता. जहां द्वार खुला मिलता, वह खड़ा होकर बड़बड़ाने लगता—

—"अरे ए रग्घू की अम्मां, किवाड़ तो बंद कर लो. जमाना कितना खराब है. कोई आएगा और सब उठा ले जाएगा. फिर रोओगी डेवढ़ी पर बैठकर."

—"अरे महराज, बहुत फालतू कमा लिया है क्या? बुला लाऊं चोरों को. चलो निकलो, दरवाजा बंद करो."

—"अरी ओ बिट्टन, मियां गया है बंबई कमाने और तुम यहां सब खोल-खालकर बैठी हो. कुछ हो गया तो क्या फरिश्ते आएंगे संभालने. चल उठ किवाड़ भेड़ सिकड़ी लगा?"

उसका बड़बड़ाना सुनकर लोग बाहर निकलते. उसे डपटते—

"क्या बड़-बड़ लगा रखा है रे, चल भाग यहां से. अभी सब जाग रहे हैं."

"ठीक है भई, जागो. हम तो अपना काम कर रहे हैं," अरिफवा सिर झुकाकर बोलता,

"हां, दिन की बची कुछ रोटी-वोटी हो तो मिल जाए."

और इस तरह उसे पेट भरने भर को कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था.

एक रोज पं. दीनानाथ ने उसे बुलवाया और पूछा, "हमारे साथ चलोगे?"

"कहां महराज?"

आरिफ़ को महराज का दिया मेहनताना याद आ गया. डर के मारे उसकी हालत खराब होने लगी. फिर भी वह हिचक-हिचक कर सवाल-जवाब करने लगा.

"जहां हम ले चलें."

"फिर भी महराज?"

"अजुध्या."

"वहां क्या है महराज?"

"वहां पूड़ी-तरकारी खाने को मिलेगी. एक जोड़ा कपड़ा तो अभी मिलेगा. हम बनवाएंगे. खूब मजा आएगा. बोलो, चलोगे?"

"चलेंगे महराज. आपका बोझा हमीं ढोएंगे. मेहनताना तो मिलेगा न महराज?"

"हां, हां क्यों नहीं? सब कुछ मिलेगा."

"बोझा कुछ जियादा तो न होगा महराज."

"नहीं रे, कोई बक्सा-वक्सा थोड़े न ले चलना है!"

"फिर महराज?"

"बस हाथ में एक ईंट भर ले चलना है."

"सच महराज?"

"हां रे, अब जा. तैयार रहना. जब चलना होगा, बताएंगे."

एक दिन आरिफ़ मियां दसरथ की दुकान का ताला तोड़ दुकान मालिक बन बैठे. मगर एक के बाद एक चीजें गायब होती गईं और आरिफ़ को भी लगा वह किसी काम का नहीं.

इतना कहकर पं. दीनानाथ भीतर चले गए. आरिफ़ मियां उठे और सीना फुलाते हुए निकल पड़े गांव में.

उस रोज रास्ते में जो भी मिला, उसे उसने सलाम किया और मुस्कराया. स्त्रियों को देखकर वह कुछ ज्यादा ही उत्साहित हो उठा. एक लड़की को तो उसने उसकी नजर बचा कर आंख तक मारी. इधर कुछ दिनों से न जाने क्यों ऐसा हो रहा था कि लड़कियों को देखकर उसके भीतर फरहुरी-सी होने लगती थी. उस लड़की को आंख मार लेने के बाद तो वह एकदम बेचैन हो उठा. वह आगे चल रहा था, पीछे देख रहा था. लड़की ओझल हो गई, मगर वह लगातार पीछे की तरफ देखता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था कि सामने से आ रहे मौलवी साहब के बेटे खुर्शीद से टकरा गया.

"क्या बात है आरिफ़? आज तो बड़ी मस्ती में हो. कहां जा रहे हो?" खुर्शीद ने टोका तो उसने पहले सलाम किया, फिर बोला—

"जा रहे हैं हम अजुध्या."

"अजुध्या?"

"हां, वहां पूड़ी-तरकारी खाने को मिलेगी. हमारे लिए नए कपड़े बन रहे हैं..."

खुर्शीद को काटो तो खून नहीं. वह थोड़ी देर तक आरिफ़ को घूरता रहा, फिर उसे साथ लेकर अपने घर आ गया. दोनों एक कमरे में बैठ गए. खुर्शीद ने भीतर से खाना मंगाया.

"खाओ! भूख तो लगी होगी?"

"हां, लगी है." इतना कहकर आरिफ़ खाने पर टूट पड़ा. खुर्शीद उसके हुलिए का निरीक्षण करने लगा. पैजामा गंदा, कुर्ता फटा हुआ, पांव नंगे, फटे हुए. बाल गर्मियों में सूख गई घास की तरह ऊपर की तरफ खड़े-खड़े, आंखें पीली.

'आरिफ़!" खुर्शीद ने उसे पुकारा.

"ऊं," मुंह में निवाला ठूंसते हुए उसने जवाब दिया.

"तुम अजुध्या मत जाओ."

"आंय!" आरिफ़ चौंका.

"हां, अजुध्या ले जाके तुम्हें लोग मार डालेंगे! समझे?"

"मैं नहीं मानता," यह कहने में वह जरा भी नहीं हिचका.

"तुम्हें किसी ने बहकाया है."

"क्या?"

"तुम्हें किसी ने चढ़ाया है."

इस पर अरिफवा ने एक ऐसी बात कही, जिस पर खुर्शीद तो क्या, गांव का कोई भी आदमी यकीन नहीं कर सकता था.

"तुम हमारी शादी करा दो, हम कहीं नहीं जाएंगे."

"क्या?" खुर्शीद उछल पड़ा.

"शादी! ... हां! चावल और हैं?"

खुर्शीद उठकर भीतर चला गया. आरिफ़ अपनी उंगलियों को चाटने लगा.

"शादी तुम्हारी हो जाएगी आरिफ़, तुम कहीं मत जाओ."

चावल लेकर लौटने के बाद खुर्शीद ने बहुत इत्मीनान के साथ कहा तो आरिफ़ चुप रहा. वह खाने में लीन रहा.

"मैंने घर में भी तुम्हारी बात कह दी है. बस जल्दी ही सब कुछ हो जाएगा. हां, इधर-उधर गाते मत फिरना. बात अभी हमारे-तुम्हारे बीच ही रहे तो अच्छा रहेगा."

आरिफ ने कुछ नहीं कहा. हाथ धोकर बाहर निकल गया.

वह अजुध्या नहीं गया. पं. दीनानाथ ने पूछा तो बोला, "अब हम शादी करेंगे, कहीं नहीं जाएंगे."

और तीन-चार रोज बाद ही आरिफ़ की शादी की तैयारी शुरू हो

"अब घर में ही रहना, कहीं निकल मत जाना. रात में दुलहिन आएगी. उसका इंतजार करना. लो, यह तुम्हारी बीवी का सूट है, अभी सिला नहीं है. वह खुद अपने मन से सिला लेगी."

इतना कहते हुए उसने आरिफ़ के हाथों में एक पैकेट थमाया और खुद भी बाहर निकल गया.

पहले तो रात ही बहुत देर बाद आई, फिर अंधेरा बहुत देर बाद हुआ. आरिफ़ ने सेहरा बांधे-बांधे ही ढिबरी जलाई और कोठरी में बिछी एक फटी-सी कथरी पर बैठकर दुलहिन का इंतजार करने लगा. जब काफी रात बीत गई और दुलहिन नहीं आई तो वह उठा और थाल में बचे छुहारों को खाने लगा. इसी बीच ढिबरी का तेल खत्म हो गया, वह बुझ गई. तब वह कथरी पर लेट गया और थोड़ी देर बाद उसे नींद आ गई.

अपनी दुलहिन का इंतजार उसने अगले दिन भी किया. पूरे दिन वह घर में ही बना रहा. शाम को भी कहीं नहीं निकला. जब रात होने लगी तो उसने खुर्शीद के दिए हुए पैकेट को खोला और लाल छींट के उस कपड़े पर बड़ी हसरत के साथ हाथ फेरने लगा. अंधेरा जब इतना घना हो गया कि कपड़े का रंग लाल के बजाय काला दिखाई पड़ने लगा, तो उसे एक तरफ रखकर वह कथरी पर लेट गया. मगर उस रात उसे नींद नहीं आई.

गई. एक मजदूरिन आकर उसके घर को लीप-पोत गई. शहर से नया पैजामा-कुर्ता सिलकर आ गया. साथ में प्लास्टिक की एक जोड़ी चप्पल भी. गांव के लौंडों ने सेहरा बनाने की जिम्मेदारी खुद ही ले ली. एक दिन खुर्शीद ने उसे उसके कपड़े वगैरह दिखाए तो अपनी जेब से उसने एक-एक, दो-दो के कुछ मुड़े-तुड़े, गंदे-फटे नोट निकाले और उन्हें खुर्शीद के सामने रखते हुए बोला—

"इन्हें रख लो, कुछ और मिलाकर दुलहन के वास्ते हमारी तरफ से भी एक सूट खरीद लेना."

खुर्शीद ने रुपये रख लिये.

फिर एक शाम आरिफ़ की दालान में चंद लोग एकत्र हुए. वह तो पहले से ही नहा-धोकर तैयार बैठा था. खुर्शीद ने कपड़े निकाले तो वह बहुत खुश हुआ. कुछ मुस्कराते हुए और कुछ लजाते हुए उसने कपड़े पहने. पांवों में चप्पलें डालीं. एक नौजवान ने सामने बैठाकर सेहरा बांधा तो किसी ने तत्काल आंखों में सुरमा लगाया. सुरमा थोड़ा लगा जरूर, पर आरिफ़ उस तकलीफ को झेल गया. थोड़ी देर बाद एक थाल में छुहारे आ गए. फिर अंत में आए एक अजनबी मौलवी साहब—शायद किसी दूसरे गांव के थे. उन्होंने आरिफ़ को पांचों कलमे पढ़वाए, फिर मन-ही-मन कुछ बुदबुदाने के बाद बोले, "तुम्हारा निकाह जीनतुन्निसा बिन्त सलामतुल्ला से साढ़े ग्यारह रुपए सिक्क-ए-रायजुलवक्त के महर के साथ किया जाता है, कबूल किया?"

खुर्शीद ने धीरे से आरिफ़ के कान में कहा, "कह दो, कबूल किया." और आरिफ़ ने कहा, "कबूल किया." यह सवाल-जवाब तीन बार दोहराया गया. फिर दुआ पढ़ी गई और छुहारे बंटे. इस तरह आरिफ़ मियां का निकाह संपन्न हो गया.

खुर्शीद के नेतृत्व में जुटे नौजवान एक-एक कर उठे और चले गए. तब उसने आरिफ़ से कहा—

अगले रोज आरिफ़ छींट का वह कपड़ा लेकर बुआ के घर पहुंचा. बुआ एक बेवा औरत थी जो हाथ की सिलाई-मशीन पर औरतों और बच्चों के कपड़े सिलकर अपना पेट पालती थी. गांव के सभी लोग—बड़े-छोटे, हिंदू-मुसलमान उनको बुआ ही कहते थे. अचानक अरिफवा को अपने सामने देखकर बुआ घबराईं. बोलीं—"कहो आरिफ़, बहुत परेशान दिख रहे हो. खैरियत तो है?"

आरिफ़ सिर झुकाकर उनके पास बैठ गया. फिर धीरे से उसने पैकेट निकाला और बुआ की तरफ बढ़ा दिया.

"यह क्या है आरिफ़?"

"यह हमारी दुलहन का कपड़ा है बुआ. अभी परसों ही तो हमारी शादी हुई थी. मगर हम दो रोज से इंतजार कर रहे हैं, अभी तक वो आई नहीं. सोचा, उसके कपड़े सिलवाकर भिजवा दें. फिर चाहे जब आए."

बुआ मुस्कराईं.

"तुम्हारी दुलहन कहां रहती है आरिफ़?"

"ये तो बुआ, खुर्शीद भाई को ही मालूम है."

इतना कहकर आरिफ़ ने फिर सिर झुका लिया.

"यह सब मजाक है आरिफ़, समझे. तुम्हारी शादी-वादी कुछ नहीं हुई है. तुम्हें सब यों ही बना रहे हैं. और तुम भी तो, एकदम वही हो. इतने बड़े हो गए, मगर अकल अभी तक न आई. जब अकल ही नहीं आई पगले, तो दुलहन कहां से आएगी?"

बुआ बोलती रहीं और वह चुपचाप सुनता रहा. वे जब चुप हो गईं तो धीरे से उसने कहा—

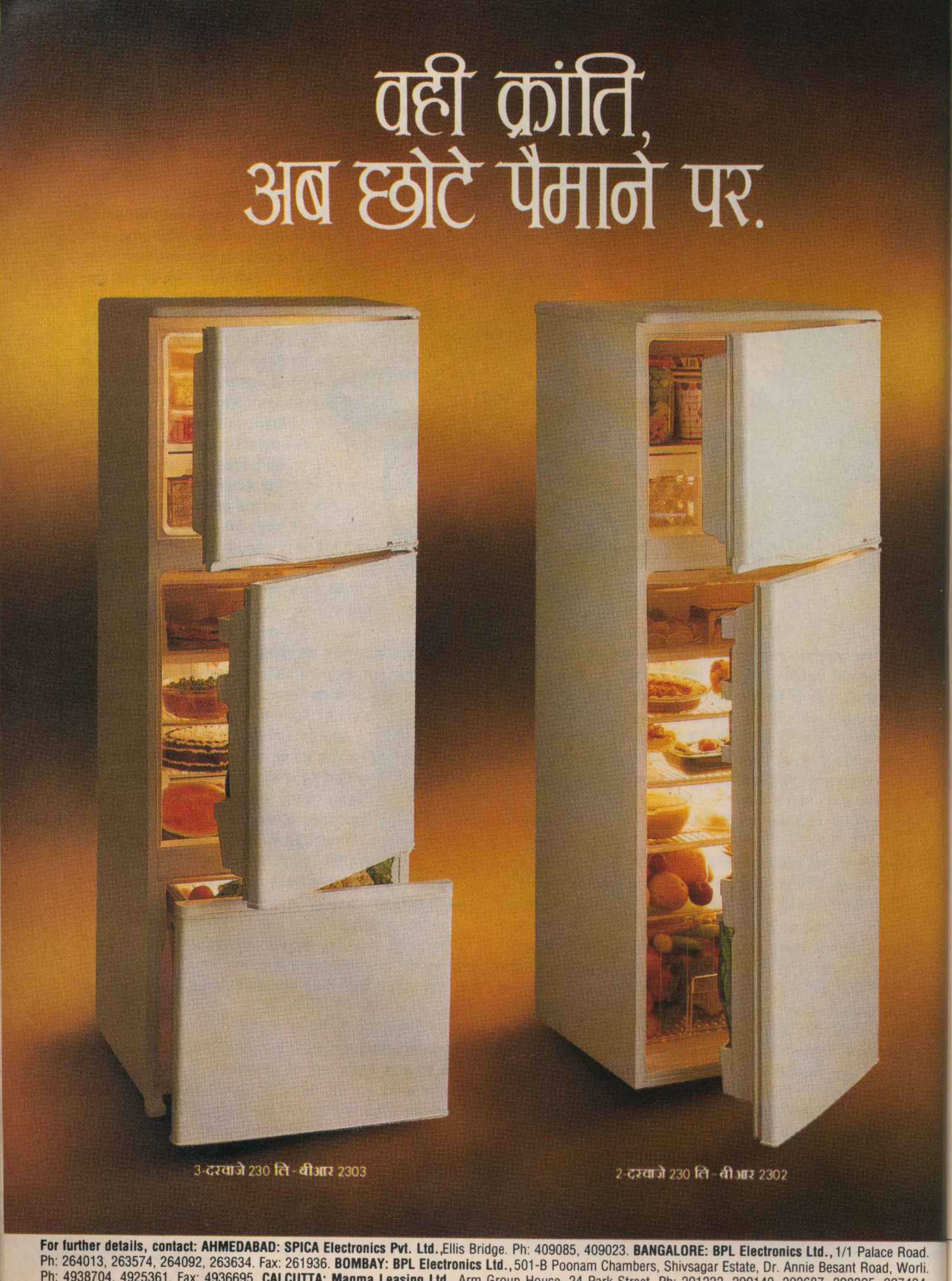

For further details, contact: AHMEDABAD: SPICA Electronics Pvt. Ltd.,Ellis Bridge. Ph: 409085, 409023. **BANGALORE: BPL Electronics Ltd.,** 1/1 Palace Road. Ph: 264013, 263574, 264092, 263634. Fax: 261936. **BOMBAY: BPL Electronics Ltd.,** 501-B Poonam Chambers, Shivsagar Estate, Dr. Annie Besant Road, Worli. Ph: 4938704, 4925361. Fax: 4936695. **CALCUTTA: Magma Leasing Ltd.,** Arm Group House, 24 Park Street. Ph: 291222, 299140, 292687, 298395, 297434.

BPL

नया बी पी एल 230 लिटर रेफ्रीजरेटिंग सिस्टम्स. वही क्रांतिकारी खूबियां अब 2 सुगढित डिज़ाइनों में!

यह 230 लिटर फ्रिज आपकी हर छोटी से छोटी ज़रूरत के अनुरूप तैयार किया गया है. साथ ही, इसमें समाई हैं 350 लिटर फ्रिज की वही क्रांतिकारी खूबियां, जिसकी बदौलत यह देश का सबसे आधुनिक रेफ्रिजरेटिंग सिस्टम माना जाता है.

जैसे; अलग - अलग खाद्य पदार्थों के लिए अलग - अलग तापमान वाले 4 हिस्से. जिससे आपके मटन, शाकभाजी और खाद्य पदार्थों की प्राकृतिक ताज़गी बनी रहे ज्यों की त्यों... बिल्कुल कुदरती!

जैसे; नॉन - स्टिक फ्रीज़र प्लेट - यानी आप अपनी खाद्य सामग्री सीधे फ्रीज़र में रख सकते हैं.

जैसे; चमत्कारी शेल्फ़. जिन्हें आप ऊपर - नीचे कहीं भी सरकाकर, अपनी ज़रूरत के मुताबिक जगह बना सकते हैं.

जैसे; फ्रॉस्ट - फ्री भीतरी बनावट. जिसके ज़रिए आपके खाद्य पदार्थों के खराब होने का डर ही नहीं रहता.

जैसे; सुव्यवस्थित, सपाट पिछला हिस्सा, हैण्डल - रहित विशेष डिज़ाइन. जिसकी बदौलत आपका रेफ्रीजरेटिंग सिस्टम आपके घर की खूबसूरती में चार - चांद लगा दे... निखार दे.

तभी तो ये दोनों नए मॉडल लाने वाले हैं फ्रिज की दुनिया में अनोखी क्रांति... अपनी अनोखी विशेषताओं के दम पर:

अद्भुत खूबियां, पर इतने कम दाम.

BPL REFRIGERATING SYSTEMS

आधुनिक जीवन शैली का प्रतीक

बी पी एल इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड की ओर से

सॅन्यो, जापान के तकनीकी सहयोग से

Fax: 293124. **HYDERABAD: BPL Electronics Ltd.**, 3-6-155/1, Urdu Hall Lane, Himayatnagar. Ph: 240036, 240042. **MADRAS: BPL Electronics Ltd.**, 125-129, A Block, 1st Floor, 190 Shivalaya Building, Commander-in-Chief Road. Ph: 8279420, 8271378, 8274309, 8261668. **NEW DELHI: BPL Electronics Ltd.**, 304 Ashok Bhavan, 93, Nehru Place. Ph: 6431886, 6433865, 6433689. Fax: 6427226.

Enterprise/Blr/BPL/129/HIN

"बुआ, दो दिन से हमने कुछ नहीं खाया है. परसों रात में बस अपने निकाह के छुहारे भर खाए हैं. कुछ खिला दोगी बुआ?"

आरिफ़ इसी तरह मांग-मांगकर खाता रहा और बुआ के समझावन-बुझावन के बावजूद अपनी दुलहिन का इंतजार करता रहा. दिन बीते, महीने बीते, साल बीता, मगर उसका इंतजार खत्म नहीं हुआ. गांव बदला, देश बदला, लोग बदले, मगर न बदला तो आरिफ़. कोई पीलिया से मरा, कोई टीबी से, मगर न मरा तो आरिफ़. लोगों ने कहा, "अरे रोवे त कूकुर रोवै, ना रोवै बिलार, जेकर छत्तीस दुवार."

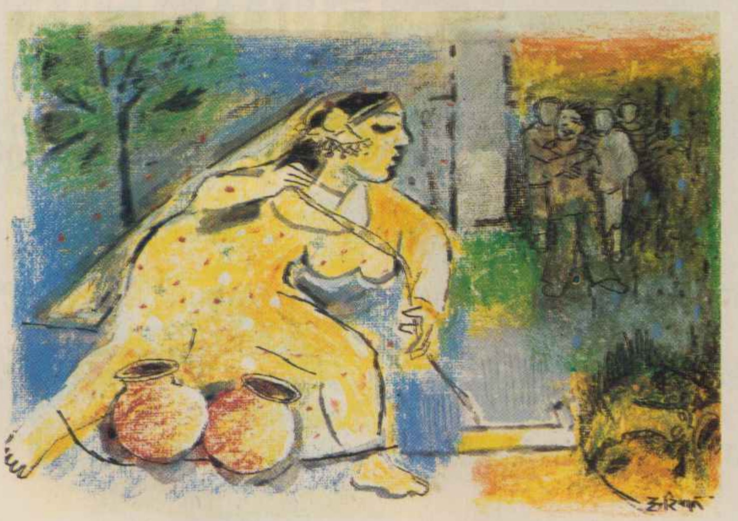

सर्दियों के दिन थे. शाम का वक्त. गांव में अचानक कुछ हुआ. शायद कोई खबर आई. या किसी ने शायद किसी से कुछ कहा. और सुनने में आया कि पं. दीनानाथ जी मिठाई बांट रहे हैं. तभी एक धमाका हुआ. लोगों ने कहा, "पटाखा बोला है." कुछेक नारे भी सुनाई पड़े. और रात होते-होते पता चला, कि बुआ की बोली बंद हो गई है.

जितने मुंह, उतनी बातें. फिर सब कुछ शांत हो गया. आरिफ़ अपनी दुलहिन का इंतजार करता हुआ सो गया.

सुबह हुई. गांव में चहल-पहल शुरू हुई. लोग स्वेटर पहने, शॉल ओढ़े बाहर धूप में निकले. आरिफ़ भी निकला. शादी वाला उसका पैजामा-कुर्ता गंदा हो गया था. चप्पलों में गोबर भरा था. मगर अब भी वह अपने आप को दूल्हा समझ रहा था. वह एक कुएं के चबूतरे पर बैठ गया. थोड़ी ही देर में दयाल बाबू अपनी मित्र-मंडली के साथ वहां पहुंचे और आरिफ़ को घेरकर खड़े हो गए.

रामकली कुएं पर पानी भर रही थी. वह विवाहिता थी, मगर पति उसका घर से भाग गया था. लोग उसे गांव की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी मानते थे. उम्र यही कोई बीस-बाईस बरस, रंग गेहुंआ, चेहरा गोल, यानी कुल मिलाकर वह शायद थी ही ऐसी कि गांव के सारे नौजवान उस पर फ़िदा थे और मन-ही-मन उससे हर तरह का संबंध जोड़ चुके थे. मगर रामकली थी कि सबको अपने ठेंगे पर रखती थी.

सो, जब वह गगरा-बाल्टी लेकर चली, दयाल बाबू की मित्र-मंडली में से किसी ने आरिफ़ को छेड़ा—

"इससे करोगे बियाह?"

"क्या?" आरिफ़ चौंका.

"बियाह और क्या? बोलो, करो तो करा दें."

"हां, करेंगे," आरिफ़ ने तत्काल उत्तर दिया.

"कैसी लगती है? है न एकदम टनाटन," एक दूसरे मित्र ने आंख मारते हुए पूछा तो आरिफ़ लजाने लगा. उसने अपना सिर झुका लिया.

"ए आरिफ़!" दयाल बाबू ने उसका सिर पकड़कर उठाया. और कहा, "खुर्शीद ने तुम्हारा ब्याह कराया था न! दुलहिन का अभी तक पता नहीं. अब हम करेंगे तुम्हारा ब्याह बोलो, मंजूर?"

"हां, हां, मंजूर. इसी से न?" आरिफ़ ने सामने की ओर उंगली उठाते हुए पूछा. हालांकि रामकली अब दिखाई नहीं पड़ रही थी.

"और नहीं तो क्या किसी कानी या लूली से होगा तुम्हारा ब्याह?" दयाल बाबू ने उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए कहना शुरू किया, "सुनो, आज एक जुलूस निकलने वाला है. उसमें तुम्हें चलना होगा."

"चलेंगे महराज. पूड़ी-तरकारी मिलेगी न?"

"हां-हां. जरूर. मिठाई भी मिलेगी. और छमक-छल्लो भी."

"अभी?"

"और नहीं तो क्या कल?"

आरिफ़ मियां उठे और दयाल बाबू की मित्र-मंडली के साथ चल पड़े.

दस-ग्यारह बजे के करीब गांव में एक शानदार जुलूस निकला. सभी लोग केसरिया वस्त्रों में सजे हुए, नारे लगाते हुए. सबसे आगे आरिफ़—केसरिया कुर्ता, केसरिया साफा और नारे की एक तख्ती. पीछे-पीछे करीब साठ-सत्तर लोगों की भीड़. भीड़ में कोई नाच रहा था, कोई गा रहा था. लोग पटाखे छोड़ रहे थे. चीख रहे थे. उछल रहे थे. कूद रहे थे. जुलूस गांव भर में घूमा और फिर सर्वत्र शांति हो गई.

जब तीसरे दिन भी आरिफ़ नहीं दिखा तब किसी ने कहा, "अरे भाई कहीं वह अजुध्या तो नहीं चला गया." मगर शाम को वह घर में मरा पाया गया.

आरिफ़ मियां अपनी कथरी पर लेटकर रामकली की कल्पना में गुम हो गए.

दूसरे दिन आरिफ़ बाहर नहीं निकला. लोगों ने कहा, "कल बहुत थक गया होगा, सो रहा होगा." लेकिन वह तीसरे दिन भी नहीं दिखा. तब किसी ने कहा, "अरे भाई पता लगाओ, कहीं वह अजुध्या तो नहीं चला गया?"

और शाम को एक छोटी-सी भीड़ उसके द्वार पर इकट्ठी हुई. भीतर से मरे हुए चूहे जैसी दुर्गंध आ रही थी. एक आदमी हिम्मत करके घुसा और चीखता हुआ बाहर निकल आया. कथरी पर आरिफ़ की लाश पड़ी थी. पूरा बदन नीला पड़ गया था.

आरिफ़ की लाश को रात में ही दफना दिया गया.

गांव में बहुत दिनों तक उसकी मौत को लेकर तरह-तरह की अटकलें लगाई गईं. फिर थक-हारकर लोगों ने मान लिया कि कुछ नहीं, बेचारा अपनी लंठई में मारा गया.

तो भई, किहनी यहीं खत्म होती है. अरिफवा क्या मरा, गांव से लंठई उठ गई. लंठई क्या उठी, कथा—किहनी का मजा ही उठ गया. ■

शापग्रस्त

• अखिलेश • चित्र: अमिताभ दास

भरा-पूरा परिवार, सुखी-समृद्ध जीवन. फिर भी अचानक कभी सब कुछ बेमानी लगने लगता है. ऊब, बेहिसाब ऊब! मन दुखी होकर सुख की कामना करने लगता है. क्यों होता है ऐसा?

सरोज वर्मा उद्विग्न थी कि पति जी को क्या होता जा रहा है. कुछ दिनों से हंसी-खुशी उड़न-छू हो चली है. कितना हंसते-हंसाते थे. न हंसती तो गुदगुदी लगाने लगते थे. उजली तो उनके जीवन की चाबी थी. सुबह स्कूल के लिए वह ही उसको तैयार करते. कितनी कठिनाई से प्रमोद तैयार करते. चहकते हुए स्कूटर से उसे छोड़ने जाते. शाम आफिस से लौटते तो बस, लाद लेते बेटी को. फिर तो रात उन्हीं के पेट पर लेटे हुए वह सोती.

घर में जैसे खुशियों की अनेकानेक गौरैयां फुदकती-चहकती हों. देर से आफिस जाकर जल्दी घर लौट आते पति जी. वह झूठ-मूठ नाराज हो जाती तो मनाने लगते. शादी के सात साल हो गए पर बात-बात में उसके हुस्न की खूबसूरती में शेर-ओ-शायरी करते. इतना प्यार, इतना प्यार कि शौचालय में उसे देर हो जाए तो सरोज-सरोज कहते हुए दरवाजा भड़भड़ाने लगते, "सरोज तुम ठीक तो हो न?" वह कहती, फलां फिल्म का कैसेट लाओ—ला देते. कहती, साड़ी लाओ—ला देते. कहती, चाट खिलाओ—खिला देते. कहती, खाना बनाओ—बनाने लगते. कहती, बच्ची बहलाओ—बहलाने लगते.

पर, पिछले कुछ दिनों से इस शख्स को हो क्या गया. आफिस से छुट्टी मारकर बैठा है गुमसुम. आंख उठाकर देख तक नही रहा है. न उसकी तरफ, न बच्ची की तरफ. अजीबोगरीब हरकतें कर रहा है. बचपन की तस्वीरों को घंटों देखता रहेगा. यौवन की तस्वीरें देखकर आईने के सम्मुख खड़ा हो जाएगा और देर तक बिसूरता रहने के बाद अचानक चारपाई पर अनिश्चित समय के लिए तकिए से मुंह ढककर लेट जाएगा. एक दिन न जाने क्या हुआ, उठा और अपनी नेमप्लेट उखाड़ डाली. इसी तरह एक दिन अपनी कविताएं जोर-जोर से पढ़ने लगा. पढ़ने क्या, चिल्लाने लगा.

सरोज वर्मा उस घड़ी को कोसती है, जब कह दिया था, "ऐ जी आपकी तोंद बहुत ज्यादा निकल आई है, इसे भीतर करिए ना."

कर्तव्यपरायण पति प्रमोद वर्मा ने अगली सुबह दंड बैठक लगानी शुरू कर दी. इस पर वह शेखी में मुंह फुला बैठी, "ये सब नहीं चलेगा जी. सफेद निकर और ऐक्शन शू पहन कर जॉगिंग करिए. फिर शीशे के सामने खड़े होकर तौलिया से पसीना पोछें."

प्रमोद वर्मा ने वैसा ही किया. आदमकद आईने के सामने सफेद निकर, बनियान और ऐक्शन बूट में वह छोटी-सी तौलिया से देह पोछ रहा था. उसने सोचा कि हो सकता है कि तोंद कुछ पिचकी हो. आकलन के लिए उसने पेट पर हाथ फेरा. वह यथारूप थी. तभी उसने अपने को कायदे से देखना शुरू किया. सब कुछ बदल गया था. अभी पैंतीस का था, पर कितना खुरदरा और प्रौढ़ लग रहा था. वह अखबार में मुंह छिपाकर पास की कुर्सी पर बैठ गया. स्वयं से बोला, "मेरा शरीर, मेरी आत्मा, दोनों बरबाद हो चुके हैं. मैं पैंतीस का हूं लेकिन दोनों ही बूढ़े हो चुके हैं. न मेरी आत्मा निष्पाप हो सकती है, न मेरी तोंद पिचक सकती है. भौतिक और आध्यात्मिक विकास की संभावनाएं मेरे तईं धूमिल हो चुकी हैं."

> **"मेरा शरीर, मेरी आत्मा, दोनों बरबाद हो चुके हैं. मैं पैंतीस का हूं लेकिन दोनों ही बूढ़े हो चुके हैं...भौतिक और आध्यात्मिक विकास की संभावनाएं मेरे तईं धूमिल हो चुकी हैं."**

यही वो क्षण था जब उसमें परिवर्तन प्रकट होने लगा था. वह लंबी छुट्टी लेकर घर बैठ गया और उदास और बेचैन दिखने लगा. समय-समय पर वह लंबी सांस लेता अथवा लंबी निःश्वास छोड़ता.

पर जब वह अपनी पुरानी कविता का जोर-जोर से पाठ करते हुए चिल्लाने लगा, तो सरोज वर्मा सिहर गई और गिड़गिड़ा उठी, "प्लीज आपको ये क्या हो गया है."

"मुझे सत्य का पता चल गया है. बल्कि सत्य यह है कि मुझे असत्य का पता चल गया है."

"क्या है असत्य?"

"सत्य यह कि वह सब असत्य था, जो अब तक हमारे बीच था."

"मतलब कि हमारे बीच जो प्रेम था, जो सुख था, असत्य था?"

"हमारे बीच न प्रेम था, न सुख. यहां तक कि उजली के प्रति भी हमें प्यार न था. दरअसल हम जब तक जागते थे, प्रेम, सुख, वात्सल्य के देखे-सुने का रिहर्सल मात्र करते थे. हम प्यार नहीं, प्यार का प्रदर्शन करते थे."

"कैसी बात कर रहे हैं?"

"सच कह रहा हूं. सत्य तो ये है कि तुम्हारे बन-ठन कर बोलने, कृत्रिम हंसी, नकली रूठने और हर पल इतराते रहने से मुझे घृणा होती थी. मगर दरअसल हम घर में रहकर भी सड़क पर होते थे, जहां लोग तमीज, मुहब्बत वगैरह का स्वांग रचाते हैं."

"तो क्या आपका वह गुदगुदी लगाना, वह टट्टीघर का दरवाजा भड़भड़ाना, वह किचन के काम में हाथ बंटाना झूठ था?"

"बिलकुल झूठ था."

"और वह शेर-ओ-शायरी सुनाना भी झूठ था?"

"बिलकुल झूठ."

"आप चाहते क्या हैं?"

"मैं सुखी होना चाहता हूं. मुझे सुख की खोज है."

"तुम पागल हो गए हो. भरी जवानी में तुम्हें साधु बनने की शैतानी सूझ गई है. हे भगवान! ये इसी तरह अगर पगलाते रहे तो मेरा और मेरी बच्ची का क्या होगा?"

उजली दौड़ती आई, "पापा-पापा मुझे कॉमिक्स खरीद दो न."

प्रमोद वर्मा ने बेटी को गोद में ले लिया, "बेटे तुम्हें मैं कहानी सुनाता हूं, गांधी जी की."

"मुझे कॉमिक्स चाहिए. गांधी बुड्ढा था," उजली ने हाथों को टॉमीगन की मुद्रा में बनाया, "गांधी बुड्ढा ठायं-ठायं. पापा कॉमिक्स नहीं देता, तुम भी ठायं-ठायं—दोनों मर गए".

प्रमोद वर्मा गोया सचमुच मर गया. वह चारपाई पर गिर पड़ा और चद्दर से मुंह ढककर पड़ गया. उसकी इधर की यह चिरपरिचित मुद्रा थी. इस मुद्रा में जैसे ही आता, द्वंद्व का एक शोकगीत शुरू हो जाता. इधर अनगिनत बार यह शोकगीत उसने गाया फिर भी वह जैसे ही मुंह ढककर लेटने की मुद्रा में आता, शोकगीत शुरू हो जाता. "मैं तुच्छ और घृणित हूं. मेरे जीवन के इतने वर्ष आफिस में घूसखोरी के लिए दस से पांच बजे का पालन करते बीत गए. इससे भी बुरी बात, इस अवधि में मैं भय से सिहरा नहीं. अपने को धिक्कारा नहीं. यहां तक कि मुझे ज्ञान ही नहीं हुआ कि मेरे जीवन के दिन-महीने-साल निरुद्देश्य तबाह हो रहे हैं. मेरे कितने सारे सपने आफिस में पेपरवेटों के नीचे फड़फड़ाए होंगे, और दम तोड़ दिए होंगे. मेरे कितने-कितने कर्म बंद फाइलों में निर्वासन भोग रहे होंगे. वे अब बूढ़े हो चले होंगे. इतने कि उन्हें आजाद किया जाए तो उनसे चला नहीं जाएगा."

सब कुछ है मेरे पास पर मैं एक रोग का रोगी हो गया हूं पिछले कुछ दिनों से. मुझे कहीं भी किसी भी चीज में सुख नहीं मिलता." एक दिन यही सब सोचते-सोचते उसे थरथरी होने लगी.

वह अथाह ऊब से भरा रहता था, "मैं आदर्श भारतीय नागरिक की तरह बाईं पटरी पर चला और सच्चे भारतीय पुरुष की तरह अहर्निश गृहस्थी का खड़खड़ा खींचा. पत्नी द्वारा रोज-रोज फजीहत के बावजूद मैं बेशर्म के पौधे की तरह हरा-भरा खिला-खिला रहा. वी.सी.आर. खरीदा, स्कूटर खरीदा. सोफा-फ्रिज, सब कुछ है मेरे पास. एक स्थानीय किंतु प्रतिभाशाली चित्रकार के चित्र भी टंगे हैं ड्राइंगरूम में. अपना मकान न सही किंतु प्लॉट खरीद रखा है. पैंतीस वर्ष की अवस्था में कोई मध्यवर्गीय नवयुवक इससे अधिक क्या कर सकता है. बच्ची को बढ़िया स्कूल में पढ़ाता हूं. पर मैं एक रोग का रोगी हो गया हूं पिछले कुछ दिनों से. अजीबोगरीब रोग है, मुझे कहीं भी किसी भी चीज में सुख नहीं मिलता." एक दिन यही सब सोचते-सोचते उसे थरथरी होने लगी.

सरोज वर्मा ने पूछा, "कंपकंपी आ रही है तो कोई दवा ले लें."

"मेरी कंपकंपी की क्या दवा हो सकती है?" उसने सोचा और नतीजे पर पहुंचा कि नौकरी छोड़ देना उसकी कंपकंपी की दवा है, एंटीबायटिक है. वह नौकरी छोड़ देगा और कविताएं लिखेगा. बैंक में तीन लाख रुपये जमा हैं, उनके सूद से घर चल जाएगा.

"कोई दवा मंगवाऊं?"

"नहीं, उस दवा से मेरी कंपकंपी नहीं ठीक होगी. मेरी कंपकंपी ठीक होगी मेरे नौकरी छोड़ देने से. हां मैं नौकरी छोड़ दूंगा."

"आप पागल तो नहीं हो गए हैं. हे भगवान! इन्हें कुछ दिनों से क्या होता जा रहा है." वह गहरी नींद में सो रही उजली को उठा लाई. उसे झिंझोड़ते हुए पति से बोली, "इसका तो कुछ ख्याल करिए. कैसे चलेगा घर का खर्चा?"

"बैंक में तीन लाख के ऊपर जमा हैं, उनके ब्याज से चलाएंगे हम खर्चा. वैसे भी जूनियर इंजीनियर का वेतन ब्याज की इस राशि से ज्यादा नहीं होता. नौकरी छोड़ने के बाद इधर-उधर से इतना जरूर कमा लूंगा जो बोनस और इन्क्रीमेंट की क्षतिपूर्ति करेगा."

"नौकरी छोड़कर करेंगे क्या?" वह बदहवास थी.

"नौकरी मैं आत्मिक शांति के लिए छोड़ना चाहता हूं. नौकरी छोड़ने के बाद कविताएं लिखूंगा. साथ ही कुछ उच्च कोटि के निबंध लिखने का भी मेरा इरादा है."

"चूल्हे भाड़ में जाए आपका इरादा." वह सिसकने लगी. अचानक फुर्ती से उठी और उसका हाथ खींचकर उजली के सिर पर रख दिया, "उजली के सिर की कसम जो नौकरी छोड़िए. अरे तीन लाख के ब्याज से खाते रहेंगे तो बड़ी होने पर उजली का ब्याह कैसे करेंगे? पांच लाख तो आज ही डॉक्टर, इंजीनियर का रेट है."

"उजली का विवाह दहेज देकर न होगा. वह प्रेम विवाह करेगी. यदि प्रेम नहीं करेगी, प्रेम करने से डरेगी तो उसको प्रेम और प्रेम विवाह के लिए मैं प्रोत्साहित करूंगा."

"आग लगे आपकी बुद्धि को. ऐ सर्वशक्तिमान! हमारी रक्षा करो." वह उजली को लेकर सोने चली गई.

रात के 2.15 थे और सरोज वर्मा बेटी के साथ सो रही थी. प्रमोद वर्मा ने उसे जगाया, "मैं टेपरिकॉर्ड बजा दूं?"

"यही पूछने के लिए जगाया है?"

"वो बात नहीं." वह बहुत खुश दिख रहा था. उसने कव्वाली का कैसेट बजा दिया और बोला, "अब नौकरी नहीं छोड़ना चाहता. दरअसल मैं सस्पेंड होना चाहता हूं, इसके बड़े फायदे हैं."

उसने फायदे बताए, "सस्पेंड होने पर दो तिहाई वेतन मिलेगा. फिर लिख-पढ़कर वेतन के एक तिहाई से ज्यादा कमा ही लूंगा. दस से पांच के चक्कर से छुट्टी मिल ही जाएगी."

वह सस्पेंड होने के लिए उद्यत था. उसने निश्चय कर लिया था कि बॉस का सिर फोड़ देगा. नेता को गाली बक देगा. महिला शौचालय में घुस जाएगा. स्टेनो राधा अग्रवाल को आंख मार देगा, जैसे भी संभव हुआ वह सस्पेंड होकर रहेगा. बस वह आर्थिक भ्रष्टाचार के आरोप में सस्पेंड होने के लिए तैयार नहीं था. इसके पीछे कुछ उसकी सदाचारी जीवन जीने की इच्छा थी और कुछ उसका यह अनुभव था कि सरकारी कर्मचारी भ्रष्टाचार के कारण दंड नहीं स्नेह, सम्मान का पात्र बन जाता है. तो इस प्रकार सस्पेंड होने के लिए उसके पास कोई सुसंगत और स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी. बस एक दृढ़ इच्छाशक्ति थी, जो उसे अपने लक्ष्य की दिशा में बढ़ा रही थी.

उसने एक पैकेट सिगरेट और माचिस खरीदा. इसके पीछे उसका इरादा था कि इग्जीक्यूटिव इंजीनियर चरन साहब के सामने इसे पिएगा और धुंआ उनके मुंह पर छोड़ेगा.

वह कार्यालय में घुसा तो उसी समय सहायक अभियंता तिवारी स्कूटर खड़ा कर रहे थे. वह उनका अधीनस्थ था लेकिन नमस्कार नहीं किया. घृणा से थूक कर आगे बढ़ गया. सीधे जाकर चरन साहब की स्टेनो राधा अग्रवाल की मेज के सामने खड़ा हो गया. वह फिल्मी पत्रिका पढ़ने में मशगूल थी, किसी तरह चेहरा उठाया. वर्मा बोला "हलो राधा कैसी हो?" इस शर्मीले आदमी की यह बेफिक्री देख वह चकित हो गई. किसी तरह बोली, "नमस्ते."

"अरे हाथ मिलाइए. हमें भी तो कभी-कभी लिफ्ट दे दिया

करिए," वह निर्लज्जता से हंसा. राधा अग्रवाल का चेहरा आधा क्रोध आधा शर्म से लाल हो गया. उसको उसी दशा में छोड़कर वह अपनी सीट पर आ गया. वहां उससे संबद्ध दो ठेकेदार बैठे हुए थे. वह बोला, "एक-एक को डंडा कर दूंगा. बहुत हो चुका अब. चाहे सहायक अभियंता हो, अधिशासी अभियंता हो या ए.सी., सब सालों की ऐसी-तैसी कर दूंगा." उसने होंठ टेढ़े करके नथुने फुला लिए.

"वाह साहब! अब आए आप इंजीनियरी वाली लाइन पर. नहीं तो मास्टरों की तरह झेंपे-झेंपे रहते थे," ठेकेदारों में से एक ने कहा. दूसरा बोला, "हम तरसते रह गए कि हमारे साहब भी किसी को पिटवाने-उठवाने को कहें तो हमारे भी हाथ की खुजली शांत हो. अब लग रहा है कि हमारी भी ख्वाहिश पूरी होगी."

सहायक अभियंता तिवारी का चपरासी परदा हटाकर घुसा, "ए.ई. साहब बुलाए हैं. बोले हैं जल्दी पहुंचें."

"अबे भाग यहां से, जाकर बोल कि उनके बाप का नौकर नहीं हूं. जब फुरसत मिलेगी तो आऊंगा."

ठेकेदार तक सनाका खा गए कि ये चुपचाप रहने और शांतिपूर्वक कमीशन खाने वाला इंसान अगिया बैताल कैसे बन गया. एक, माचिस उठाने के बहाने वर्मा के करीब तक झुका और सूंघा. शराब की गंध न पाकर वह हैरान हो चला उसके रौद्र रूप पर.

वर्मा ने पैर उठाकर मेज पर फैला दिए. उसके पैरों के पंजे ठेकेदारों के मुंह की तरफ थे. पंजों की चमड़ी साफ थी. लेकिन फटी हुई थी. एक ठेकेदार के हृदय में दर्शन भाव पैदा हो गया. उसने सोचा, "मनुष्य कितना रहस्यमय होता है. यह वर्मा आज अकस्मात इतना वीर, धाकड़ और निर्भीक हो जाएगा, क्या कोई कह सकता था." दूसरा ठेकेदार अपने साथी के इस आध्यात्मिक चिंतन से असहमत था. उसकी धारणा थी कि निश्चय ही वर्मा को किसी माफिया बादशाह की छत्रछाया मिल गई है अथवा किसी मंत्री का वरद्हस्त.

ठेकेदार एक ने कहा, "दोनों एक ही बात है. मंत्री के वरद्हस्त का मतलब माफिया बादशाह की छत्रछाया है और माफिया बादशाह की छत्रछाया का मतलब मंत्री का वरद्हस्त है."

"एक-एक को डंडा कर दूंगा," वर्मा ने हुंकार भरी और मेज पर दाहिने पैर की एड़ी को हल्का-सा पटक दिया. ठेकेदार पशोपेश में पड़ गए कि यह वर्मा किसी और को डंडा करने के लिए गरजा है अथवा उनके ही ऊपर खफा हो गया है. वे इस मामले में उसके मन की टोह ले पाते कि इग्जीक्यूटिव इंजीनियर चरन साहब का बुलावा आ गया. वर्मा मुस्कराया—अब वक्त आ गया है कि मैं सस्पेंड कर दिया जाऊंगा और मेरी तमन्ना पूरी होगी. उसने मेज पर से सिगरेट का पैकेट और माचिस लिया. आगे बढ़ा तो लगा कि पेट में गैस फैल गई है. खुश हो गया. दरवाजे पर लात मारकर भड़ाक से घुसेगा और भीतर पहुंचने पर इस फंसी हुई गैस को सुरीली तान में छोड़ेगा. जब तान मद्धिम होने लगेगी तो मुंह में लगी सिगरेट देवानंद की तरह हिलाते हुए खचाक से तीली जलाकर सुलगा लेगा...

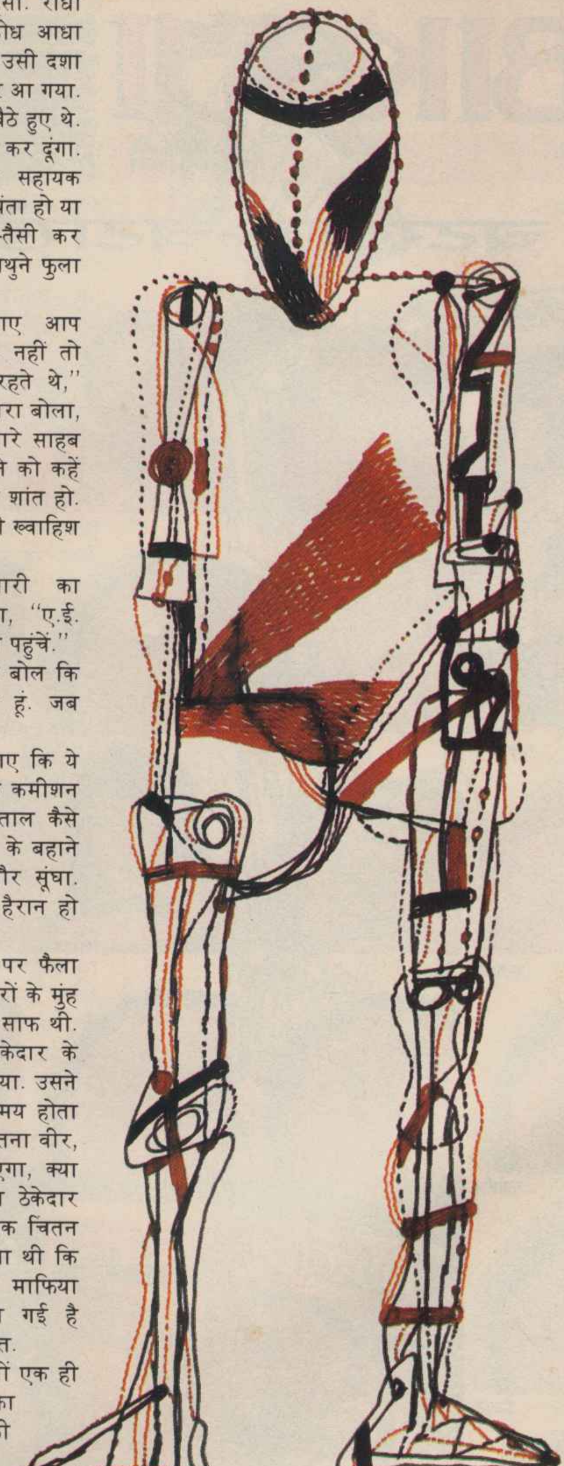

शाम को वह घर पहुंचा तो सरोज वर्मा उजली की उंगली पकड़े बाहर खड़ी इंतजार कर रही थी. उसने उजली को सिखा रखा था कि पापा आएं तो पापा-पापा कहते हुए लिपट जाना. स्वयं उसने भी अच्छा नाश्ता बनाने की तैयारी कर रखी थी और निश्चित किया था कि वह पति को देखते ही एक मोहिनी मुस्कान मुस्कराएगी और उसकी बांह पकड़े हुए घर में ले आएगी. दरअसल, सरोज वर्मा को यह विश्वास हो गया था कि पति प्रमोद वर्मा में इस बीच आए परिवर्तन की वजह गृहस्थी से उसका मन उचाट हो जाना है. ऐसी स्थितियां पुरुष को या तो साधु बना देती हैं या परायी औरत के पीछे मंडराता भौंरा. अभी तो प्रमोद वर्मा साधु बनने की दिशा में उन्मुख था किंतु क्या ठिकाना वह भौंरा बन जाए. इसीलिए उसने शाम को पति को देखते ही अमिट मुस्कान मुस्काने की ठान रखी थी. साथ ही प्रमोद वर्मा के भीतर वात्सल्य रस प्रवाहित करने के उद्देश्य से बच्ची को भी प्रशिक्षित कर डाला था. घर के भीतर नाश्ता सजाकर उसने सामने रखा और उजली से बोली "बेटी! जाओ पार्क में थोड़ी देर खेल लो." उजली के जाने के बाद वह प्रमोद वर्मा की गोद में बैठ गई, "नाश्ते के बाद अपने आज के अनुभव सुनाना है आपको."

झुंझलाहट से प्रमोद वर्मा की नसें तन गईं, "देखो मेरा इस समय का अनुभव तो यह है कि मुझे तुम्हारा यह प्रेम करने का तरीका अच्छा नहीं लग रहा है. तुम

BIKAJI
बीकाजी
स्वाद की चटखार-चटाखेदार!
भुजिया
पापड नं. १
स्पेशल पापड
छोटे-छोटे
जोरदार
दिलबहार
हलचल
कुछ-कुछ
दिलखुश
ताना-बाना
खास चीज़
गपशप
फलाहारी
सबकुछ
गोल्डी
चटक
बातचीत
मस्तकीन
पंचरतन
झटपट
BIKAJI
बीकाजी
BHUJIA
PAPAD
KUCH-KUCH
SHIV DEEP
उत्पादक :
शिवदीप फूड प्रोडक्टस
एफ/१९६-१९७, बिछवाल इण्डस्ट्रियल एरीया, बिकानेर-३३४ ००२. फ़ोनः २६०८६, २६२८६.
3 Brothers/B 6293/Hin

इतने दिन पत्नी की भूमिका निबाहने के उपरांत कुंवारी प्रेमिका बनने चली हो. कृपया मेरे जंघे से उतर जाओ. उम्र में तुम मुझसे छोटी हो किंतु आयतन और भार दोनों में मुझसे कहीं अधिक हो. 61 किलोग्राम का भार मेरा जंघा सह नहीं पा रहा है. वैसे भी स्त्रियों के नितंब पुरुषों की तुलना में काफी वजनदार होते हैं."

"अच्छा बाबा लो!" वह माहौल को तनावपूर्ण नहीं बनाना चाहती थी, इसलिए हंसते हुए उतर गई, "अच्छा अब आफिस का अनुभव सुनाइए."

उसने बताना शुरू किया. सब कुछ बतलाने के बाद उसने वर्णन का उपसंहार निम्नलिखित शब्दों में किया, "मैंने सौ फीसदी तय कर लिया था कि इग्जीक्यूटिव इंजीनियर के सामने घनघोर असभ्यता करूंगा और सस्पेंड कर दिया जाऊंगा. पर जैसे ही उसके कमरे के पास पहुंचा, थर-थर कांपने लगा. बोलते समय तालू सूख गया और जीभ लड़खड़ाने लगी. मैं रोज से भी ज्यादा डरपोक, विनम्र और चापलूस बन गया. कमरे से बाहर आया तो लगा कि मेरे भीतर उड़ने वाला साहस का परिंदा कहीं गायब हो गया है. यकीन मानो पूरे दिन आफिस में—साइट पर मैं काम करता रहा. पर असल में मैं अपनी हिम्मत की लापता चिड़िया को ढूंढ़ रहा था."

वह चिड़िया उसे मिल गई थी. बड़ा साहब अपनी स्टेनो राधा अग्रवाल को डिक्टेशन दे रहा था. प्रमोद वर्मा ने प्रतिदिन की तरह खड़ा रहने के बजाय कुर्सी खींची वह भी भड़भड़ाहट के साथ, और बैठ गया जबकि दो सहायक अभियंता खड़े थे. उनमें उसका सहायक अभियंता तिवारी भी था. बड़ा साहब डिक्टेशन देना बंद करके चिल्लाया, "ये क्या हरकत है?"

वह उससे भी अधिक गर्जना से चिल्लाया, "ये क्या हरकत है."

बड़ा साहब बोला, "होश में हो?"

"देखो बड़ा साहब, ज्यादा जोश में न आओ," उसने सिगरेट सुलगाई, और हाथ हिलाकर तीली बुझाते हुए राधा अग्रवाल को देखकर आंख मार दी, "अरे कभी-कभी हमसे भी डिक्टेशन ले लिया करो." राधा अग्रवाल इस तरह घबरा गई कि नोटबुक को घुटनों के बीच दबाकर पेंसिल से पीठ खुजाने लगी. और दिन होता तो बड़ा साहब राधा अग्रवाल के घुटने के आसपास या पीठ

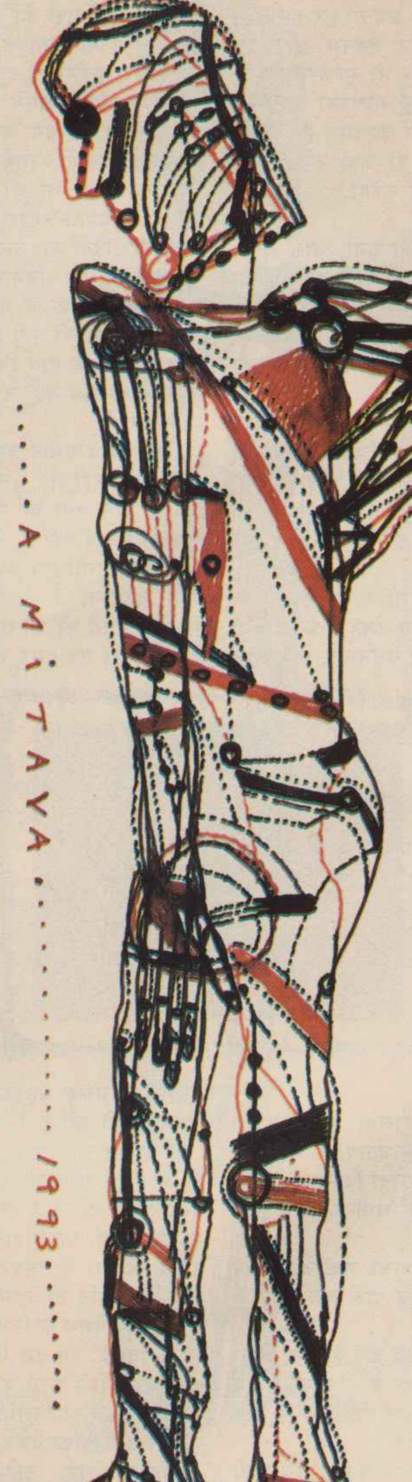

के आसपास देखने लगता. पर आज उसने ध्यान नहीं दिया और प्रमोद वर्मा पर पिल पड़ा, "यह क्या बदतमीजी है. मैं अभी सस्पेंड कर दूंगा."

"कहें तो सस्पेंड होने के लिए मैं प्रार्थनापत्र दे दूं."

बड़ा साहब हांफने लगा, "तुम्हारा ब्लड प्रेशर तो ठीक है न?"

"एकदम ठीक. मेरा रक्तचाप अधिकतम 120 और न्यूनतम 80 है. यह आदर्श रक्तचाप है जिसे मैंने बिना किसी परहेज और अधिक नमक सेवन के बनाए रखा है हां, मैं कब्ज तथा वायु विकार का रोगी अवश्य हूं." यह कहकर वह बड़े साहब के सामने पड़ा पेपरवेट अपनी तरफ खींचकर उछालने लगा.

पेपरवेट द्वारा पिट जाने की आशंका से अथवा प्रमोद वर्मा के वायु विकार के प्रकट हो जाने के डर से बड़ा साहब शांत होने लगा. थोड़ी देर के बाद कहा, "आप परेशानी में लगते हैं. हम आपके शुभचिंतक हैं. अब देखिए मैं सोच रहा हूं कि महकमे की सबसे बड़ी सड़क आप ही बनवाएं." उसने प्रमोद वर्मा से हाथ मिला लिया. कमरे में उपस्थित सभी स्तब्ध थे और सभी की निगाह में प्रमोद वर्मा का रौब कई गुना बढ़ गया था.

पूरे आफिस में प्रमोद वर्मा से लोग खौफ खाने लगे थे. उसके आगे-पीछे दुम हिलाने लगे थे. जिस शख्स ने बड़े साहब को सरेआम बेइज्जत किया और उसके बदले में बड़ा काम पा गया हो, उसके क्या कहने! पंद्रह मिनट की अवधि ने उसे लोक निर्माण विभाग के इस कार्यालय का सन्नाम नेता बना दिया. उसका दिल टूट गया था. सस्पेंड होने की उसकी हसरत का अब क्या होगा? वह जिस दलदल से उबरना चाहता था, उसी में और धंस गया. सस्पेंड होकर दो तिहाई वेतन का मजा लेने का उसका सपना चकनाचूर हो चला था. उसे महसूस हो रहा था कि सुखी होना उसकी तकदीर में नहीं है. बहरहाल, वह अभी परास्त नहीं हुआ था. उम्मीद की एक हल्की-सी कौंध थी कि एक-न-एक दिन वह सस्पेंड हो जाएगा. वह प्रयत्न भी कर रहा था. उसी क्रम में एक दिन राधा अग्रवाल के सामने पहुंचा और लोफरों की तरह पंजों के बल घूमकर बोला, "राधा मेरी जान, इरादे क्या हैं?" इसके

बाद उसने रंगीन रूमाल हवा में लहराकर झटके से नीचे कर लिया, "एकदम कटार हो कटार." उसे आशा थी कि अब तो हर हालत में राधा अग्रवाल उसको चप्पलों से पीटेगी और एकदम ऊपर तक शिकायत करेगी. पर यह क्या, राधा अग्रवाल तो मुस्कराने लगी, "सर, आप बस खाली-पीली बातें करते हैं." वह भौंचक्का था, "मैंने राधा अग्रवाल को समझने में भूल की. यह तो बदचलन है." उसने निश्चय किया कि भविष्य में इसको बहिन जी कहा करेगा और मिलने पर नजरें नीची करके करबद्ध नमस्कार करेगा.

अगले दिन वह कार्यालय शराब पीकर आ गया. आंखें लाल-लाल और चाल लड़खड़ाती. उच्च स्वर में लोगों को गालियां बकनी शुरू कर दीं. रही-सही कसर उसने सहायक अभियंता तिवारी को झांपड़ मारकर पूरी कर दी. इसके बाद ठेकेदार से दो दिन के लिए मांगे गए रिवाल्वर से हवाई फायर किया और वापस अपने घर लौट आया.

अगले दिन वह पूर्ण विश्वास के साथ कार्यालय पहुंचा. उसे पक्का यकीन था कि अब तो उसे सस्पेंड करने की कार्रवाई शुरू हो ही जाएगी. पर दुखद आश्चर्य कि कार्यालय में उसकी तूती बोल रही थी. बड़े साहब ने उसको कमरे में बुलाया, "मैं तो सोच रहा था कि तिवारी की तरह मेहरोत्रा को भी पीटोगे. यार उसे भी एक दिन चार झांपड़ रसीद कर देते."

सरोज वर्मा अति प्रसन्न थी कि पति कोशिशों के बावजूद सस्पेंड नहीं हो सका. प्रभु की कृपा से अथवा किसी अन्य वजह से प्रमोद वर्मा का भी मन नौकरी में लगने लगा. वह मनोयोग से निर्माण में मशगूल हो गया. सरोज वर्मा संतुष्ट थी, जिस प्रकार से महाशय सस्पेंड होने से नौकरी करने पर आ गए हैं, उसी भांति कालांतर में घूसखोरी पर भी आ जाएंगे और जीवन नैया मजे से चलती रहेगी.

लेकिन आफिस में भरपूर असंतोष पनपने लगा था...

प्रमोद वर्मा से सहायक अभियंता ने दस क्रेट व्हिस्की मांगी, "बड़े साहब के बेटे की शादी के लिए चाहिए."

स्वयं बड़ा साहब वर्मा से बोला, "भाई खाने-पीने के मामले में कायस्थों से अधिक कौन जानता है. इसीलिए शादी के बाद रिसेप्शन के दिन खाने और 'पीने' का इंतजाम तुम्हारे हवाले."

"साहब! मैंने छोड़ दी है. न पीता हूं, न पिलाता हूं. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने मदिरा को अनेक पापों का मूल बताया है. जहां तक भोजन संबंधी व्यवस्था का प्रश्न है, तो मैं कुछ उम्दा किस्म के केटरर्स के बारे में जानकारी दे सकता हूं, जो लजीज खाने के लिए खासे मशहूर हैं जैसे नान वेजिटेरियन के लिए."

"मजाक की बात छोड़ो वर्मा, सीरियस हो जाओ. यहां जे.ई. लोग लड़की तक सप्लाई कर देते हैं और तुम हो कि दारू और खाने के नाम पर नक्शा पाद रहे हो."

"देखिए, वे न जे.ई. होते हैं, न इंसान. वे भड़वे होते हैं. वैसे, किसी के गिरने की बात का क्या! आपकी ही पोस्ट पर बैठे एक बड़े साहब ने ट्रांसफर रुकवाने को अपनी ही बेटी सप्लाई कर दी थी. आप जान लें कि मैं प्रमोद वर्मा भड़वा-दल्लाल नहीं, इंसान हूं."

और उस दिन तो विस्फोट ही हो गया. सड़क बनकर तैयार हो गई. आफिस में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई. इग्जीक्यूटिव इंजीनियर खुश था, सहायक अभियंता खुश था, एकाउंटेंट खुश था. कैशियर, क्लर्क, चपरासी सभी प्रसन्न थे कि कमीशन के रूप में मोटी धनराशि हाथ आएगी. सभी ने अपनी हैसियत के मुताबिक अपनी पत्नी और बच्चों से खरीदारी का वादा कर रखा था. इग्जीक्यूटिव इंजीनियर इस बात से भी आनंदित था कि उसके इलाके से ए.सी. साहब, चीफ इंजीनियर, इंजीनियर-इन-चीफ और मंत्री, सभी तगड़ी रकम काटेंगे और मस्त हो जाएंगे और उसको अधिक फलदार जनपद में स्थानांतरित कर देंगे. बस कनिष्ठ अभियंता प्रमोद वर्मा की रिपोर्ट मिलने की देर थी, उसके उपरांत तो युद्ध स्तर की तैयारी से ठेकेदार का चेक कटना था और कमीशन का बंटवारा होना था. लेकिन कनिष्ठ अभियंता प्रमोद वर्मा की रिपोर्ट ने उनकी सारी खुशियों को तबाह कर दिया था. उसने लिखा था कि सड़क के निर्माण में अनुबंध की शर्तों की घोर अवमानना की गई है. इसके साथ ही प्रतीत हुआ है कि प्रयुक्त सामग्री में भारी घपला हुआ है. यह सड़क कमजोर ही नहीं, दो कौड़ी की बनी है. इसके एवज में किया गया भुगतान जनता तथा सरकार के साथ विश्वासघात होगा.

सनसनी फैल गई. लोकनिर्माण विभाग हैरत में था कि ऐसा भी हो सकता है.

अरसे बाद प्रमोद वर्मा शराब पी रहा था. सरोज वर्मा तवे पर कबाब सेंक रही थी. उजली गणित का सवाल हल कर रही थी. वह नशे में आने लगा था. गिलास उठाकर बेटी से बोला, "बिटिया ये घूस की शराब नहीं है. मैं अपनी तनख्वाह के पैसे से लाया हूं." तभी धांय-धांय... गोलियां थमीं तो बाहर से गालियों की आवाजें आने लगीं. दरवाजा भी जोर-जोर से पीटा जा रहा था, "निकल साले महात्मा गांधी की औलाद." प्रमोद वर्मा, सरोज वर्मा, उजली तीनों डबलबेड पर एक-दूसरे को पकड़े, सांस रोके सिमटे हुए थे. वे थरथरा रहे थे. बाहर से अब ईंट-पत्थर फेंके जाने लगे थे...

> **भा**रतीय मर्यादा की बेड़ियों ने मेरी रूमानी संभावनाओं को जकड़ दिया है. हां, मेरा विवाह हो चुका है. मैं उम्र के उस पड़ाव पर हूं जहां प्रेम नहीं बीमारियों के कोंपल फूटते हैं."

इग्जीक्यूटिव इंजीनियर ने ए.सी. साहब को कनिष्ठ अभियंता प्रमोद वर्मा को सस्पेंड कर देने का प्रस्ताव भेजा. ए.सी. ने चीफ को, चीफ ने इंजीनियर-इन-चीफ को लिखा. ठेकेदार के आग्रह पर मंत्री ने भी इंजीनियर-इन-चीफ को आदेश दिया. इंजीनियर-इन-चीफ ने चीफ को, चीफ ने ए.सी. को, ए.सी. ने इग्जीक्यूटिव इंजीनियर को भेजा कि उनके कार्यालय का कनिष्ठ अभियंता प्रमोद वर्मा सस्पेंड किया गया.

सरोज वर्मा पति से कहने लगी, "इससे तो अच्छा था कि तुम इस्तीफा दे देते नौकरी से. चारों तरफ बेइज्जती हो रही है. रिश्तेदार हंस रहे हैं."

"जो हंस रहे हैं वे नीच हैं. नीच लोग ही दूसरों के कष्ट पर हंसते हैं. और हमें नीच लोगों की परवाह नहीं करनी चाहिए. जहां तक इस्तीफे का सवाल है तो पहले मैंने उसी मार्ग पर चलना चाहा था लेकिन तुम ही गिड़गिड़ाने लगीं थीं. वैसे, यदि तुमको इस्तीफा इतना ही प्रिय है तो मैं उसका रास्ता निकालता हूं." सरोज वर्मा अवाक् रुआंसी-सी पति को देखने लगी. प्रमोद वर्मा ने बात जारी रखी, "हां, मैं अपने सस्पेंशन के खिलाफ कोर्ट से स्टे लाऊंगा. कोर्ट हर बात पर स्टे दे देता है. इस देश में एक दिन आएगा जब हत्यारा हत्या करने और चोर चोरी करने के अपने अधिकार के पक्ष में स्टे लाएगा. मुझे तो सौ फीसदी स्टे मिलेगा. यह अलग बात है कि उसके फौरन बाद मैं नौकरी से इस्तीफा देकर तुम्हारी मुराद पूरी कर दूंगा."

वह कांप गई, "नहीं-नहीं—तुम इस्तीफा मत देना. हमारे लिए सस्पेंशन ही उचित और लाभदायक है."

प्रमोद वर्मा संतुष्ट हुआ, "और हां, तुम चिंता मत करो. मैं कल ही अपने एक संपादक दोस्त से मिलूंगा. उससे कहूंगा कि अपनी

पत्रिका में मेरे साथ हुए अन्याय की खबर छापे और मुझे नौकरी दे दे. मैं लोक निर्माण विभाग की चूलें हिलाकर रख दूंगा. पत्रकारिता लोकतंत्र का सबसे आदरणीय तथा निर्भीक स्तंभ है. मैं पत्रकार बनूंगा और समाज में भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष छेड़ूंगा."

संपादक दोस्त ने गर्मजोशी के साथ स्वागत किया. गले लगा लिया था. उसके मुंह से भभका उमड़ पड़ रहा था. सूर्य अस्त होने के पहले ही दारू चढ़ाकर संपादन कर रहा था दोस्त.

"हां तो क्या समस्या है?"

"समस्या नहीं, दो समस्याएं हैं. एक, यह कि मैं सस्पेंड कर दिया गया हूं. मेरे साथ हुए इस अत्याचार को अपनी पत्रिका के माध्यम से उजागर करिए."

"उजागर हो जाएगा पर किसी अखबार में. पत्रिका में राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर का भंडाफोड़ छपता है."

"दूसरी बात, अब मैं खाली हूं. मेरा लिखने-पढ़ने का अनुभव है ही. मैं अनुरोध करता हूं कि आप अपने यहां मुझे काम दे दीजिए."

"इसके बारे में कल बतलाऊंगा."

अगले दिन उसने संपादक से मुलाकात की, "मेरी नौकरी का क्या हुआ?"

"मिल गई तुमको."

"कब ज्वाइन करूं?"

"अभी से काम शुरू कर दो. पर हां भई, एक बात साफ कर दूं इसी वक्त कि हम एप्वाइंटमेंट लेटर नहीं दे सकेंगे."

प्रमोद वर्मा खुशी से बोला, "धन्यवाद—धन्यवाद. नियुक्ति पत्र न देने के लिए धन्यवाद. कृपया किसी रजिस्टर पर मेरा नाम भी न दर्ज कराएं." वह हंसते हुए चिल्लाया, "श्रम कानूनों का उल्लंघन भी कभी-कभी कर्मचारी के लिए हितकारी हो जाता है. मैं एक सस्पेंड सरकारी मुलाजिम हूं. कानूनी तौर पर दूसरी नौकरी करने से मेरे केस का कबाड़ा हो जाएगा."

"ठीक है, जगमोहन से मिल लो, वह तुम्हारी सीट बता देगा."

वह संपादक के कमरे से निकला तो सभी लोगों ने सामूहिक रूप से सवाल किया, "एप्वाइंटमेंट लेटर पाए कि नहीं?"

"नहीं, आप लोगों को मिला है क्या?"

"नहीं."

"तो आप लोग भी सस्पेंड हैं क्या?"

"मतलब??"

"कुछ नहीं—कुछ नहीं." वह संभला.

उसने कुछ प्रसंग को बदलने तथा कुछ अपनी सीट पाने की गरज से पूछा, "जगमोहन कहां हैं?"

जगमोहन के कान में दर्द था, वह हकीम के पास गए थे. इधर-उधर एक सीट अपेक्षाकृत नई, खाली और साफ दिखाई पड़ी. उसने अनुमान

लगाया, यही उसकी सीट है. वह बैठने के लिए नितंब झुका ही रहा था कि एक युवती आई, "कहिए, मेरी सीट पर क्यों बैठ रहे हैं?"

"मैं भूल गया था कि हर आफिस में युवतियों की सीट खाली और ऐसी होती है, जैसे उस पर कोई काम नहीं होता." वह उठ खड़ा हुआ...

रात वह पत्नी से बोला, "मुझे लगता है कि अब मैं सुखी हो सकूंगा. मेरी ऊब के दिन गए. उत्साह, उमंग की नई भोर मेरे जीवन की कुंडी खटखटा रही है."

अगले दिन दफ्तर में काम ज्यादा नहीं था और जो था, उसे आज ही करना कोई जरूरी नहीं था. इसीलिए वह तन्मय होकर कान कुलबुला रहा था. उसने सोचा खुजलाने, कान कुलबुलाने इत्यादि में कितना आनंद है, वह भी निःशुल्क. तभी एक लड़की उसके सामने आ खड़ी हुई. उसने बिजली-सी फुर्ती के साथ कान से उंगली हटा ली. उसे महसूस हुआ, कान कुलबुलाने का आनंद कितना क्षीण और तुच्छ है नारी सौंदर्य के सामने. लड़की बैठ गई. वह "विवाह के पहले प्रेम करना घातक है लड़कियों के लिए" शीर्षक का लेख छपाने आई थी. प्रमोद वर्मा बोला, "तो क्या विवाह के बाद प्रेम करना फायदेमंद है लड़कियों के लिए? देखिए इसका शीर्षक ठीक नहीं है. दूसरी बात मैं आपसे पूछना चाहता हूं, बशर्ते बुरा न मानिएगा कि क्या आप किसी से प्रेम करती हैं?"

"नहीं."

"पर आप इतने गर्व से क्यों इनकार कर रही हैं. यह इतनी घृणास्पद वस्तु नहीं है. वैसे यदि प्रेम नहीं करती हैं तो जरूर आप मुकेश के दर्द भरे गाने सुनती होंगी. लता मंगेशकर भी पसंद होंगी. यदि घर की आर्थिक स्थिति ठीक हुई तो आप पेंटिंग या बागवानी करती होंगी, नहीं तो क्रोशिया और स्वेटर बुनने में प्रवीण होंगी."

"मैं आपके संपादक से शिकायत करूंगी कि आप वाहियात इंसान हैं."

"देखिए बहुत हुआ तो संपादक यहां से हटा देगा. मुझे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है क्योंकि मैं लोक निर्माण विभाग का एक सस्पेंड जूनियर इंजीनियर हूं. मुझे दो-तिहाई वेतन मिलता है. इसके अतिरिक्त ऊपर की कमाई से मैंने बैंक में सम्मानपूर्ण धनराशि एकत्र कर रखी है. पर मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि मैं पैसे का रुतबा दिखलाकर आपको प्रभावित करने की चेष्टा कर रहा हूं. वैसे भी भारतीय मर्यादा की बेड़ियों ने मेरी रूमानी संभावनाओं को जकड़ दिया है. जी हां, मेरा विवाह कुछ साल पहले संपन्न हो चुका है और मैं एक बेटी का बाप हूं. मैं उम्र के उस पड़ाव पर हूं जहां दरवाजे पर प्रेम नहीं बीमारियों के कोंपल फूटते हैं."

लड़की हंस पड़ी, "आपसे तो नाराज भी नहीं हुआ जा सकता. वैसे आपके भी आफिस छोड़ने का वक्त हो चुका है. हम बस स्टैंड तक साथ चल सकते हैं."

दोनों कार्यालय से साथ निकले. दस कदम ही बढ़े होंगे कि प्रमोद वर्मा खड़ा हो गया. लड़की भी ठिठक गई. "क्या है?"

"आपके बाल कितने लंबे हैं. कुर्सी पर बैठी थीं तो पता नहीं लगता था. ये वाकई बहुत लंबे हैं."

लड़की को अच्छा लगा, "मेरे बाल लंबे तो हैं लेकिन घने नहीं हैं. ये काले भी नही हैं. सुनहले हैं."

"सुनहले. यह तो बड़ी अच्छी बात है. सुनहले बाल तो परियों के होते हैं. संस्कृत साहित्य में ऐसी लड़कियों को मधुकेशी कहा गया है. जी हां, आप शहद जैसे बालों वाली लड़की हैं, मधुकेशी."

वे धीरे-धीरे चलने लगे. प्रमोद वर्मा अब गंभीर हो गया था. रास्ते भर वह अपनी जिह्वा से बौद्धिकता की रस वर्षा करता रहा. लड़की विभोर थी.

घर पहुंचते-पहुंचते तो वह लड़की को भूल ही गया. कई दिन भूला रहा. वह इतवार की सुबह थी. वह नाश्ता करने के बाद काफी देर तक पढ़ता रहा. फिर उसे अनुभव हुआ कि बैठे-बैठे उसका पेट फूल आया है. थोड़ी देर वह बेटी से इस आशय के साथ खेलता रहा कि उछलकूद में उसका पेट पिचक जाए. होना क्या था, थोड़ी-सी वायु किसी प्रकार बाहर निकलती और उसका पेट पिचक जाता, पर वैसा नहीं हो पाया, तो उसने सोचा कि सिगरेट पीते हुए टहला जाए. दुकान पर सिगरेट जलाकर उसने टहलना शुरू किया. थोड़ी ही दूर चला होगा कि वह लड़की जल उठी. उसे पता नही था कि कल से ही उसके भीतर वह थी. बस अंधेरा होने के कारण दिखती नहीं थी और इसी क्षण वह लड़की उसके हृदय में चलने लगी.

अगले दिन सुबह वह आफिस के लिए बस से उतरा तो फिर लड़की हृदय में चलने लगी.

शाम को वह लड़की आई, "कहिए क्या हुआ मेरे लेख का, छापेंगे?"

"उस पर तो अभी विचार हो रहा है," प्रमोद वर्मा ने कहा.

"आप सिर क्यों नहीं उठा रहे हैं?"

प्रमोद वर्मा कुछ लिख रहा था. उसने आंखें ऊपर कीं, "इसलिए कि आप बहुत सुंदर हैं. सचमुच आप बहुत सुंदर हैं. आपको जितना ही देखूंगा उतना ही मैं व्याकुल होता जाऊंगा."

> पहले मैं दृढ़ आत्मबल वाला था लेकिन मैं महसूस करता हूं कि मैं एक गिरा हुआ पतित इंसान हूं. आप यकीन मानें, मैं कोई नैतिकता का पुजारी नहीं हूं. यह स्वीकार करने में हर्ज नहीं."

"आपसे मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी."

"भविष्य में आपको मुझसे ऐसी ही उम्मीद करनी चाहिए. पहले मैं दृढ़ आत्मबल वाला था लेकिन मैं महसूस करता हूं कि मैं एक गिरा हुआ पतित इंसान हूं. आप यकीन मानें, मैं कोई नैतिकता का पुजारी नहीं हूं. इस मौके पर यह स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं समझ रहा हूं कि मैं आपको कमोबेश प्यार करता हूं."

इसी तरह वह एक रेस्तरां में बैठे थे. प्रमोद वर्मा ने कहा, "आप अग्नि की तरह देदीप्यमान रहती हैं. सच कहता हूं, जो छुए सो जल जाए."

लड़की हंसी.

"विश्वास नहीं हो रहा है न. देखिए मैं अभी आपको छूता हूं और जल जाता हूं." उसने लड़की को छू लिया. "मैं जल गया. हां मैं झुलस चुका हूं लेकिन मैं ऐसा जला हूं कि निखर गया हूं, जैसे स्वर्ण निखर उठता है. हालांकि मैं स्वर्ण नहीं तांबा हूं, पीतल हूं, बल्कि मैं टिन हूं, जो आपकी सोहबत में सोना बन गया."

प्रमोद वर्मा इन दिनों काफी मुदित था. उसे लग रहा था कि यही वह नेमत है, जिससे वह वंचित था और खुश नहीं महसूस कर रहा था अपने को. लेकिन अब उसके पास खुशियां ही खुशियां थीं. वह लड़की से कहता भी, "आपको लगता नहीं कि आप जब मुझसे मिलती हैं तो मैं कितना खुश हो जाता हूं. मेरी आंखें कितनी चमक उठती हैं." लड़की मुस्करा देती या हंस देती और वह बदस्तूर दीवाना हो जाता.

प्रमोद वर्मा के मित्र हैरत में थे कि कोई सस्पेंड मुलाजिम इतना प्रसन्न कैसे रह सकता है. जबकि सरोज वर्मा समझती थी कि पति की यह प्रसन्नता नौकरी से मुक्ति पाने की आत्मिक संतुष्टि का द्योतक है. सरोज वर्मा को यह भी अच्छा लगता था कि पति ने पिछले दिनों नियमित दंड बैठकों के माध्यम से तोंद पिचका ली थी और क्रोध कम करते थे. कुल मिलाकर सब कुछ मनोरम और प्रफुल्ल ढंग से व्यतीत हो रहा था. लग रहा था कि प्रमोद वर्मा पत्नी सरोज वर्मा की आंखों में इसी प्रकार धूल झोंकता हुआ अनवरत प्रसन्न बना रहेगा लेकिन एक दिन मामला हत्थे से उखड़ गया.

हुआ यह कि छुट्टी की दोपहर थी और उसने चावल ज्यादा खा लिया था. उसके हाथ-पांव सुस्त पड़ने लगे. शरीर भारी हो गया और नींद आ गई. सोकर उठा तो पाया कि चावल पच गए हैं और उसे जुकाम हो गया है. घिनौने रूप वाला प्रगाढ़ जुकाम नहीं, बल्कि एकदम शुरू का मद्धिम और उदात्त जुकाम, जो मनुष्य को विकट त्यागी तथा गुरु गंभीर बना देता है. उसमें दुख, प्रसन्नता, जीवन के प्रति दार्शनिक भाव पैदा करता है. ऐसे ही जुकाम के कारण धीरोदात्त बना, वह पैर हिलाते हुए सोच रहा था. सोचते-सोचते वह लड़की के बारे में सोच बैठा. लड़की के विषय में चिंतन की प्रक्रिया के दौरान ही उसमें आत्मभर्त्सना का सोता फूट पड़ा—मैं इस चक्कर में पड़कर हास्यास्पद होने के लिए क्यों आमादा हूं. उम्र के इस पड़ाव पर मैं छिछोरेपन की हरकतें कर रहा हूं.

वह बेचैनी से टहलने लगा—मुझमें नो इस लड़की के लिए वात्सल्य उमड़-घुमड़ पड़ना चाहिए था लेकिन मैं श्रृंगार की डफली बजा रहा था. पके बाल, उन्नत तोंद, कठोर कब्ज, अपरंपार वायु विकार लिये जब मैंने प्रणय निवेदन किया होगा तो कितना बड़ा मूर्ख और विदूषक लगा हूंगा. उसका मन प्रेम से उचाट होने लगा. फिर उसे कब्ज के स्मरण से अपने फिश्चुला का स्मरण हो आया. वह कराह उठा, "यह फिश्चुला भी कितना मजाकिया रोग है. किसी को बताने में लज्जा आती है." वह पीड़ा से बिलबिलाया, "कितना कष्टकारी, घृणित और हंसोड़ रोग." वह हंसने लगा. वह अपने रोग पर हंसा और उसमें साहस पैदा होने लगा. उसने रीढ़ सीधी करके स्वयं से कहा, "मैं अब हिम्मत से काम लूंगा." वह बाहर निकल गया. पड़ोस के चाचा जी दिखे, जो धार्मिक व्यक्ति थे, हमेशा बुझे-बुझे रहते थे. उसने चाचा जी से कहा, "नमस्कार, मुझे फिश्चुला हो गया है."

"ये क्या होता है बेटा?"

"इसे हिंदी में भगंदर कहते हैं लेकिन दरअसल यह गुदा रोग है. इसमें मलद्वार के पास फोड़ा हो जाता है."

चाचा जी बेसाख्ता हंसने लगे. उसने कुछ दूसरे परिचितों को बतलाया कि उसको फिश्चुला है, तो वे भी दिल खोलकर हंसे. उसे आश्चर्य हुआ कि ये हमेशा मुंह लटकाए रखने वाले संतप्त लोग थे, इतना हंस कैसे रहे हैं. उसको अपने फिश्चुला पर गर्व महसूस हुआ. यह दुखी, पीड़ितों, रो रहे लोगों को हंसा सकता है. उसने निश्चय

FOR THE MAN WHO DARES
TO SHOW HE CARES
NIVEA
for men
SHAVING CREAM
A unique formulation. It has a rich, creamy lather that stays longer. Ensures a smooth and satisfying shave.
NIVEA for men
Classic
Shaving Cream
NIVEA for men
Lime
Shaving Cream
Shaving Cream • Shaving Brush
After Shave Moisturiser • Body Talc
181/92A

किया कि वह इस मूल्यवान फिश्चुला को परेशान समुदाय को हंसाने का माध्यम बनाएगा. वह थोड़ी देर के लिए ही सही, लोगों को फिश्चुला के जरिए खुशी प्रदान करेगा.

अगले दिन उसने आफिस फोन कर दिया कि वह देर से पहुंचेगा. उसके बाद वह अपने पुराने ठिकाने लोक निर्माण विभाग पहुंच गया. वह वहां बहुत दिन बाद गया था. सहकर्मी पूछने लगे, "क्या हाल हैं वर्मा जी?"

"मजे में हूं. फिश्चुला हो गया है, आराम से दिन कट रहे हैं."

"ये फिश्चुला क्या बला है?"

"हिंदी में इस भगंदर कहते हैं. दरअसल यह गुदा रोग है..."

सब हो-हो कर हंसने लगे. संपूर्ण लोक निर्माण विभाग का वातावरण मनोरंजनमय हो गया था. लेन-देन-बेईमानी-चोरी के अहर्निश चक्कर में कुटिल बन गए वहां के कर्मियों के चेहरों पर फिश्चुला ने सहज हास ला दिया था. अरसे बाद इस महकमे में लोग निःस्वार्थ भाव से खुश हुए थे.

जब वह पत्रिका के दफ्तर पहुंचा तो दोपहर हो चुकी थी और संपादक लंच कर रहा था. वह उसके सामने खड़ा हो गया. संपादक ने सिर उठाया और खाते-खाते पूछा, "कुछ काम है क्या प्रमोद?"

"जी हां. बात दरअसल यह है कि मैं रिपोर्टिंग में काम करना चाहता हूं. अब डेस्क के काम से मुक्त करिए मुझको."

"क्यों?"

"इसलिए कि मुझको फिश्चुला हो गया है जिससे बैठने में मुझे दिक्कत होती है."

वह साथियों के बीच हाजिर हुआ. सब कम वेतन, असुरक्षित भविष्य के शिकंजे में जकड़े दीन-हीन धकियाए हुए मुरझाए व्यक्तित्व थे. लंच में रोटी-सब्जी खाकर इस प्रतीक्षा में शांत बैठे थे कि कहीं से चाय की व्यवस्था हो जाती. प्रमोद वर्मा ने घोषणा की कि वह सबको चाय पिलाना चाहता है.

"क्यों भई नौकरी बहाल हो गई है क्या जो चहक रहे हो?"

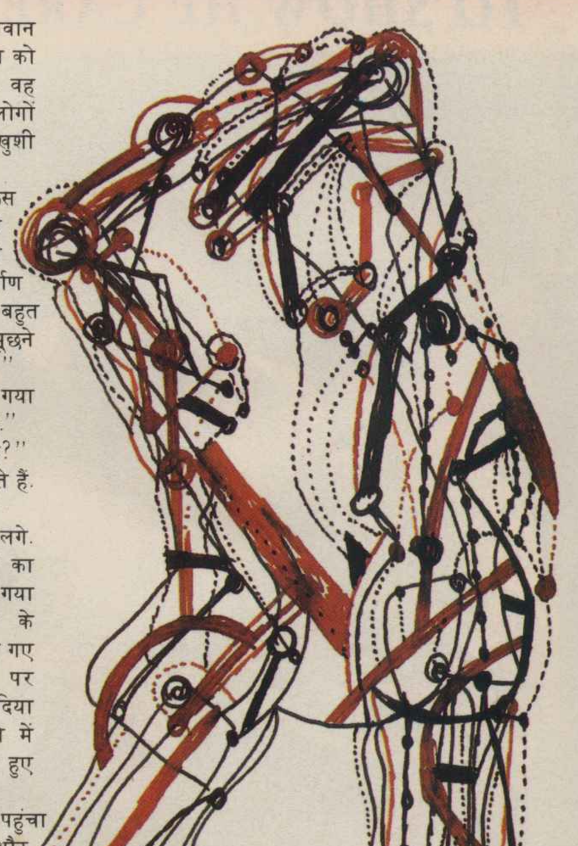

"मुझे फिश्चुला हो गया है. हिंदी में इसे भगंदर कहते हैं दरअसल यह गुदारोग है."

हंसते-हंसते लोट-पोट हो गए सब. उन्हें मजा लेने का एक शस्त्र मिल गया. लोग उससे पूछते, "कहिए प्रमोद जी, आपके फिश्चुला का क्या हाल-चाल है?"

वह कहता, "बढ़िया है—बढ़िया है—मजे में है वह."

उसने संपादक से फिर कहा था कि बैठने से फिश्चुला दब जाता है और असह्य वेदना होने लगती है, इसलिए उसे रिपोर्टिंग में लगा दिया जाए. संपादक ने ठहाका लगाते हुए कहा था, "विचार करूंगा."

वह मन मसोसकर बैठा था कि जाने कब विचार का क्रियान्वयन होगा. वह फिर संपादक के कमरे में गया, "मेरा फिश्चुला दर्द कर रहा है. मुझे छुट्टी दे दीजिए आज की."

वह बाहर सड़क पर खड़ा रिक्शे का इंतजार करने लगा. दूसरी दिशा से एक रिक्शा आकर खड़ा हुआ. उसमें से लड़की उतरने लगी. उसने उससे वहीं रहने का इशारा किया और खुद उसकी बगल में जा बैठा. रिक्शे ने दोनों को एक रेस्तरां के सामने उतार दिया. वे कोने की टेबल घेरकर आमने-सामने बैठे. प्रमोद वर्मा ने लड़की को देखा. लड़की आज चुस्त और चमकदार कपड़े पहने थी. उसके उभरे हुए प्रकट वक्ष मन-विचलनकारी लग रहे थे. कसी हुई जांघों ने भी उसे डांवाडोल बनाया. वह खड़ा हो गया, "मैं आपकी बगल में बैठना चाहता हूं." जाकर बैठ गया. लड़की थोड़ी दूर खिसकी. वह पास खिसका. उसने लड़की के हाथ देखे. वे खुले थे, गोरे थे, पर उन पर अवांछित बाल थे. शंका हुई लड़की के मूंछें तो नहीं हैं हल्की-फुल्की. उसने सोचा, हो सकता है लड़की के पेट और पीठ पर बाल हों. वह वितृष्णा से भर उठा, "मैं जहां बैठा था, वहीं बैठूंगा. वह सामने जाकर बैठ गया. खुद को धिक्कारा, "आज कामदेव ने अपना बाण चला दिया था. किसी तरह बच सका हूं."

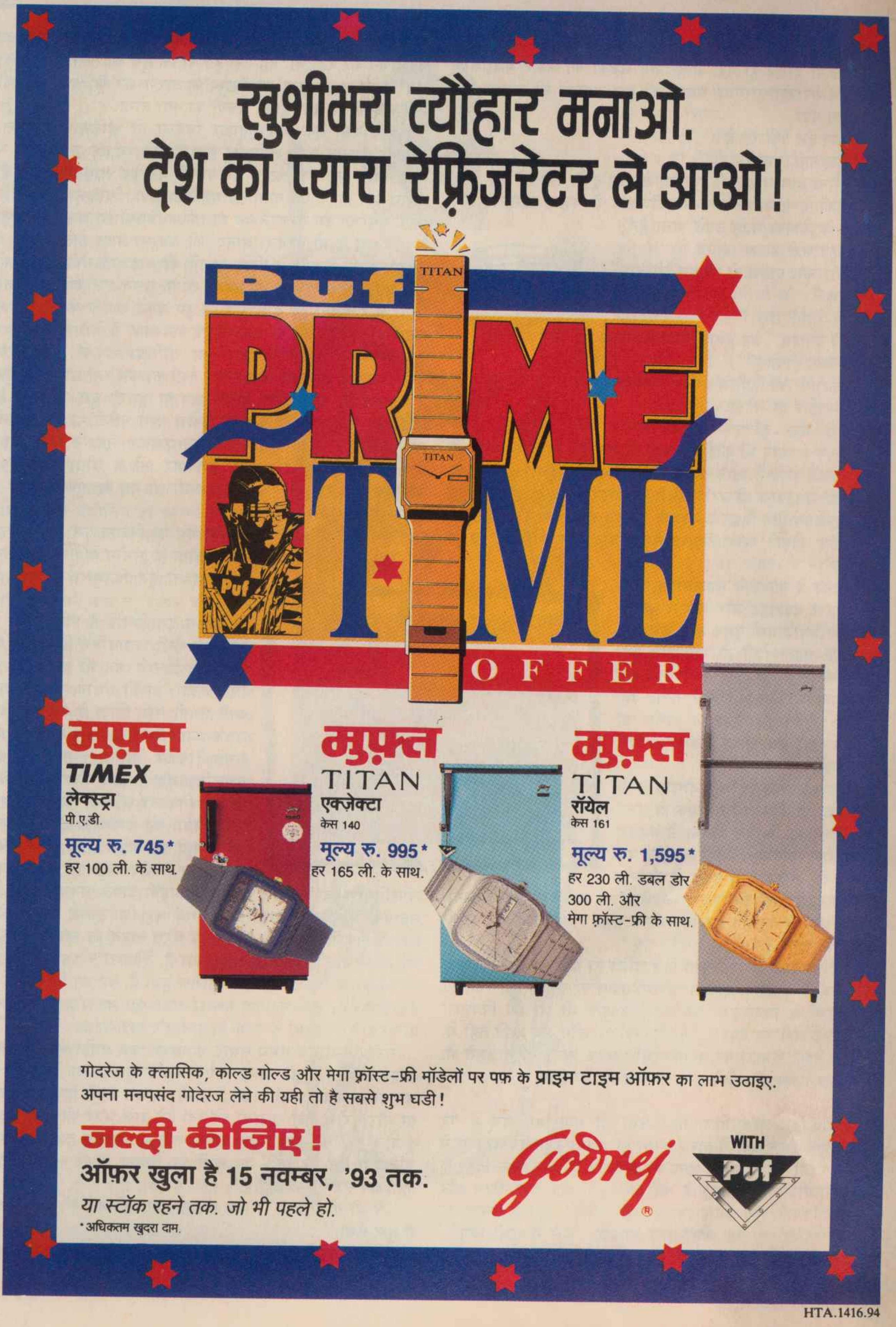

ख़ुशीभरा त्यौहार मनाओ.
देश का प्यारा रेफ़्रिजरेटर ले आओ!
Puf
PRIME TIME
OFFER
TITAN
मुफ़्त
TIMEX
लेक्स्ट्रा
पी.ए.डी.
मूल्य रु. 745*
हर 100 ली. के साथ.
मुफ़्त
TITAN
एक्ज़ेक्टा
केस 140
मूल्य रु. 995*
हर 165 ली. के साथ.
मुफ़्त
TITAN
रॉयेल
केस 161
मूल्य रु. 1,595*
हर 230 ली. डबल डोर
300 ली. और
मेगा फ़्रॉस्ट-फ्री के साथ.
गोदरेज के क्लासिक, कोल्ड गोल्ड और मेगा फ़्रॉस्ट-फ्री मॉडेलों पर पफ के प्राइम टाइम ऑफ़र का लाभ उठाइए.
अपना मनपसंद गोदेरज लेने की यही तो है सबसे शुभ घडी!
जल्दी कीजिए!
ऑफ़र खुला है 15 नवम्बर, '93 तक.
या स्टॉक रहने तक. जो भी पहले हो.
*अधिकतम खुदरा दाम.
Godrej
WITH
Puf

HTA.1416.94

उसमें लड़की के मामले में दोबारा आत्म-भर्त्सना तथा आत्म-व्यंग्य की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई. अंततः वह लड़की को लेकर मजाकिया भावों से सराबोर हो गया. लड़की की कुछ हरकतों की कल्पना की, और हंस पड़ा.

"आप हंस क्यों रहे हैं?"

"कुछ नहीं, बस ऐसे ही."

"अपना हाथ लाइए, मैं ज्योतिष से बता दूंगी, क्यों हंसे?"

लड़की ने हाथ पकड़कर नाटकीय ढंग से कहा, "इसलिए हंसे जनाब कि आपका वेतन बढ़ने वाला है."

"बहुत सही बताया आपने."

"और कुछ पूछना हो तो पूछ लीजिए."

"पूछूं."

"हां—हां."

"तो बताइए," वह हंसा, "मेरा फिश्चुला कब ठीक होगा?"

"ये क्या होता है?"

"फिश्चुला को हिंदी में भगंदर कहते हैं. दरअसल यह गुदा रोग है. इसमें मलद्वार पर फोड़ा..."

"बस—बस—करिए—" लड़की खिसिया गई.

"इसमें शरमाने की कोई बात नहीं है. मल-मूत्र विर्सजन समाज के सभी प्राणी करते हैं. आप यकीन मानिए, मुझे फिश्चुला हो गया है. यह कोई खतरनाक बीमारी नहीं है पर इसमें दर्द बहुत होता है. हां तो अपनी ज्योतिष विद्या के आधार पर बतलाइए कि मेरा फिश्चुला कब ठीक होगा? और ठीक होने के बाद फिर तो नहीं उभर आएगा?"

लड़की ने कानों में उंगली ठूंस रखी थी. चेहरा घबराहट और शर्म से बेहाल था. उसे प्रमोद वर्मा फूहड़ तथा क्रूर लग रहा था. वह रुआंसी हो गई. रोते हुए उठी. पर्स लेकर तेजी से भाग गई. वह मुस्कराया पर अचानक बुझ गया. वह उदास हो चला. उचाट आंखों से आसपास को देखा. पैसा चुकाकर बाहर निकल आया.

घर आते-आते वह असहनीय कष्ट से घिर गया था. फिश्चुला मर्मांतक हो चला था लगता था कि इस यातना से बेहतर होगा प्राण त्याग देना... वह चारपाई पर गिर पड़ा. सरोज वर्मा ट्यूब से महलम निकालकर उसके फिश्चुला पर आहिस्ता-आहिस्ता मलने लगी. प्रमोद वर्मा ने कराहते हुए निराशा से कहा, "ऑपरेशन कराना ही पड़ेगा..."

ऑपरेशन के बाद फिश्चुला फिर उदित हो गया था. पूर्व फिश्चुला की तरह ही नृशंस था यह. प्रमोद वर्मा तकलीफ, जुगुप्सा और डर की भावनाओं से घिरा हुआ था. उसे यह दुख भी था कि फिश्चुला मनोरंजक नहीं रह गया था. उसके जिक्र पर लोग अब हंसते नहीं थे. लोग उसकी बीमारी पर न सहानुभूति प्रकट करते थे, न हंसते थे. दरअसल फिश्चुला अपनी सृजनात्मकता खो चुका था.

प्रमोद वर्मा अब फिर पहले जैसा हो गया था. घर में पैर हिलाते हुए शून्य में ताका करता था अथवा ऊटपटांग हरकतों में लिप्त रहता था. उसे इस बात का अफसोस था कि इतने दिनों के बाद भी गाड़ी वहीं की वहीं है. वही क्षोभ और ऊब, वही नीरस और बेस्वाद जिंदगी. सुख की शाश्वत अनुभूति तो दूर, उसकी झलक भर से वह वंचित था. वह अपने बाल नोचता. "कैसे मैं सुखी हूंगा?" हताशा से भर जाता था, "क्या मैं कभी सुखी नहीं हो सकूंगा."

सरोज वर्मा जीवन साथी के अजीबोगरीब कारनामों का अवलोकन कर रही थी. वह डरी हुई थी कि सुख की तलाश में उसका पति पागल न हो जाए या वैराग्य न धारण कर ले, वरना उसकी भरी जवानी का क्या होगा. बच्ची का क्या होगा.

प्रमोद वर्मा एक दिन नहाकर निकला तो सरोज वर्मा नाश्ता लगाकर इंतजार करने लगी. देर तक न आने पर वह दूसरे कमरे में घुसी. देखा, वह एक चटाई पर पाल्थी मारकर आंखें मूंदे बैठा है. नाश्ता ठंडा होकर ऐंठ गया, तब वह खड़ा हुआ, "इसे ध्यान कहते हैं, इसके समुचित ढंग से करने पर सांसारिक विषयों का शमन हो जाता है और सुख से भी बढ़कर 'आनंद' की अवस्था प्राप्त होती है."

सांसारिक विषयों से पीछा छुड़ाने की बात पर सरोज वर्मा को पुनः अपनी भरी जवानी का ख्याल आया. उसने उसे बांहों में जकड़ लिया और चुंबनों की बौछार करते हुए अपने वक्ष के मीठे दबाव से उसके वस्त्रहीन बदन को धकेलते हुए शयनकक्ष में ले गई.

शयन कक्ष में प्रमोद वर्मा का तौलिया अकेला, निस्सहाय, परित्यक्त पड़ा हुआ था और प्रमोद वर्मा को लग रहा था—यही सुख है—आनंद है. इससे बड़ा—इसके अलावा दूसरा कुछ भी नहीं है. थोड़ी देर की खामोशी के बाद सरोज वर्मा पलटी. उसको अपनी तरफ खींचा, उसकी छाती पर सिर रखकर सुबकने लगी. फिर अचानक उसे झिंझोड़ने लगी. पल भर भी न बीता होगा, वह बेतहाशा चूम रही थी, "क्या अभी-अभी जो था, वह सुख नहीं था—सुख नहीं था—बोलो."

"सुख नहीं था. सुख का छलावा था. यह कितना पल भर के लिए था. सुख या आनंद क्षणभंगुर नहीं होता है. संभोग के सुख से अधिक स्थायित्व तो पूर्व फिश्चुला की दशा में था."

> **शब्द में ऊर्जा है. मौन अनंत ऊर्जा का भंडारण करता है. जब भंडारण यथोचित हो चलेगा तो सुख ही सुख होगा." बाद में वह 'मौन' से भी नाउम्मीद हो वाचालता में रम गया.**

लेकिन इस विवाद ने प्रमोद वर्मा में नामालूम कैसी रासायनिक क्रिया कर दी कि अगले दिन से जब भी वह ध्यान के लिए बैठता, उसको संभोग-सुख की याद आने लगती. रति क्रिया के विभिन्न बिंब उसके ध्यान का पटरा कर देते. थककर उसने निर्णय लिया, भोग में ही वास्तविक सुख है. बिना विलंब किए बैंक से धन निकाला और अनापशनाप खर्च करने लगा. वह बेमतलब दो महानगरों की यात्राएं कर आया, जहां उसने कैबरे देखा था और जुआ खेला था. लोकनिर्माण विभाग वाले उससे तीन महंगी दावतें पाकर हतप्रभ थे. सहायक अभियंता तिवारी का कथन था कि उसकी जरूर कोई लॉटरी निकली है. जबकि बड़े साहब चरन साहब का मत था कि वह बड़े तस्कर गिरोह का सदस्य बन गया है. ठेकेदारों की सामूहिक राय थी कि उसको अथाह गड़ा धन हासिल हुआ है. वह इन टिप्पणियों से बेपरवाह पैसा लुटा-लुटाकर गुलछर्रे उड़ा रहा था और बिला नागा प्रतिदिन सरोज वर्मा के साथ सहवास कर रहा था.

सरोज वर्मा उस समय सन्नाटे में आ गई जब प्रमोद वर्मा ने उससे आग्रह किया, "चलो नाचा जाए" जबकि नृत्य कला में दोनों ही अज्ञानी थे. प्रमोद वर्मा नाचने के नाम पर बस अपने हिप हिला रहा था और सरोज वर्मा राजाओं को हवा देने वाले चंवर की तरह टुटरूं-टूं डोल रही थी. नाचते हुए प्रमोद वर्मा को महसूस हुआ, "मैं क्या चूतियापा कर रहा हूं." वह कुर्सी पर बैठकर हांफने लगा, "नहीं, नहीं, इन सबमें सुख नहीं है."

"मैं भी सोचती थी कि जब नाचना आता ही नहीं तो फिर नाचने में सुख कैसा."

प्रमोद वर्मा ने विरिक्त से देखा, "मैं केवल नाचने की बात नहीं

कह रहा हूं. मैं कह रहा हूं कि भोग में सुख नहीं है."

"तब किसमें है?" सरोज वर्मा झुंझला गई.

"शायद त्याग में."

"तो अपना फिश्चुला क्यों नहीं त्याग देते?" वह चिढ़कर बोली.

"फिश्चुला को त्याग सकना मेरे वश में नहीं है, लेकिन तुम्हें त्याग सकना मेरे वश में अवश्य है."

सरोज वर्मा की रूह फ़ना हो गई. वह सो रही उजली को छाती से लगाकर एकांत में देर तक रुदन करती रही. असुरक्षा बोध ने उसे इतना जकड़ा कि वह गंडे-तावीज के चक्कर में फंसने का निश्चय कर बैठी. लेकिन प्रमोद वर्मा पर किसी चीज का असर नहीं हो रहा था. हां, "त्याग" से जल्दी ही उसकी आस्था उखड़ गई थी, किंतु वह एकांतवास और मौन पर अटक गया. वह कहता, "शब्द में ऊर्जा है. मौन अनंत ऊर्जा का भंडारण करता है. जब भंडारण यथोचित हो चलेगा तो सुख ही सुख होगा." बाद में वह "मौन" से भी नाउम्मीद होकर वाचालता और मिलनसारी में रम गया था. उसका तर्क था, "ये इंसान क्या हैं, ईश्वर की संतानें हैं. इन्हीं में घुलने-मिलने से सुख की उपलब्धि होगी." अब वह घर से जल्दी निकल जाता और देर से आता. पत्रिका कार्यालय में वह मौका मिलते ही लोगों से गप्प लड़ाने लगता था. पत्रिका कार्यालय बंद होने के बाद वह लोगों से मुलाकात करने निकल पड़ता था. कभी किसी के घर, कभी किसी के घर. नतीजतन उसका दांपत्य जीवन विस्फोटक होने लगा था. भोग वाले दिनों की समाप्ति के पश्चात् सरोज वर्मा पति के साथ घूमने नहीं निकल पाई थी. उजली भी पापा के साथ घूमने के लिए ठान बैठी थी. अतः सरोज वर्मा ने तय किया कि वह पति से दुखड़ा कहकर रहेगी. कोई तुक होती है घर से बाहर रहने की.

मगर उस दिन अप्रत्याशित रूप से प्रमोद वर्मा पत्रिका कार्यालय से सीधा घर आ गया. थका-बुझा-सा, हारा-हारा-सा.

"क्या बात है?" सरोज वर्मा उसके बालों को दुलारने लगी.

"देखो मेरे बाल मत खींचो ये वैसे ही बुरी तरह टूट रहे हैं. मुझको प्यार-मुहब्बत के ये चोंचले अच्छे नहीं लगते हैं. रही बात कि बात क्या है तो मैं क्या बताऊं कि बात क्या है."

रात को बताई उसने बात. खाने की मेज पर उसने कहा, "सरोज मेरा खाने का मन नहीं है."

"थोड़ा-सा खा लो पापा," उजली ने भी आग्रह किया.

"नहीं बेटे, मन नहीं है."

मेज पर देर तक मौन बैठा रहा.

प्रमोद वर्मा बोला, "सरोज मैं क्या करूं. मेरा मन नहीं लगता किसी चीज में, मुझे लगता है कि मुझे कुछ चाहिए. क्या है वह जो मुझे चाहिए, यह मुझे पता नहीं है. सरोज मैं सुखी नहीं हूं. मेरी आत्मा अकसर मुझको मथती है और मैं परेशान हो जाता हूं. वाकई मैं सुखी नहीं हूं. मैं क्या करूं सरोज!"

सरोज वर्मा ने सोच-विचार के बाद कहा, "किसी बूढ़े-बुजुर्ग से पूछो."

वह खुश हुआ, "वाह सरोज." वह उजली को उछालने लगा, "मुझे पहले क्यों न सूझी, बिटिया."

अगले दिन पत्रिका कार्यालय में घुसते ही संपादक के पास पहुंचा, "एक काम था." संपादक बोला, "छुट्टी चाहिए न? फिश्चुला बढ़ गया क्या?"

"नहीं मुझे यह जानकारी चाहिए कि इस शहर में सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति कौन है?"

"वाह! इस शहर में सबसे अधिक उम्र की एक बुढ़िया है, जो 112 बारह साल की है. वह नदी किनारे रहती है. और उसके दांत अभी टूटे नहीं हैं. लोग कहते हैं कि वह बच्चों का टोना उतारती है. कोढ़, मिर्गी के मरीजों को छू देती है तो वे ठीक हो जाते हैं. अर्धरात्रि में उसके श्मशान घाट जाने के बारे में भी बताया जाता है."

"एक निवेदन और, मुझे आज की छुट्टी दे दीजिए."

"क्यों, तुम्हारा फिश्चुला तो बढ़ा नहीं?"

"फिश्चुला की बात नहीं. मुझे उस 112 साल की बुढ़िया से मिलना है."

वह बुढ़िया से मिलने चला जा रहा था, तभी यकायक , कई दिनों बाद लड़की टकरा गई. दोनों इस तरह आमने-सामने हुए कि कतराने का विकल्प बचा नहीं था.

"कहां जा रहे हैं आप इतनी तेजी में?" लड़की ने ही शुरुआत की.

"मैं 112 साल की बुढ़िया से मिलने जा रहा हूं."

"अब बुढ़िया से ही मिलना रह गया."

"मैं तुम्हारी इस बात का जबाब देता, पर जरा जल्दी में हूं."

"और आपकी तबीयत कैसी है?" लड़की गलत सवाल कर बैठी.

"ऑपरेशन के बाद फिर उभर आया है फिश्चुला," वह मुस्कराया, "यह आपको

मालूम ही होगा कि इसे हिंदी में भगंदर कहते हैं. यह गुदा रोग है."

लड़की शर्म से पसीना-पसीना हो गई.

"तबीयत के बारे में पूछने के लिए धन्यवाद." वह 112 साल की बुढ़िया से मिलने के लिए आगे बढ़ गया जो नदी किनारे रहती थी और जिसके दांत अभी टूटे नहीं थे.

बुढ़िया नदी किनारे रहती थी और सचमुच उसके दांत टूटे नहीं थे. सबसे बड़ी बात उसके हाथों में ताकत और आंखों में रोशनी थी. वह पीढ़े पर बैठी किसी लकड़ी से अपनी पीठ खुजला रही थी. कुछ कोढ़ी और कुछ मिर्गी के मरीज कमरे में बैठे बुढ़िया को निहार रहे थे. इक्का-दुक्का बच्चे भी अभिभावकों के साथ आए थे. सब बुढ़िया को बुढ़िया कह रहे थे. गोया बुढ़िया को यह संबोधन बहुत पसंद था. पीठ खुजला चुकने के बाद बुढ़िया ने पानी पिया. फिर वह गुनगुनाने लगी. किसी पुराने लोकगीत की धुन थी.

प्रमोद वर्मा ने आवाज दी, "बुढ़िया जी नमस्कार."

बुढ़िया ने हिकारत से कहा, "जा-जा—उस कोने में बैठ."

थोड़ी देर बाद वह पीढ़े से उठी. कमर कमान जैसी झुकी थी. वह एक-एक के पास जा रही थी. उसका सिर सहला रही थी. स्पर्श कराने के बाद लोग बाहर हो जा रहे थे. आखिर में सिर्फ वह बचा. बुढ़िया उसके पास आई. "बोल तुझे कोढ़ है कि मिर्गी?"

प्रमोद वर्मा घबराया, "मुझे न कोढ़ है, न मिर्गी. मुझे फिश्चुला है. पर मैं यहां इलाज कराने नहीं, कुछ पूछने आया हूं."

वह कमर पर हाथ रखकर सिर हिलाने लगी. जाकर पिर पीढ़े पर बैठ गई और हांफने लगी. हांफ चुकने के बाद गरजी, "बोल क्या पूछता है?"

"बुढ़िया मैं सुखी नहीं हूं. किसी चीज में मन नहीं लगता. भटकता रहता है मन. हमेशा खाली-खाली महसूस करता हूं. उदास रहता हूं. बुढ़िया मैं बहुत परेशान हूं. कई महीनों से सुख खोज रहा हूं. जगह-जगह ढूंढ़ा. भांति-भांति से ढूंढ़ा, पर वह मिल नहीं रहा है. बता बुढ़िया मैं सुखी कैसे हूंगा?"

बुढ़िया बड़ी देर सोचती रही. सोचती रही और आंखें मुलमुलाती रही. अचानक तमतमाकर खड़ी हो गई, "हुंह बड़ा चला है सुखी होने. बोल बेवकूफ कभी तू दुखी हुआ है? बोल, कभी सच्चे मन से दुखी हुआ है?"

बोल बेवकूफ कभी तू दुखी हुआ है? सुख को खोजेगा तो अपने को छलेगा. दुखी बन. संत-पीर, औलिया-फकीर की तरह दुखी बन तो अपने आप सुखी हो जाएगा."

प्रमोद वर्मा को लगा, बेहोश हो जाएगा. हथेलियों में सिर थामकर बैठ गया. "मैं आज तक दुखी नहीं हुआ." वह पसीना-पसीना हो गया. हल्का-हल्का कांप भी रहा था.

"दुख का मतलब जानता है मूरख. फोड़ा-फुंसी, बुखार बेरामी, या बीवी-बच्चों को डांट देने से होने वाला दुख नहीं, हमेशा चौबीस घंटों का दुख. हमेशा आत्मा को मथते रहने वाला दुख. सुख को खोजेगा तो अपने को छलेगा. दुखी बन. संत-पीर, औलिया-फकीर की तरह दुखी बन तो अपने आप सुखी हो जाएगा."

वह बाहर आया. बीहड़ बरसात हो रही थी. बादल बिजली की चमक के साथ गरज रहे थे. तेज हवा थी. पेड़-पौधे जोर-जोर से झूम रहे थे. वह भीगते हुए चल पड़ा. वह जल्दी से जल्दी दुखी होने का यत्न कर रहा था. वह गरीबों की बस्ती में गया, अस्पताल, अनाथालय गया और विधवाश्रम भी हो आया. पथरीली जमीन वाले इलाके में अकाल का हाहाकार था, वहां भी पहुंचा था. सब जगह दुख था. महंगाई, दंगा, बेटे की नौकरी, बेटी के ब्याह के चंगुल में फंसे लोगों का वह गौर से मुआयना करता था. लेकिन वह हतप्रभ था कि उसे कुछ होता ही नहीं था. वह अपनी ही निगाहों में गिरने लगा. इस बीच उसे बुखार ने भी दबोच लिया था. बुखार के कारण उसका शरीर तप रहा था. रात उसे कई छींकें आईं और नाक सुड़सुड़ाने लगी. थोड़ी देर बाद बुखार से वह जलने लगा था.

सरोज वर्मा उजली के साथ दवा खरीदने गई थी. वह कंबल ओढ़कर लेटा था. उसकी नाक सुड़सुड़ाने लगी. अभी वह लगातार कई बार उठ-उठकर नाक छिनक चुका था. अतः इस बार भीतर ही भीतर सुड़क डाला. वह बहुत अकेला पा रहा था. लग रहा था जैसे कोई भारी आवरण उसे घेर रहा है. उसकी पलकें भारी-सी होने लगीं. वह बुदबुदाया, "मैं कभी दुखी नहीं हो सकूंगा, न सुखी." उसने सोचा कितने साल हो गए होंगे, मुझे कभी पश्चाताप नहीं हुआ. वह नींद और जागने के बीच की स्थिति में था. वह स्वप्न और यथार्थ की मिली-जुली अवस्था में था. धुंधला-धुंधला-सा सोच रहा था, "मेरे पास आंसू भी नहीं बचे. बचपन के बाद मैं रोया ही नहीं." 'वह उद्विग्न था, "क्या जमाना आ गया है. लोग न रोते हैं, न पश्चाताप करते हैं." सरोज वर्मा दवा लेकर आ गई. रास्ते में पत्रिका कार्यालय फोन कर दिया था पति की छुट्टी के लिए. उसने दवा की गोलियां पति को दीं. प्रमोद वर्मा उन्हें गटक गया. देर तक लेटे-लेटे वह ऊब गया था. वहीं बिस्तर पर उकड़ूं बैठ गया.

सरोज वर्मा ने सुझाव दिया, "ऐसे मत बैठिए, फिश्चुला दर्द करने लगेगा."

वह उसी तरह बैठा रहा. नामालूम क्या सोचता रहा कि रुआंसा हो गया, "सरोज-सरोज मैं क्या करूं, मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता. कुछ सुंदर नहीं लगता. कैसा वक्त है कि इंसान न सुखी हो सकता है, न दुखी. ऐसी जिंदगी का मतलब क्या है?"

सरोज वर्मा ने उसकी गरदन में बांहें डाल दीं. प्रमोद वर्मा का सिर छोटे बच्चे की तरह अपने वक्ष से लगा लिया और सहलाने लगी, "क्या होता जा रहा है आपको—क्या होता जा रहा है—मैं कहती हूं कि आपको मेरी उजली की रत्ती भर परवाह नहीं है."

उजली अपने नाम का जिक्र सुनकर उत्साहित हो गई, "पापा-पापा आप कब दुखी होंगे?"

"कभी नहीं बिटिया."

"ऐसा न बोलिए," सरोज वर्मा ने भारतीय नारी की तरह इतराते हुए धीरज बंधाना शुरू किया, "आप चिंता मत करिए. आप एक दिन जरूर दुखी होंगे. ईश्वर के घर में देर है मगर अंधेर नहीं है. वह आपको जरूर दुखी बनाएगा. मैं सोमवार का व्रत रखूंगी. शंकर जी से मांगूंगी कि आपको दुखी बनाएं."

"कोई फायदा नहीं. किसी भी तरह मेरा दुखी होना, यानी कि मेरा सुखी हो सकना किसी भी तरह मुमकिन नहीं है." वह पुनः उकड़ूं बैठ गया, "क्योंकि मेरी आत्मा खो गई है. मुझे यह पता भी नहीं कि वह कहां खोई. पहले मैं अकसर उसे निकालकर रख देता था, इसी में वह कहीं खो गई. लोक निर्माण विभाग के दफ्तर में, सड़क पर या किसी यात्रा में, पता नहीं कहां मैंने उसे अपने से अलग रखा और वह खो गई—" उसकी आंखों के सामने अंधेरा छाता जा रहा था. सब कुछ डूबता हुआ-सा लग रहा था. अचानक उसके फिश्चुला में जोरों का दर्द हुआ. उससे संभल पाता कि मितली आने लगी. वह ओ—ओ करके उठा. भागते हुए वाश-बेसिन तक गया और उल्टी करने लगा. दुर्गंध से भरी हुई ढेर सारी उल्टी. ■

व्यंग्य रचनाएं

मनोहर श्याम जोशी
ज्ञान चतुर्वेदी
रवींद्रनाथ त्यागी

शोमैन के पीछे क्या है?

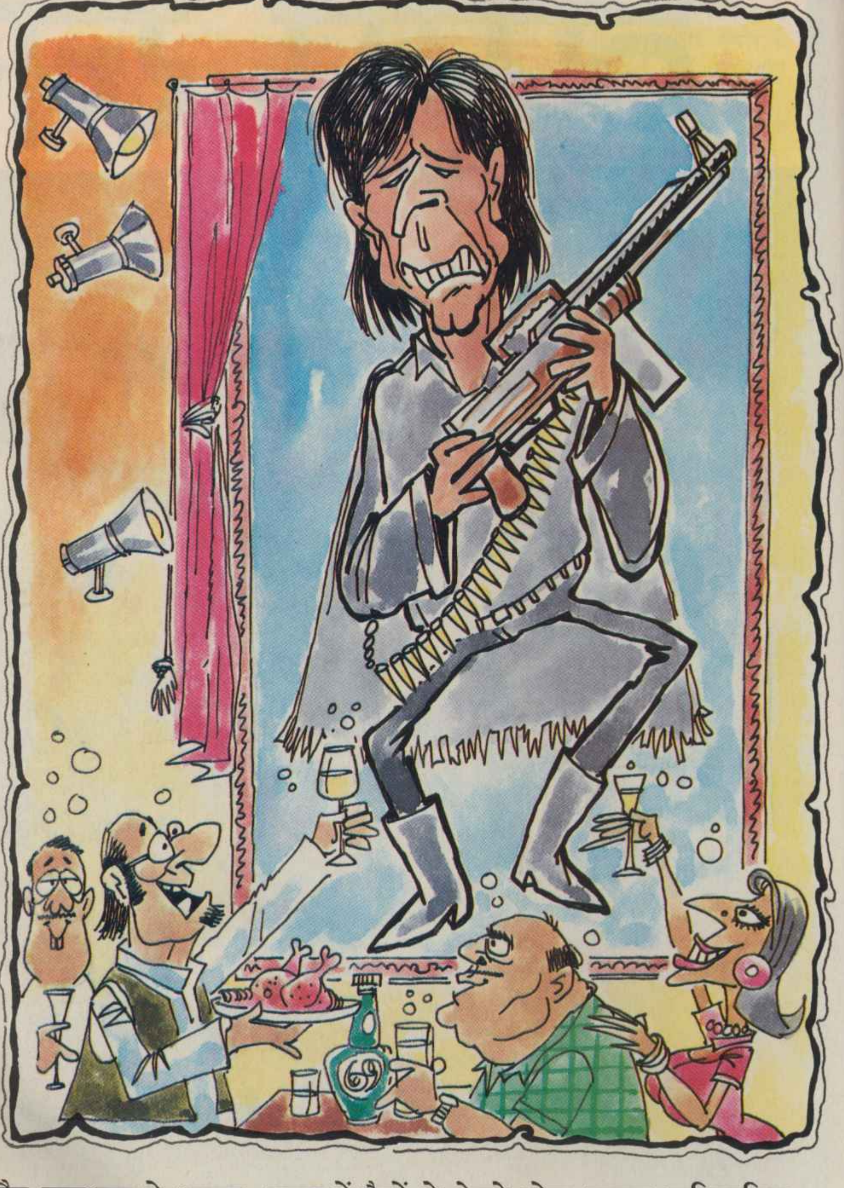

• **मनोहर श्याम जोशी**

• चित्र: जयंतो

सेक्स, रहस्य, रोमांच और मारधाड़ से भरपूर, माताओं-भैनों के देखने योग्य महान पारिवारिक-सामाजिक फिल्म बनाना कोई हंसी-खेल है क्या? इसमें कितनी मशक्कत है, किसी शोमैन से पूछो.

शोमैन के पीछे इंडस्ट्री थी और इंडस्ट्री के आगे देश था और देश के कई हिस्सों में वे लोग बावेला मचा रहे थे जिन्हें उनके असली नाम से न पुकारने की अखबारों को सख्त ताकीद की जा चुकी थी. देश बरबाद हो रहा था और बदतर यह कि फिल्म शो बरबाद हो रहे थे. पब्लिक कुछ टैरेटरीज में मारे डर के घरों से निकल नहीं रही थी. गुंडों तक ने नाइट शो देखना बंद कर दिया था. शोमैन की जान, जैसा कि सितारों की धूल फांकने के शौक से अनजान लोगों तक को पता है, शो में अटकी रहती है. सो वह भी स्कॉच के पैग के साथ-साथ उस देश की चिंता में डूबने लगा जिसमें कभी गंगा बहती थी और नाइट शो नहीं हो पा रहे थे.

शोमैन की देखा-देखी सारी इंडस्ट्री ने गम गलत करने के लिए स्कॉच की बोतल खोली. इतनी स्कॉच इंडस्ट्री में पी जाने लगी जितनी स्कॉटलैंड में क्या, उल्हास नगर में भी नहीं बनती. शोमैन ने देश को बरबादी से बचाने के लिए राष्ट्रीय एकता का गीत अपने और देश के चहेते सितारों पर फिल्माकर दूरदर्शन को दे डाला, वैसे ही जैसे नेकी करके कुएं में डाल दी जाती है. घटिया नकली स्कॉच से बढ़ते उसके दर्दे-जिगर ने कहा—शोमैन या तो तू

नेक्स्ट प्लेन पकड़कर स्कॉटलैंड चल या फिर 'टैरर' फैलाने वालों से निपटने के लिए कुछ और कर. शोमैन बोला—मैं तो शोमैन हूं, निपटने का शो ही कर सकता हूं. चमचा बोला—सर जी, देश के बड़े-बड़े नेता भी यही कर रहे हैं.

तो शोमैन ने राइटर को बुलाया और उसे रुपया बीस हजार साइनिंग का थमाया. राइटर हर्षाया क्योंकि वह जानता था कि लिखेगा तो शोमैन खुद ही और जो लिखेगा वह इसलिए हटकर होगा कि जहां मेरे समेत तमाम और फिल्मी लेखक हॉलीवुड की फिल्मों की नकल करके रोटी-रोजी चला रहे हैं, वहां शोमैन "रामायणा, महाभारता ते महबूब दी मदर इंडिया"—इन तीन एपिकों से प्रेरणा लेता है. शोमैन ने कहानी से भी पहले टाइटिल का सवाल उठाया और पूछा कि टैरर फैलाने वाले को हिंदी में क्या कहते हैं? राइटर बोला—जो कहते हैं वह मुझे मालूम है लेकिन वह शब्द जबान पर लाना नहीं चाहता. उन लोगों की तरफ से उस शब्द का इस्तेमाल करने की मनाही है और फिर वह शब्द ऐसा है जो इंडस्ट्री के सबसे समझदार शोमैन के ही पल्ले नहीं पड़ेगा, आम पब्लिक की तो बात ही क्या!

"मनाही" की बात सुनकर शोमैन के कान खड़े हुए. बोला कि बैन और कंट्रोवर्सी पब्लिसिटी के नजरिए से अच्छे रहते हैं. लेकिन राइटर ने कहा कि वे लोग सीधे गोली से उड़ा देने के आदी हैं और शोमैन उड़ गया तो इंडस्ट्री ही उड़ जाएगी.

इस पर शोमैन ने कहा—यार वे लोग इतने सेंसेटिव हैं तो तुम जरा सेंसेटिवली ही ट्रीट करना टैरर फैलाने वाले हमारे हीरो को.

राइटर ने आपत्ति की—वह तो विलेन हुआ, नायक नहीं, खलनायक!

शोमैन गुनगुनाने लगा और उसने आंखों से सीने की ओर इशारा करते हुए पूछा—यहां जो पहनते हैं उसे क्या बोलते हैं? चमचा बोला—सर जी ब्रा.

शोमैन ने तुरंत दस हजार की एक गड्डी राइटर पर न्यौछावर की और अलमारी से निकालकर सिंगल माल्ट स्कॉच की वह बोतल खोली जो उसने खुद ड्यूटी-फ्री शॉप से खरीदी थी. उसने चमचे से दो बातें कहीं—एक, टाइटिल खलनायक रजिस्टर करवा लो. दो, लिरिक राइटर और म्यूज़िक डायरेक्टर को यह मुखड़ा सुना दो—नायक नहीं, खलनायक हूं मैं.

चमचे ने हुकुम बजा लेने के बाद महज सैद्धांतिक स्तर पर आपत्ति की—खलनायक भौत सकील लफज है. मासेज की समझ में नहीं ना आएगा.

शोमैन बोला—यार फिल्म में कुछ तो क्लासेज के वास्ते होना चाहिए, बाकी कहानी हमने मासेज वाली ही बनानी है.

चमचा बोला—हां वैसे तो 'परती घाट'' भी सकील टाइटल के बावजूद चल गई थी.

शोमैन ने कहा—अभी भी चलेगी, बल्कि दौड़ेगी. देखो राइटर तुम मामले की नजाकत को ध्यान में रखते हुए ऐसा दिखाना कि हमारा खलनायक और कुछ नहीं, वही मदर इंडिया से लेकर अब तक का जाना-पहचाना भला नायक है जो प्यार और इंसाफ न मिलने की वजह से बागी हो गया है. मगर पब्लिक को ऐसा भी न लगे कि हम उसको ग्लैमराइज कर रहे हैं. इसलिए तुम उसके पीछे लगे हुए पुलिस आफिसर का नाम राम रख देना. इस तरह हम टैरर फैलाने वाले को बड़ी सफाई से रावण भी कह जाएंगे.

चमचे ने शोमैन की हथेली पकड़ी और उसे क्रमशः माथे, आंखों और ओठों से लगाया. वह बोला—सर जी, आपके आइडियाज के टुकड़ों पर ही सारी इंडस्ट्री पल रही है. जिन्हें लोग टैरर फैलाने वाला कहने तक में घबरा रहे हैं उन्हें आप बड़े मजे से रावण कह जाओगे और अगले फिर भी आपका बाल-बांका नहीं ना करेंगे क्योंकि उन्होंने तो यही देखना है कि आपने उन्हें खून का प्यासा नहीं, प्यार और इंसाफ का भूखा बताया है. और सर जी आप ये भी देख लो कि राम का बॉक्स आफिस रिकॉर्ड भौत वदिया है. राम का नाम लेकर अपना रामानंद सागर चल गया, अरुण गोविल चल गया और बी.जे.पी. चल गई.

शोमैन बोला—सुनो राइटर, हीरोइन को भी तुम राम की तरह पुलिस में रखवा देना और उसका नाम रखना गंगा. यह ऑल इंडिया हिट नाम है. जिस भी फिल्म के टाइटिल में रख दिया गया, वही चल गई.

मचा बोला—और सर जी, राम और गंगा दोनों का नाम लेकर अगले वक्तों के शोमैन राज साहब की 'राम तेरी गंगा मैली' तो सुपर-डुपर हिट हुई.

शोमैन खफा हुआ. बोला—बकवास करने की तेरी आदत कब जाएगी चमचे? हमारे खलनायक का 'राम तेरी गंगा मैली' से क्या लेना-देना है?

चमचा हाथ जोड़कर बोला—मैं तो यह अरज कर रहा था सर जी कि इस मुल्क की नब्ज या तो राज साहब की पकड़ में आई थी या फिर आपकी पकड़ में आई है. आप दोनों ही समझ सके हो कि हमारा कल्चर किन खास-खास सिंबलों पर टिका हुआ है. गंगा का तो काम ही पापियों के पाप धोना हुआ. हीरोइन के प्यार में डुबकी लगा के अपने खलनायक के सारे पाप धुल जाने हैं और उसने पाक-साफ बंदा बन जाना है. सर जी, आपने हीरोइन के वास्ते सुपरहिट मुकाबला नंबर वन नाम सोचा है. अपनी परमेश गोदरेज ने भी नए साबुन का नाम गंगा ही रख छोड़ा है.

शोमैन चिढ़ गया. चिल्लाया—स्कॉच-हराम, बैठा शोमैन की महफिल में है और जिक्र शोई वूमेन का कर रहा है! खबरदार जो तूने अब बीच में बोलकर मेरे आइडियाज डिस्टर्ब किए.

चमचे को चुप कराने के बाद शोमैन भी देर तक चुपचाप कुछ सोचता रहा. और राइटर का काम तो खैर था ही यह कि वह चुपचाप सुनता रहे और शोमैन के बदलते आइडियाज के मुताबिक स्क्रिप्ट बदलता रहे. कहानी जितनी गड़बड़ होती जाए, वह उतना ही भविष्य के प्रति आश्वस्त होता जाए क्योंकि शोमैन निर्विवाद रूप से सिद्ध कर चुका था कि बेतुकी कहानियों को बेहतरीन ढंग से फिल्माने और बॉक्स ऑफिस पर सफल बनाने में उसका जवाब नहीं.

सोच-विचार करने के बाद शोमैन बोला—कोई पवित्रता से भी काम चलता नहीं है. गंगा, गंगा ही बनी रह गई तो फिल्म करोड़ों का धंधा नहीं करेगी. जहां अपनी माधुरी दीक्षित हो वहां पब्लिक एक-दो-तीन जैसा ठुमका तो मांगती ही मांगती है. लेकिन क्या है, हमें एथनिक टच देना होगा.

शोमैन गुनगुनाने लगा और चुटकियां बजाते हुए कंधे कसमसाने लगा. फिर ठुमकते हुए उसने आंखों से सीने की ओर इशारा करते हुए पूछा—यहां जो पहनते हैं उसे क्या बोलते हैं?

चमचा बोला—सर जी, ब्रा.

शोमैन खफा हुआ—अबे हिंदी में.

चमचा बोला—हिंदी में भी अब ब्रा ही कहते हैं सर जी, पहले बॉडी कहा करते थे.

शोमैन चमचे पर अपनी एंगर शो करने वाला ही था कि राइटर ने कहा—उसे चोली कहते हैं.

शोमैन चहका—हां चोली. तो रखवाओ कि चोली में समथिंग-

समथिंग.

चमचे ने चुप्पी तोड़ी. बोला—सर जी, आपके आइडियाज के टुकड़ों पर ही सारी इंडस्ट्री पलती है. इस समथिंग-समथिंग से हमारी झोली भी उसी तरह भर जानी है जिस तरह चोली भर जाती है. और सर जी क्या है..

शोमैन उसकी बात बीच में ही काट कर बोला—समथिंग-समथिंग की जगह 'क्या' रख दो. चोली में क्या है?

चमचा शोमैन के सिर को श्रद्धापूर्वक खटखटाकर बोला—सर जी, आपके खोपड़े के पीछे तो प्लेटिनम जुबलियों की खदान है.

अब शोमैन ने चमचे का हाथ चूम लिया. बोला—'मैं' की जगह 'के पीछे' रखवाओ. चोली के पीछे क्या है? ये हुआ ना मुखड़ा.

इस बार चमचे ने शोमैन के पांव को क्रमशः माथे, आंखों और ओठों से लगाया. शोमैन फिर उसी तरह चुटकियां बजाते हुए कंधे कसमसाने लगा. उसकी देखा-देखी चमचा भी.

कई दिनों तक शोमैन के साथ-साथ लिरिक राइटर और म्यूज़िक डायरेक्टर भी इसी तरह कसमसाते रहे मगर दूसरी पंक्ति बन नहीं पाई. इसकी वजह यह थी कि पवित्र गंगा के मुंह से शोमैन उस चीज का नाम नहीं लिवाना चाहता था जो चोली के पीछे अनादिकाल से होती आई है और जिसका उल्लेख हमारे लोक तथा शास्त्रीय—दोनों तरह के संगीतों की तमाम बंदिशों में निस्संकोच किया जाता रहा है. शोमैन की बातों से कुछ ऐसा लगा मानो चोली के पीछे की चीज ने भी 'उन' लोगों की तरह यह चेतावनी दे रखी हो कि अगर हमें सही नाम से पुकारा गया तो गोली से उड़ा दिए जाओगे.

चमचे ने सुझाया—सर जी, जिस तरह आप 'उनको' खलनायक नाम दे बैठे हो उसी तरह चोली के पीछे की चीज को भी कुछ और नाम दे बैठो ना.

लोगों ने कई तरह के विकल्प शोमैन को सुझाए. यहां तक कि संस्कृत या इंग्लिश का वर्ड डाल देने की बात भी कही गई. लेकिन शोमैन इस मामले में समझौता करने को कतई तैयार नहीं था. उसने साफ कहा—देखो जी, मैं फुल फैमिली एंटरटेन्मेंट बनाता हूं कि माताओं-भैनों के साथ बैठकर देखा जा सके. आज तक मेरी किसी फिल्म में कोई वल्गैरिटी नहीं ना रही है और डबल मीनिंग वाले वर्ड मैंने कभी इस्तेमाल नहीं करने दिए हैं अपने डायलॉग राइटर को.

राइटर ने कहा—माताएं-बहनें भी रतजगों के गीतों में चोली के पीछे वाली चीज को धड़ल्ले से याद करती रही हैं.

देश की नब्ज पर हाथ रखने वाला शोमैन बोला—अब रतजगे नहीं होते.

चमचे ने याद दिलाया कि डिस्को और नाइट कल्ब का जमाना है.

देश की नब्ज मजबूती से पकड़े हुए शोमैन बोला—माताएं-बहनें उनमें भी नहीं जातीं. तो कोई ऐसा वर्ड बताओ जिस पर माताओं-बहनों को आब्जेक्शन न हो.

लिरिक राइटर ने 'ममता' शब्द सुझाया, जो चमचे को कतई पसंद नहीं आया. वह बोला—सर जी, बात तो तभी बनती है जब हम चोली के पीछे वाली चीज को

जिस देश में आर्ट, कल्चर और मॉरेल्टी के नाम पर मर मिटने वाले पत्रकार फिल्म फैस्टिवल में 'माया मेमसाब' का शो देखने के लिए इसलिए मारा-मारी करते हैं कि उसमें एक बैडरूम सीन है, उस देश में...

उसके असली नाम से पुकारें. और आब्जेक्शन का तो ऐसा है सर जी जिन्हें चोली के पीछे वाली चीज का नाम लिया जाना ठीक नही लगना है उन्होंने तो चोली का जिक्र किए जाने पर भी रौला डालना है. सर जी पब्लिक भौत स्यानी हो गई है. लफाफा देख के ही खत का मजमून भाप लेती है.

शोमैन चीखा—शट अप. खोते के पुत्तर, तुझसे किस उल्लू के पट्ठे ने कह दिया कि शोमैन रौला नही डलवाना चाहता? हम तो चाहते हैं कि कंट्रोवर्सी हो.

फिर शोमैन लिरिक राइटर से मुखातिब होकर बोला—मेरे को एक आइडिया आता है. ममता हुई, मोहब्बत हो गई, आल दीज फीलिंग्स—ये किधर रहती हैं? दिल में? दिल किधर रहता है? चोली के पीछे.

इस बार म्यूजिक डायरेक्टर और लिरिक राइटर ने शोमैन की एक-एक हथेली थामी और क्रमशः माथे, आंखों और ओठों से लगाई. चमचा, जो उल्हास नगर की स्कॉच के असर में अपनी औकात भूल बैठा था, दबे स्वर में आपत्ति कर बैठा—सर जी, दिल तो चोली के एक ही हिस्से के पीछे हुआ ना. दूजी साइड तुसी इग्नोर नहीं ना कर सकदे. आपको पब्लिक को सच-सच बताना होगा कि चोली के पीछे क्या है?

शोमैन गरजा—चुप कर ओय पब्लिक के नाखून के मैल. चोली के पीछे कुछ भी होता रहे शोमैन ने नहीं ना बताना है अपने मुंह से. बताने के लिए उसे न तू मजबूर कर सकता है, न तेरी पब्लिक, आई तेरी समझ में? शोमैन राइटर-शाइटर रखता जरूर है बाकी शोमैन जानता है कि सिनेमा विजुअल मीडियम है. शोमैन ने विजुअली बताना है कि चोली के पीछे क्या है? उसने हीरोइन और उसकी साथ वाली से तमाम लटके-झटके-इशारे इस्तेमाल करवा देने हैं कि देख लो, समझ लो चोली के पीछे असली में क्या है? हम भले ही आपकी नैतिकता का दिल रखने के वास्ते गाने में दिल कह रही हैं लेकिन आप इतना सब देखने के बाद धोखे में मत रहना. इसके बाद भी पब्लिक नहीं ना समझी तो शोमैन ने ऐसी जाहिल पब्लिक के लिए आइदा फिल्म ही नहीं बनानी है.

जिस शोमैन के आइडियाज के टुकडों पर इंडस्ट्री पल रही थी उसके मन में फिल्में न बनाने का आइडिया उठता देख चमचा घबराया और फौरन बोला—पब्लिक जरूर समझ जाएगी सर जी. मैंने अरज किया ना कि वो भौत स्यानी हो गई है.

शोमैन बोला—जिस देश में साबुन का नाम गंगा होता है, जिस देश में पॉप म्यूजिक गाने वाले राष्ट्रीय एकता का वीडियो बनाते हैं, जिस देश में लीडरान शाम को शराब पीने से पहले दो छींटे गांधी जी के नाम डाल देते हैं, जिस देश में आर्ट, कल्चर और मॉरेल्टी के नाम पर मर मिटने वाले पत्रकार फिल्म फैस्टिवेल में 'माया मेमसाब' का शो देखने के लिए इसलिए मारा-मारी करते हैं कि उसमें एक बेडरूम सीन है, उस देश में कामयाबी हासिल करने के लिए यह जरूरी है कि चोली के पीछे की चीज दिखाई जाए मगर उसका नाम बताया जाए दिल.

चमचा, जो अब सारी बात समझ चुका था, बोला—और सर जी, इसके चलते जनानियों के दो-दो दिल हो जाएं तो चंगी गल है क्योंकि उससे मुल्क में प्यार-मौहब्बत का प्रॉडक्शन दुगुना हो जाना है.

मुल्क की नब्ज पर मजबूती से हाथ रखने वाले शोमैन ने कहा—इस एक गाने से ही काफी कंट्रोवर्सी हो जानी है इसलिए सबको बोल दो कि और किसी कंट्रोवर्सी में अपने को नहीं डालें.

ऊपर वाला शोमैन नीचे वाले शोमैन पर ज्यादा मेहरबान था. इसलिए उसने दो-एक कंट्रोवर्सी और करा दी. पहले हीरो अपनी भूमिका में इतना रम गया कि एक अदद ए.के. खरीद लाया और हीरोइन अपनी भूमिका में इतनी रमी कि शादीशुदा हीरो से प्यार कर बैठी. फिर बी.जे.पी. और शिव सेना ने, जिन्हें तब तक पता नहीं था कि खलनायक को राह पर लाने में राम और गंगा की महत्वपूर्ण भूमिका है, हीरो की फिल्मों के खिलाफ जेहाद छेड़ दिया. फिर एक अन्य निर्माता, शोमैन का टाइटिल और हीरोइन की चोली ले भागा. फिर किन्ही वकील साहब को चोली के पीछे से दूध पी चुके बच्चों के चोली के गाने से बिगड जाने की इतनी चिंता हुई कि वह उसे फिल्म से कटवाने के लिए अदालत में जा पहुंचे. अदालत ने फरमाया कि फिल्म पर रोक नहीं लगाई जा सकती. गाने के बारे में फैसला बाद में यह देख-समझकर किया जाएगा कि चोली के पीछे क्या है? फिल्म दिखाई जाने लगी और बाद में अदालत ने भी चोली के पीछे कोई काबिले-एतराज चीज नही पाई.

पहले शो के बाद ही शोमैन ने भविष्यवाणी की—अब तुम देख लेना कि हर तिमाही किसी नई सनसनी की तलाश करने वाले इस देश में कम-से-कम तीन महीने तक इसी बात की चर्चा होगी कि चोली के पीछे क्या है? और उसी गर्मजोशी से होगी जिससे बोफोर्स तोप की हुई थी. तुम देख लेना देश टैरर की समस्या भूल कर इसी सवाल से जूझने लगेगा कि चोली के पीछे क्या है?

चमचा बोला—कोई ताज्जुब नही सर जी, जो सरकार आपको पदम-भूषण दे बैठे कि आपने तो हमारे पंजाब की प्रॉब्लम ही हल कर दी कि माधुरी दीक्षित और नीना गुप्ता उधर जाकर चोली के पीछे वाले दिल की महमा सुना आएं तो बंदों ने गिल-शिल के आगे हथियार डाल देने हैं.

शोमैन ने कहा—मैं अवार्ड के वास्ते फिल्में नहीं बनाता. मुझे तो रिवार्ड बॉक्स ऑफिस पर मिलता है. इस बार भी मिलेगा.

हमेशा की तरह इस बार भी शोमैन की भविष्यवाणी सही साबित हुई. चोली के पीछे वाले दिल की दरिया-दिली से शोमैन का ही नही, संपादक के नाम पत्र लिखने वालों का, समाजशास्त्रीय सेमिनार कराने वालों का, हल्की-फुल्की बबंइया फिल्मों पर भारी-भरकम लेख लिखने वालों का और व्यंग्यकारों का धंधा चमक उठा.

सफल भविष्यवक्ता शोमैन से चमचे ने पूछा—सर जी, अगली फिल्म में आप मुल्क की कौन-सी प्रॉब्लम उठाओगे?

शोमैन बोला—करप्शन की. और एक आइडिया आ रहा है कि उसमें गाने का मुखड़ा यह रखें—लंगोटी के पीछे क्या है?

सुनकर चमचा चरणों में लोट गया और लोटते-लोटते ही उसने कहा—सर जी आइडिया ग्रेट है मगर इसकी नैक्स्ट लाइन में तो बहुत प्रॉब्लम होनी है.

शोमैन बोला—प्रॉब्लम कुछ नहीं है, सोल्यूशन भी कुछ नहीं है.

चमचा बोला—सर जी मैं मतलब नही समझा.

शोमैन बोला—मेरा मतलब है कि नैक्स्ट लाइन हम रखेंगे ही यह कि पीछे कुछ नही है. और यह बिलकुल सही कमेंट होगा मुल्क पर. मुझे पता है क्योंकि मैं शोमैन हूं और मेरा हाथ मुल्क की नब्ज पर है. ■

RANGOLI

गुपचुप बातें नई पुरानी

नीम : संगम नए पुराने का । बिजली की चकाचौंध सा । रंगोली के ४७ मनमोहक रंगों में एक । हल्के से गहरे तक ।

शानदार मैट एक्रिलिक इमल्शन । स्थायी आकर्षण । अनन्त प्रेरणा ।

BERGER PAINTS

Shape/B/R-1

दंगे में मुर्गा

• ज्ञान चतुर्वेदी • चित्र: हरिपाल त्यागी

दड़बा जला दिया गया, परिवार मारा गया मगर दंगे में मुर्गे मियां किसी तरह बच निकले. जांच आयोग बैठा तो वे पहुंच गए उसके दफ़्तर न्याय पाने को. क्या न्याय मिला उनको?

व्यंग्य रचना

भाग: एक

उपोद्घात: दंगों पर लिखना, इधर हिंदी साहित्य का नवीनतम शौक है. सांप्रदायिक सद्भाव, एकता, भाईचारा इत्यादि के चहबच्चों में हिंदी लेखकों ने इधर खासी छपाक-छपाक मचाई है. यूं तो सांप्रदायिक एकता आदि का जबरदस्त माहौल देश में है, जैसा कि सरकारी प्रचार माध्यमों द्वारा देश को समय-समय पर बताया जाता है. देश के नागरिकों को जब भी मारकाट, दंगों तथा अन्य संप्रदायों को उचित सबक सिखाने वाली ऐसी ही समयोचित कार्यवाहियों से फुरसत मिलती है, वे बाकायदा सांप्रदायिक एकता आदि में गले-गले तक डूबे पाए जाते हैं. वे ईद तथा दीपावली आदि पर सांप्रदायिक सद्भाव दिखाते हैं, बशर्ते कि पुलिस का इंतजाम पुख्ता हो तथा संप्रदाय के गुंडे अन्यत्र व्यस्त हों.

इधर मैं बड़े दिनों से फिराक में था कि दंगों, सांप्रदायिकता आदि पर कुछ लिखूं, जैसा कि बहुत-से लेखक, मात्र फैशन के तहत, बिना महसूसे लिख रहे हैं. यह करना आवश्यक था ताकि हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले माई-बापों के पीले पन्ने वाले रजिस्टर में मेरा नाम भी कहीं इंदराज हो जाए. पर विषय कुछ सूझ नहीं रहा था. बिना विषय सूझे ही लिखने की यूं मुझे पुरानी आदत रही है, पर दंगों पर लिखने में फिर यह परेशानी भी थी कि सरकारी कर्मचारी होने के नाते ऐसा-वैसा न लिख जाऊं कि नौकरी पर ही आ जाए. हिंदी लेखन में भांति-भांति के रोड़े होते हैं. अपनी इन दुविधाओं की चर्चा मैंने अपने परम मित्र फैयाज मियां से की, जो पुराने शहर की एक तंग गली में मुसलमानों की बस्ती में रहकर फटेहाली तथा शायरी में दिन काट रहे थे. उन्होंने सलाह दी कि "विवाद में मत पड़ो मियां. तुम तो इन मुर्गे-मुर्गियों पर बनाकर कोई दंगे की कहानी लिख दो." फैयाज मियां ने अपने घर के दड़बे में बंद मुर्गो-मुर्गियों की ओर इंगित करते हुए कहा था. फिर यह भी कहा था कि "अपना हाल इन मुर्गों से अलहदा थोड़े ही है—इन पर जो भी कहानी लिखोगे, वह हम पर ही हो जाएगी."

और ऐसा ही हुआ, जैसा कि आप आगे देखेंगे.

मैं फैयाज मियां के मुर्गा-मुर्गी पर कोई कहानी शुरू करने की सोच ही रहा था कि शहर में हिंदू-मुस्लिम दंगे शुरू हो गए. तब बाकायदा वास्तव में एक कहानी उस मुर्गा परिवार के बीच परवान ले रही थी, जो फैयाज मियां के दड़बे में तब बंद थे, जब शहर में दंगा हुआ.

कहानी कुछ यूं चली:

मुर्गाबीती: तो शहर तो कुछ यूं था कि लल्लू मरें कि जगधर, हमें क्या? सबको अपनी पड़ी. हालत बुरी थी पर क्या कहें और क्यों कहें क्योंकि

अपनी तो यह आदत रही है कि न बात बिरानी कहिए, न ऐंचातानी सहिए. चुप रहते हैं और ऐसी ही कहानियां उकेरते हैं कि किसी को बुरा न लग जाए. बहुत गई, थोड़ी बची—यही सोचकर बच-बचाकर लिखते हैं. फिर लिखकर भी होना क्या है क्योंकि कह भी गए हैं कहने वाले कि जिधर नहीं सुनवइया, उधर मरा कहवइया. सुनता कौन है, पढ़ता कौन है. और पढ़ भी ले तो गुनता कौन है? सब, टकों के चाकर. सबको अपनी-अपनी. रोटी ऊपर साग और मेरे तो नित फाग—बाकी जाए भाड़ में.

तो ऐसा शहर.

और ऐसे शहर में हमारा कथानायक मुर्गा.

सीधा-सादा मुर्गा, फैयाज मियां का. होती की धोती, अनहोती की लंगोटी. जो दाना मिला, खा लिया. दड़बे का जो कोना खाली मिला, सो लिया. फैयाज मियां जैसा ही दुबला-पतला. पतली गली के घूरे पर जाकर जो दो-चार दाने मिल गए तो खा लिया. फैयाज मियां तो खैर खिलाएंगे क्या. खुद उनके खाने के लाले. खुद उनके हाथ-पांव सुकुटिया, पेट मटुकिया. दमे के बीमार, पित्त बने नहीं और तिल्ली बढ़ी हुई. हमेशा के बीमार. और वैसा ही उनका मुर्गा. दोनों ही सूदरे, सीधे-सादे, शहर भर से डरकर चलने वाले. चूजों से डरें और चीलों से भी. जैसी देखी गांव की रीत, वैसी उठाई अपनी भींत—सारा शहर ही ऐसे मुर्गों तथा आम आदमियों से अटा पड़ा था जो राम-राम भजे जा, यही गैल (रास्ता) धरे जा पर विश्वास करते थे. ईश्वर और अल्लाह पर बराबर भरोसा करने वाले लोग. कहने वाले कि जो पिंड में, सो ब्रह्मांड में. परंतु शहर ऐसा निर्दयी तथा कठोर कि आश्चर्य होता था कि जहां के प्रायः रहवासी ऐसे सीधे कि जिनकी गिनती न भटन में, न भाजी में, वही शहर इतना नंगा क्योंकि ऊपर दुपट्टा और तरे (नीचे) बस! हमेशा तनाव, गुस्से और आशंका से भरा शहर कि डायन खाए सो मुंह लाल, न खाए तो मुंह लाल.

भूख भी पूरे मोहल्ले में कर्फ्यू के साथ ही पसरी है. फिर मुर्गी रोज अंडे दे रही है... फैयाज मियां प्रतिदिन मुर्गी के अंडे बटोर ले जाते, तो चूल्हे पर बर्तन चढ़ाने के लिए कुछ बहाना हो जाता है.

ऐसे शहर में हो गया हिंदू-मुस्लिम दंगा.

फंस गया हमारा कथानायक मुर्गा दंगे में.

आज कर्फ्यू का सातवां दिन. पतली गली में सांड की तरह घुसा है कर्फ्यू. फैयाज मियां अपने टूटे-कच्चे घर में और हमारा मुर्गा अपनी मुर्गी और चूजों के साथ अपने दड़बे में. गली में गश्त, रतजगों, दारू तथा बलात्कारों से थका-हारा राजा का सिपाही. गली में झांकने पर भी सख्त मुमानियत. तान देगा बंदूक और मार देगा गोली, सिपाही. सब अंदर बंद. सिपाहियों का डर और दंगाइयों का डर—बराबर, एक-सा. जामिन (जमानतदार) न होय चोर का और सींग न पकड़े ढोर का—सिपाही से बचकर चलना ही बेहतर. फिर अफवाहों का समंदर, भय की डूबती-उतराती किश्तियां और जलते मकानों के धुएं से काला हुआ आसमान कि जिसे देख फैयाज मियां का शायर हृदय भी रोता है कि हाय, ऐसी भी कभी होनी थीं सावन की घटाएं. किसका घर जल रहा है यह. धुआं कहां से उठ रहा है? मुर्गे ने दड़बे के जालीदार दरवाजे से दीख रहे काले आसमान के टुकड़े को देखते हुए सोचा, 'जब किसी का दड़बा जलाया जा रहा है तो सारा शहर चुप क्यों है?' मुर्गे ने विचारा. मुर्गा नादान है कि उसे शहर की रवायत का पता ही नहीं कि जिसका मरे सो रोवे, गंगा दास मढ़ी में सोवे. मुर्गा बेचारा ऐसे ही विचारों में मग्न. कलगी तक नहीं हिल रही. कि तभी मुर्गी उवाची, "नाथ, गली के घूरे से कुछ दाने चुन लाओ. सभी भूखे हैं. सात दिनों से चोंच खाली है."

मुर्गा पहले से ही चिंतित और परेशान था. मुर्गी की इस फरमाइश पर क्रोधित हो, पंखों में हवा भरकर तेज आवाज में कुकड़ू-कूं करते हुए वह बोला, "बाहर हमारे बाप खड़े हैं, सिपाही जी. फिर पूरा मोहल्ला ही भूखा है. बाहर निकले कि किसी ने भी पकड़कर पकाया और खाया."

"पर हमने किसी का क्या बिगाड़ा है मुर्गराज...?"

"काहे के मुर्गराज! तू समझ नादान कि लड़े कोई भी, पर मरते मुर्गे ही हैं. कहते भी हैं कि लड़ें सांड, बारी को भुरकन."

"किंतु सरताज..."

"सरताज की बच्ची, तुझे पता है कि फैयाज मियां के बच्चे कब से भूखे हैं? वे भी तो दड़बे में छुपे हैं क्योंकि बाहर निकले तो टपका देगा कोई या मार देगा सिपाही. और फिर दड़बे का दरवाजा भी बंद है."

"मारेगा कैसे सिपाही? ऊपर तक जाकर शिकायत कर सकते हैं फैयाज मियां..."

"तू चुप कर चोट्टी. समझती-बूझती है नहीं. सिपाही के लुटे और फागुन के कुटे को कोई नहीं पूछता. और इस राज में तो तरे से ऊपर तक सब मुर्गाखोर. इस घर में सब नकटई-नकटा. कहां करोगे शिकायत."

उपरोक्त मुर्गा-मुर्गी संवादों के पश्चात वह चुप्पी आई, जो पति-पत्नी के बीच ऐसी रस-सिक्त बातचीत के बाद आती है. दोनों चुपचाप निढाल पड़े रहे. चिड़चिड़ाहट, भूख, भय, आशंका और अनिश्चितता के बीच बैठे मुर्गा-मुर्गी. फैयाज मियां ने दड़बा बंद कर रखा है कि मुर्गा-मुर्गी कहीं बाहर न निकल जाएं. कि कोई पकाकर ही खा जाए क्योंकि भूख भी पूरे मोहल्ले में कर्फ्यू के साथ ही पसरी है. फिर मुर्गी रोज अंडे दे रही है, जो गरीबी और दंगे में बहुत बड़ा सहारा है. फैयाज मियां प्रतिदिन मुर्गी के अंडे बटोर ले जाते, तो चूल्हे पर बर्तन चढ़ाने के लिए कुछ बहाना हो जाता है.

मुर्गी रूठकर अंडे पर जा बैठी, अंडे को सेती हुई.

अंडे पर यूं बैठी मुर्गी किसी और समय शायद मुर्गे में मुर्गी के प्रति प्यार तथा शृंगार रस की छटपटाहट पैदा करती, परंतु इस तनाव के माहौल में वह खीझ उठा और चोंच को पूरा खोलकर चिल्लाया, "अंडे पर क्यों बैठी है तू?"

"से रही हूं अंडा."

"जानती है कि अभी फैयाज मियां आते ही होंगे अंडा ले जाने के लिए? और तब भी से रही है अंडा? कौन तेरे अंडों को चूजा बनने देगा यहां?"

"हम मुर्गों की नियति क्या यही है स्वामी?"

"ये जलेबी के पेंच-सी उलझी बातें हैं मुर्गी, तू नहीं समझेगी."

"पर जब तक अंडा मेरे पास है, मैं से रही हूं. काया धरने का धरम तो निभाना ही है स्वामी."

"मुर्गे के बच्चे हरदम मारे जाते हैं. दंगा हो, न हो. पगली, इस संसार में मुर्गे पैदा ही इसलिए होते हैं कि मारे जा सकें."

"मेरे सरताज, सच है कि मृत्यु तो सबको आती है. काल के हाथ कमान, बूढ़ा बचे न जवान."

"फिलासफी न झाड़ मुर्गी...तू उतर अंडे से..."

"भरतार, पेट के तो पथरा (पत्थर) भी प्यारे होते हैं, फिर ये

तो मेरे जने अंडे..."

"भरतार की बच्ची, उतरती है कि झाड़ूं दो पंजे? अंडे की चिंता हो रही है और चूजों का ख्याल नहीं."

मुर्गी रुआंसी-सी उतर आई अंडे पर से.

मुर्गा-मुर्गी चुप बैठे रहे. दड़बे में चुप्पी थी और बाहर भी. बाहर आसमान और काला हो रहा था. पुलिस की गश्ती गाड़ियों का शोर और दूर कहीं गोलियों की आवाज़ से भर-भर जाता था यह सन्नाटा. एकाएक ठीक गली में ही जोरदार आवाज़ के साथ गोली चली. धमाके की आवाज से दड़बे की जालीदार आवाज़ें कांप उठीं. मुर्गा-मुर्गी चौंक पड़े. मुर्गी घबराकर दौड़ी और लग गई नाथ के मखमली धड़कते सीने से. चूजे घबराकर निकल आए दड़बों के अंधेरे कोनों में से और दौड़ आए मुर्गा-मुर्गी के पास. सिमट आए चूजे उनके अभय पंखों के साये में. मुर्गी ने प्यार से चोंच गड़ाकर चूजों को आश्वस्त किया कि डरें नहीं. कि तभी मुर्गी चौंकी. गिनती में दो चूजे कम थे.

कहां गए दो चूजे? मुर्गी ने डरते-डरते सारा दड़बा देख डाला, पर वे वहां नहीं थे. मुर्गी ने रोते-कलपते हुए मुर्गे से कहा, "स्वामी, दो चूजे नहीं दिख रहे हैं?"

मुर्गे का पित्त उबल गया, "साली कुतिया, बैठी रह तू अंडे पर और मत देख बच्चों को. न जाने कहां निकल गए दोनों."

इसके बाद वही हुआ, जो मुर्गा दांपत्य में आए दिन की रुटीन बात थी अर्थात् तू-तू-मैं-मैं, धौल-धप्पा, मार-पिटाई, गाली-गलौज आदि. फिर इन प्रारंभिक औपचारिकताओं से निवृत्त होकर दोनों ने एक बार फिर पूरा दड़बा छान मारा. दोनों चूजे कहीं नहीं थे. कहां गए वे? हे ईश्वर, दुनिया में सभी अंडों और चूजों को जन्म देने वाले, बता दे कि वे कहां गए? ईश्वर ने बता भी दिया.

ईश्वर की प्रेरणा से मुर्गा-मुर्गी ने दड़बे के दरवाजे के पास जाकर देखा, तो पाया कि दरवाजा आधा खुला था और दड़बे के बाहर का आसमान और भी काला नजर आ रहा था.

अनध्यायः फिर भी यहां तक कहानी को घसीट लाने के बाद मैं तरद्दुद में हूं कि यह कहानी किस प्रकार मुर्गे की मौत की दिशा में बढ़े कि प्रगतिशील तथा जनवादी भी नाराज न हों और रूपवादियों को भी मजा आ जाए.

कहानी फिलहाल बंद करने के सिवाय कोई चारा भी न था.

भागः दो

उपोद्घातः कहानी बंद थी. बाहर दंगा और कर्फ्यू था. कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करूं, कि तभी एक काम मिला करने को. एक परिचित थानेदार साहब घर पर आए. जीप पर सवार. कर्फ्यू में थानेदार ईश्वर सम होता है. थानेदार मित्र ने कहा, "कुछ सब्जी, आटा, चावल चाहिए हो तो जीप में चलो." मैं साथ हो लिया. लौटते समय मैंने मित्र से इसरार किया कि फैयाज मियां के घर तक जीप ले चलें तो खाने-पीने का कुछ सामान उनको भी दे दिया जाए. थानेदार बेहद नाराज तथा दुखी हुए कि इन साले मुसल्टों को क्यों खाना पहुंचा रहे हो, परंतु पुरानी मित्रता थी हमारी. वे हमारी मूर्खता को सह कर मान गए.

फैयाज मियां की गली में जीप से उतरे तो मैंने देखा कि वहां तैनात सिपाही के ठीक पीछे दो चूजे कचरे के ढेर पर दाना चुग रहे थे और एक मुर्गा फैयाज मियां के आंगन की दीवार पर बैठा हमें ताक रहा था. यह दृश्य मेरे लेखक-मन में बिंध गया. घर आकर जब मैंने सोचा तो पाया कि कहानी वहां से आगे बढ़

सकती है, जहां दो चूजों के गुम हो जाने के बाद हम मुर्गा-मुर्गी को दड़बे में फक्क चेहरे तथा धक्क हृदय के साथ छोड़ आए थे.

मुर्गाबीतीः जब पता चला कि चूजे गायब हैं, तो मुर्गी तो गिरी पछाड़ खाकर और लोटने लगी दड़बे की कचरे भरी सीली जमीन पर. रोने लगी कि हाय-हाय कैसा तो भाग्य है मुआ मेरा कि हे हतभागी, हर बात उलटी बैठ रही है. काजल लगाते आंख फूट रही है. मुर्गे ने पहले तो पुचकारा, फिर फटकारा लेकिन फिर भी मुर्गी ने लोटना बंद नहीं किया तो पंजे से लतियाते हुए मारा कि चुप्प हो जा दारी, नहीं तो करूंगा घसीटकर दड़बे के बाहर. मुर्गी चुप हो गई, पर चोंच के अंदर सिसकती रही. मुर्गे ने तब कहा कि मैं बाहर गली में चूजों को तलाश कर आता हूं और तू इन बाकी के चूजों को संभाल क्योंकि आजकल के ये चूजे दगे सांड हैं—कब क्या कर डालें, पता नहीं. शेष चूजे बाप को गुस्सा देख सहमकर अंधेरे कोनों में जा घुसे.

मुर्गी बोली, "नाथ, संभलकर जाना. बाहर कर्फ्यू है."

मुर्गा कलगी पर कफन बांधे अंदाज में बोला, "कर्फ्यू में गली में निकलना सांप के फन से देह खुजाना है मुर्गी..."

मुर्गी रुआंसी हो आई. कहीं मुर्गे को आखिरी दफा तो नहीं देख रही? छोटा-सा दिल उछलकर चोंच तक आ गया.

"मत जाओ भरतार..." कहने को हुई मुर्गी, परंतु मासूम चूजों

की ममता ने उसे रोक दिया. क्या करे मुर्गी? पथरा (पत्थर) तरे हाथ दबा है उसका. मुर्गे को जाना ही होगा.

मुर्गा दबे पंजों तथा सतर्क पंखों पर सवार हो, दड़बे से निकलकर फैयाज मियां के छोटे-से टुटहे अहाते में आया. उसने पीछे मुड़कर देखा. दड़बे के अधखुले दरवाजे पर डबडबाई आंखें लिये मुर्गी उसे सहमी नजरों से देख रही थी. मुर्गे का मन कमजोर हो उठा.

कहां जा रहे हो मुर्गे? मुर्गा क्या बताए कि वह कहां जा रहा है और कौन उसको सहारा देने वाला है इस रणभूमि में? कांखबल सो निजबल और कांख में बल रत्ती भर नहीं. भूख से जलता पेट और भय से भरा संसार. और ऐसे संसार को फतह करने चला है अपना कमजोर मुर्गा कि चलते तो बने ना और रजाई का फेंटा बांधे. लड़खड़ाते पंजे, फड़फड़ाने से भी घबराते पंख. चौंक-चौंक उठती कलगी. गोल आंखों में मानो वर्षों से गायब नींद कि इस निष्ठुर शहर में अब कोई मुर्गा कभी चैन की नींद नहीं सो पाएगा क्योंकि यहां तो 'के सोवे राजा का पूत, के सोवे जोगी अवधूत.' बस...इन्हीं ख्यालों को चुगता मुर्गा चला.

मुर्गा डरते-डरते उस कच्ची दीवार की ओर बढ़ा, जो छोटे-से आंगन को कर्फ्यू वाली गली से अलग करती थी. मुर्गे ने स्वयं को हिम्मत बंधाई. उसे यह दीवार पार करनी है. यूं भी उसका कोई क्या बिगाड़ लेगा? नंगा झोली ले लो उसकी. निकलना क्या है. न टका न धेला, नंगे लोगों का रेलमपेला. यही तो है मुर्गा जीवन, जिसमें खोने को कुछ नहीं है और पाने को भी कुछ नहीं. पर जान तो मुर्गे की भी है. फिर जमाना यूं ही मुर्गों का दुश्मन है और ऊपर से दंगा-कर्फ्यू. एक तो नागिन ऊपर से पंख लगाए. पर हिम्मत कर मुर्गे और कूद जा दीवार क्योंकि डरपोक के सब दुश्मन और सब कोऊ चार लातें मारते हैं. गिर मत. उठ. कूद जा.

सिपाही के आगे तो आदमी तक का मूत निकलता है, वह तो है अदना-सा मुर्गा. जाना तो होगा मुर्गे को और जो आ गया बचकर तो जान लो कि समुंदर में सूखा पड़ने-सी अनहोनी बात होगी.

और मुर्गा फड़फड़ाकर, जमाने भर की हिम्मत पंखों में बटोरकर उड़ा और दीवार पर जा बैठा.

मुर्गे ने डरते-डरते गली में झांका.

गली सुनसान तथा उजाड़ पड़ी थी. चिरई चौंके, न बाज फटके. निचाट, बियाबान गली. देखी तोरी कालपी, बावनपुरा उजाड़. सारे दरवाजे चौकस बंद, खिड़कियां डरी हुई, और सांकलें आशंकित. बस...चंद कुत्ते यहां-वहां भागते. भूतों का डेरा गली में. सूनो घर, भड़यन (चोरों) का राज. मौत घूम रही है गलियों में. गुंडों के हवाले है शहर. गुंडों का राज है शहर पर. यह सब देखते-सोचते मुर्गे ने जो गली के छोर पर देखा तो कलगी से पूंछ तक डरावनी थरथराहट ने उसे धर दबोचा. मोर बप्पा रे. उसने देखा उजाड़ गली में खड़े दो सिपाहियों को. पेट निकाले. बेल्ट खिसकाए. हाथों में बंदूक तथा कमर में डंडा धारण किए. मिठ्या (हलवाई) की बिलइया से अफरे तथा मुटाये. और मुर्गे ने देखा, इन सिपाहियों के पीछे पड़े घूरे के ढेर पर दाना चुगते, नन्हे, भूख से व्याकुल अपने मासूम चूजों को कि जिन्हें सिपाही और कर्फ्यू की सिफत की खबर ही नहीं. मुर्गे की गोल आंखों में मोटे-मोटे आंसू तैरने लगे कि अब कैसे इन नादानों को सुरक्षित निकालूं वहां से? सिपाही के आगे तो आदमी तक का मूत निकलता है, वह तो है अदना-सा मुर्गा. करे क्या? जहां बहू को पीसनो वहीं ससुर की खाट. जाना तो होगा मुर्गे को और जो आ गया बचकर तो जान लो कि समुंदर में सूखा पड़ने-सी अनहोनी बात होगी. गली में उतरे कि मरे. पर मुर्गा करे क्या? अकेला मुर्गा, न संगी, न साथी. अकेले सुभान रोवे के कब्र खोदे.

मुर्गा घबराने लगा और उतावलापन उसे दबोचने लगा. पर मुर्गामन बोला कि धीरज रख मुर्गे. उकताने कि काम नसाने, धीरज धरो सयाने. मुर्गा धीरज धर, मौके की प्रतीक्षा में बैठा रहा.

मौका मिला भी. कुछ देर बाद गली में एक जीप आकर फैयाज मियां के घर के आगे रुकी. कूदा उसमें से एक मोटा-ताजा थानेदार और एक डरा-डरा आदमी. सिपाहियों ने दौड़कर बजाया सलाम थानेदार को और खड़े हो गए पुलिसिया अदब से.

मौका मिला मुर्गे को. यही तो था वह पल. मूरख की सब रैन, चतुर की एक घड़ी. चतुर मुर्गा दीवार से बेआवाज गली में कूदा और चूजों की तरफ डगमग-डगमग दौड़ते हुए तीन बार गिरा.

भाग: तीन

उपोद्घात: फैयाज मियां से मिलकर जब घर लौटा, तो मन बड़ा उदास था. इतना डरा और पराजित चेहरा मैंने नहीं देखा था, पहले. शायद फैयाज मियां को मेरे चेहरे में भी यही कुछ दिखा हो. मन बहुत निराश और उदास था. यही बात जब मैंने अपने थानेदार मित्र को, जीप से अपने घर पर सुरक्षित उतरते हुए बताई, तो उसने ठहाका मारकर तथा मेरी पीठ पर एक प्यार भरी धौल जमाते हुए कहा, "यार तुम स्साले लेखकों की इसी बात से हमें ईर्ष्या होती है कि बेवजह उदास हो लेते हो." फिर थानेदार मित्र ने यह भी कहा कि "यार हमको भी यूं ही उदास रहने की कोई तरकीब बताओ न, क्योंकि जब से पुलिस ज्वाइन करी है, उदास होने का मौका ही नहीं मिलता. हम तो एक बार में दस मिनट से ज्यादा उदास नहीं रह पाते क्योंकि इसी बीच कोई-न-कोई रिश्वत देने चला आता है, या कोई मुजरिम जूता खाने के लिए सामने खड़ा हो जाता है, या कोई बलात्कार करना पड़ जाता है. क्या करिएगा? अब उदास रहकर तो बलात्कार किया नहीं जा सकता."

पर मैं तो भारतीय पुलिस में नहीं था. मैं बहुत उदास तथा आशंकित रहा शाम तक. फैयाज मियां की डरी-डरी बातें, उनका भय मेरे जेहन पर भी तारी था.

उनकी गली में दोपहर बाद भयंकर कत्लेआम मचा. उनका टूटा घर जला दिया गया.

क्या हुआ होगा फैयाज मियां के साथ? कहां होगा उनका परिवार? क्या सभी मारे गए होंगे? कहां से पता करूं? कहीं भी जाकर पता लगाना संभव नहीं था. बाहर कर्फ्यू, दंगे, पुलिस, आग, गोलियां, बम, शैतान, भगवान,

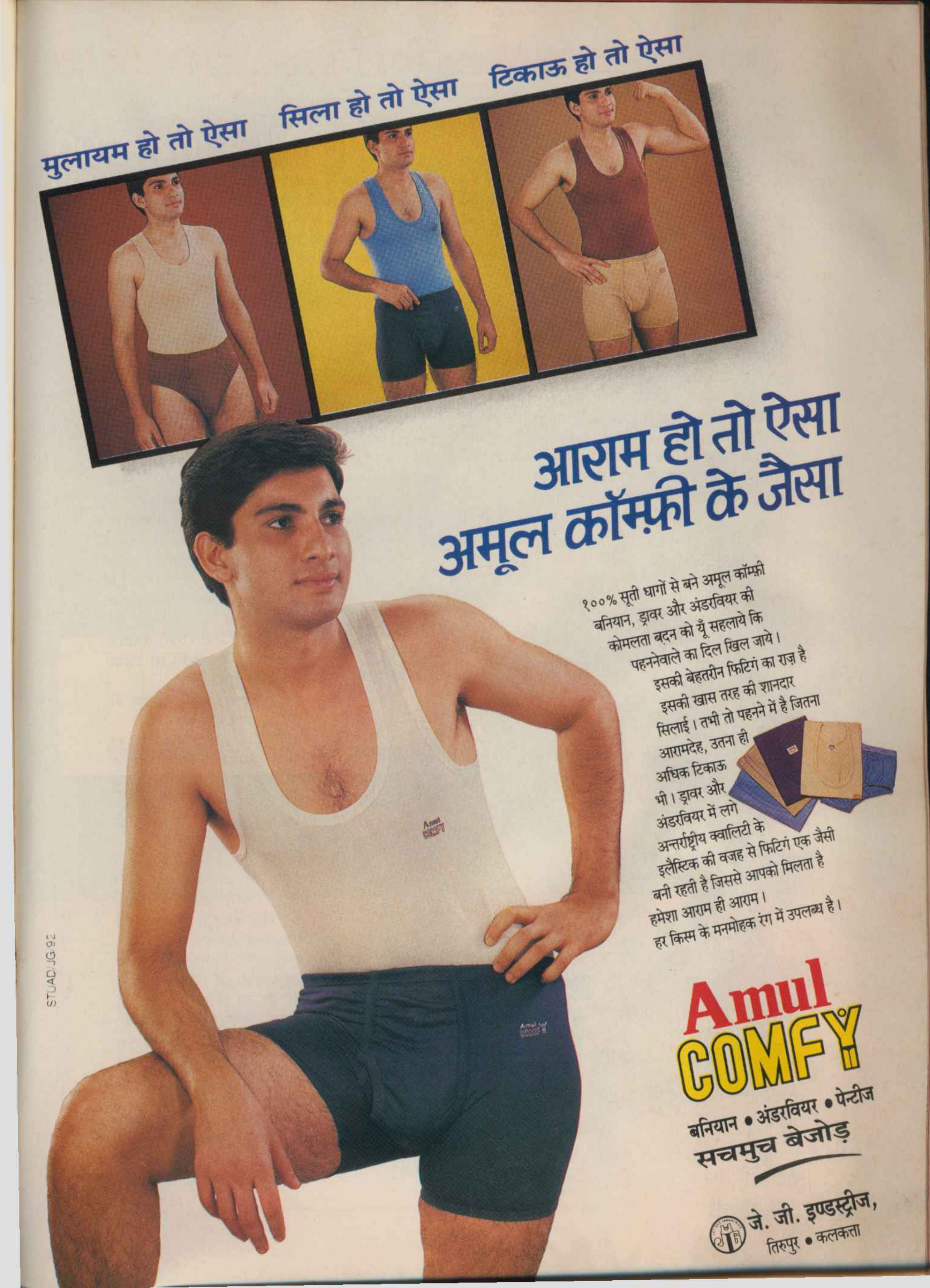
मुलायम हो तो ऐसा
सिला हो तो ऐसा
टिकाऊ हो तो ऐसा
आराम हो तो ऐसा
अमूल कॉम्फ़ी के जैसा
१००% सूती धागों से बने अमूल कॉम्फ़ी
बनियान, ड्रावर और अंडरवियर की
कोमलता बदन को यूँ सहलाये कि
पहननेवाले का दिल खिल जाये।
इसकी बेहतरीन फिटिंग का राज़ है
इसकी खास तरह की शानदार
सिलाई। तभी तो पहनने में है जितना
आरामदेह, उतना ही
अधिक टिकाऊ
भी। ड्रावर और
अंडरवियर में लगे
अन्तर्राष्ट्रीय क्वालिटी के
इलैस्टिक की वजह से फिटिंग एक जैसी
बनी रहती है जिससे आपको मिलता है
हमेशा आराम ही आराम।
हर किस्म के मनमोहक रंग में उपलब्ध है।
Amul
COMFY
बनियान • अंडरवियर • पेन्टीज
सचमुच बेजोड़
जे. जी. इण्डस्ट्रीज,
तिरुपुर • कलकत्ता
STUAD/JG/92

अल्लाह, ईश्वर, हिंदू-मुसलमान, शरीफ, गुंडों आदि ने सारे शहर के सारे रास्ते छेंक रखे थे. कैसे पता चलता कि फैयाज मियां और उनके परिवार का क्या हुआ? कैसे पता करता मैं?

और मुर्गा? उसका क्या हुआ होगा? उसका और उसके दड़बे में बंद परिवार का?

मुर्गाबीती: फाग भी खेली और अंग भी बचाया. मुर्गा निकला भानुमती का बट्टा—चालाक और चपल. चूजों को चपतियाता मुर्गा सुरक्षित कूद आया अहाते में वापस. वैसे सही बात तो यह है कि मुर्गे की किस्मत ने उसका साथ दिया था, वरना मुर्गा क्या, मुर्गे की बिसात क्या? किसकी छाती में बाल थे कि चूजों को यूं सुरक्षित निकाल लाता. चला अहाते में अपने दड़बे की दिशा में मुर्गा मर्दाने गर्व से, लतियाते हुए चूजों को कि एकाएक एक परिचित गुटर-गूं सुनकर वह थम गया.

मुंडेर पर बैठा उसका परम मित्र कबूतर उसे पुकार रहा था. कबूतर, हिंदुओं के मोहल्ले के नेता तिवारी जी की अटारी में रहने वाला. इससे कुछ दंगों का अहवाल पता चलेगा, यह सोचकर मुर्गा रुका और चूजों को दड़बे की ओर भेजते हुए उसने कहा, "तुम लोग दड़बे में चलो. वहीं आकर तुम्हें जुतियाता हूं." चूजे जान बचाकर भागे.

अब चला फुरसतिये कबूतर और मुर्गे के बीच अफवाहों, ठोस सूचनाओं और विचारों के आदान-प्रदान का लंबा सिलसिला.

"उधर तेरे हिंदुओं के मोहल्ले में क्या तैयारियां हैं?"

"वे मुसलमानों के हमले की आशंका में हैं. क्या तैयारियां हैं तेरे मुसलमानों के मोहल्ले में?"

"फैयाज मियां के पास आकर तो गली वाले बताते हैं कि तेरे मोहल्ले के लोग कभी भी हमला कर सकते हैं."

"वे क्या हमला करेंगे. वे तो खुद बेहद डरे हुए हैं."

"इधर भी लोग बहुत डरे हुए हैं."

"जब सभी डरे हुए हैं तो दंगा कौन कर रहा है?"

"डरपोकों के शहर में कुछ भी हो सकता है."

"सही कहा मित्र, शहर चंदेरी, मो मनवाता, तिरिया राज खसम पनिहार..."

बतियाते हुए पता ही नही चला कि हो गई कितनी अबेर. यूं भी कर्फ्यू में समय का क्या ज्ञान और क्या मतलब? बातचीत को रोककर मुर्गा और कबूतर एकाएक चौंके. शोरगुल, मारो-मारो, धार्मिक नारों और भगदड़ की आवाज सुनाई दे रही थी, जो तेजी से पास आ रही थी. दोनों एक दूसरे को सकते में देखते रह गए. हे ईश्वर! दंगाई गली तक आ गए. चंद पलों में ही फैयाज मियां की गली नारों, तलवारें लेकर भागते लोगों की पदचापों, मशालों से उठते धुएं और बंदूकों से निकले धमाकों से उफन गई. तिवारी जी का कबूतर घबराकर उड़ा और आसमान में जलते मकानों से उठते काले धुएं में गुम हो गया. मुर्गा भी भागा दड़बे की दिशा में. कमजोर तथा बलहीन हो रहे थरथराते पंखों में सारा बल लगाकर फड़फड़ाता हुआ मुर्गा जा पहुंचा दड़बे के पास.

दड़बा देखकर उसका जी रह गया धक्क.

इसी बीच दड़बे का दरवाजा फैयाज मियां कर गए थे बंद. मुर्गा रह गया बाहर. दड़बे में भयभीत बंद उसका परिवार. मुर्गी, कांपती, मुरझाई मुर्गी और एकाएक बड़े तथा समझदार से दीखने वाले छोटे-छोटे चूजे कि मानो साक्षात यमराज को देख चुके हों. मुर्गा पागलों की भांति, दीवानावार दड़बे के फाटक से टकरा-टकराकर उसे खोलने का प्रयास करने लगा. परंतु मुर्गा निर्बल और उसके नक्षत्र और भी निर्बल. दरवाजा बंद था, बंद ही रहा.

तभी मुर्गी दड़बे में से चीखी, "नाथ पिछवाड़े देखो अपनी पूंछ की तरफ..." नाथ ने घबराकर जो पीछे देखा तो उनकी नाथगीरी हवा हो गई.

पीछे देखा कि फैयाज मियां का घर धू-धू करके जल रहा था. लपटें आसमान में. गली में दंगाइयों की चीत्कारती भीड़.

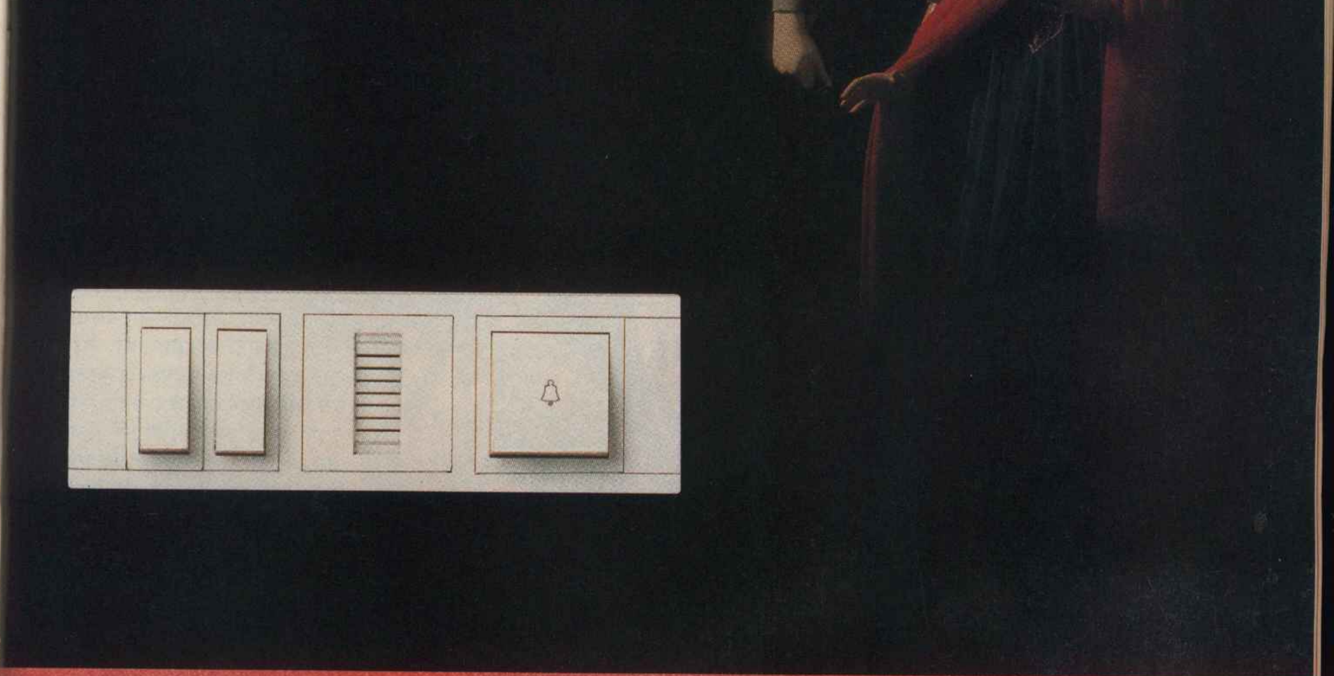

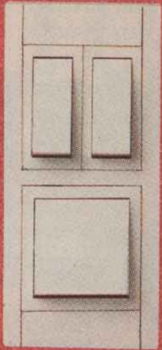

For those of you, who thinks beyond their Dresses. Here's a way to extend your Designer sense, on to your Walls. Introducing, Roma **Sleek** Designer Range, the new name in Modular Switches which is here to create the **Sleek** look. Offering a wide range of electrical objects d'art. All crafted to set the highest Standards in Function and Safety. Coming to you from the house of Anchor, the trusted & tested name in Electricals. Roma Modular Switches, Show off your Designer Sense on the walls, that you call home.

ANCHOR®

Now Introducing Sleek-n-Slim 65 mm width switches

INTRODUCING

Sleek

Designer Range from

ROMA®

Super Age

पागल खुशी और लपटों की आंच से दमकते दंगाइयों के चेहरे. दोनों सिपाही वहीं खड़े मजा लेते, उत्साहित करते हुए दंगाइयों को. फैयाज मियां के परिवार ने बाहर आने की कोशिश की, तो भीड़ ने लपटों में फेंक दिया. सबसे छोटे बच्चे को तो स्वयं सिपाही ने आग में उछाल दिया. हाय! यह क्या हो रहा था. कहां है राजा का न्याय और कहां हैं शांति के लिए लंबी पदयात्राएं करने वाले लोग? क्या हो गया है आदमी को?

आग तेजी से अहाते की दिशा में बढ़ रही थी. और आंच मुर्गे तक, कि तभी दड़बे ने आग पकड़ ली.

''बचकर भाग जाओ स्वामी, कहा-सुना सब माफ कर देना...'' मुर्गी के ये अंतिम शब्द थे जो मुर्गे ने सुने. फिर तो भारी जबर लपटें उठीं और भागते मुर्गे ने जब अंतिम बार दड़बे की दिशा में देखा तो वहां केवल गाढ़ा, काला धुआं ही दिखा, जो उसके दड़बे को डुबोकर अब उसके जीवन पर छा गया था.

भाग: चार

उपोद्घातः क्या हुआ होगा इसके बाद? पाठकों के मन में सहज ही यह प्रश्न उठेगा. दंगे के बाद क्या होता है? मेरा प्रश्न होगा पाठकों से. उत्तर है कि दंगों के बाद होना क्या, और होता है क्या? जांच बैठनी थी, सो बैठी. आयोग स्थापित हुआ. डाकबंगला अलॉट हुआ दंगा जांच आयोग को. बोर्ड लगा. विज्ञापन निकले कि जिसे भी दंगे के विषय में जो बताना है तो यहां आकर हलफनामा देकर बताए. बताया. गुंडों ने, दंगाइयों ने, पुलिस ने, अफसरों ने, छुटभैयों ने, उनके बड़े सरपरस्तों ने हलफनामे दिए या दिलवाए. यानी कि जैसी जांच होती है, वैसी यहां भी चल निकली. नई बात यह निकली कि जांच आयोग का अध्यक्ष न्यायाधीश मेरा पुराना मित्र निकला. मैं उससे मिलने के लिए आता-जाता रहता डाकबंगले पर. डाकबंगले पर तैनात सिपाही, बेयरे, रसोइए तथा चपरासी मुझे पहचानने लगे थे. आते-जाते सलाम करते. अच्छा लगता. एक दिन मित्र न्यायाधीश ने कहा कि आज रात का खाना तुम यहीं डाकबंगले पर खाओ. मैंने 'हां' कर दी, जैसा कि मुफ्त के खाने को लेकर अपना हमेशा का सिद्धांत रहा है.

मित्र ने पूछा, ''मुर्गा तो खाते हो न?''

बस!

मित्र के इसी प्रश्न में मुर्गे की आगे की कहानी तो थी ही, उस कहानी का स्वाभाविक अंत भी मुझे प्राप्त हो गया था.

मुर्गाबीतीः मुर्गा, जिसका परिवार दंगे में मारा गया.

मुर्गा, जिसका दड़बा दंगे में जला दिया गया.

आदमी होता, तो मांगता मुआवजा, प्लॉट, नौकरी. भटकता मुआवजे के कागजात लिए थाने और कचहरी के बीच. पर भाग्य उसका कि वह था मुर्गा. दीनहीन. गरीब. न भटन में, न भाजी में. हा हा तक विनती और सौ तलक गिनती भी न जानने वाला मुर्गा. उसे नहीं चाहिए था मुआवजा. वह चाहता था न्याय. वह चाहता था उन दंगाइयों को सजा, जिन्होंने उसका परिवार उजाड़ दिया. फूंक दिया उसका संसार. खोजने निकला है न्याय अपना मुर्गा उस देश में, जहां कि न्यायपालिका की हो गई है रीत कि खीसे में जैसा पैसा, न्याय मिलेगा वैसा. हाथ में नहीं है कौडी, गोरी नाक छिदाए. मुर्गे को पता ही नहीं कि न्याय यहां ऊंचे लोगों का घरेलू खेल हो गया है. उसे पता ही नहीं कि ऊंट का चुम्मा ऊंट ही लेता है. और एकाध बदमाश को सजा दिला भी दी तो इस दंगातंत्र का क्या बिगड़ना है? कनखजूरे का एक गोड़ टूट भी जाए तो लूला नहीं हो जाता. दंगों और सांप्रदायिकता का यह जहरीला कीड़ा तो फिर हजार पैर वाला. राजनीति से लेकर धर्मांधता और अपराध जगत तक के अनगिनत टेढ़े-मेढ़े पैरों पर तेज भागते इस कीड़े को मारने निकला है हमारा दृढ़निश्चयी परंतु नादान मुर्गा.

मुर्गा डाकबंगले में आते-जाते लोगों को ध्यान से देखता. उसे पता चला था कि दंगाई ही जांच आयोग को भटकाने-फुसलाने के लिए वहां आते-जाते रहते हैं. वह बंगले में घूम-घूमकर लोगों को गोल-गोल आंखों से देखता. किसने जलाया था मेरा दड़बा? वह पहचान न पाता. उसे सारे चेहरे एक जैसे लगते. उसे सभी दंगाई लगते. फिर भी इसी भ्रम में जी रहा था वह कि एक दिन किसी को पहचान ही लेगा. भरम ही मारे, भरम जियावे. वरना अब मुर्गे के जीवन में रखा ही क्या था. न बचा नामलेवा, न पानी देवा. जिंदगी यूं भी होती ही क्या है एक अदने मुर्गे की—नदी किनारे रूकड़ा, जब तब होय विनाश. पर मुर्गे के पास जीने का कारण था. वह दंगाइयों को पहचानकर सजा दिलवाएगा.

ऐसे ही दिन बीतते रहे आयोग और मुर्गे के.

कि एक दिन मुर्गे ने उस सिपाही को डाकबंगले पर देखा, जिसने फैयाज मियां के बच्चे को उठाकर जलते घर में फेंका था और जिसने दंगाइयों से आग लगवाई थी. मुर्गे ने फटी आंखों से देखा कि न्यायाधीश उसी सिपाही के साथ चले आ रहे हैं. सिपाही ने अदब से सलाम किया और न्यायाधीश की कार का दरवाजा खोला. न्यायाधीश ने मुस्कराकर सिपाही के सलाम का जवाब दिया और अंदर चले गए. सिपाही बाहर स्टूल पर बैठकर डाकबंगले के रसोइये से हा-हा ही-ही करने लगा.

मुर्गा स्तब्ध रह गया. कैसी अनहोनी रे. देखो री आंखें, सुनो रे कान, न्याय घूम रहा है अपराधी की छत्रछाया में. क्या मिलेगा न्याय यहां. कौन सजा देगा इस सिपाही को, जो खुद सारे तंत्र का

महत्वपूर्ण पुर्जा है? नहीं, उसे सजा नहीं दिलवाई जा सकती. न्यायपालिका कुछ नहीं बिगाड़ सकती दंगाई का. तब?...तब मुर्गे को स्वयं ही सजा देनी होगी.

वह इसे अपने ही पंजों और पैनी चोंच से सजा देगा.

मुर्गा भागा सिपाही की दिशा में. मुर्गा टूट पड़ा स्टूल पर पसरे सिपाही पर. मचा दी रार मुर्गे ने, आल्हा-ऊदल की भांति. बिना कटार ही लहूलुहान कर मारा सिपाही को. पैने पंजे और तीखी चोंच के अस्त्र-शस्त्रों से लैस मुर्गे ने बरामदे में, कुछ पलों के लिए ही सही, पर घमासान मचा दी. सिपाही भागा यहां से वहां. पर मुर्गे की तेग रुकी नहीं. मुर्गा लड़ा बड़ी जबर लड़ाई. बरामदा साक्षी था एक धर्मयुद्ध का. जारी रहा युद्ध देर तक.

रह गया स्तब्ध मुर्गा. कैसी अनहोनी रे. देखो री आंखें, सुनो रे कान. न्याय घूम रहा है अपराधी की छत्रछाया में. क्या मिलेगा न्याय यहां. कौन सजा देगा इस सिपाही को, जो खुद सारे तंत्र का महत्वपूर्ण पुर्जा है?

अनध्याय: कहानी पूरी कर रहा था कि डाकबंगले से बुलावा आ पहुंचा. न्यायाधीश मित्र ने कार भेज दी थी. कहानी को यहीं बंद करके मैं जल्दी से तैयार होकर डाकबंगले पहुंच गया. हम लोग देर तक गप्पें मारते रहे. फैयाज मियां का जिक्र भी होना ही था. मित्र ने बताया कि उस केस में कुछ दम नहीं था क्योंकि एक भी गवाह सामने नहीं आया है. और बिना गवाह के न्याय का छकड़ा दो कदम भी नहीं घिसट पाता.

फिर बेयरे ने आकर खाना लगा दिया. चिकन से भरी स्वादिष्ट प्लेटें.

मैं खाना खाते हुए फैयाज मियां की सोचता रहा. मारे गए वे और गवाहों की प्रतीक्षा कर रहा है न्यायालय. मरते रहते हैं फैयाज मियां और मिलते नहीं हैं गवाह. फिर मैं अपनी अधूरी कहानी की सोचने लगा. क्या होना चाहिए मुर्गे का? क्या हुआ होगा? सिपाही जीता या मुर्गा—यह प्रश्न बेमानी था. जीतना तो सिपाही को ही था. मुर्गे की मौत आती है तो सिपाही की तरफ भागता है.

"क्या सोच रहे हो यार?" मित्र ने खाते हुए पूछा.

मैंने बताया, "मुर्गे और दंगे को मिलाकर एक कहानी बनाई थी. उसी का सोच रहा था." मित्र ने हंसकर कहा, "तुम उस मुर्गे की छोड़ो. यह बताओ, यह मुर्गा कैसा बना है?"

मेरे सामने एकाएक जैसे मेरी कहानी का अंत आ गया. कि अंततः लड़ते-लड़ते मुर्गा हांफते सिपाही और अचंभित रसोइए द्वारा दबोच लिया गया. पंजों से उलटा लटकाकर फड़फड़ाते मुर्गे को रसोइया मसालेदार न्याय के लिए रसोई में ले जा रहा था.

कहानी का यह अंत सोचते-सोचते मैंने मित्र की ओर देखा.

"यार चिकन कैसा बना है?" मित्र ने पुनः पूछा.

"कहीं यह उसी मुर्गे की टांग तो नहीं"—मेरे मन में यह बात उमड़ी. मैं तेजी से भागकर बाथरूम की ओर गया.

"क्या हुआ?" मित्र ने चिंता से पीछे आते हुए पूछा. मैं बाथरूम में सिर पकड़कर बैठ गया और बड़ी-सी उल्टी करने लगा. ■

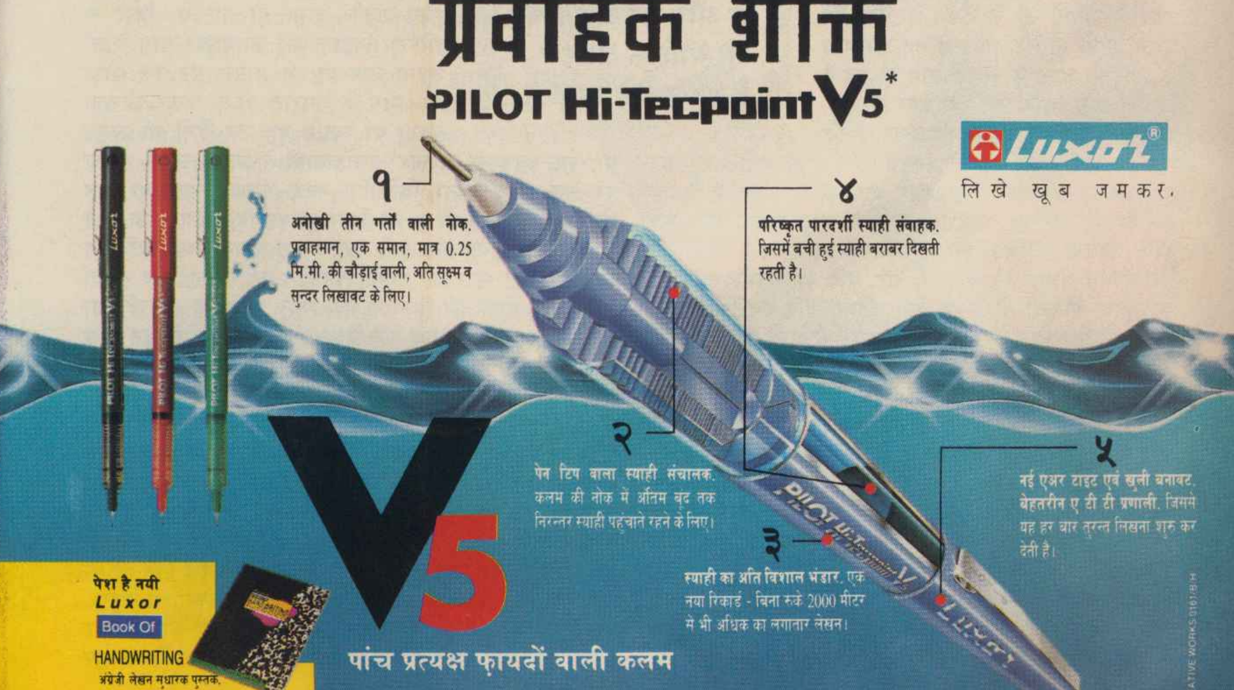

लक्सर पेन कं., मार्केटिंग ऑफिस: 5631, पहली मंजिल, कुतुब रोड, नई दिल्ली-110 055. टेलीफोन: 7514885, 7525156. फैक्स: 011-7532746. केबल: हाईटेक पेन. **हैड ऑफिस:** 229, ओखला इंडस्ट्रियल इस्टेट, नई दिल्ली-110 020. फोन: 6833372, 630793, 6835607, 6849617. फैक्स: 011-6847602, 6844469. लक्सर जी एम बी एच **जर्मनी:** फैक्स: 0209-91397-99

* पाइलट कारपोरेशन जापान का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क

व्यंग्य रचना

पीले फूल कनेर के

• रवींद्रनाथ त्यागी • चित्र: जयंतो

कनेर के फूलों ने साहित्य में विशेष स्थान पाया है. ग्राम गीतों से लेकर कथाओं में भी. लेकिन व्यंग्यकार इन फूलों को किस नजर से देखता यह भी तो देखिए!

मुझे कविता से बहुत प्रेम है. मुझसे पहले भी अनेक महान व्यक्ति ऐसे हो चुके हैं जो कविता से प्रेम करते थे. उमर खैय्याम गणितज्ञ था और जब भी वह हासिल लगाना भूल जाता तब दिल बहलाने को रुबाई लिखने बैठ जाता था. नादिरशाह तो स्वयं कवि था और कत्लेआम वगैरह से जो समय बचता था, उसमें कविता ही लिखा करता था. मुगल वंश के अंतिम तीन सम्राट कवि ही नहीं थे वरन् कविता के सच्चे मर्मज्ञ व कवियों के आश्रयदाता भी थे, इंशा, ज़ौक, ग़ालिब उन्हीं के समय में हुए. बंगला के महाकवि चंडिदास बड़े कलफ़दार पद रचते थे जिसका प्रमुख कारण यह था कि उनकी प्रेयसी धोबिन थी. कालिदास एक वारांगना पर आसक्त थे और वाल्मीकि जी कविता करने से पहले डकैती डाला करते थे. राजा भर्तृहरि इस कारण कवि हुए क्योंकि उन्होंने पत्नी..प्राप्त की थी और पं. सुमित्रा नंदन पंत इस कारण कवि बने क्योंकि वे एक अदद पत्नी नहीं प्राप्त कर सके थे.

> **आचार्य द्विवेदी को अशोक के फूल पसंद थे जबकि मुझे कनेर के फूल पसंद हैं. द्विवेदी जी के और मेरे लेखन में जो मौलिक अंतर है वह इसीसे स्पष्ट है.**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को अशोक के फूल पसंद थे जबकि मुझे कनेर के फूल पसंद हैं. द्विवेदी जी के लेखन में और मेरे लेखन में जो मौलिक अंतर है वह इस बात से स्पष्ट हो जाता है. सच्ची बात तो यह है कि मैंने कभी अशोक का फूल देखा ही नहीं. अशोक के साथ यह बहुत बड़ी इल्लत है कि जब तक कोई रूपवती युवती अशोक पर पदाघात नहीं करती तब तक उस पर फूल नहीं खिलते. अब आप पहले तो अशोक के एक वृक्ष का पता लगाइए, फिर एक रूपवती युवती ढूंढ़िए और फिर उससे विनती कीजिए कि वह आपके साथ चले और उस पूर्वनिश्चित अशोक पर पदाघात करे. यदि वह नवयौवना बाला कविहृदया निकली तो जरूर वैसा करेगी. यदि वह किसी और किस्म की निकली तो अशोक के स्थान पर शोक ही स्थापित होगा क्योंकि वह हस्तिनी अब अशोक पर नहीं वरन् स्वयं आप पर पदाघात करेगी. शुभास्ते संतु पंथानः. अशोक का फूल इसी कारण कहीं नहीं दीखता जबकि कनेर का फूल देखने के लिए आपको मात्र कनेर के वृक्ष तक ही चलना पड़ेगा और वह भी अकेले ही. व्यंग्यकार ने सदा से वही देखा जो वह सबको दिखा सकता था. यह उसी का कमाल रहा कि अशोक का फूल भी कनेर के फूल के स्तर पर आ गया. बकुल का फूल अशोक से भी ज्यादा सुंदर होता आया क्योंकि इसे खिलाने के लिए किसी रूपवती कन्या की टांग दरकार नहीं होती. सुंदर ललनाएं यदि बकुल के वृक्ष को चूम ही लें, तो उस पर फूल खिल आते हैं. चुंबन देती जाइए और बकुल के फूल बटोरती जाइए. दो या तीन फूल, सजा देंगे दुकूल.

कनेर का फूल गुलाब से अलग होता है. गुलाब का फूल गुलाब के पेड़ पर खिलता है जबकि कनेर खिलाने के लिए आपको कनेर का वृक्ष लगाना पड़ता है. गुलाब का फूल तरह-तरह के रंगों में खिलता है जबकि कनेर का फूल मात्र पीले रंग का ही होता है. कृष्ण जी का मुकुट पीले रंग का था और गोपियां भी अपनी साड़ियों पर पीली गोट ही लगाती थीं. सरसों अब भी पीले रंग में ही खिलती है. कुछ खरबूजे भी पीले रंग के होते हैं पर खरबूजों पर आप भरोसा नहीं कर सकते. जहां कहीं मंत्री बनने का आश्वासन मिला, वहीं दल बदल लिया. रूपवती युवतियां भी प्रायः पीले या गोरे रंग में ही मिलती हैं. रूप और रंगों में भी मिलेगा पर उसके लिए आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी. इसमें लजाने की कोई बात नहीं है. कालिदास को स्वयं सांवली युवतियां पसंद थीं. मेघदूत का "तन्वी, श्यामा, शिखरदशना" वाला मंदाक्रांता श्लोक इसका प्रमाण है. राधा जी स्वयम् पूर्णिमा की भांति गोरी होते हुए भी कृष्ण जी से प्रेम करती थीं. कृष्ण जी 'श्याम' होते हुए भी इतने 'सुंदर' थे कि न जाने कितने लोग उनके 'दास' हो गए थे. हिंदी के शीर्षस्थ विद्वान् बाबू श्यामसुंदर दास ने तो अपना नाम ही इस आधार पर रख छोड़ा था. नाम के उपरांत बी.ए. जरूर लिखना पड़ता था क्योंकि यह उन दिनों का दस्तूर था. एक नवयुवक 'अकबर' इलाहाबादी से मिलने उनके मकान पर गए और अपना विज़िटिंग कार्ड भीतर भिजवाया. इन होनहार सज्जन ने बी.ए. जो किया था वह विज़िटिंग कार्ड छपने के बाद किया था और इसी कारण यह महान तथ्य विज़िटिंग कार्ड पर नहीं छपा था. इन्होंने फाउंटेन पेन से कार्ड पर बी.ए. जोड़ा और भीतर की दिशा में भेज दिया. महाकवि ने कार्ड देखा और बाहर आने को मना कर दिया और कार्ड के पीछे शेर लिख दियाः "हज़रत अभी घर से न निकले लिखा कि बी.ए. पास हैं, आप बी.ए. पास हैं तो हम भी बीवी पास हैं." उस नवयुवक को बी.ए. होने के कारण महाकवि से बिना मिले ही लौटना पड़ा.

कनेर का फूल ऐतिहासिक महत्व की वस्तु है. इसे किन्नर नाम के देवता इस देश में लाए थे और 'कनेर' शब्द 'किन्नर' शब्द का ही विकसित रूप है. कुमारी संयोगिता ने जो माला सम्राट पृथ्वीराज के गले में डाली थी उसमें संयोग से कनेर के फूल ही गुथे थे. मुझे पता नहीं है कि कनेर के फूल में सुगंध होती है या नहीं. इस बार जब मेरे बागीचे में लगा कनेर फूलेगा तो देखूंगा. भारत भूषण अग्रवाल के बनाए 'कागज के फूल' को छोड़कर कागज के बाकी फूलों में कभी सुगंध नहीं होती. "हकीकत छुप

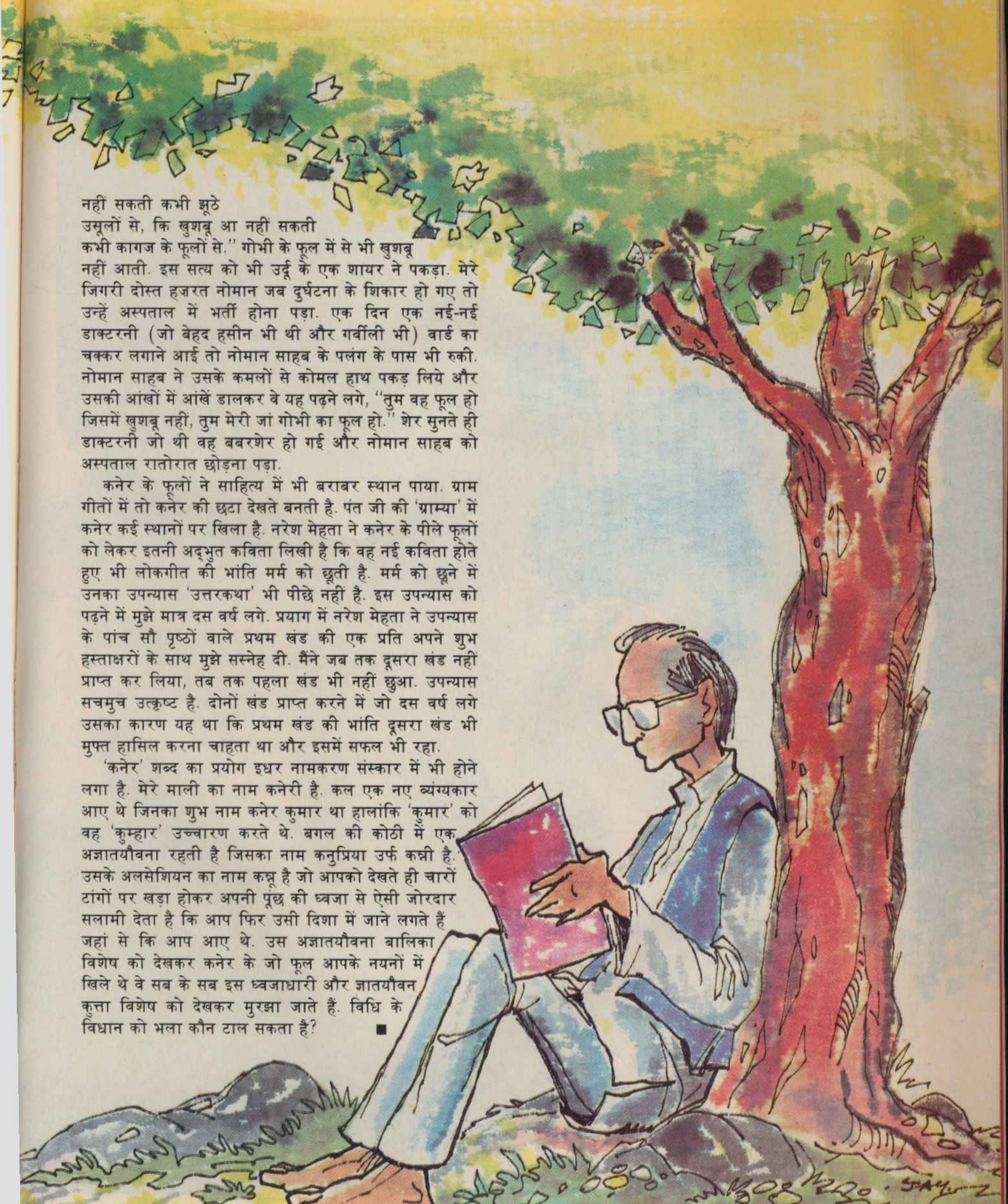

नहीं सकती कभी झूठे
उसूलों से, कि खुशबू आ नहीं सकती
कभी कागज के फूलों से." गोभी के फूल में से भी खुशबू
नहीं आती. इस सत्य को भी उर्दू के एक शायर ने पकड़ा. मेरे जिगरी दोस्त हज़रत नोमान जब दुर्घटना के शिकार हो गए तो उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा. एक दिन एक नई-नई डाक्टरनी (जो बेहद हसीन भी थी और गर्वीली भी) वार्ड का चक्कर लगाने आई तो नोमान साहब के पलंग के पास भी रुकी. नोमान साहब ने उसके कमलों से कोमल हाथ पकड़ लिये और उसकी आंखों में आंखें डालकर वे यह पढ़ने लगे, "तुम वह फूल हो जिसमें खुशबू नहीं, तुम मेरी जां गोभी का फूल हो." शेर सुनते ही डाक्टरनी जो थी वह बबरशेर हो गई और नोमान साहब को अस्पताल रातोरात छोड़ना पड़ा.

कनेर के फूलों ने साहित्य में भी बराबर स्थान पाया. ग्राम गीतों में तो कनेर की छटा देखते बनती है. पंत जी की 'ग्राम्या' में कनेर कई स्थानों पर खिला है. नरेश मेहता ने कनेर के पीले फूलों को लेकर इतनी अद्भुत कविता लिखी है कि वह नई कविता होते हुए भी लोकगीत की भांति मर्म को छूती है. मर्म को छूने में उनका उपन्यास 'उत्तरकथा' भी पीछे नहीं है. इस उपन्यास को पढ़ने में मुझे मात्र दस वर्ष लगे. प्रयाग में नरेश मेहता ने उपन्यास के पांच सौ पृष्ठों वाले प्रथम खंड की एक प्रति अपने शुभ हस्ताक्षरों के साथ मुझे सस्नेह दी. मैंने जब तक दूसरा खंड नहीं प्राप्त कर लिया, तब तक पहला खंड भी नहीं छुआ. उपन्यास सचमुच उत्कृष्ट है. दोनों खंड प्राप्त करने में जो दस वर्ष लगे उसका कारण यह था कि प्रथम खंड की भांति दूसरा खंड भी मुफ्त हासिल करना चाहता था और इसमें सफल भी रहा.

'कनेर' शब्द का प्रयोग इधर नामकरण संस्कार में भी होने लगा है. मेरे माली का नाम कनेरी है. कल एक नए व्यंग्यकार आए थे जिनका शुभ नाम कनेर कुमार था हालांकि 'कुमार' को वह 'कुम्हार' उच्चारण करते थे. बगल की कोठी में एक अज्ञातयौवना रहती है जिसका नाम कनुप्रिया उर्फ कन्नी है. उसके अलसेशियन का नाम कन्नू है जो आपको देखते ही चारों टांगों पर खड़ा होकर अपनी पूंछ की ध्वजा से ऐसी जोरदार सलामी देता है कि आप फिर उसी दिशा में जाने लगते हैं जहां से कि आप आए थे. उस अज्ञातयौवना बालिका विशेष को देखकर कनेर के जो फूल आपके नयनों में खिले थे वे सब के सब इस ध्वजाधारी और ज्ञातयौवन कुत्ता विशेष को देखकर मुरझा जाते हैं. विधि के विधान को भला कौन टाल सकता है? ■

V.I.P.

मनोहारी रंग, रुप, छटा. मुस्काती सुबह, सुहानी शाम.
इसी सदाबहार फ़ैशन से हम ने चुराई है
नई वी.आइ.पी. लगेज लाइन ज़रकॉन.

अब जल्दी ही आप तक पहुँच रहा है ऐसा मनोरम और अपूर्व क़िस्म का नया लगेज जिसे देखते आप का मन नहीं भरेगा. जी हाँ, यही है ज़रकॉन. वी.आइ.पी.की नई लगेज लाइन. मोहक, सुंदर रंगों और आकर्षक डिज़ाइनों में तथा कॉंट्रास्ट रंगों वाले फ़्रेमों की यह लगेज माला सचमुच उत्कृष्टता की पहचान बन जाएगी. इस के अनोखे और बेजोड़ आकार के मददगार हैं - मज़बूत

मनोहारी रुप की पहचान.

कॉंट्रास्ट रंगों वाले फ़्रेम - सज्जा का नया अहसास.

उत्कष्ट कॅांबीनेशन लॉकिंग प्रणाली.

* बेजोड़ कोट-हैंगर सुविधा - केवल वी.आइ.पी.की देन. ज़रकॉन 26" तथा 29" साइज़ों में उपलब्ध.

डबल फ़्रेम, कॉंबीनेशन सेंटर लॉक्स तथा शीट मेटल के साइड लॉक्स. अंदरुनी हिस्से में भी आप पाएंगे नए और उत्तम किस्म की सजावट और अनोखी कोट-हैंगर सुविधा.* इन सब की बदौलत ज़रकॉन है कारीगरी और नए फ़ैशन का सरताज. वी.आइ.पी. का नया ज़रकॉन. जिस के इंतज़ार में बैठे हैं नए फ़ैशन के शौकीन, हमेशा सफ़र करने वाले और दूसरे जानकार. जी हाँ, बेसब्री से.

THE NEW V.I.P.
Zircon

नई शान. निराले डिज़ाइन की पहचान.

HTA-1086-94 R

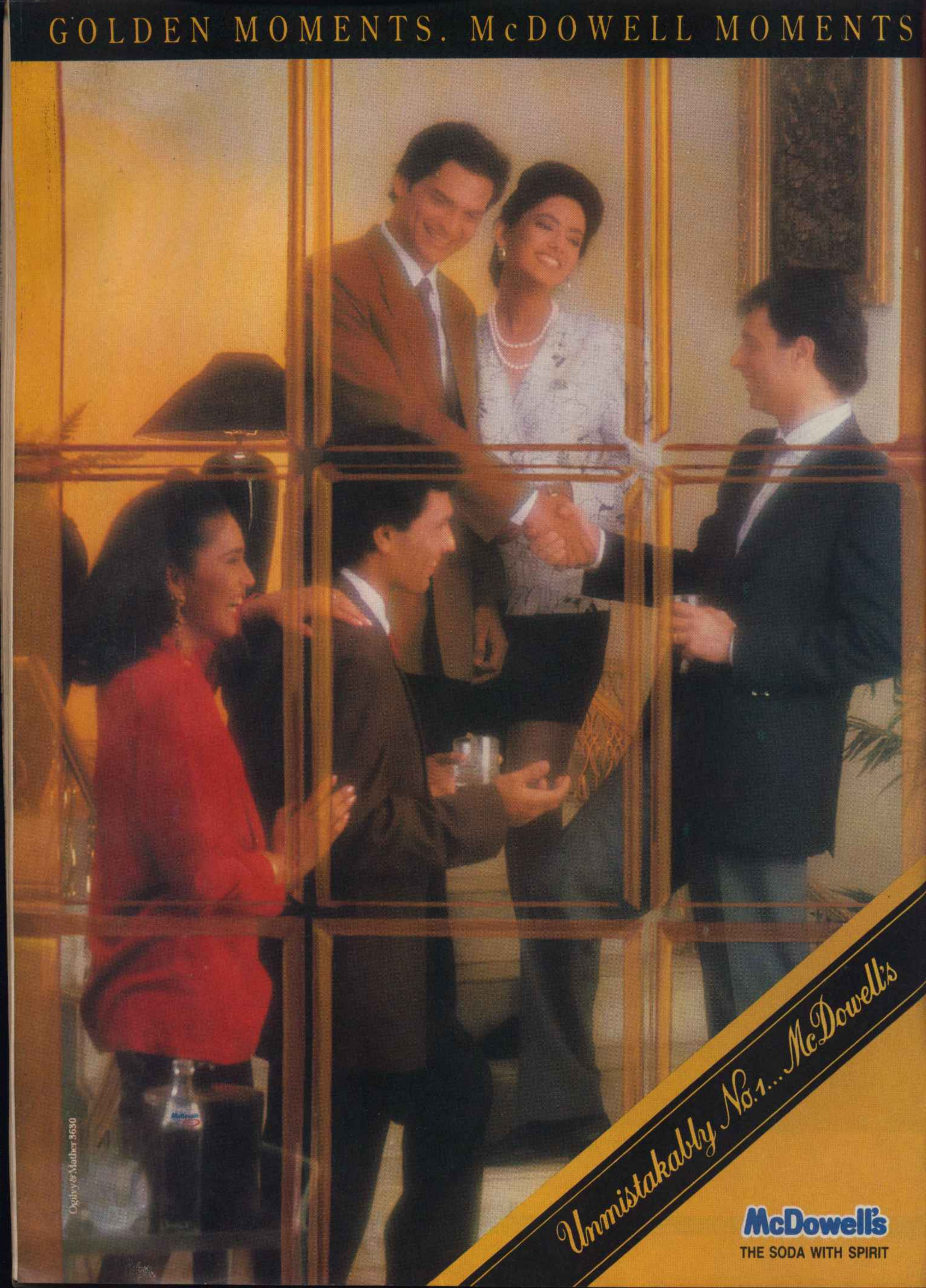
GOLDEN MOMENTS. McDOWELL MOMENTS
Unmistakably No.1... McDowell's
McDowell's
THE SODA WITH SPIRIT
Ogilvy & Mather 3630

कविताएं

नागार्जुन • केदारनाथ सिंह • कैफ़ी आज़मी • जगदीश गुप्त
रामदरश मिश्र • अशोक वाजपेयी • अजित कुमार
प्रयाग शुक्ल • जितेंद्र कुमार • लीलाधर जगूड़ी
राजेश जोशी • कुमार अंबुज...

एक क्रांतिकारी

• नागार्जुन • रेखाचित्रः हरिपाल त्यागी

टीवी पर एक 'क्रांतिकारी' को
देखकर
एक बंधु बोले
क्रांति के इस मसीहा का
अंत कैसा होगा?
प्राण जब छोड़ देंगे काया
सुलग उठेगा क्या अपने आप
यह ढांचा इनका
क्या होगा इनकी हड्डियों का?
निकलेंगे इनसे
अणु आयुध विप्लव के
निर्मित होंगे स्तूप-महास्तूप
अस्थि-धातुओं पर
विशाल-महाविशाल वे स्तूप
आगामी शताब्दियों में
कहलाएंगे क्रांति-चैत्य
नगर-नगर, ग्राम-ग्राम
पहाड़ों की चोटियां, छोटे-बड़े टीले
नदियों के संगम
समुद्र के कूल-कछार
चमका करेंगे दूर-दूर तक
विप्लव के स्तूपों से
टांगे जाएंगे उन महास्तूपों के गिर्द
एक-एक क्विंटल के पीतल वाले घंटे
जला करेगा मनों कपूर.

रक्त-क्रांतिव्रती प्रखर-प्रबुद्ध-तरुण
प्रच्छन्न भाव से करेंगे वहां चाकरी
अभिनव मठाधीश
दुहरी-तिहरी मुस्कानों वाले
शासकीय प्रशासक
देंगे सुरक्षा
उन प्रच्छन्न विप्लवी तरुणों को
संवर्धन रहेगा जारी
लोहित-धर्मी शिशुओं का
उत्तप्त वर्ग बोध से लैस
कुलीन बाल खिल्य
बड़े होते जाएंगे
बनते जाएंगे दिनानुदिन
प्रखर पक्षधर 'सर्वहारा' के
सीख लेंगे अनायास
कमाऊ सहचरियों के 'पालतू' होना
महसूस करेंगे वे अपने को
'मुक्त-महामुक्त.'

चाहे जिसको गालियां देंगे
चाहे जिसको उछालेंगे
अकेले में—
आदमकद आईने के सामने
काम निकाल लेने की
अपनी चतुराई पर
आप ही आप मुस्कराएंगे
अंगूठा दिखलाएंगे अपने आपको
क्षणभर बाद ही ठहाके लगाएंगे
जमा लेंगे मोटा सिगार केरलीय.

निकल आएगी बाहर अकबकाकर
प्रेयसी—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया...
या कि पंचमी, सप्तमी या कि नवमी
अपने प्रसाधन-कक्ष से!
रिपीट करेगी हल्की चीख को
अपने उस अनमोल रणन-कूणन को
वो आहिस्ते-आहिस्ते बार-बार
करेगी रिपीट...

फिर वो भोला-भाला
प्रतिभा-पुत्र, अल्ट्रा लेफ्ट
एंग्री यंगमैन
फ्रेंचकट दाढ़ी वाला
फिल्मी लहजे में अपने कंधों को
झटकाएगा
झटकाता रहेगा थोड़ी देर तक
और फिर
चुपचाप मुसकियां फेंकना शुरू करेगा
और फिर
भौहों-गालों-होठों में
भर लेगा सिकुड़न की खाइयां
और फिर
बड़े बाप की वो अल्ट्रा माडर्न बेटी
सिहरन के मारे

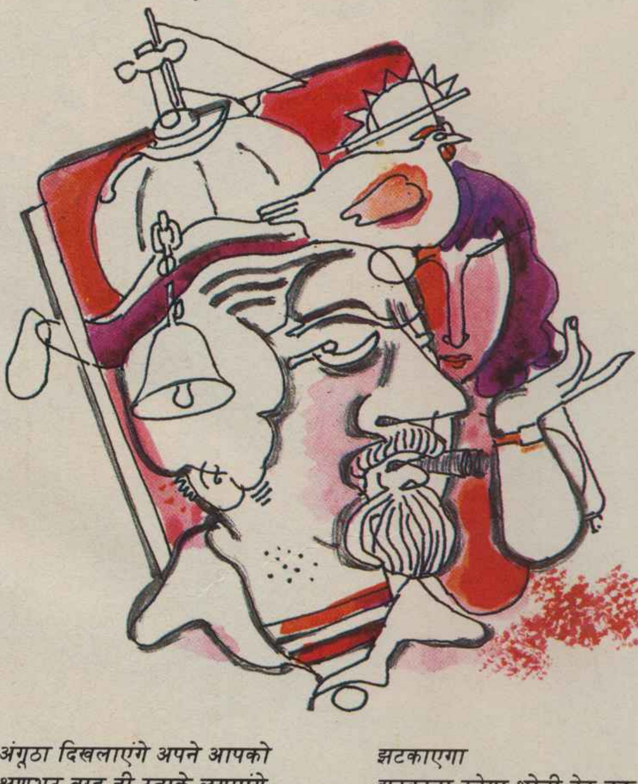

पसीना-पसीना हो उठेगी
और फिर...
फिर तो वे प्रतिभापुत्र
छोकरी को मीठी फटकार झाड़ देगा—
कैसी टिमिड हो तुम भी!
सच, तुमने तो ग्रामपुत्री को मात कर
दिया!
सच, तुम इतनी डरपोक हो?
अब तो मुझे दस दफे सोचना पड़ेगा
तुम्हारे बाप की इस आलीशान कोठी
की तरफ
अपने डग बढ़ाते!
छि: रोती है
जरा-सी बात पे...
मैं माफी चाहता हूं!
फिर कभी भी मैं ठहाके नहीं लगाऊंगा
तुम्हारे बाथरूम में.... ■

कुरुक्षेत्र में चाय

- **केदारनाथ सिंह**
- चित्र: सुबाचन यादव

कुरुक्षेत्र में मिला नहीं काम
मुझे मिली एक बस जो भागते-भागते
मुझसे छूट गयी थी.

दिल्ली से
एक बड़े बुजुर्ग कवि ने लिखा था
बेकार हो—आ जाओ
काम मिल सकता है कुरुक्षेत्र में.

कुरुक्षेत्र में काम?
पहले मैं चौंका
फिर खुद से कहा—चलो अपने राम
अपना थैला उठाओ
हो आते हैं कुरुक्षेत्र.

सो, मैं गया.

और अब इतने बरस बाद
जब भी सोचता हूं मैं क्या लेकर लौटा कुरुक्षेत्र से
तो मेरा मन पलटकर पूछता है—
तुम्हारे पुरखे क्या लेकर लौटे थे
तुम तो फिर भी भाग्यशाली हो
कि जब भी कहते हो 'कुरुक्षेत्र'
तो आंखों में घूम जाते हैं
कुछ सुंदर बलिष्ठ चेहरे
कुछ शहतीरें चिरती हुई
कुछ राख
कुछ ढाबे
कुछ बारिश की खुशबू
जो किसी ढाबे से छनकर आ रही थी
और वह सोंधा-सा चुक्कड़
चार आने की चाय का
जिसे पी चुकने के बाद
तुम वहीं
उसी तरह छोड़ आए थे कुरुक्षेत्र में.

दूसरा बनवास

- **कैफ़ी आज़मी**
- मंजीत बावा

राम बनवास से जब लौट के घर में आए
याद जंगल बहुत आया जो नगर में आए
रक्से दीवानगी आंगन में जो देखा होगा
6 दिसंबर को श्रीराम ने सोचा होगा
इतने दीवाने कहां से मेरे घर में आए
जगमगाते थे जहां राम के क़दमों के निशां
प्यार की कहकशां लेती थी अंगड़ाई जहां
मोड़ नफ़रत के उसी राहगुज़र में आए
धर्म क्या उनका, क्या जात है यह जानता कौन
घर न जलता तो उन्हें रात में पहचानता कौन
जलती मशल लिये जो लोग नज़र में आए
शाकाहारी है मेरे दोस्त तुम्हारा ख़ंजर
तुमने बाबर की तरफ़ फेंके थे सारे पत्थर
है मेरे सर की ख़ता जख़्म जो सर में आए
पांव सरजू में अभी राम ने धोए भी न थे
कि नज़र आए वहां ख़ून के गहरे धब्बे
पांव धोए बिना सरजू के किनारे से उठे
राम ये कहते हुए अपने दुआरे से उठे
राजधानी की फ़ज़ा आई नहीं रास मुझे
6 दिसंबर को मिला दूसरा बनवास मुझे.

■

"यह सब कुछ पाना चाहता था मैं. इसलिए यूनिट '64 खरीद लिए. बस!"

यूनिट '64 आपके लिए लाभ का ऐसा सुनहरा पैकेज प्रस्तुत कर रहा है जो बेमिसाल है. लाजवाब है. आप खुद ही देख लीजिए.

26%
डिवीडेंड
1992-93 के लिए

उच्च डिवीडेंड

पिछले 14 वर्षों से यूनिटों पर डिवीडेंड बढ़ते ही रहे हैं. 1992-93 का डिवीडेंड था 26% याने जुलाई '92 में जिन लोंगों ने निवेश किया उन्होंने 17.5% लाभ पाया.

पूंजी मूल्य वृद्धि

इसके अलावा, यूनिट '64 में आपके लिए पूंजीगत मूल्य वृद्धि भी हुई है, विशेषकर मध्यम से दीर्घकालीन निवेशों पर. उदाहरण के तौर पर, यदि आपने जुलाई '90 में यूनिटें ख़रीदी थीं तो आपकी यूनिटों में अब तक 10% से अधिक मूल्य वृद्धि हुई है.

सुरक्षा. साथ में नकदीकरण सुविधा

यूनिटें सदा सुरक्षित सिद्ध हुई हैं. और यदि कभी आपको अचानक ज़रूरत पड़ जाए तो इनके साथ आसानी से नकदी की सुविधा भी मिलती है.

विशेष लाभ

इनके अतिरिक्त, यूनिट '64 धारकों के लिए अनेक विशेष लाभ भी हैं.

1990 में यू जी एस 2000 के रूप में, एक उच्च-वृद्धि योजना में निवेश का विशिष्ट अवसर. इसमें किया गया निवेश 150% से अधिक बढ़ा है.

1991 में, पेश की गई यू जी एस 5000 योजना जो कि 100% से भी अधिक बढ़ी.

1992 में, आपके लिए था प्रिफ़रेन्शियल ऑफर जिसके अंतर्गत आप विशेष छूट पर अतिरिक्त यूनिटें खरीद सकते थे.

और इस वर्ष, आपके लिए एक आकर्षक 2:5 राइट्स ऑफर यूनिटधारक (30 जून '93 को) के लिए, वे जुलाई दाम से 20% कम दाम में ख़रीद सकते हैं... अर्थात् रु. 16 के स्थान पर केवल रु. 12.80.

यदि यह सब जानकर आपको लगे कि काश! आपने यूनिटों में निवेश किया होता (या आपने अपना निवेश बढ़ाया होता) तो जल्दी कीजिए, और आज ही यूनिटें ख़रीदिए.

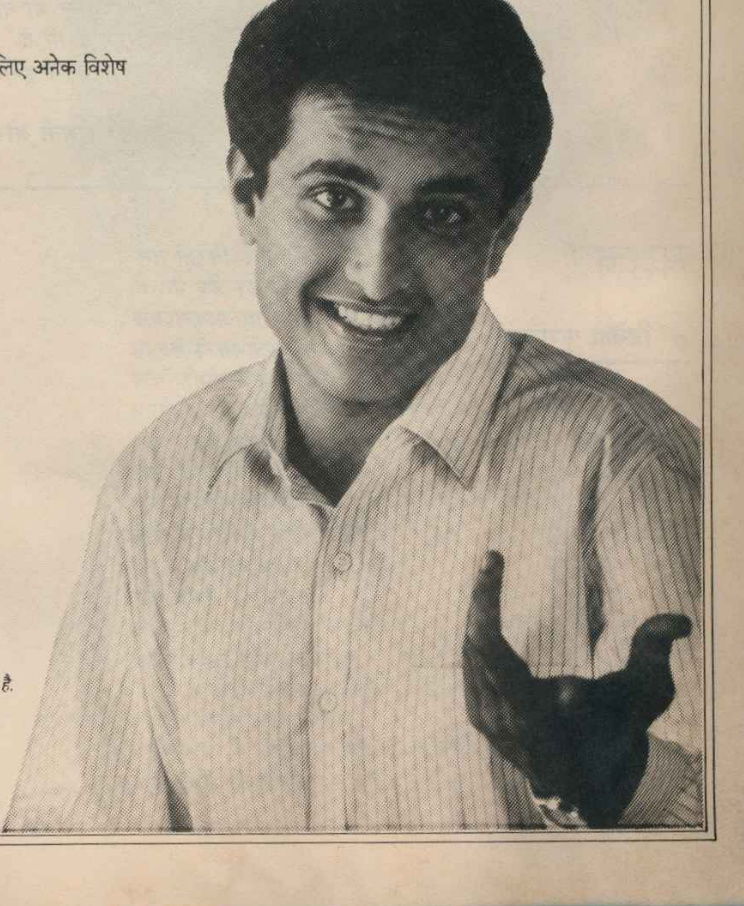

भारतीय यूनिट ट्रस्ट

आपके बेहतर कल के लिए

सभी सिक्योरिटी निवेश के साथ बाजार का जोखिम होता है. किसी भी निवेश से पहले अपने निवेश सलाहकार या एजेंट से सलाह अवश्य ले लें.

93506 HIN

पानी का सवाल

• जगदीश गुप्त
• रेखांकन: जगदीश गुप्त

सूखी हुई धरती
पर एक सवाल
नागफनी की मुद्रा में उगकर
देश के कर्णधारों से पूछता है
'पानी है पानी?'

आदत के अनुसार
एक सवाल का जवाब
दूसरे सवाल से देते हुए
वे कहते हैं— 'इसके मानी'?
ठीक ही तो है,
उन्हें क्या मालूम
'पानी' किसे कहते हैं!
वे तो हमेशा
बिना पानी के ही रहते हैं.
लोग कहते हैं
उन्हें एक चुल्लू भी नहीं देंगे.
और अगर दे भी दें,
तो क्या वे उसमें डूबेंगे?

आंखों की रोशनी खोकर
कुएं अंधे हो जाएंगे,
और सहम कर
टोटियां चुप!
नदियों की धार
जगह-जगह से टूट कर
तार की तरह चुभने लगेंगी.
लोक आसमान को देखेंगे,
और आसमान उन्हें.
देखते-देखते
आंखों का पानी भी मर जाएगा,
पीने को, आंसू तक नहीं बचेंगे.
तब कुर्सी पर बैठने-बिठाने के लिए
दलबदलू
लंबी छलांग लगाकर
कौन सी पार्टी रचेंगे!
आप उनसे कहेंगे 'पानी'?
वे पूछेंगे 'इसके मानी'?
पानी जैसी कोई चीज
उनके पास होती ही नहीं है.
पानी के बीज
उनकी मनुष्यता बोती ही नहीं है. ■

सहचर

• दिनेश कुशवाह

तुमने कहा था
सपने को सच
बना लेने की कुव्वत
जब अपने भीतर
मैं पैदा कर लूंगा
तुम स्वयं
मेरे पास चली आओगी
सुनयने!
बहुत तपा मैं.

तुमने कहा था
लय में लहराएगा
जब कोई विरही तन
शब्दों को जब मैं
पुकारूंगा आकुल मन
तुम मेरे स्वरों में
प्राण फूंक दोगी
सुकण्ठे!
बहुत गाया.

तुमने कहा था
कंटीले-दुर्गम रास्तों का
थका-हारा जन
आकाश के वैभव का
अनुरागी-मन
जब कभी उड़ना चाहे
तुम मेरे पैरों में
पर बांध दोगी
सुखदे!
बहुत चला मैं.

धरती पर चलना
भीड़ में गाना
आकाश में उड़ना
कितना कठिन है—
किसी बुलबुल से पूछो
या
पूछो आचार्य द्विवेदी के
तापस कुमार रैक्व से

कि जब
समाधि भी बाधित हो जाती है
और बकौल कवि
'मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते'
तब
कितनी उत्कट होती है
पथ में
एक सहचर की लालसा.

■

दो कविताएं

• अशोक वाजपेयी • चित्र: सुबाचन यादव

इच्छा के शहर में

हम अपनी इच्छा के शहर में आये हैं...

हम नहीं जानते उसके पूजाघर, संकरे गलियारे,
अंधेरे सुनसान मोड़,
सदियों से अथक बहती नदी के हरियाले तट
मेपल के हरे वृक्षों की क़तारों के नीचे
इक्का-दुक्का ख़ाली बेंचें
हाथों से उलझते-छूटते हाथ
प्रतीक्षा के कगार पर आंखों की चमक
सब हमारे लिए अनहोनी
हम इच्छा के शहर में
अनहोनी के घर आये हैं...

यहां सुख आया है
दुख की तरह,
दुख भी छाया है
सुख की तरह
हम इच्छा के शहर में
सुख में दुख जैसे आये हैं...

उसी का सुकुमार समय
भारी-कठिन समय
उसी से विभोर समय
कुछ खाली जगह न छोड़ता समय
हम इच्छा के शहर में
असमय आये हैं...

हम अपनी इच्छा के शहर में आये हैं.

हम अभी भी प्रतीक्षा कर रहे हैं

हम अभी भी प्रतीक्षा कर रहे हैं
बीत चुकी वर्षगांठ
सदी के ढलान पर
खिले गुलमोहर मुरझा चुके
हरी घास में वीरबहूटी की तरह चमकते शब्द
ओझल हो चुके
मौलश्री के सुकुमार पुष्पों जैसा
झर रहा है समय
उम्मीद के बसस्टॉप पर बिलकुल सुनसान है आधी रात का
हम अभी भी प्रतीक्षा कर रहे हैं...
क़त्ल करने के बाद जा चुके हैं हत्यारे
विलाप की अंधेरी परछी में बैठा
रौबदार थानेदार दर्ज़ कर रहा है
अपठनीय घसीटा लिखाई में प्राथमिकी
प्राचीन ग्रंथ में धीरे-धीरे पीली पड़ रही है
अपने रहस्य को खोले बिना जीवनलिपि
नक्षत्रों की अंतरिक्ष पर कहीं न पड़ सकने वाली छायाएं
लंबी हो चलीं
घात लगाकर बैठे देवता
भीड़ के रेले में गुम हो चुके
हम अभी भी प्रतीक्षा कर रहे हैं...

कविता में अपरिवर्तनीय शब्द की
जीने में सुधर विन्यास की
जल्दी में बनायी गयी सब्जी में ठीक नमक की
पड़ोसी में पूरे भरोसे की
इसी जन्म में कई जन्मांतरों के अवतरण की
हम अभी भी प्रतीक्षा कर रहे हैं... ■

चिड़िया और शीशा

• **रामदरश मिश्र** • चित्र: कविता नैयर

चिड़िया शीशे पर
लगातार चोंच मार रही है
शायद सोचती है कि
उसकी परछाईं शीशे में कैद हो गई है
चोंच मार-मारकर
उसे निकालना चाहती है

शायद वह अपनी परछाईं को
शीशे के महल में बंद
प्रतिद्वंद्वी समझ रही है
और उसे चोंच मार-मारकर
आहत करना चाहती है

शीशे के महल में बंद होने का सपना लिये
मैं रोज देखता हूं
शीशे से चिड़िया की यह लड़ाई

डर

सड़कें पीछा करती रहीं
चौराहे घेरते रहे
लाल बत्तियां घूरती रहीं जलती आंखों से
ऊंचे-ऊंचे पेचदार भवनों की खिड़कियां
फेंकती रहीं आग छिप-छिपकर
विश्वास के जाल में समेटकर
आत्मीय मुस्कानें डंसती रहीं
सभ्य आंखें
अंग-अंग में चुभ-चुभकर हंसती रहीं.

आखिर मैं भागता नहीं तो क्या करता?
अब इस भुतहे सुनसान में
कोई डर नहीं है
यहां भूत हैं, प्रेत हैं
जंगली जानवर हैं
लेकिन दूर-दूर तक
आदमी का कोई घर नहीं है. ■

आठ लफंगों और एक पागल औरत का गीत

• **राजेश जोशी** • चित्र: शमशाद

यहां वृक्ष काटे जा रहे हैं लगातार.

अकाल या महामारी में जिस तरह लोग-बाग छोड़कर
चले जाते हैं अपने घर-बार
छायाएं छोड़कर जा रही हैं अपनी जगह.

आठ लफंगों की टोली जो हर काम करती है साथ-साथ
सिर मुंडाकर घूम रही है सारे शहर में.
आठ लफंगों के साथ-साथ घूमती है एक पागल औरत
झील के किनारे खड़े होकर बुदबुदाती है
मछलियों के कान में
मछलियो!
सूखते जा रहे हैं तुम्हारे घर, तुम कहां जाओगी?
यह शेयर बाजार के दलालों का समय है.

धुंए को चाहिए आग का घर, मछलियों को पानी
किसी-न-किसी के आश्रय में ही रह सकती हैं छायाएं
नदियों का नहीं, समुद्रों का नहीं, पेड़-पहाड़ों का नहीं
बाजारों का है यह समय.

आठ लफंगों की टोली घूमती है
सड़कों और आसमानों की नींद हराम करती.
पागल औरत कभी-कभी लुका लेती है चांद को अपनी बगल में
आठ लफंगों की टोली गीत गाती घूमती है
आकाशगंगा की सड़क पर.
पागल औरत कभी-कभी अपने कपड़े सुखाने को डाल देती है
सूरज की पीठ पर.
आठ लफंगों की टोली अनाज बांटती है शहर में, उलट कर
रख देती है पानी के घड़े.
छका लेती है जब जी भरकर पागल औरत
चांद और सूरज को अपनी-अपनी जगह रख आती है.

किसी कोने में बैठ निकालती है वह अपनी पोटली
और लफंगों में बांटती है रोटियां.
न कोई सगा-संबंधी, न कोई काम-धंधा, न कोई घर-बार
बस एक निपट पागल औरत जो जब चाहे डपट दे
जब चाहे कर ले प्यार.

इन लफंगों को तो जन्मते ही छोड़ गए थे इनके मां-बाप
मैंने ही, कहती है पागल औरत
कांसे के कटोरे में तेल भर-भर मालिश की इनकी
लोई की, बेसन का उबटन लगाया.
चिड़िया के बच्चे होते तो उड़ जाते नापते आकाश
मछली के जाये होते तो निकल गए होते नदियों को ढूंढ़ते
खोजते खंगालते समुद्रों को.
पर ये निकम्मे तो बस मेरे ही साथ-साथ घूमते हैं दिन-रात
मेरी पीठ पर बढ़ता जाए कितने ही बच्चों का बोझ
ये नहीं कि दो-चार को अपने ही पास रख लें, ले जाएं
अपने साथ.
चिड़चिड़ाती बड़बड़ाती है पागल औरत
और हंसती रहती है लफंगों की टोली.

आठ लफंगों की टोली किसी भी रस्ता चलते को रोक लेती है
एक के बाद एक पूछती जाती है बेतुके सवाल
तुमने अपने बच्चों का होमवर्क पूरा कराया या नहीं
पतंग लाए, किसी मैदान के कंकर-पत्थर साफ किए
महीने का राशन ले आए कंट्रोल की दुकान से
मां की दवा लेने गए थे अस्पताल
पिता के लिए खरीदकर लाए नया स्वेटर
गली में झाड़ू दी, कहीं कोई पेड़ लगाया
मंदिर में दिया जलाने चले हो
घर का फ्यूज बल्ब अभी तक बदला या नहीं?
चिड़ियों के लिए दाना बिखेरा
ढोरों को पानी पिलाया या नहीं?

सवालों को सुन इतनी जोर से हंसती है पागल औरत
कि कभी-कभी उसका संतुलन बिगड़ जाता है
गुस्से में आ जाए तो अपने सिर को बहुत जोर से
हिलाती है पागल औरत
लफंगों की टोली तब एक गीत गाती है
और धीरे-धीरे पागल औरत शांत हो जाती है.

तब पागल औरत
अपनी नदियों के सिरहाने धीरे-धीरे बुदबुदाती है
हत्यारों को ले जाए यम, दलालों को ले जाए पुलिस
बहो मेरी नदियो बहो!
झरो पुरानी पत्तियो झरो मेरी गोद में
उगो नई कोंपलो उगो!
लौट आओ प्यारी छायाओ लौट आओ
मेरे इन लफंगों को बैठने की जगह दो, सोने की जगह दो.

जब गाती है पागल औरत
लफंगों की टोली उसे दोहराती है. ■

सफेद दाग निदान चिकित्सा

इलाज से पहले   इलाज के बाद

अपने भारतीय समाज में सफेद दाग को कोढ माना जाता है तथा उससे पीडित व्यक्ति के प्रति घृणा की दृष्टि से देखा जाता है । इस रोगसे पीडित व्यक्ति यदि कुमारी व महिला हो तो वह मानसिक यातना से घीरी रहती है और इसके साथ साथ समाजिक घृणा से मन, आत्मा को ज्यादा दु:ख पहुचता है । वास्तवमें इस रोग को मिटाने के लिए कोई विचार नहीं करता । और अंध विश्वास में कह देते है कि इसका कोई इलाज नहीं । परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि होमियोंपथी चिकित्सा द्वारा सफेद दाग का इलाज हो सकता है ।

सफेद दाग होने के कारण : मनुष्य की त्वचा उपर से सदा घिसती जाती है । और नयी त्वचा बनती रहती है । इस त्वचा मे रज कंकण होते है, उस को 'मेलेनीन पीगमेन्ट' कहा जाता है । वह त्वचा की उपरी सतह को रंग देता है । शरीर के किसी भागमें मेलेनो-साइट यदि मेलेनीन पीगमेन्ट बनाना बंद कर दे तो, वहाँ श्वेत दाग दिखाइ देता है जो 'विटोलीगो' कहा जाता है । चोट, घाव या जलन के परिणामस्वरूप श्वेत दाग हो उठता है । इस प्रकार की बाह्य परिस्थितिमे त्वचा का धवल भाग अन्य जगहों पर प्रसरता नही । तन बदन के आंतरिक भागों की अव्यवस्था के फल स्वरूप उत्पन्न श्वेत दागमे पीगमेन्ट रंग तत्व की कमी का कारण अभी तक खोजनेमे सफलता पायी गई नही है । फिर भी इस रोग के अस्सी (८०) प्रतिशत पीड़ितों के उदर में छोटे जंतु या पुरानी डीसेन्ट्री के चिन्ह अवश्य मालूम होते है, संभव है, यह सत्य कारण हो । यह रोग चेपी नही जिसका चेप लगे । इस बीमारी का उपद्रव भी नही कि चेप लगने पर यह फैल जाय, यह रोग का आरंभ अेक छोटे दाग से होता है और धीरे धीरे शरीर के अलग अलग भागों मे फैलता है ।

उपाय : इस रोगमें मेलेनोसाइट कों अपदस्थ करने की दवा दी जाती है, जिस से मेलेनीन नामक पीगमेन्ट बनता रहे और त्वचा का असली मूल रंग देखने को मिले । छः वर्ष से पचास साल की उम्रवाले व्यक्तियों पर उपचार सरल और योग्य है । ऐसे रोगीयों को दवा मुखसे दी जाती है । इस दवाके साथ सूर्य की धूप बहुत योगदान देती है । सवेरे की हलकी धूप नही, लेकिन दिन के ११ से २ की बीच प्राप्त तेज किरणे श्वेत दाग पर स्पर्श करे, इसी प्रकार ५ मिनट बैठे रहना चाहिये । इसी प्रकार तीन या चार सप्ताह के दौरान श्वेत दाग पर त्वचा के मूल रंग जैसा बहुत फुटकल पीगमेन्ट दिखाइ देता है । ६ माह मे सफेद दाग की त्वचा असली रंग पकड़ लेती है । बरसाती मौसम में, धूप के अभाव में कृत्रिम अल्ट्रावायोंलेट किरणों की गर्मी फायदामंद होती है । मुख के जरिये दवा लेने पर कोई विपरित असर नही बल्की असली सौंदर्य वापस आने लगता है, और निखर उठता है ।

पथ्य : कॉफी, चॉकलेट, सोडाखार युक्त पदार्थ जैसे पापड़, इडली, डोसा, खमंग, ढोकळा, आचार, मुरब्बे, टोमॅटो सॉस, खट्टे शरबत या बासी पदार्थ नहीं खाना चहिए । इस तरह प्लॅस्टिक चप्पल, रबर के स्लीपर, प्लास्टिक के दागिने, चिपकानेवाली टिकलीयाँ, शरीरपर कसे हुए कपड़े नही पहनना चाहिए, इलॅस्टीक के तंग मोजे, नायलॅान इलेस्टीक के तंग निकर पहनना नही चाहिए । सुबह और शाम नारियल तेल सफेद दाग पर रोज लगाना चाहिए ।

गायत्री क्लिनीक ११, शांतीनाथ शॉपिंग सेंटर, फर्स्ट फ्लोर, अेस. व्ही. रोड, मालाड (पश्चिम), मुंबई - ४०० ०६४.

समय : सुबह १० से १ शाम ४ से ७ शुक्र - शनि - रवि बंद   फोन : ८८२ ६७ २० / ८८२ ७८ २९   फेक्स : ९१-२२-८८९ ६० ७९

तीन कविताएं

• जितेंद्र कुमार
• चित्र: प्रभा शाह

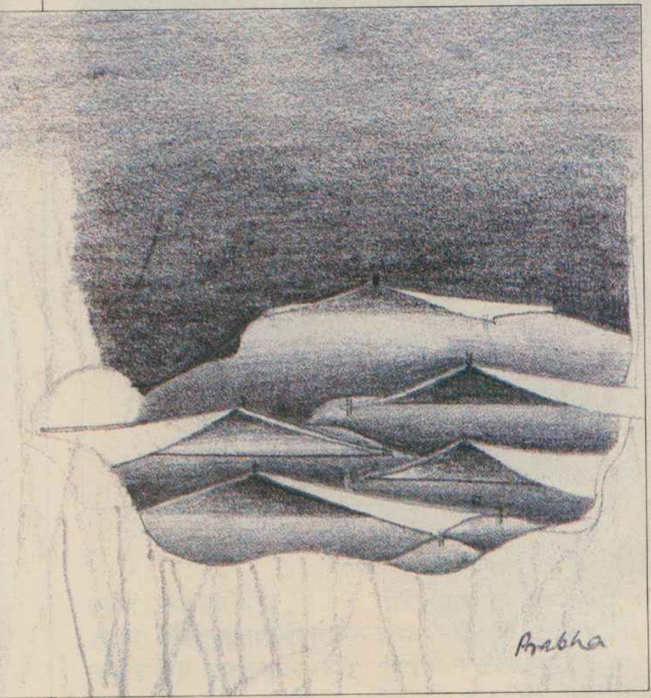

व्यवस्थित परिवार

*अपने पिता की मृत्यु पर मैं नहीं गया
तो मेरा बेटा क्यों आए
अब तो मुझे शक होने लगा है
मेरा कोई बेटा है भी या नहीं*

*अपने पिता से जब भी मैं बहस करता
एक हड़कंप मच जाता
जब मैं नौकरी खोजने जा रहा था
वे मुझे स्टेशन तक छोड़ने आए
उनकी आंखों में कुछ था
जो किसी और ने देखा—वे आपके पिता थे?
प्रसिद्धि, मौज-मस्ती की मेरी कोई इच्छा नहीं—
ऐसा मैं कहता हूं—
मैं तो किसी अपेक्षा की भी अपेक्षा अब नहीं करता
ना ही मैं बुद्धिजीवी हूं कि तर्कसंगत बातें करूं
मेरे पास वे सब टाइम-पास शगल नहीं हैं
ताश खेलते समय एक और आदमी की जरूरत
तो पड़ती है.
जिसमें नहीं पड़ती उसे धीरज (पेशेंस) कहते हैं.*

छछूंदर

*छछूंदर की चाल-सा मैं अंधेरे में बढ़ता हूं
वह सरपट हवा में ध्वनि तरंगें फेंकती
उस ओर बढ़ती है जहां उसका दड़बा है
वह केवल सपाट स्थान से घबराती है
उससे कोई तरंग वापस नहीं आती*

*ऐसे मुझ-सा आदमी एकांत से घबराता है
वहां आवाज का कोई जवाब नहीं आता
वह अपने ही भीतर गूंजती है*

*पर मेरे घर में चींटों तिलचट्टों
झींगुरों की भरमार है: रंज किस बात का है?
वे मेरे साथी हैं
इसी घर में रहते हैं.*

बिच्छू की आंखें

*उसकी आंखों के पपोटों में
एक बिच्छू की आंखें बंद थीं
फासला नाप कर उसने मुझे
डंक मारने की कोशिश की
मैं बच गया
—उसी में मेरी हार निहित थी!
हजार सालों को तो अभी आना था!*

*कांच की तरह भुरभुरी उसने
हीरे की तरह दंभ दिखाने की कोशिश की
मोती की तरह दमकती
हालांकि आंखों के नीचे अनेकों सर्प उग रहे थे
उनकी पीड़ा और स्मृतियां उससे अधिक थीं!*

*आग ने फिर तूफान को सह लिया
उस गहन निद्रा में उसकी लपटों ने उसे डस लिया
मेरी प्रतिक्रिया उस पर वैसी ही थी
जैसी थिर गहरे पानी की होती है—
उसी में किसी दिन मेरी विजय होगी
किसी दिन! ...किस दिन?—क्या?* ■

बिल्लियां

• अजित कुमार • चित्र: सुबाचन यादव

*वे एक-दो नहीं, बल्कि तीन या शायद चार थीं
नन्ही-नन्ही सी, मगर बला की शैतान
काली, भूरी या चितकबरी और एक बिलकुल सफ़ेद
बिल्लियां कई दिनों से हमें तंग कर रही थीं.*

बड़े फाटक में सलाखें थीं,
छोटे फाटक में झिरी,
इतनी गर्मी और उमस में
हम कहां तक बंद रखते तमाम दरवाज़े.

अखबार की ढेरी पर बड़े चैन से पसरी
चितकबरी ने मुझे बड़ी ढिठाई से घूरा
इसके बाद वह यही तो कर सकती थी
—जो उसने किया भी—
कि खाने की मेज़ पर बैठ
ताज़े टोस्ट पर ढेर-सा मक्खन लगाती
और खाती...
हम टुकुर-टुकुर उसे देखते.

तुतलाकर नन्ही मुन्नी ने बताया—
'बाबा! बाबा! देखो, इस गद्दी को वह
गद्दा कर गई!'
'गद्दा नहीं, बेटी! गंदा!' समझाने के बाद
गिजगिजाहट से भरी एक धुलाई में
लगने के सिवा
मेरे आगे दूसरा कोई रास्ता भी तो न था.

चप्पल फेंककर उन्हें मारने का नतीजा क्या हुआ?
गुलदोपहरी तो गिरी ही
इधर एक शीशा फूटा
उधर चप्पल का तस्मा भी गया

काली से बाज आ
भूरी को दौड़ाया
लो, वह तो कपड़ों की आलमारी में दुबक गई,
छेड़ने का मतलब था—
पंजों से अपने मुंह को नोंचवाना.

फिर जब घेराबंदी कर शंभूदत्त ने
हाथ में बड़ा-सा एक डंडा संभाला
श्रीमती जी ने बीच में टपककर
खुली चेतावनी यह दे दी—
'ना, ना! बिल्ली मत मारना,
प्रायश्चित में सोने की बिल्ली देनी पड़ेगी.'
यूं, हाथ में थमा हुआ डंडा भी गया.

इस अंधेरे में रोशनी की यह किरन तो नजर आई कि
मेरा अंगूठा कुतरने पर उतारू
कम्बख्त चूहा ओझल हुआ
पर उसकी नानी के गले में घंटी
मैं नहीं ही बांध पाया.

हितू मित्र का सुझाव था—
'रोटी देकर किसी कुत्ते को परकाओ,
वह बिल्लियों को खदेड़ देगा.'
मैं इससे डर गया कि

फिर कुत्ते को भगाने के लिए
जो बाघ लाना होगा,
वह जब मुझे खाएगा तो
बच गई चितकबरी द्वारा सफाचट किए दूध को
डिपो से लाने के लिए
भला यहां कौन होगा?

इसी उधेड़बुन में
हमारे कई और दिन बीते.

पक्की सड़क के नीचे—
बरसाती पानी की सूखी पड़ी नाली में—
उन्होंने अपना घर बसाया था.
भली या बुरी, जो भी वे हैं,
आखिरकार हैं
—पड़ोसिनों की तरह—
जिन्हें हम प्यार न कर सकें,
पर झेलते हैं मुस्कराकर.

धीरे-धीरे जब हम उनके आदी हो चले थे...
अकस्मात वे लुप्त हो गईं
कब, क्यों, कहां...? की अटकल में
हम सभी को
—खाने की मेज़ से आराम करने की कुर्सी तक—
भारी उलझन में छोड़...

मक्कारी किसी की,
सज़ा कोई और भुगते! ■

आईडीबीआई में भरोसा हर नजर से फायदा!

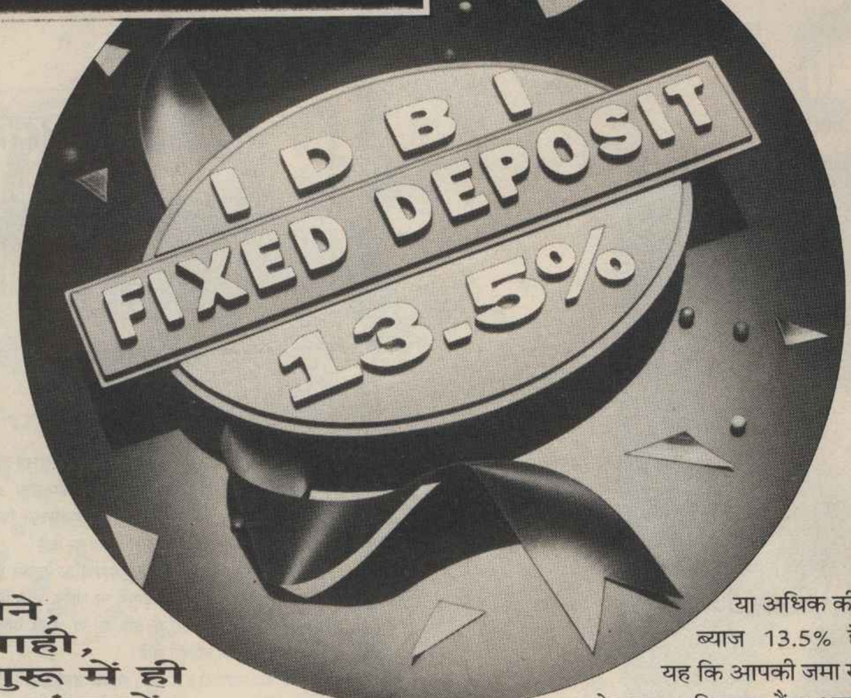

हर महीने, हर तिमाही, सारा शुरू में ही या पूरा अंत में.

आई डी बी आई की फ़िक्स्ड डिपॉज़िट योजना के अन्तर्गत आपके लिए चार विकल्प.*

प्रकार	न्यूनतम जमा राशि	लाभ का स्वरूप
मासिक आय विकल्प	रु. 18,000	5 वर्ष के लिए रु. 18,000 की जमा राशि पर रु. 203 प्रति माह
तिमाही आय विकल्प	रु. 10,000	5 वर्ष के लिए रु. 10,000 की जमा राशि पर रु. 338 हर तिमाही.
एकमुश्त बट्टाकृत ब्याज विकल्प	रु. 10,000	5 वर्ष के लिए रु. 10,000 की जमा राशि पर आपको तत्काल मिलेंगे रु. 4,691.
संचयी विकल्प	रु. 10,000	5 वर्ष के लिए रु.10,000 की जमा राशि बढ़ कर रु. 19,423 हो जाएगी.

** उपयुक्त जमा राशि पर रु. 10,000 तक की ब्याज की राशि आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80 एल के अंतर्गत पूरी तरह कर मुक्त है.*

न्यूनतम जमा राशि: रु. 10,000

न्यूनतम जमा राशि के बाद आप रु. 1,000/- के गुणकों में जमा कर सकते हैं. तीन वर्ष की जमा पर ब्याज 13% है, और 5 वर्ष या अधिक की अवधि की जमा पर ब्याज 13.5% है. सोने पे सुहागा यह कि आपकी जमा राशि के साथ है भारत के प्रमुख विकास बैंक **आई डी बी आई** की गारंटी. **क्रिसिल** द्वारा इसे **'ट्रिपल ए'** रेटिंग दी गई है जो यह दर्शाती है कि यह सर्वाधिक सुरक्षित है. यह तो आप भी मानेंगे कि जिस संगठन की कुल पूंजी रु. 31,000 करोड़ है, वह आपकी पूंजी की पूरी देखभाल करेगा ही.

CRISIL RATING FAAA Pronounced F Triple A

अधिक जानकारी के लिए अपने नजदीकी **आई डी बी आई** कार्यालय अथवा अधिकृत **आई डी बी आई** एजेंट से संपर्क कीजिए.

यह अवसर इन लोगों के लिए है: ★ निवासी भारतीय ★ हिंदू अविभाजित परिवार ★ सांझेदारी फ़र्में ★ कंपनियां/निगमित निकाय/समितियां ★ ट्रस्ट/व्यक्तियों के संघ.

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक

उद्योगों के विकास में जुटा बैंक

ULKA FUTURES-16700-HIN

प्रधान कार्यालय: आई डी बी आई टावर, कफ परेड, बम्बई 400 005. **क्षेत्रीय कार्यालय: बम्बई:** नरीमन भवन, 227, विनय के. शाह मार्ग, नरीमन पॉइंट, पो. बॉ. नं. 19970, बम्बई 400 021. **कलकत्ता:** 44, शेक्सपियर सरणी, पो. बॉ. नं. 16102, कलकत्ता 700 017. **गुवाहाटी:** सेंटीनल ऑफ़िस के सामने, जी. एस. रोड, भंगागढ़, गुवाहाटी 781 005. **मद्रास:** 480, अन्ना सलई, नंदनम, पो. बॉ. नं. 1306, मद्रास 600 035. **नई दिल्ली:** इंडियन रेड क्रॉस सोसायटी बिल्डिंग, 1, रेड क्रॉस रोड, पो. बॉ. नं. 231, नई दिल्ली 110 001.
इसके अलावा राज्यों की राजधानियों/महत्वपूर्ण नगरों में 30 शाखा कार्यालय.

गृ · ह · स्वा · मि · यों

आप एक बड़ा जोखिम ले रहे हैं!

एक पल भी निगाह चूकी नहीं कि माचिस की जलती हुई तीली कहीं गलत जगह पर जा गिरी। परिणाम? भयंकर अग्निकांड! आपका सभी मूल्यवान सामान— टी.वी., वी.सी.आर., क्रॉकरी, ज़ेवरात, फ्रिज, स्टीरियो, महंगे कपड़े— पलक झपकते ही राख का ढेर बन जायें।

आप जोखिम क्यों लें? अपने कीमती सामानों का नेशनल इन्श्योरेंस की हाउसहोल्डर्स पॉलिसी के तहत मामूली सा वार्षिक प्रीमियम देकर बीमा करायें। कोई दुर्घटना या चोरी या क्षति होने पर आपके घर समेत तमाम सामानों की लागत की क्षतिपूर्ति होगी।

जल्दी करें, कहीं ज्यादा देर न हो जाये। अधिक जानकारी के लिये हमसे आज ही सम्पर्क करें।

नेशनल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड

(भारतीय साधारण बीमा निगम की एक सहायक कम्पनी)

3, मिडिलटन स्ट्रीट, कलकत्ता-700 071

मैं हाउसहोल्डर्स पॉलिसी की विस्तृत जानकारी चाहता / चाहती हूं।

निम्नलिखित पते पर

☐ अपना प्रतिनिधि

☐ विस्तृत पुस्तिका भेजें

नाम ....

पता ....

....

इस पॉलिसी में इन सामानों का बीमा भी शामिल है

जेवरात और कीमती सामान (सकल जोखिम), काँच, प्लेट, घरेलू उपादानों की टूट-फूट, टी.वी. सेट, पैडलदार साइकिल, सार्वजनिक देयता, डकैती, सेंधजनी, लूट या चोरी तथा अन्य व्यक्तिगत दुर्घटना।

Sobhagya/NIC/2/92

चार कविताएं

- प्रयाग शुक्ल
- चित्र: मोना राय

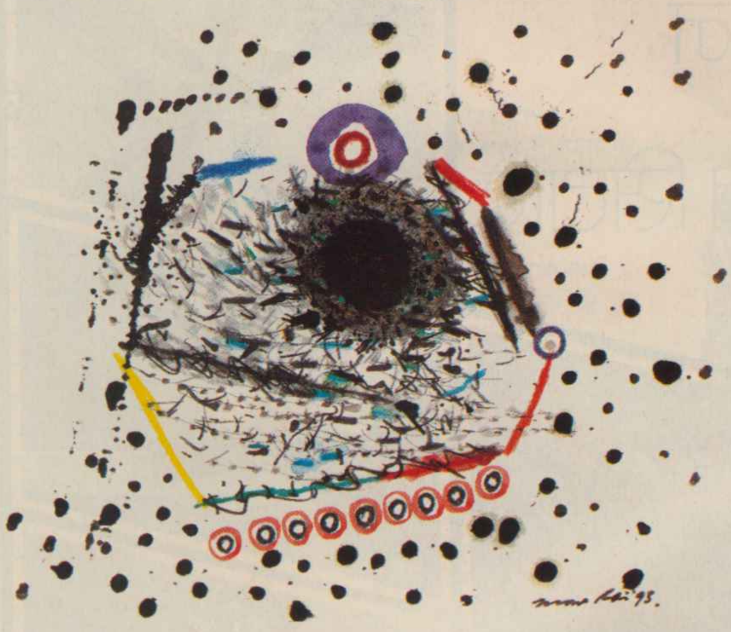

जितनी देर में ऊपर से गुजरता है एक हवाई जहाज

जितनी देर में ऊपर से गुजरता
है हवाई जहाज उतनी देर में
कुछ चीटियां चींटी चाल से
बढ़ लेती हैं एक पेड़ के गिर्द.
उतनी देर में कपड़े सुखाती
एक औरत तार पर टांग देती
है दो कपड़े,
उतनी देर में डाकिया डाल
देता है एक घर की चिट्ठियां.
खेत में खड़े किसान का फावड़ा
आ रहता है जमीन पर
उतनी देर में भर लेता है
एक बछड़ा दो कुलांचे.
उतनी देर में एक औरत लगा
लेती है तालाब में एक और डुबकी—
कभी-कभी उतनी ही देर में,
एक लड़की के हिस्से में आ रहता
एक और दुख या कि सुख—

अगर हुआ जहाज बमवर्षक तो
इससे भी कितनी कम देर में
तहस-नहस हो जाते
ये सारे दृश्य!

सूनी सीढ़ियां

इस वक्त
सूनी हैं
सीढ़ियां—
गए सब
चले गए

माचिस की तीलियां
टुकड़े सिगरेट के
जहां-तहां पड़े हैं
चीटियां चलती हैं
तीन-चार...
कागज के टुकड़े कुछ

आकर कैंटीन से
(खत्म हुई पारी भी रात की)
गुदड़ी बिछा,
बहुत दूर गांव से,
बारह का भान सिंह
सोता है—

इस वक्त
सूनी हैं सीढ़ियां...

दिल्ली में

दिल्ली में भी कूकती है कोयल
झरते हैं पत्ते
चीटियां चढ़ती हैं पेड़ के तने पर
दिल्ली में.
दिल्ली में भी उड़ती हैं चिड़ियां
दिल्ली में भी दौड़ती हैं
गिलहरियां.
आकाश दिल्ली में भी
हो जाता है लाल.
दिल्ली में भी उगते हैं तारे.
दिल्ली में भी उड़ती हैं
तितलियां.

हैं, हां, हैं—
ये सब भी
दिल्ली में.

दिन को ट्रेन में

दस तक रहेगी सुबह.
ग्यारह के बाद ही दुपहर हो जाएगी.
एक तक दुपहर यह ठहरी हुई,
होगी— ढलान पर.

तीन जब बजेंगे
तब चार-पांच बजने में
देर नहीं लगेगी.
होगी फिर शाम.
चाय होगी.

झुटपुटा उतरेगा,
खेतों पर, पेड़ों पर.
घर-मकान दीखेंगे
एक नए ढंग में.
चमकेंगी रोशनियां
किसी शहर-कस्बे की.

होगी फिर रात.
वह होगी नींद में. ■

खेतान के रोशन सितारे

HTA-3130-94

खेतान - सिर्फ नाम ही काफी है

सपने में एक दोस्त

• विनोद भारद्वाज
• चित्र: मोना राय

बस दो दोस्त मुझे याद रह गए हैं
अपने बचपन के
मोहम्मद अयूब अंजुम 'मधु'
और प्रताप नारायण मिश्र

पता नहीं
इस वक्त वे कहां होंगे
मिलेंगे
तो क्या हम एक दूसरे को
पहचान सकेंगे?
नाम और धुंधले चेहरे तो खैर
कुछ दूसरों के भी याद हैं
थोड़ी-बहुत पहचान
थोड़ी-सी स्मृतियां
छोटी-मोटी ईर्ष्याएं

एक दोस्त नवाबी खानदान का था
सरफराज अब्बास
किसी शानदार इत्र वाले सफेद
रूमाल में
अपना सुंदर चेहरा
हमेशा छिपाए हुए

कभी-कभी रम्मू बकैत भी
याद आ जाते हैं
जिन्होंने क्लास में
एक दिन कोने में
ले जाकर
बड़ी रहस्यमय मुस्कान के साथ
एक गुप्ती दिखाई थी
और फिर सबके सामने
सुंदर लड़के विनय कपूर को
चूम लिया था

नवाब थे
गुंडे थे
पढ़ाकू
लड़ाकू थे
पर याद आती है
प्रताप नारायण मिश्र की
जो साइकल पर बैठाकर
दस किलोमीटर दूर
कालाकांकर भवन ले जाता था
अपने दोस्त की रचनाएं
छपने के लिए देने को

उससे भी अधिक याद आती है
मोहम्मद अयूब अंजुम 'मधु' की
जो इस बात को लेकर
बड़ा सजग था कि
उसका हमेशा पूरा नाम लिया जाए
एक काफी पुराने गुंबद में
एक कैंटीन थी
जिसे हम आसमान महल कहते थे
बतियाते थे
कविताएं सुनाते थे
मोहम्मद अयूब अंजुम 'मधु'
प्रताप नारायण मिश्र
कई दोस्त
हम जोर-जोर से हंसते थे
हाशमी साहब कैसे रिक्शे पर
कल रात
घुमाते रहे
फिर बड़ी लज़ीज सेवइयां
घर ले जाकर खिलाईं

लेकिन हुआ कुछ इस तरह से
6 दिसंबर 1992 की रात को
मुझे मोहम्मद अयूब अंजुम 'मधु'
दिखाई दिया
आधी बांहों की कमीज में
किसी कान्वेंट स्कूल की
धारियों वाली टाइ में
चमकता मुस्कराता
बोला—बहुत दिनों बाद मिले
दोस्त
घर चलो मेरे
कमाल मियां ने खास चाय का
न्यौता दिया है
सुना है दिल्ली वाले हो गए हो
कुछ कविताएं भी
छपती हैं रंगबिरंगे रिसालों में

सपना भी बड़ा अजीब था
एक खौफनाक लैंडस्केप में चला गया
भागकर
निष्कपट ढंग से मुस्कराता
मोहम्मद अयूब अंजुम 'मधु'

एक जली लुटी बस्ती में
बैठे हम मनहूस किस्म की चाय

पी रहे थे
शाम का अंधेरा था
अचानक उसने टाइ उतारकर
फेंक दी
कपड़े और चेहरा नोचने लगा
रुआंसा हो गया
डर गया
लिपट गया
बोला—बहुत दिनों बाद मिले
दोस्त
आसमान महल में आग लग गई है
मैं अब हकलाता हूं
अपना पूरा नाम लेते हुए
बहुत दिनों बाद क्यों मिले
दोस्त.

■

यही कहने आया था मैं

• लीलाधर जगूड़ी • चित्र: मोना राय

एक दिन में करोड़ों बरस
रहने आया था—यही कहने आया था मैं
यह करने नहीं आया था जो कुछ मुझे करना पड़ा
यही कहने आया था यहां

करने कुछ आया था कर कुछ गया
कुछ का कुछ हो गया कुछ का कुछ मेरा
यही कहने आया था मैं यहां

रहने के लिए करना. करने के लिए रहना
रहना करने के लिए सब कुछ सहना पड़ा मुझे
यही करने आया था
यही कहने आया था मैं यहां

यहां तक कहना पड़ा कि मैं यहां इसलिए रहा
कि मुझे रहना था
कि मैं क्या कर पाया?
जबकि कहना था क्यों नहीं कर पाया.

ये नहीं कर पाया वो नहीं कर पाया
भर पाया
जो कर पाया सो कर पाया मैं भी
क्या कर पाया मैं?

वह किस तरह कहूं जो कहना था यहां
सिर्फ रहना ही नहीं था मुझे
यही कहने आया था मैं यहां.

करोड़ों बरस भाप हो गए पानी के
करोड़ों बरस पेड़ों के लकड़ी हो गए
कोयले के करोड़ों बरस हो गए आग
आग के करोड़ों बरस राख हो गए

ऊसर बढ़ता है करोड़ों बरस के जलमग्न संसार में
हवा हो गए हवा के करोड़ों बरस
समुद्र के करोड़ों बरस छितराए हुए बादल हो गए
धरती की नब्ज में धड़कते हैं
वज्रपात के करोड़ों बरस

आकाश के करोड़ों बरस बारिश हो गए
करोड़ों बरसों की सघन बरसात छीज गई इस धरती में

इस धरती पर पुराने सूरज से मिलती है
रोज़ एक नई सुबह
पुराने अंधेरे में ताज़ा होती है रात हर रात
धूसर संसार में लौट आता है एक हरा झुटपुटा

एक-एक दिन एक-एक बूंद का समय लेकर
पानी पत्थर होता जाता है. पानी पेड़ होता जाता है
एक-एक दिन से लोहा लेकर समय तांबा होता जाता है
बीस वर्ष का लोहा, पचास वर्ष का लोहा
हज़ार वर्ष के लोहे से टकराता है
पचास वर्ष का तांबा हज़ार वर्ष के तांबे से टकराता है

अचानक सोना हो जाता है लाखों-लाख बरस का समय
पचास बरस का सोना समय
हज़ार बरस के सोना समय के साथ कसा जाता है
हज़ार बरस पुराना रांगा काम आता है टांके के
चीज़ों में पड़कर कोई समय खोटा
कोई खरा हो जाता है

कहीं इस धरती के करोड़ों बरस
एक वक्त का खाना नहीं जुटा पाते
कहीं करोड़ों बरस एक प्याली चाय में बदल जाते हैं
कहीं इस धरती के करोड़ों बरस जमा हो जाते हैं
रिज़र्व बैंक में

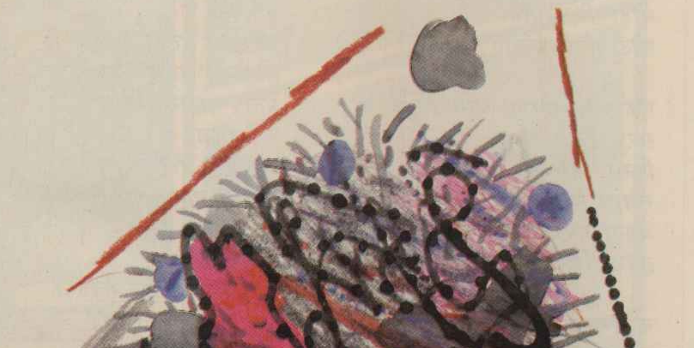

करोड़ों-करोड़ बरस पहनकर चले आते हैं एक जोड़ी कपड़ा
करोड़ों करोड़ नंगे पांव वाले करोड़ों बरस
पहनकर चले आते हैं एक जोड़ी जूता

करोड़ों बरसों का खून सेकिण्डों में बह जाता है
इस धरती पर
सपने के करोड़ों बरस खून हो जाते हैं
और खून के करोड़ों बरस तोड़ देते हैं सपना.

उपभोग का गीत

तौलिये
10/- से 20/- के
20/- से 50/- और
90/- से 80/- के हो लिये
(कुछ मूर्धन्य कवियों जैसे)
अब तुम्हें खुश हो जाना चाहिए
और मेरे शरीर पर आकर
लिपट जाना चाहिए

तौलिये! तौलिये!
जिस तरह भी हो तौलिये
मैं तो एक ग्राहक हूं
हमेशा एक खरीदार
उत्पादक नहीं भोक्ता
जिसे सिर्फ उपभोक्ता बताते हैं
बिचौलिए
तौलिये
इस तौलिये को भी तौलिये
कितनी जमीन कितनी कपास
कितना सूत कितना श्रम कितनी मशीन
तुल जाती है इसमें
फिर भी कितने मैले हैं हमारे मुंह
कितने डंडीमार हैं हमारे हाथ
बोलिये! ■

न जाने क्या हुआ

• **बद्री नारायण** • चित्र: बृज गोयल

न जाने क्या हुआ
कल एक राजा नींद में चिल्ला उठा
मंत्रियो! मुझे लोकगाथाओं में जगह चाहिए!

चिंतित हुए सारे मंत्री
अधिकारी हैरान
जिसके पास पुलिस है, असंख्य सेना है
जलदुर्ग, थलदुर्ग
जिसके पास चौंसठ किले हैं
उस राजा को क्या जरूरत पड़ी
लोकगाथाओं में जगह के लिए!

हुआ गहन विचार
शब्द, सत्ता, स्मृतियां
मिथक, गाथा, पुराण
पुरखे, पुरोहित
ओम! ओम! ब्रह्म ज्ञान
सबको आमंत्रित किया गया
सबने सुना! सब सोच में पड़ गए
इस राजा के लिए लोकगाथाओं में कैसे जगह
बनाई जाए
चलो, यह राज किसी मयारी से जानी जाए.

खैर साहब!
न जाने कहां से पकड़
एक बाजीगर बुलाया गया
उसे सारी स्थितियों से अवगत कराया गया.
सब सुन हंसा मदारी
यह लो हाऽऽ हाऽऽ हाऽऽ
राजा को भी अब लोकगाथाओं में जगह चाहिए
जगह भी वहां, जहां लोकगाथाओं में
नायक बैठते हैं
अचानक वह हुआ गंभीर
फिर पूछा
कवियों से बात की?
नहीं !
लेखकों से बात की?
नहीं!
गांवों में जिनकी आंखों में डुबता है सूरज
उन बुढ़ी औरतों से बात की?
नहीं.
तो मूर्खो
राजा के लिए किस तरह और कैसे जगह बनाओगे
लोकगाथाओं में,
इसके लिए गलियों, पेड़ों, चिड़ियों से
बात करनी होगी
हवा को समझाना होगा
पानी को मनाना होगा
बीजों को कहीं ले जाकर धीमे से बुझाना होगा

कायाकल्प करना होगा
इतने पर भी नहीं होगा
सबसे बड़ी बात है कि
राजा को मरना होगा.

नहीं! नहीं! नहीं!
यह सुन राजा उछल पड़ा
और पूरे राज्य में सेना तैनात कर दी गई.
न जाने क्या हुआ ■

ताजमहल और रामकली

• राजी सेठ
• चित्र: गोपी गजवानी

देती थी मैं तुम्हें बासी रोटी
बची हुई खिचड़ी
बुसे हुए समोसे
काली छाल के केले
मेहमाननवाज़ी की प्रचुरता से पीड़ित जूठन
कभी, किसी दिन हुक-टूटे ब्लाउज
छेददार स्वेटर
जो जो कुछ दिया तुमने कृतज्ञ होकर लिया

ख़ूब मनचीता जुड़ाव
देने और लेने का पुल
तुम कृतज्ञ, मैं परितुष्ट
कितनी परदुख कातर मैं
आत्ममुग्ध

यह तो उस दिन ऐसा हुआ
मैंने तुम्हें ताजमहल दिया
दरअसल हुआ यह, कि
उसकी एक मीनार दरक गई थी
गर्भ के गुबंद को भी, एक
काली कुटिल रेख चाक कर गई थी

वह था, कि
मुझसे सहा नहीं जा रहा था
घर के सजे-धजे कोनों ने विरोध तान रखा था
फेंक दूं, ऐसा कोई उपक्रम, भी पूरी तरह
निष्फल गया था.

बासन चमकाने के तल्लीन तारतम्य से तोड़कर
मैंने तुम्हें बुलाया था
अपने निकट से निकटतर बिठाया था
मैं खुद
क्या कुछ खोई खोई?
सावधानी से ताजमहल साधे
एक झूलनी कुर्सी पर बैठी थी

सुन रामकली!
तू नहीं जानती, मुझे क्यों इतना प्यारा है
ताजमहल
वैसे भी अनूठा न्यारा है ताजमहल
एक मुगल बादशाह ने इसे
अपनी प्रेमिका के लिए...
यह शब्द उच्चारते रामकली 'जैसी' के सम्मुख
मेरा कलेजा थरथराया था.
वह क्या सोचेगी कि मैं?
अब?

तू कैसे जानेगी रामकली
कुछ चीज़ें
एकदम अमोल होती हैं
उनका मान सिर्फ सजावट के लिए नहीं
उनका अदब सिर्फ दिखावे की बात नहीं.
जब कोई, किसी को
ऐसा कुछ देता है, तो
कुछ सोचकर ही देता है

इसलिए, ओ जन्मना मेरी कृतज्ञ रामकली,
अब तू ही इसे संभाल
अपने पास रख
मेरे दिए बिना, तो तुम
इस नवेली नायाब वस्तु से अनजानी रह जातीं
पाना भी चाहतीं, तो
किस करतब से पातीं?

है न? कहकर मैंने उसकी आंखों में झांका
उफ! डूब मर

आंखें ऐसी बुझी हुईं
चेहरा पतला, पांगुर, बंद.

क्यों? क्या बुसे हुए समोसे, और
गले हुए केले
इससे अच्छे थे रामकली, कि
तुम उन्हें
लपक लपक लेतीं
खिल-खुल उठतीं

बोल!
तू बोल तो सही रामकली
तेरी अक्ल को क्या हुआ है?
तुझे कौन से बिच्छू ने डस लिया है?

तू इतनी मूढ़, कि
इन दोनों का अंतर नहीं जानती?
अच्छे और बुरे का फ़र्क
नहीं पहचानतीं
मान लो,
नहीं भी जानतीं, तो
मैं तुम्हें बता तो रही हूं
बेजोड़ चीज़ों से निबटने का सलीका
सिखा तो रही हूं.

अब, तू ऐसे कर
इसे ले जाकर
घर के किसी कोने में
किसी ऊंची चीज पर, ऐसे

सजाकर रख, कि
आए-गए की आंख चढ़े
तेरी महिमा बढ़े
फिर देखना रामकली
हर कोई तुम्हें घेरेगा
कोंच-कोंचकर पूछेगा
इसे पाने का पता और स्थान
और...

पता नहीं क्या हुआ रामकली को
अच्छी खासी बैठी थी
जल्दी से लहंगा समेटा, और
भाग खड़ी हुई.

■

तीन नज़्में

- **गुलज़ार**
- चित्र: अर्पणा कौर

रात भर सर्द हवा चलती रही
रात भर हमने अलाव तापा
मैंने माज़ी से कई खुश्क-सी शाखें काटीं
तुमने भी गुज़रे हुए लम्हों के पत्ते तोड़े
मैंने जेबों से निकालीं सभी सूखी नज़्में
तुमने भी हाथों से मुरझाए हुए ख़त खोले
अपनी इन आंखों से मैंने कई मांजे तोड़े
और हाथों से कई बासी लकीरें फेंकीं
तुमने पलकों पे नमी सूख गई थी सो गिरा दी
रात भर जो भी मिला उगते बदन पर हमको
काट के डाल दिया जलते अलाव में उसे

रात भर फूंकों से हर लौ को जगाए रखा
और दो जिस्मों के ईंधन को जलाए रखा
रात भर बुझते हुए रिश्ते को तापा हमने

•

सारा दिन मैं ख़ून में लथपथ रहता हूं
सारे दिन में सूख-सूख के काला पड़ जाता है ख़ून
पपड़ी-सी जम जाती है
खुरच-खुरच के नाख़ूनों से
चमड़ी छिलने लगती है
नाक में ख़ून की कच्ची बू
और कपड़ों पर कुछ काले काले चकते-से रह जाते हैं

रोज सुबह अख़बार मेरे घर
ख़ून में लथपथ आता है.

•

चांद क्यूं अब्र की उस मैली-सी गठरी में छुपा था?
उसके छुपते ही अंधेरों के निकल आए थे नाख़ून
और जंगल से गुज़रते हुए मासूम मुसाफ़िर
अपने चेहरों को खरोंचों से बचाने के लिए चीख़ पड़े थे

चांद क्यूं अब्र की उस मैली-सी गठरी में छुपा था?
उसके छुपते ही उतर आए थे शाख़ों से
लटकते हुए आसेब थे जितने
और जंगल से गुज़रते हुए रहगीरों ने
गर्दन में उतरते हुए दांतों से सुना था
पार जाना है तो पीने को लहू देना पड़ेगा

चांद क्यूं अब्र की उस मैली सी गठरी में छुपा था?
ख़ून से लिथड़ी हुई रात के रहगीरों ने दोज़ानों पे गिरकर,
"रोशनी, रोशनी!" चिल्लाया था,
देखा था फ़लक की जानिब,
चांद ने गठरी से इक हाथ निकाला था,
दिखाया था चमकता हुआ ख़ंजर.

■

सातवीं कक्षा के एक विद्यार्थी का शोध-प्रबंध

● अरुण कमल ● चित्र: कविता नायर

अब सब कुछ नये नियम से कहना चाहिए—
यानी एक किरण को एक किरण नहीं सात रंग,
और कदम्ब के रोयेंदार फूल को सैकड़ों फूलों का गुच्छा,
और एक आंख, तिलचट्टे की आंख, हजारों आंखों का पुंज
अलग अलग आंख अलग-अलग देखती
फिर भी एक साथ एक सी,
और एक देह को करोड़ों कोशाओं का छत्ता,

और एक पृथ्वी को नील पद्म शंख महाशंख जीवों का
लाल पीला हरा शामियाना

कहना चाहिए कि गांठ बांधने का मतलब है
रस्सी को छोटा करना,
और गांठ खोलने का मतलब रस्सी को नीचे
जल के तल तक ले जाना

ऊपर उस तल्ले तक जहां आग में फंसा है पूरा परिवार,
अब गिनती एक से नहीं असंख्य से चल कर
एक की तरफ आएगी उलटे पांव,
पृथ्वी भी अब घूमेगी उलटा कल से
यानी अभी एक रात के बाद फिर एक रात और
फिर दिन फिर रात फिर दिन...

शोक

इस अंचल की एक जौ भूमि भी

ऐसी नहीं
जिसे छोड़ा हो इसने

पर इस नदी पर मुझे क्रोध नहीं
शोक हो रहा है
कि बार-बार जिसने रास्ता बदला
बार-बार जो मिटाती रही
अपने ही निशान
फिर भी पा न सकी वो रास्ता
जिसे खोजती रही उम्र भर वह
पूरी धरती उलट पुलट.

घटना

धीरे-धीरे झर गई मट्टी सारी
रही शेष केवल जड़-रेश

उतर रहे सब बीच राह में
हुई उलार अब गाड़ी
धीरे धीरे दमक घट रही
बादल सिर पर छाये
उठा बवंडर धंसी धूर-
बूंद गिरी जड़ कांपी नाड़ी
तड़की धरती सूखी

उठे नागरिक हाथ आंचने
टूट चुकी है पांत
खाते खाते दांत झड़े पर
पत्तल पकड़े बैठा
एक किनारे अब भी

चारों ओर अंधेरा छाया
मैं भी उठूं जला लूं बत्ती
जितनी भी है दीप्ति भुवन में
कूट-कूट पुतली में कसती. ■

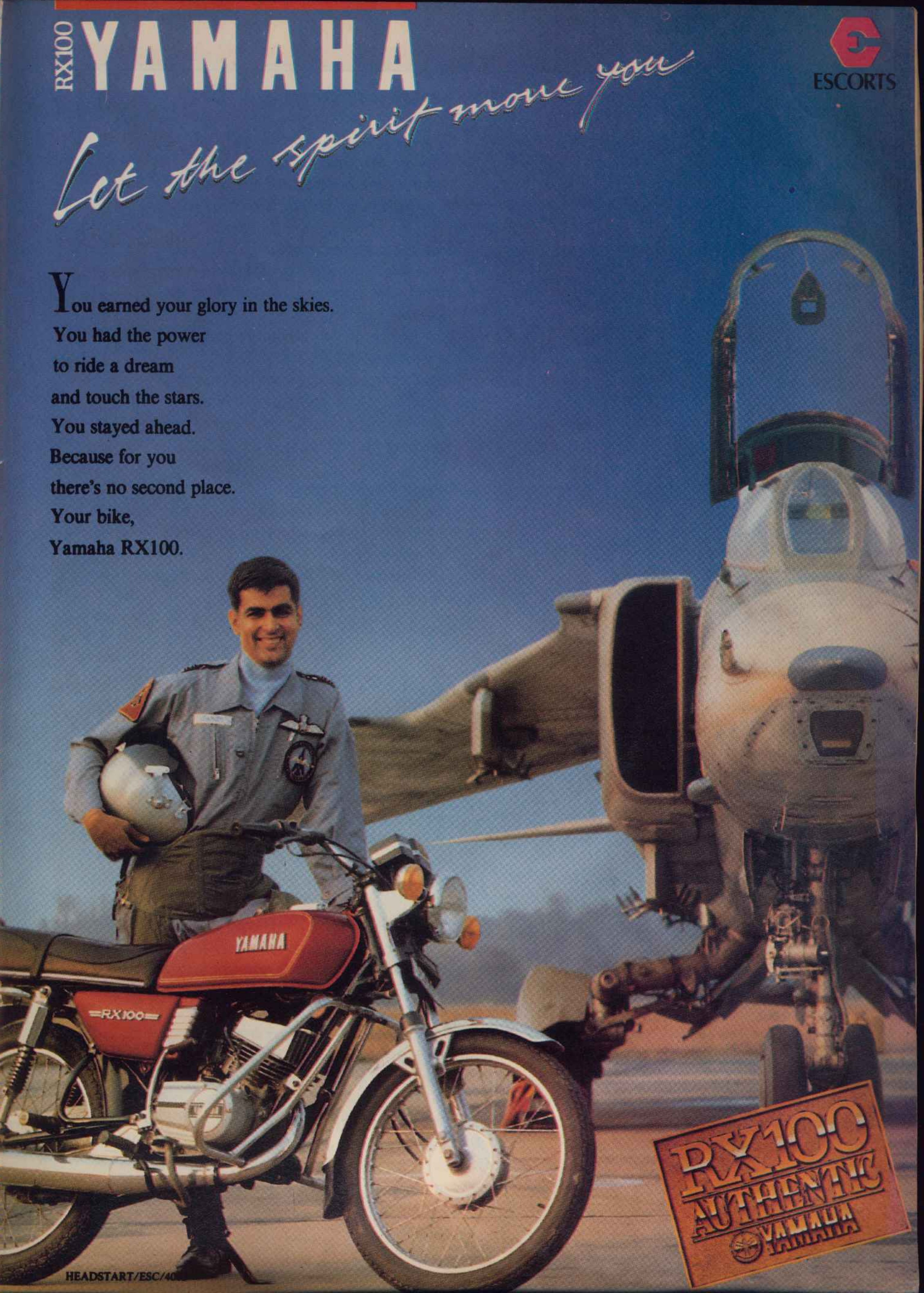
RX100 YAMAHA
ESCORTS
Let the spirit move you
You earned your glory in the skies.
You had the power
to ride a dream
and touch the stars.
You stayed ahead.
Because for you
there's no second place.
Your bike,
Yamaha RX100.
YAMAHA
RX100
RX100 AUTHENTIC YAMAHA
HEADSTART/ESC/40

नागरिक-पराभव

• कुमार अंबुज
• चित्र: प्रभा शाह

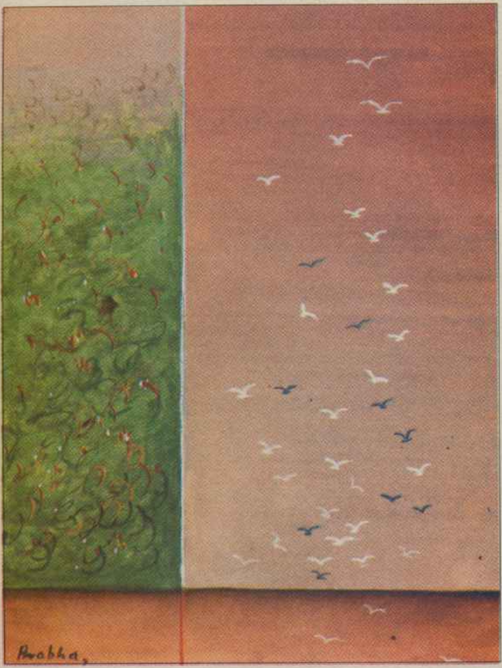

प्रारंभ से प्रारंभ करूं तो
उससे डरता हूं जो अत्यंत विनम्र है
कोई भी घटना जिसे क्रोधित नहीं करती
जो बात-बात में ईश्वर को याद करता है
बहुत डरता हूं अति-धार्मिक आदमी से

जो मारा जाएगा अगली सदी की बर्बरता में
उसे प्यार करना चाहता हूं

कक्षा पांच में पढ़ रही बच्ची को नहीं पता
आने वाले समाज की भयावहता
उसे नहीं पता उसके कर्णफूल
दूर विश्व-बैंक में गिरवी रखे जा चुके हैं
उसकी चंचलता की आश्वस्ति है मेरे मन में
और, उतनी ही आशंका

एक बहुत छोटा लड़का आठ चाय का छींका उठाकर
आसपास के कार्यालयों में चाय देता है
सबके चाय पीने तक देखता है सादा आंखों से
सबका चाय पीना
मैं एक नागरिक उसे नागरिक की तरह देखता हूं
धीरे-धीरे अनाथ होता हूं

ठीक करना चाहता हूं एक-एक पुर्जा
मगर हर बार खोजता हूं एक बहाना
हर बार पहले से ज्यादा ठोस और पुख्ता
मेरी निडरता को धीरे-धीरे चूस लेते हैं मेरे स्वार्थ

अब मैं एक सुरक्षित नागरिक
हर समस्या को एक डरे हुए नागरिक की तरह देखता हूं
सबको ठीक करना मेरा काम नहीं सोचते हुए
हर गलत काम में
एक चुप नागरिक की तरह शरीक होता हूं
अपने से छोटों को हिकारत से देखता हूं
तहसीलदार को आता देख कुर्सी से खड़ा हो जाता हूं
पड़ोसी के दुःख को पड़ोस का दुःख मानता हूं
और एक दिन पिता बीमार होते हैं तो
सोचता हूं पिता की उमर हो गई है

अंत में मंच संचालन करता हूं
उस आदमी के सम्मान-समारोह का जो अत्यंत विनम्र है
चरण छूता हूं जय-जयकार करता हूं उसी की
जो अति-धार्मिक है
और एक बच्ची को खिलौने की तरह देखता हूं
जैसे चाय बांटते बहुत छोटे बच्चे को
नौकर की तरह.

सिर्फ प्यार नहीं

सपना भी देखूंगा तो उसमें
सिर्फ़ प्यार नहीं करूंगा

यों भी मैंने कई सालों से किसी को प्यार नहीं किया है
मुझे कई सालों से किसी को
प्यार नहीं करने दिया गया है
इधर कई सालों से किसी को भी
प्यार करने की फ़ुरसत ही नहीं दी गई है

जैसे मुझे ही उदाहरण समझा जाए—
"मेरी मां के पैर में पिछले आठ साल से फोड़ा है
मेरे पड़ोस का बूढ़ा अंधा है और बीस साल से अकेला
पटना में कई दोस्तों को महीनों से वेतन नहीं मिला है
जितने लोग सड़क-दुर्घटना में मरे
उनकी लाशें अभी भी रास्तों में हैं
शेयर बाजार की कनपटी से गिरा हुआ पसीना
मेरे गांव के खेतिहर की आंख में अटका है

शेर, शेर होने के जुर्म में मार दिए गए हैं
निर्दोष मार दिए गए कि उनके घर
आतंकवादियों के रास्तों में थे
शेष मारे गए उस गली में जहां वे अल्पसंख्यक थे

मेरी बगल की बस्ती जहरीली शराब से उजड़ गई
जो बचे वे बाढ़ में बह गए
और पिछले तीस साल में ऐसा
सात सौ छियासी बार हुआ..."

मेरी जीवित दुनिया में सब तरफ ऐसे ही दृश्य हैं
ऐसी ही आवाजें और ऐसी ही खबरें

अपनी दुनिया से बाहर का सपना मैं कैसे देखूंगा
सपना भी देखूंगा तो उसमें सिर्फ़ प्यार कैसे करूंगा
सपने की जमीन पर बिखरा खून साफ करूंगा
और कुचली हुई दूब को सहलाऊंगा

सपने से बाहर आऊंगा तो
लाम पर निकल जाऊंगा. ■

चील

• शलभ श्रीराम सिंह • चित्र: प्रभा शाह

यह चील का सौंदर्य है
झील से लेकर जंगल तक
उसकी तीखी आवाज से झरता
पूरे का पूरे वातावरण पर.

गुस्से में बजाई गई पिपिहरी की तरह
उसकी आवाज़ को सुनना
जंगल और झील के बीच
दहशत को पढ़ता है पूरी तल्लीनता के साथ.

सोच में दरार डाल गई है यह आवाज़
डाल गई है निगाह में बल
चाल में खलल डाल गई है.

सांप सरकना बंद हो गया है
बंद हो गया है मेढक का उछलना
मछली का खलकना बंद हो गया है.

दुबककर रह गए हैं छोटे परिंदे
बाज़ को चुनौती दी जा चुकी है सरेआम
यह वक्त
झील के चील की तरह होने का है.

अपनी सांवली साहसिकता में
बाज़ के लिए एक चुनौती है चील.

अब

दुनियां मां की गोद नहीं है
प्रेमिका की बांह नहीं है दुनिया
दुनिया पत्नी की मुस्कान नहीं है.

यहां एक क्रूर भय है
त्रासद शब्दावली में बोलता हुआ
डोलता हुआ सन्नाटा है
ज़िंदगी के हर गीत को निगल जाने को तैयार है.
अदृश्य गुर्राहटें हैं यहां
आहटें हैं धमाकेदार.

जहां भी रखोगे पांव
जमीन जलती हुई मिलेगी
चलना पड़ेगा फिर भी
जले हुए पांवों को फफोलों की ओर देखे बिना.

न सही किसी पेड़ की छांव
आग बरसाता आसमान तो रहेगा सर के ऊपर
रहेगी अपने झोंकों में चिनगारियां समेटे हवा.
न सही दूर-दूर तक कोई नदी
हर शाम के साथ

नीला धुंधला क्षितिज तो रहेगा चारों ओर.

बचपन में सुनी गई
किसी कहानी के पात्र की तरह
अपनी भूख और अपनी प्यास में अकेले
अकेले अपनी नींद और स्वप्न में
एक अंतहीन एकांत में अपने
चीखते हुए अपनी चुप्पी में भीतर-भीतर
नस-नस में भयानक रक्तपात को सहेजे
जहां भी रखोगे पांव
ज़मीन जलती हुई मिलेगी अब. ■

सोचा था कभी सपने में कि
जायेंगे इस शोरगुल और
छल-कपट की
दुनिया से दूर.
उस दुनिया में
जहां हो अपनापन.

सिर्फ मासुमियत और प्यार.
आकर आज यहां लगता है
मानो लिया है नया जनम.
अगर ये सिर्फ सपना है
तो न जगाना मुझे
रहने देना नींद में चूर.

THE
PREMIUM
SUITING
BLENDS
Siyaram's®

®Regd. Trade Mark of Siyaram Silk Mills Ltd., Bombay-11.

PERCEPT/S-P/5

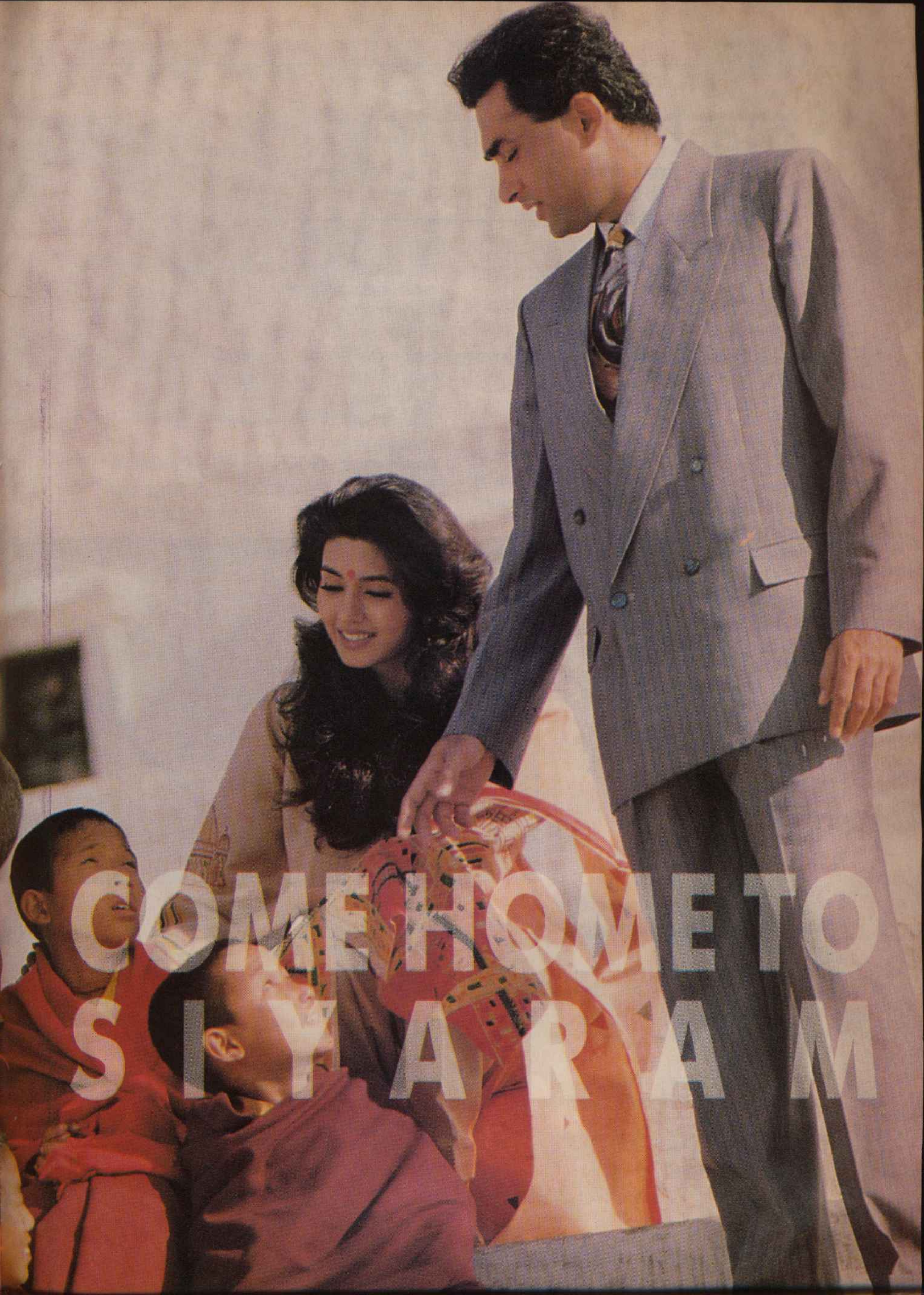
COME HOME TO
S I Y A R A M

एक फूल रखता हूं

• विमल कुमार • चित्र: बृज गोयल

जब से मैंने होश संभाला है
सुना है एक दिन मरना है सबको
तब से मैं देख रहा हूं
कोई-न-कोई चीज़ मर रही है
सबसे पहले मैंने एक कुत्ते को मरते हुए देखा था
सड़क पर
उसके बाद एक औरत मरी थी
पड़ोस में
ख़ूबरसूत और जवान
कुछ साल बाद
मेरे परिवार में मरी थी
बड़ी बहन अविवाहित
तब से हर रोज़
हर महीने हर साल
मैं देख रहा हूं
कोई-न-कोई मर रहा है
अपने प्रियजनों से विदा ले रहा है
जैसे कल ही एक चींटी
पैरों तले दबकर कुचल गई
एक पौधा मुरझा गया
चिलचिलाती धूप में
एक कौवा बैठा था बिजली के तार पर
और नीचे गिर गया निस्पंद
ये सभी चले गए अचानक
मैं जानता हूं
पड़ोस की औरत
और बड़ी बहन को पता था
कि उन्हें एक दिन मर जाना है
लेकिन जैसे उन्हें पता था
क्या उस कुत्ते, चींटी, कौवे और पौधे को भी
मालूम था?
जरूर जानते होंगे वे भी
क्योंकि वह कुत्ता भी रोता था
जैसे पड़ोस की औरत रोती थी
कभी-कभी रात में
जैसे बड़ी बहन की आंखों में
आ जाते थे कुछ सोचकर आंसू
चींटियों का रोना तो हमने नहीं देखा
लेकिन जब तक उन्हें पकड़ो तो वे भागती हैं
गिरफ्त में छटपटाती हैं
कौवों के आंसू तो कभी नहीं दिखे
लेकिन वे भी पंख फड़फड़ाते हैं
और थोड़ी-सी आहट पाकर उड़ जाते हैं
पौधे भी रहते हैं उदास करते हैं विलाप
जब से मैंने होश संभाला है
मैं जानता हूं
एक दिन मुझे भी ईश्वर बुला लेगा
किसी-न-किसी बहाने
पड़ोस की उस औरत की तरह
जिसके घर में अभी भी
गरीबी में आटा गीला हो जाता है
बड़ी बहन की तरह
जिसकी मृत्यु के बाद भी
चारदीवारियां है घर के बाहर
चींटी की तरह

जिसके रास्ते में बर्बर हैं पांव मनुष्यों के
कौवे की तरह
जिसके संगी-साथियों के लिए
आकाश में बिछे हैं
बिजली के नंगे तार
पौधे की तरह
जिनके बच्चों के ऊपर
तेज धूप है चिलचिलाती
कुत्ते की तरह
जिसकी बिरादरी को खतरा है
पीछे आती किसी-न-किसी तेज गाड़ी से
मैं उस कुत्ते, पौधे, कौवे, चींटी, बड़ी बहन
और पड़ोस की औरत को याद करता हूं
और उसकी स्मृति में एक फूल रखता हूं. ■

रोज़ का साथ या रोगों से मुलाकात?

बच्चे अपना अधिकतर समय स्कूल में, या खेल के मैदान में, अपने दोस्तों के साथ गुजारते हैं। ऐसे में संक्रामक रोगों का शिकार होना स्वाभाविक है। और कहीं अगर ऐसा हो जाए, तो होती है खेलने-कूदने और पढ़ाई के कीमती दिनों की बरबादी।

अगर आपका बच्चा इन संक्रामक रोगों का आसानी से शिकार हो जाता है तो क्या आप भी इसका इलाज दवाईयों मे खोजती हैं? जो, अन्ततः आपके लाडले की रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक शक्ति को क्षीण करती हैं। वास्तव में जरूरत है उसकी भीतरी शक्ति के विकास की, जो उसको रोगों से मुकाबला करने की शक्ति दे।

आजमाइये डाबर च्यवनप्राश— एक खास हैल्थ टॉनिक

आंधुनिक अनुसंधान ने डाबर च्यवनप्राश की अनोखी विशेशता की पुष्टि की है: जो शरीर की आंतरिक सुरक्षा प्रणाली, यानी आपकी प्रतिरोधक शक्ति को मजबूत बनाता है। यह कीटाणुओं और संक्रामक रोगों से लड़ने में सहायता करता है।

तनाव और संक्रमण के विरुद्ध डाबर च्यवनप्राश की अदृश्य आभा।

पूर्णतः प्राकृतिक, पूर्णतः सुरक्षित और सभी कुप्रभावों से मुक्त

डाबर च्यवनप्राश 49 फलों, जड़ी-बूटियों और खनिजों का एक संतुलित एवं प्रामाणिक आयुर्वेदिक नुस्खा है। इसमें है आँवला, जो संक्रंमण से लड़ने के लिए जरूरी विटामिन "सी" का सबसे उत्तम प्राकृतिक स्रोत है। इस गुणकारी नुस्खे का विस्तृत वर्णन, लगभग 2000 वर्ष पूर्व महर्षि चरक ने अपने ग्रंथ "चरक संहिता" में किया है। और समय के साथ-साथ लोगों ने इसकी उपयोगिता को सराहा है और यही कारण है कि आज 2.5 करोड़ से भी अधिक लोग डाबर च्यवनप्राश का नियमित सेवन करते हैं।

डाबर च्यवनप्राश में है डाबर की 108 वर्ष पुरानी परंपरा का विश्वास, और क्वालिटी कंट्रोल की कसौटी पर खरा होने का वादा।

आज का टॉनिक

अन्य साधारण टॉनिकों की अपेक्षा डाबर च्यवनप्राश एक संपूर्ण "स्वास्थ्य रक्षक" है। जिसका नियमित उपयोग आपको तनाव और संक्रामक रोगों से मुकाबला करने की शक्ति देता है। और आप अपना हर दिन नए जोश और नयी स्फूर्ति से आरम्भ कर सकते हैं।

डाबर च्यवनप्राश के मुख्य तत्व व उनके कार्य

आँवला ऐन्टी-ऑक्सीडेन्ट, प्रतिरोधक शक्ति का विकास।
करकतश्रृंगी तनाव में सदुपयोगी।
भूम्यामलकी यकृत की सुरक्षा करे।
पिप्पली तनाव घटाने पाचनक्रिया में उपयोगी।
विदारीकंद बेहतर रस प्रक्रिया के लिए।
बला बेहतर रस प्रक्रिया एवं तनाव घटाने के लिए।
मुस्तक सूजन कम करे।

क्या आप जानना चाहते हैं कि डाबर च्यवनप्राश आपकी प्रतिरोधक शक्ति का विकास कर संक्रामक रोगों से कैसे मुकाबला करता है? मुफ्त जानकारी के लिए यह कूपन इस पते पर भेजें **डाबर च्यवनप्राश पोस्ट बाक्स 7026 नई दिल्ली 110065**

7A

क्या आपने डाबर च्यवनप्राश का उपयोग पहले किया है?
☐ हाँ, —— साल से। ☐ नहीं।
क्या आप आयुर्वेद पर अधिक जानकारी चाहते हैं? ☐ हाँ। ☐ नहीं।

नाम ______
पता ______
______ पिन ______

डाबर च्यवनप्राश

भीतरी शक्ति का विकास

डाबर इंडिया लिमिटेड हर्षा भवन ब्लॉक ई कनाट प्लेस नई दिल्ली 110001

Response 22021

पानी में नबूवत

• संजय चतुर्वेदी
• चित्रः सुबाचन यादव

सावन झरता है
जैसे पेड़ों पर उतरती हो वही
मीलों तक फैली है जलवायु
सृष्टिकर्ता का दूरदर्शन बूंदों में उतरता है घास पर
सताई हुई धरती पर इलहाम बरसता है

खुदा जिन्हें तौफ़ीक देता है उन्हें सब्जियां खाने को मिलती हैं
और मसख़री खुदा तक पहुंचने का आसान रास्ता है
प्रकृति तू हमें भय से मुक्त कर
और जो खुलकर हंस नहीं सकतीं
वे क़ौमें नष्ट हो जाती हैं

सूरज के सामने सभी ग्रह अस्त हो जाते हैं
हालांकि बुध काफी देर तक नहीं मानता
और आदमी की खोपड़ी में घुस जाता है
बादलों के सामने सूरज अस्त हो जाता है.
और आदमी बादलों के सामने अस्त नहीं होता

कि ईश्वर ने कभी अवतार नहीं लिया
और पुत्र तो उसके सभी बराबर हैं
और यह तो ठीक-ठीक कृष्ण भी नहीं जानते थे
कि ईश्वर है भी या नहीं
हालांकि उनकी जीवनी पढ़कर लगता है
उन पर श्रीमद्‌भगवत्‌कृपा रही होगी

कि पृथ्वी में कितना पारा है
यह तो तभी पता चल गया था
जब पिंड में अंड आया और प्राणों ने ओढ़ी प्रोटीन की चादर

घूंघट की लाज रखना कठिन है
और लहर-पहर है डगर पनघट की

कि नेकी के रास्ते परलोक संवरता है
और बदी के रास्ते इहिलोक
हालांकि जो बदी करते हैं वे कभी ठीक से सो तक नहीं पाते
फिर वे संवारते क्या रहे जिंदगी भर

इंसानों ने ऐसी बहुत सी किताबें लिखीं
जिन्होंने इंसानों को नेकी के रास्ते पर बुलाया
लेकिन भगवत्‌कृपा से इंसान अकसर बदी के रास्ते भी चला

जिस तरह आलू को सब्जी और पालक को हरी सब्जी कहना
भाषाई बेवकूफी है.
उसी तरह सृष्टिपालक को नायाब हरी सब्जी कहना
आध्यात्मिक सूझबूझ
कि पालक और सृष्टिपालक का समुचित सेवन
दीन और दुनिया दोनों को फ़िट रखता है
और इतने तरह की सब्जियां बना दी हैं उसने
कि हम तो उसका ठीक से शुक्रिया भी अदा नहीं कर सकते

कि कुछ शर्तों से ही अगर कविता हो जाती
तो कौन हाथ पैर मारता
कुंए में गिरे तो काम से बचे

कि अपराध में छुपा जो इंसाफ है और
भद्रता में छुपा जो अपराध है
इसे कोई टेलीविजन नहीं दिखा सकता

वाह! क्या कड़क क्या ज़ायका,
जवाब नहीं इस चाय का!

ज़िन्दगी में हर चीज़ कड़क चाहने वालों के लिए खुशखबरी! 'यूल रेड' अब पेश करते हैं 'सी टी सी चाय'। यानी असली कड़क और दमदार चाय। आपकी ख़ास पसन्द के अनुरूप। हर दम चुस्त और तरो-ताज़ा रखने के लिए। डुआर्स और असम में ख़ुद हमारे चाय बागानों में उगाई गई ताज़ा चाय। यूल रेड सी टी सी चाय। आपके लिए हर कप में ज़्यादा कड़क, ज़्यादा ताज़गी। ज़िन्दादिली और चुस्ती-फुर्ती का नया फ़ॉर्मूला।

YULE

YULE RED

चाय बागानों से लाई ताज़ा चाय

यूल
से बेहतर कौन जाने
चाय को!

INTERACT VISION : 2055 Hin

व्यापार सम्बन्धित जानकारी के लिए सम्पर्क करें: एण्ड्रू यूल एण्ड कम्पनी लिमिटेड, कलकत्ता: ' यूल हाउस ', 8, ड. राजेन्द्र प्रसाद सरणी, कलकत्ता-700001. फोन : 242-2102, 2113, 2414, 2435, 2149. फैक्स : 2424417.
नई दिल्ली : 401-402, लक्ष्मी भवन, 72, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-110019. फोन : 6443865, 6418168. फैक्स : 6475683

कि हम पापियों को नष्ट किए जाते हैं
और पाप नष्ट नहीं होता
और अखबारों में बनाने बिगाड़ने वाले नहीं जानते
कि ईश्वर ने कभी अखबार नहीं पढ़ा

कि चंद्रमा जिसकी गति मन की तरह चंचल है
और जो पृथ्वी पर द्रव-स्थैतिकी का नियंता है
इस समय होगा कहीं बादलों के पीछे
कि शाइरी अल्ला मियां का सीरियल है
जो बेपनाह चैनलों पर एक साथ चलता है
कि गेहूं और चावल जैसे और भी तमाम सीरियल
खुदा ने इस धरती को दिए लेकिन उन पर बदी का कब्जा है
कि गेहूं और चावल के विजेता शाइरी पर कब्जा नहीं कर सके

आत्मा देखती है जो मन नहीं देखता
कि जल में उतरता है अंतरिक्ष
जैसे बुध उतरता हो चंद्रमा में
शाइर एक छोटा-मोटा नबी होता है
उससे भी बढ़े तो काव्य प्रवेश करता है ईश्वर की सत्ता में
ऋतुओं ने गर्म तवे पर रखी है बर्फ
भाप से उठती है नबूवत
जड़े तोड़कर उड़ती है सौ पंखों की सौदामिनी
दिशाओं में काम करती हैं चुंबकीय रेखाएं
और यहां सावन है
हवाओं में बनते हैं ऋतुमहल
और जलवायु में जो काव्य है
वह पृथ्वी के पारे पर गिरता है रिमझिम. ■

शोक गीत

• **कात्यायनी** • चित्र: कविता नायर

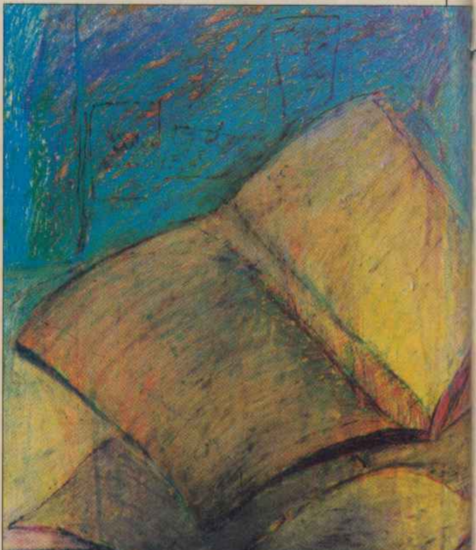

बस यूं ही गुजार दी जिंदगी.
नहीं रच सके कोई 'एपिक'.
न हो सके विज्ञ जनों की आंख के तारे
न किसी आलोचक श्रेष्ठ के राजदुलारे.
अपुन तो बस यूं ही गुजार दी पूरी जिंदगी.
प्यार किया
एक मामूली आदमी की तरह
राशन-पानी जुटाया
सब्जियों की खरीदारी की
पूरी जिम्मेदारी के साथ.
भरपूर गुस्से के साथ
जुलूस में शामिल हुए महंगाई के खिलाफ,
निष्ठापूर्वक गए हड़ताल पर.
नहीं बना सके
एक शांत-सुरुचिपूर्ण अध्ययन कक्ष.
जब एक उत्कृष्ट कविता
लिखने का समय था
उस हारे हुए समय में भी
लिख रहे थे दीवारों पर नारे.
जब लिखनी थी
अपने समय की सर्वाधिक चर्चित कहानी
लिख रहे थे हड़ताल का पर्चा.
सामान्य ही रहे अंत तक.
यूं हुए असफल.
अपनी सभी विलक्षण कारगुजारियों को
मानवता की सेवा में प्रस्तुत कर
न हो सके महान.
नहीं लिखेगा कोई गण्यमान्य कवि
एक शोकगीत
मेरे मरने के बाद.
यूं होगा
एक कठिन
कहानी का
सुखांत.

या कि होगा?

एक दिन
पर्यावरण की सुरक्षा पर
कोई कार्यक्रम नहीं हुआ.
जनसंख्या-विस्फोट पर
नहीं प्रकट की गई कोई चिंता.
कला की शर्तें
पूरी करने के लिए
नीलामी नहीं बोली गई
सच की, या ईमान की.
एक दिन
मृत्यु नहीं हुई किसी कवि की
या कविता की,
नहीं बैठा कोई विद्वान
किसी पूर्वज की पीठ पर
न ही कोई पुरस्कार बंटा
न तालियां बजीं.
उस दिन
कानून-व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त
करने की
कोई नई कोशिश नहीं हुई,
न कोई हत्या, डकैती, राहजनी हुई
न कोई व्यापार समझौता.
उस दिन
नहीं छपे पूरी दुनिया में अखबार.
अद्भुत था वह एक दिन
जो नहीं था
वास्तव में कभी
पर सोचते हैं सभी
कि था कभी ऐसा एक दिन
जीने के वास्ते.
...या कि होगा? ■

प्रिय पॉलिसीधारकों

बेहतर सेवा के लिए जीवन बीमा निगम की मदद कीजिए!

1

दस्तावेजों की सुरक्षा : अपने पॉलिसी बॉण्ड और अन्य दस्तावेजों को सावधानी के साथ और सुरक्षित रूप से रखें। पॉलिसी नम्बर को अपनी डायरी और निजी कम्प्यूटर में नोट कर लें। अपने निकट संबंधियों को पॉलिसी रखने की जगह और नम्बर बताकर रखें। पॉलिसी बॉण्ड खो जाने पर परेशान मत होइए। जीवन बीमा निगम की जिस शाखा में आपकी पॉलिसी है उसे डुप्लीकेट पॉलिसी प्राप्त करने हेतु प्रक्रिया के लिए लिखें।

2

प्रीमियम का भुगतान : अगर आपकी पॉलिसी वेतन बचत योजना के अंतर्गत नहीं है तो प्रीमियम देने की तारीख को नोट करके रखें और इसका भुगतान (नकद/चेक/ड्राफ्ट/बैंक को स्थायी निर्देश द्वारा) उस शाखा कार्यालय में यथा समय करें, जिसमें आपकी पॉलिसी है। अपनी पॉलिसी को कालातीत न होने दें।

3

कालातीत पॉलिसियों का पुनर्चलन : हर संभव प्रयास के बाद भी यदि आपकी पॉलिसी कालातीत हो गयी हो तो इसे आप उपलब्ध चार योजनाओं में से किसी एक के द्वारा फिर से चालू करवा सकते हैं। बशर्ते पॉलिसी को कालातीत हुए पांच वर्ष से कम हुए हों (अपने मामले में उपयुक्त योजना की जानकारी लिए जीवन बीमा एजेण्ट या शाखा कार्यालय से सम्पर्क करें)। कालातीत पॉलिसी को फिर से चालू कराने पर पूरा बीमा संरक्षण तो मिलता ही है, साथ ही साथ, कालातीत अवधि के दौरान का बोनस भी मिलता है।

4

नामांकन/अभ्यर्पण : अपनी पॉलिसी के लिए किसी प्रियजन को नामांकित जरूर कीजिए, ताकि अगर कल दुर्भाग्यवश आप न रहें तो आपकी पॉलिसी की राशि उसे मिल सके। याद रखिए अभ्यर्पण (असाइनमेंट) से नामांकन रद्द हो जाता है। और अपने पक्ष में पुर्न-अभ्यर्पण के पश्चात नया नामांकन जरूरी हो जाता है (केवल उस स्थिति को छोड़कर जब पॉलिसी ऋण के लिए जीवन बीमा को अभ्यर्पित की गयी हो)।

5

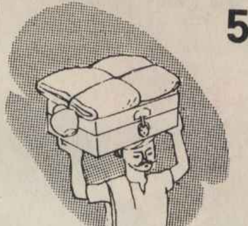

पॉलिसी सेवा का स्थानान्तरण : यदि आपकी पॉलिसी वेतन बचत योजना के अंतर्गत न हो तो किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरण के बावजूद अपनी उसी शाखा कार्यालय पर प्रीमियम का भुगतान जारी रख सकते हैं। और अगर आप चाहें तो, अपनी पॉलिसी को अपने निवास स्थान की नज़दीकी शाखा में स्थानान्तरित भी करा सकते हैं, ताकि आपको प्रीमियमों के भुगतान में आसानी हो।

वेतन बचत योजना पॉलिसियों के लिए जीवन बीमा की सेवा शाखा से अनुरोध करें कि आपके पॉलिसी रिकॉर्ड आपके नए कार्य स्थान की नज़दीकी शाखा को भेज दिए जाएं। साथ ही, आप अपने नये कार्यालय को भी सूचित कर दें कि प्रीमियम का भुगतान निगम की उस शाखा में किया जाए जहां आपके पॉलिसी रिकॉर्ड भेजे गये हैं।

6

पते में परिवर्तन : यदि आप अपना आवास बदल रहे हैं तो नये पते की सूचना जीवन बीमा निगम को देना न भूलें (अपने पॉलिसी नम्बर के साथ)।

7

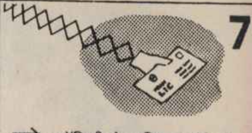

दावे : पॉलिसी के परिपक्व होने से दो माह पूर्व आपको जीवन बीमा निगम से एक डिस्चार्ज वाउचर मिलेगा (मनी-बैक पॉलिसी में विधमानता हितलाभ की देय तिथि से पहले)। कृपया इसे भर कर अपने पॉलिसी बॉण्ड के साथ (अगर यह पहले से ही जीवन बीमा निगम के पास न हो) की उस शाखा कार्यालय को जिसमें आपकी पॉलिसी है देय तिथि से पूर्व भेज दें, ताकि पॉलिसी की परिपक्वता तिथि से पहले ही आप उत्तरदिनांकित चेक प्राप्त कर सकें।

8

अपनी उम्र दर्ज करवाइए : यदि आपने पहले नहीं कराई है तो उम्र का मानक प्रमाण देकर पॉलिसी में अपनी उम्र दर्ज कराईए। इससे दावे के निपटान में सुविधा होगी।

9

अपनी बीमा संबंधी आवश्यकता की समीक्षा कीजिए : यदि आपका बीमा संरक्षण आपकी मासिक आय के 60 गुने से कम है तो बीमा संरक्षण में वृद्धि के लिए अपने अभिकर्ता से सलाह लीजिए।

10

किसी सहायता/स्पष्टीकरण के लिए : पॉलिसी से संबंधित किसी भी सहायता/स्पष्टीकरण के लिए अपने जीवन बीमा निगम के शाखा कार्यालय या अभिकर्ता से सम्पर्क कीजिए।

भारतीय जीवन बीमा निगम

बीमा कराइए सुरक्षा पाइए। जीवन बीमा का कोई विकल्प नहीं।

NPS-6/93-HIN

नयी आसाम गोल्ड।

सीधे आसाम के बागानों से आयी,

बढ़िया क्वालिटी की सी.टी.सी. चाय।

एक सचमुच दमदार चाय, जिसका

हर घूंट देता है नयी जान।

तो आज ही नयी आसाम गोल्ड

आज़माइये—और पाइये वही जानदार

स्वाद।

नयी

आसाम गोल्ड चाय - सीधे बागान से आयी, दमदार स्वाद लायी

Contract ACL 2588 I Hin

दिल्ली एक मेरी भी

• हरिमोहन • चित्र: मोना राय

गांव में उस दिन
खामोश थे अलाव,
पूरी रात गुड़गुड़ाए थे हुक्के
और ग्रामदेवता हुए थे दुःखी.
गांव-भर ने पिता से कहा था:
बड़े लोग रहते हैं दिल्ली में
सुना है, हमारे पहाड़ से भी बड़े;
कुतुबमीनार के बराबर ऊंचे.
घर जिनके लालकिले-से,
बातें एकदम सफ़ेद.
दिल्ली मत जाना,
मूर्ख बनने में ही
सारी उम्र लगा दोगे वहां.
पिता नहीं माने
गए दिल्ली,
बनाया घर.
अच्छी-खासी मिट्टी
उनकी हो गई खराब.

लौटकर आए पिता
उखड़ी हुई सांसें उनकी
बर्फ की तरह गिर रही थी आवाज.
भाई से कहा था उन्होंने:
कहीं जाना, कहीं रहना
दिल्ली मत जाना.
दिल्ली में एक शतरंज बिछा है
जहां आदमी सिर्फ प्यादा होकर रह जाता है,
वज़ीर और बादशाह, घोड़े-हाथी और ऊंट
उसे अपने लिए इस्तेमाल करते हैं.

सो तुम मत जाना दिल्ली
बहुत लोग गए, नहीं लौटे, वहीं काम आए.
भाई नहीं माने.
गए दिल्ली,
लड़े, भीड़ में बनाने वाली जगह.
खाए धक्के,
लौटकर आए, बेहद थके.
गुस्से की खाली बंदूक के
थके हुए घोड़े पर,
रखी हुई बेजान उंगली-भर थे वे.

भाई ने मुझसे कहा:
तुम दिल्ली मत जाना,
न हमारा गांव है वहां
न कोई छांव
हवा-पानी कुछ भी नहीं,
अपना आसमान तक नहीं.
कोई नहीं सुनता दिल्ली में
संसद की तरह हैं वहां के लोग.
खबरों का कारखाना है दिल्ली
आदमी वहां महज एक खबर है,
या आंकड़ा.
बहुत हुआ तो
किसी साबुन के प्रचार में नहाती,
मुस्कराती, गुनगुनाती
बेहद शर्मीली है बेशर्म दिल्ली.
सिखाती हत्या करने की
खूबसूरत कला.

मैं मानता रहा कुछ दिन
भाई की बात.
मुझे जाना पड़ा अंत में दिल्ली
मैंने पाया दिल्ली में
हर आदमी की अपनी एक दिल्ली है,
एक मेरी भी.
मेरी दिल्ली संगीत से भरी
कविता में डूबी
नाटक में जीती
और दिल की तरह धड़कती.
कोई कुछ भी कहे
दिल्ली स्वप्न नगरी तो है.
मैं हो जाता हूं यहां
हवा में फड़फड़ाता आसमान,
किसी के कपड़े पर छपा
खिला छोटा-सा फूल, या—
सुनकर जिसे हंस जाए
उदास मित्र, ऐसी कोई बात.

सोचता हूं जब लौटूंगा कभी
थककर, हारकर या जीतकर;
तो क्या कहूंगा अपने बच्चों से?
मैं कहूंगा: तुम जाना
बादल की तरह; या—
चुपचाप जा-बैठना, खाली किसी मेज
पर-बसंत की तरह; यानी—
ऐसे पहुंचना, जैसे पहुंचती है
अच्छी अचानक खबर.
देखना दिल्ली भी
कितना प्यार करेगी तुमको.
दिल्ली में तुम्हारे लिए भी
एक दिल्ली होगी, ठीक मेरी-जैसी.

सो तुम
दिल्ली जरूर जाना! ■

MAA COMMUNICATIONS 2530-93 HIN

कुछ देर साथ चलो

• मदन कश्यप • चित्र: मोना राय

कुछ देर साथ चलो
महानगर बनते इस शहर की काली सड़क पर
ढलती मगर जलती दोपहरी में चलना कठिन है
फिर भी कुछ देर चलो
यही समय है कि सड़कें सूनी हैं
और तुम्हारा कुछ हटकर चलना भी
साथ-साथ चलने जैसा लगेगा

थोड़ी देर निहारूंगा तेज धूप में दमकता
पसीने से लथपथ तुम्हारा चेहरा
और कभी नहीं प्रकट होने दूंगा
तुम्हें बाज़ू में समेट कर
अंतरिक्ष की ओर भाग जाने की अपनी इच्छा

बस थोड़ा दूर-दूर ही सही
थोड़ी दूर तक साथ चलो

इस शहर में शामें सुनहली नहीं होतीं
कोई ऐसी ममतामयी वाटिका भी नहीं
जिसके एकांत के आंचल में थोड़ी देर दुबक सकें हम
कोई झील नहीं
जो हमारे स्नेह को दे सके शीतल स्पर्श
बस तपती हुई सड़क का यह निर्मम सूनापन है
यह काफी है कुछ दूर तक साथ चलने के लिए
फिर तुम लौट जाना अपनी गली की ओर
लौट जाना कि बच्चे स्कूल से लौट आए होंगे
वक्त बहुत मेरे पास भी नहीं है
जल्दी पहुंचना है बस-अड्डा
और अंधेरा होने से पहले लौट जाना है अपने शहर में
वक्त नहीं है फिर भी थोड़ा-सा है
कुछ देर साथ चलो!

एक

नीम रोशनी में कुछ भी नहीं किया जा सकता
बातें कही और सुनी तो जा सकती हैं
बतियाया नहीं जा सकता
कविता नहीं लिखी जा सकती
प्यार तो हरगिज नहीं किया जा सकता
नीम रोशनी में
अपने समय को भी नहीं देखा जा सकता
फिर इतिहास को देखने की तो बात ही बेमानी है

घुप्प अंधेरा हो

और कुछ भी न दिखे आंखों को
तो हाथ खोज लेते हैं दिशा
पांव ढूंढ़ लेते हैं रास्ता
कितनी खतरनाक है यह नीम रोशनी
कि सब कुछ दीखता है
पर कुछ भी साफ-साफ नहीं दिखता!

दो

जब आदमी सिर्फ आवाज़ों के पीछे दौड़ने लगे
और रोशनी इतनी मद्धिम हो
कि पुकारने वाले छायाओं की तरह दिखें
तब किसी भी चीज़ को धुंधलाया जा सकता है
इतिहास को
विश्वास को
किसी भी चीज़ को
पीछे-पीछे भागते आदमी के साथ यह सुविधा है
कि वह सोचता हुआ नहीं होता!

तीन

उन्होंने सब से पहले रोशनी धुंधली की
पसीने की तरह इत्मीनान से पोंछ डाले
अपने चेहरे से खून के छींटे
और रक्त के फव्वारों को
इतिहास की ओर मोड़ दिया
वे सदी के सबसे चालाक हत्यारे हैं
उनका दावा है
उन्होंने दुनिया भर की बेहतरी के लिए की हैं
दुनिया भर की हत्याएं! ■

The fashion pundits say stripes. You demand a perfect fall. Your tailor pulls out weighing scales.

It's a question of balance. Between the emotional and the real. At BSL, we've decided to work on the latter. Reality says the weight of the fabric, a critical factor for the tailored garment, should be light. Present any top-of-the-line BSL suitlength to your tailor. He'll tell you it's a lightweight. In fact, so would fashion pundits, the world over. Those gurus creating styles and designs that fuel your emotional side. Then again, after you've glossed over the styles, you get rational. You demand a perfect fall. And a BSL lightweight suit, contrary to fuddy-duddy perceptions, provides that perfection. The BSL lightweight suitlength. Your tailor would say the scales are tipped in your favour.

BSL

FABRICS • WOOLLENS • SUITLENGTHS

Who else will go to such lengths?

LINTAS (D)/BSL/2738-B/93

रात की सुस्ती दूर
दिन में चुस्ती भरपूर

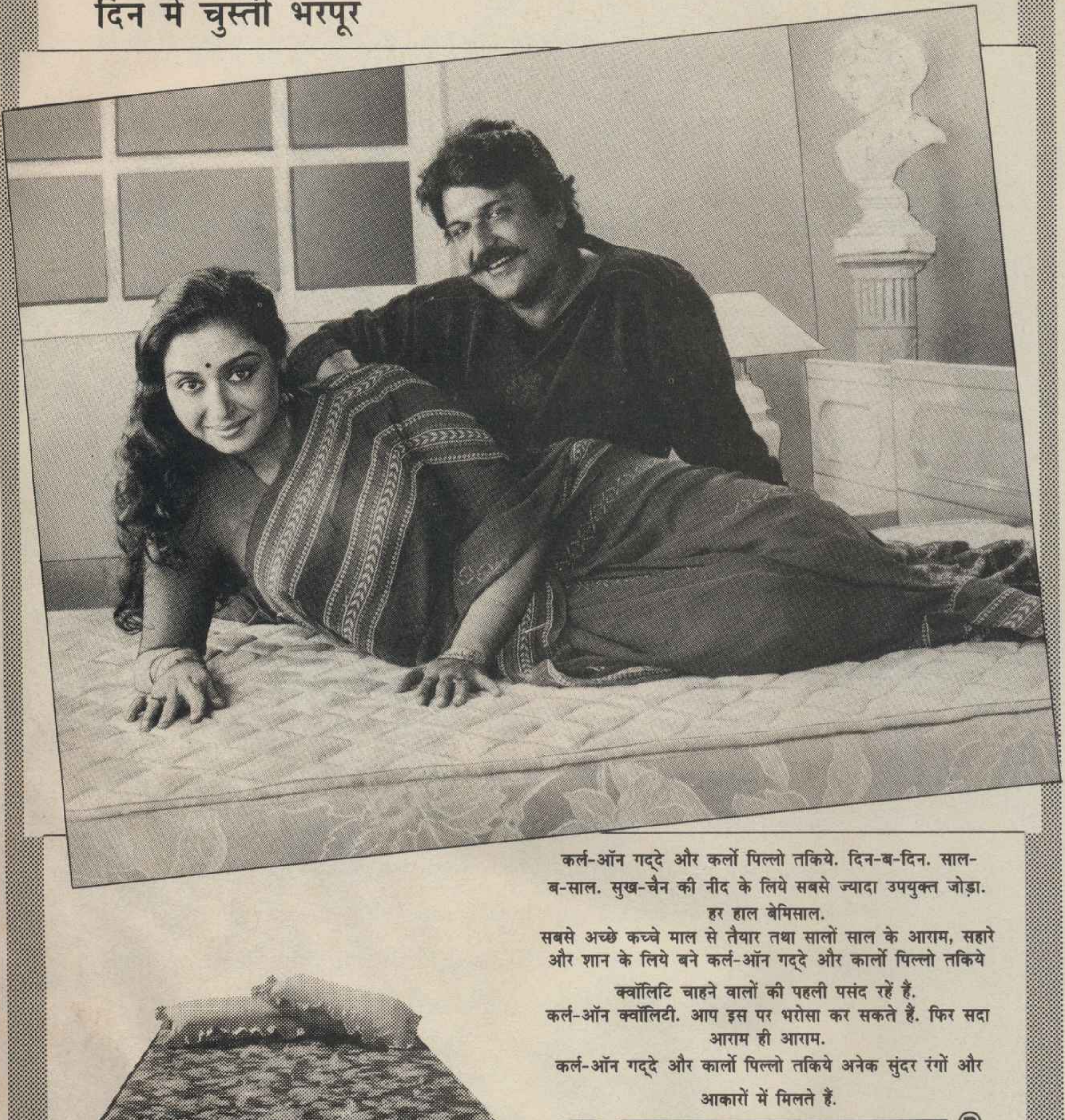

कर्ल-ऑन गद्दे और कर्लो पिल्लो तकिये. दिन-ब-दिन. साल-ब-साल. सुख-चैन की नीद के लिये सबसे ज्यादा उपयुक्त जोड़ा.

हर हाल बेमिसाल.

सबसे अच्छे कच्चे माल से तैयार तथा सालों साल के आराम, सहारे और शान के लिये बने कर्ल-ऑन गद्दे और कार्लो पिल्लो तकिये

क्वॉलिटि चाहने वालों की पहली पसंद रहें हैं.

कर्ल-ऑन क्वॉलिटी. आप इस पर भरोसा कर सकते हैं. फिर सदा आराम ही आराम.

कर्ल-ऑन गद्दे और कार्लो पिल्लो तकिये अनेक सुंदर रंगों और आकारों में मिलते हैं.

Kurl-on®

गद्दे

Kurlopillo®

तकिये

भारत में सबसे अधिक बिकने वाला जोड़ा

Karnataka Consumer Products Ltd.,

Marketing Division: III Floor, North Block, Manipal Centre, No. 47, Dickenson Road, Bangalore-560 042. Ph: 587132/168/235/238/262.

Offices & Showrooms: Phone Nos: Bangalore: 266746, 233212; Hubli: 73086; Mangalore: 21721; Cochin: 366744, 354199; Madras: 846768, 831710; Coimbatore: 34361; Madurai: 30564 (PP); Hyderabad: 234560; Vishakapatnam: 51345; Tirupathi: 22235; Bombay: 5113220; Pune: 434090, 434592 (PP); Nagpur: 528559, 528595; Ahmedabad: 369687; Surat: 24701 (PP); Bhopal: 67874; Raipur: 426940; New Delhi: 732133, 7772019; Chandigarh: 29203 (PP); Jaipur: 46523; Kanpur: 247211; Ghaziabad: 726214; Calcutta: 271528, 2489650; Siliguri: 25054; Bhubaneswar: 407740; Patna: 657911; Ranchi: 28373; Guwahati: 46358, 31702; and also at Goa, Calicut, Indore, Faridabad, Rourkela.

सिनेमा

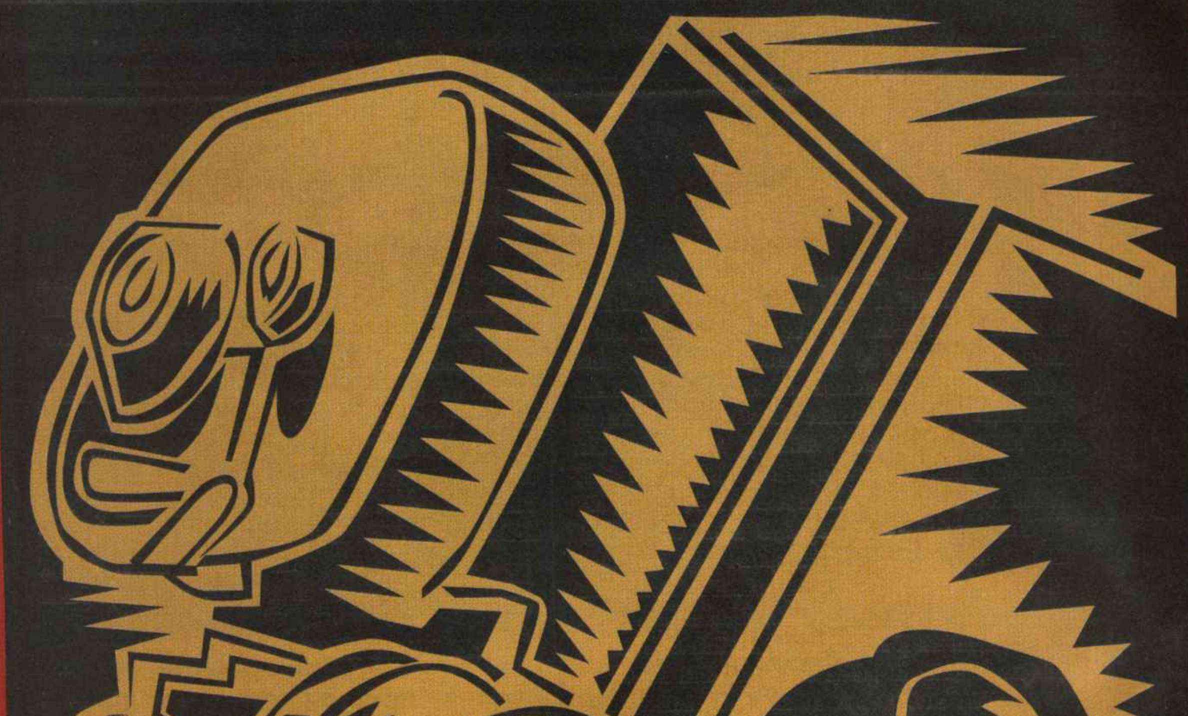

दिलीप कुमार से जावेद अख्तर की खास बातचीत

फिल्मी गीत: रंगोली से चोली तक

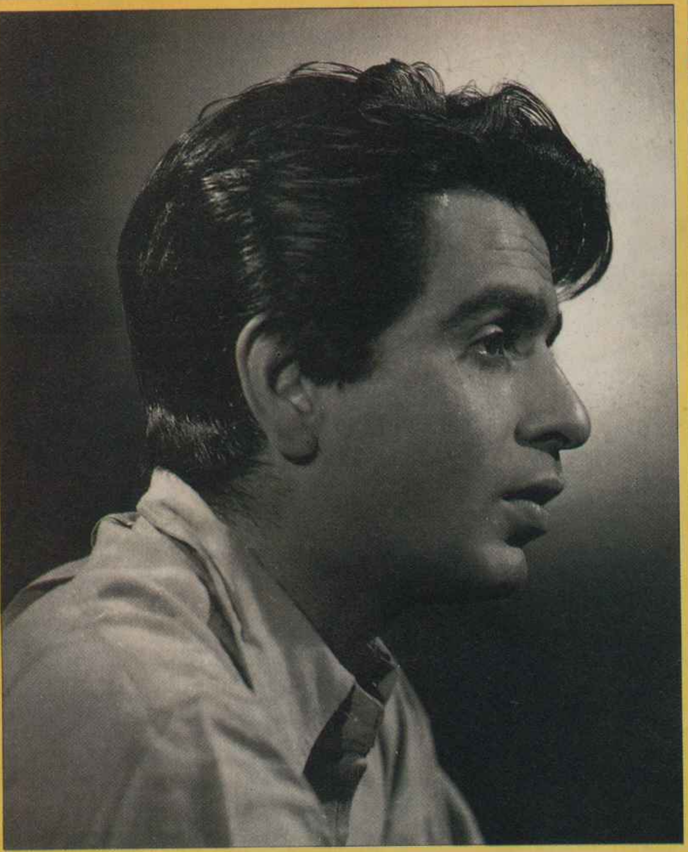

"अपने साये से कई गुना छोटा हूं मैं"

अपनी अदाकारी पर भरोसे का पहला एहसास

कई वर्षों तक अपने जमीर पर ये बोझ लादे रहा कि देखो आता-जाता तो तुम्हें कुछ है नहीं. खुदा जाने किस दिन पकड़े जाओगे और लोग कहेंगे कि भई छोड़ो पीछा हमारा. ये काम तुम्हारे बस का है नहीं. पहली बार जब एक पिक्चर थोड़ी-बहुत चल गई, दूसरी चल गई तो मैंने समझा ये कुछ हादसे हुए. मगर इसमें भी कुछ गुंजाइश है, जगह है अपने लिए, ये तब मालूम हुआ जब हिंदी और बंगला पिक्चर 'मिलन' बनने लगी और नितिन (बोस) बाबू ने ये रवैया अख्तियार किया कि मुझसे शॉट कराते और गोविंदो (अभि भट्टाचार्य) को कहते थे कि देखो तुम यूसुफ को देखो, उसके रिहर्सल को देखो. हालांकि जब मैं रिहर्स करता था तो मैं खुद बेहद नर्वस रहता था और कई तरह से खुद ही शुबहे में रहता था. तो नितिन बाबू उससे कहें कि इस तरह से करो.

एक-एक फिल्म चुनकर और उसको फिर दस-दस, बारह-बारह दफा देखकर कहीं कैफियत पहुंची थी कि थोड़ी जगह ठहर सकें. और नितिन भाई कहें गोविंदो से कि तुम वैसा करो जैसे यह कर रहा है. उसके बाद जवाल साहब की तबीयत जरा नाशाद हुई तो उन्होंने मुझे असिस्टेंट बना दिया. दो बंगाली हीरोइनें थीं—एक हिंदी वर्सन के लिए, एक बंगला वर्सन के लिए. तो जो हिंदी वर्सन के लिए लड़कियां थीं वे मराठी थीं. तो मुझसे कहा कि इनको डायलॉग सिखाओ. चूंकि तलफ्फुज (उच्चारण) मेरा उनकी बनिस्बत बेहतर था, मैं डायलॉग डायरेक्टर बन गया. तो फिर इस तरह का एक गुमान पैदा हुआ कि ये चीज कुछ-न-कुछ मेरी पकड़ में आ रही है. शायद मुझे इसका इल्म नहीं है. तो ये तो अच्छा ही है. वरना मेरे इर्दगिर्द कुछ ऐसे लोग भी थे जिनको अपने बारे में बहुत-सी खुशफहमियां थीं और उनकी हालत बड़ी दर्दनाक होती थी सेट पर क्योंकि सेट पर उस जमाने में बाज दफा बड़ी सफ्फ़ाकी (सख्ती) से पेश आते थे डायरेक्टर.

तो इस मुकाम पे बड़ी दानिस्ता कोशिशों के बाद मैं पहुंचा हूं. इसके अंदर बहुत-सी अंदरूनी तहरीकें थीं. और इसके लिए कई रातों की नींद गंवानी पड़ी, खुद को बेपनाह दर्द देना पड़ा और इसे जानने के लिए और इसे पुख्ता करने के लिए काफी मशक्कत करनी पड़ी. वो पहली मंजिल या पहला जीना वही था फिल्म 'मिलन', जिसमें मुझे अभी तक आइडिया नहीं है कि काम मेरा अच्छा था या बुरा.

और अगर आप मुझसे पूछें कि कौन था जिसने मेरी सबसे ज्यादा रहनुमाई की, तो मैं उसमें खुला एतिराफ (इकबाल) करूंगा कि बहुत कुछ मदद मुझे नितिन बाबू से मिली. वे इस बात पर बिलकुल मुसिर थे (जोर देते रहते) कि ये जो कैरेक्टर तुम प्ले कर रहे हो, तुम इससे खूब इख्तिलात (करीबी) में रहो. और उसको मैं खुद भी अपने तईं एक बड़ा तारीखी कहिए या बामानी कहिए या उम्मीदअफ्जा मोड़ समझता हूं अपने काम का.

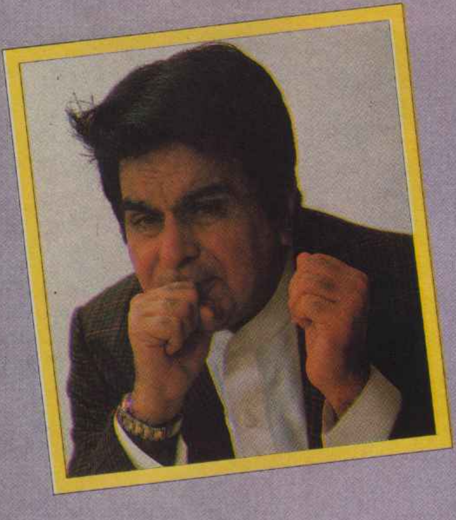

जाने-माने फिल्म पटकथा लेखक जावेद अख़्तर से अपनी यादें और जज्बात बयान करते प्रख्यात फिल्म अभिनेता
दिलीप कुमार

सीखने का शुरुआती दौर

यकीनन आदमी जब किसी काम की इब्तिदा करता है तो वो किसी-न-किसी से मुतअस्सिर (प्रभावित) होता है. मेरा एक प्रॉब्लम, मसला ये था कि हिंदी फिल्में मैंने सिर्फ दो ही देखी थीं—'विद्यापति' और 'द ओनली वे' जो महबूब साहब ने बनाई थी. और उसमें शेख मुख्तार और अरुण कुमार साहब (गोविंदा के वालिद) थे. और एक उसके बाद ही देखी 'मुसाफिर' जिसमें चार्ली कॉमेडियन थे. तो मेरे सामने ऐसे कोई नक्श नहीं मौजूद थे जो मैं उनके काम से बड़ा मुतअस्सिर होता. अलबत्ता अंग्रेज़ी फिल्में बहुत देखी थीं. मैंने इतना कुछ जो देखा था कि मैं इतनी उलझन में था कि जब इस काम में आया था तो मैंने जो देखा था वो भी मैं भूल गया. और एक मुसल्सल बौखलाहट की कैफियत रहती थी. स्टुडियो में जाकर देखता था कि क्या कर रहे हैं. वहां पर पिक्चर शूट हो रही थी बांबे टाकीज की. वहां जो हीरो कर रहा था और जो हीरोइन कर रही थी वो मुझे इतना मस्नुई (बनावटी) लगता था कि मैं सोचता था इसमें मुझे क्या करना है. कभी-कभी ये कयास जरूर गुजरा कि कम-से-कम ये चीजें नहीं करनी चाहिए. और जो सबसे ज्यादा काम आईं वो थीं बाहर की फिल्में. इसलिए मैंने ये जो चंद आर्टिस्ट थे, जो अच्छे माने जाते थे उनमें पॉल मीनी थे, स्पेंसर ट्रेसी थे, कुछ फ्रेंच आर्टिस्ट थे, डैनियल डैरे, ज्यां गबां, पीटर लॉरे, जेम्स स्टुअर्ट, इंग्रिड बर्गमैन...इन सबसे मुतअस्सिर था. गार्बो की एक-दो फिल्में देखी थीं, उससे मैं बहुत मुतअस्सिर नहीं हुआ. अलग-अलग पर्सनालिटीज़, अलग-अलग इनके परफार्मेंस. इन लोगों के जो परफार्मेंस थे वे हैरत में डाल देते थे. इन लोगों और इनके काम से बहुत कुछ सीखा जा सकता था. खामोश अदाकारी मगर बेहद असरदार, ये मैंने औरतों के परफार्मेंसेज में देखे. पर उस वक्त इतना शऊर नहीं था कि मैं उनके परफार्मेंस को तौल करके कुछ खास मख्सूस चीज हासिल करूं. उस वक्त मैं हल्का-फुल्का-सा असर लेकर चला आता था.

अहम होता है निर्देशक का रोल

चंद डायरेक्टर्स जिनके साथ मैंने काम किया, हरेक का अपना अलग-अलग ढंग और टेक्नीक था. जो अच्छा काम करते हैं वो बड़ी तफ़्सील से बात अपनी बताते हैं. और हर अच्छे डायरेक्टर को मैंने देखा है कि वो पहले आपको इंस्पायर (सोचने पर मजबूर) करने के बाद या बताने के बाद जानना चाहेगा कि आप कैसे इंटरप्रेट (पेश) करना चाहते हैं. तो उस पर एक मुख्तसर-सी बात होती है. कोई लंबी-चौड़ी ऐसी बात नहीं होती है. और इमीजिएट रिस्पांस (फौरी राय) जो है, अगर हमने कोई होमवर्क किया हुआ है, वह उसे दी तो उस पर वो तजवीज करता है. फर्ज कर लीजिए कि अगर मुझको उससे इख्तिलाफ़ (मतभेद) है तो मैं कहूंगा कि ऐसा लग रहा है. लेकिन अगर वो उस पर जोर दे रहा है और वो अच्छा डायरेक्टर है...और मैंने हमेशा कोशिश की है कि कम-से-कम जानकार आदमियों के साथ काम करूं... और मेरी मंशा ये होती है कि डायरेक्टर ने जो कन्सीव किया (सोच रखा) है उससे मैं एक-दो कदम ऊपर चला जाऊं.

तकरीबन 30-40 वर्ष पहले तो हम सब मक्तब ही थे. सब सीखना ही सीखना था. उसके बाद अपने काम में थोड़ी-बहुत डिग्रियां हमको भी मिलीं. उसके बाद जो हमारा राबितः (संपर्क) हुआ नए डायरेक्टरों से तो तीन डायरेक्टरों का मैं... एक तो मैंने बहुत कुछ सीखा तपन सिन्हा से. बहुत ही विविड (विविध) उनका कंसेप्ट (सोच) होता. और इतनी तफ़्सील से समझाते कि किरदार साफ समझ में आ जाता. और किरदारों के बीच इंटरप्ले (संवाद आदि) का मैनेजमेंट बड़ा अच्छा करते थे. बाज दफा ये होता है कि हम अपनी बोल रहे हैं. वो अपनी बोल रहा है. वो भी ठीक डायलॉग बोलता जा रहा है. मेरे भी डायलॉग ठीक हैं. और तीसरा कोई कैरेक्टर है वो भी बोल रहा है और डायरेक्टर ने शॉट ले ली है और ओके भी कर दिया है. लेकिन उनके अंदर जो इंटरप्ले (रिश्ता बनना चाहिए) है वो नहीं हुआ. इंटरप्ले का मैनेजमेंट जो है वो मैंने बहुत कम लोगों में देखा. एक विमल राय में था, जरा कम था. नितिन बाबू बहुत अच्छा करते थे. किरदारों में आपसी रिश्ता और संवादों की अदायगी आदि पहलुओं में तपन बाबू बहुत अच्छे थे.

नए डायरेक्टर्स में जो सीन को समझाते हैं उनमें रमेश सिप्पी अच्छे और सटीक हैं. इस डायरेक्टर को मालूम है कि ये सीन मैं कर रहा हूं. इस सीन का हॉट स्पॉट (अहम बात) ये

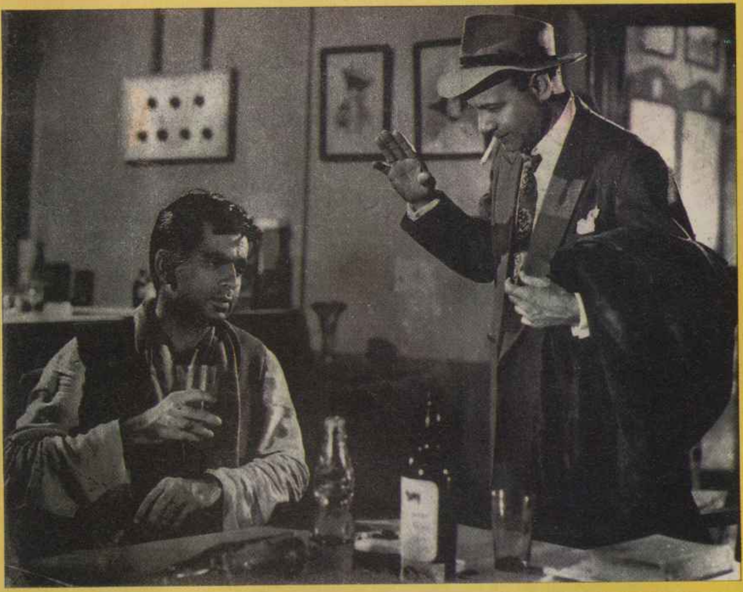

'देवदास' में मोतीलाल के साथः ट्रेजडी किंग का रुतबा

त *करीबन तीस-चालीस वर्ष पहले तो हम सब मक्तब थे. सब सीखना ही सीखना था. उसके बाद अपने काम में थोड़ी-बहुत डिग्रियां हमें भी मिलीं."*

है. उनके अलावा हैं यश, या सुभाष हैं. सुभाष कामयाब हैं, उनकी तकनीक, मूसीक़ी (संगीत) अदायगी वगैरह.... मैंने उस दिन फोन किया—कैसे हो? तो कहा कि साब जी सलाम अलैकुम. क्या हाल है? तो मैंने उससे पूछा कि चोली के पीछे क्या है? मेरा मतलब था मजाक करना कि कोई जदीद (नई) चीज ऐसी तो है नहीं, कोई ऐसा बड़ा राज तो है नहीं. और मैंने कहा कितना कोहराम मचा दिया कि टोपी के नीचे क्या है. भई टोपी के नीचे सिर है. जूते के अंदर क्या है. जूते के अंदर पैर है. मुझे पता नहीं क्यों ये लोग तुम्हारे पीछे पड़ गए हैं. तो बात करने लगा कि क्या करें साब जी, पिक्चर तो बेचनी है, और बड़ी सड़कें नापी हैं पैदल तो थक गया हूं. तो जो भी है इस तरह का करते हैं. आप तो समझते हैं. मैंने कहा, हां मैं खूब समझता हूं भई. मैं खुद इस मुसीबत का शिकार हूं... और दूसरे अच्छे डायरेक्टर हैं यश चोपड़ा. अभी उनकी एक पिक्चर बनी थी 'लम्हे'. बड़ी एक्सेलेंट मुझे उसकी टेक्नीकेलिटी लगी. सुभाष अपना सारा काम अकेले करते हैं या मतलब के लोगों—ऐक्टर, म्यूजिक डायरेक्टर वगैरह—के साथ मिनी कॉन्फरेंस में करते हैं, लेकिन यश ज्यादा राय-मशविरे करते हैं जो कि मेरे ख्याल से काम करने का सही तरीका है.

'लीडिंग लेडीज़' : अंदाज अपने-अपने

इन लोगों का क्या है कि अपना-अपना रवैया रहा काम करने का. वैजयंतीमाला अपने डायलॉग बोलती जाएंगी और आपके चेहरे को देखने के बजाय आपके कान से भी जरा-सा निशाना उनकी नजर का कैमरे की फ्रेम पर होगा, क्योंकि साउथ में यह है कि आप इधर मत देखिए, उधर देखकर बात करेंगी तो आपके चेहरे का फ्रंटेज बड़ा अच्छा मिलेगा. तो उनके साथ तो राबितः का सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि वो तो कहीं और ही देख रही हैं. अदाकारी जिसको कहते हैं वो उन्होंने देर में शुरू की.

लेकिन सबसे ज्यादा उपज जिसमें काम की... यानी जहां कि अगर आपसे कोई बात कर रहा है और बात हीरोइन नहीं कर रही, फर्ज कर लीजिए मैं कर रहा हूं लेकिन उसकी नजरों से मुझे बिलकुल लग रहा है कि पूरी तरह से सुन रही है मेरी बात. कभी माथे पर शिकन है, कभी क्या है, कभी क्या है और आंखें बोल रही हैं. आप देख रहे हैं कि आपकी बात सुनते हुए वह अपनी आंखों से बराबर जवाब दे रही है...उनमें, आपको हैरत होगी कि, मैं नलिनी जयवंत को मानता हूं. उसका पहला रिहर्सल उसका आखिरी रिहर्सल होता था. यानी वह इतनी तैयार रहती थी. मुझे आदत है रिहर्सल करने की एक दफा, दो दफा, तीन दफा. उसमें जबरदस्त सब्र था. अगर मैंने अपनी अदायगी में कुछ बदलाव किया कि खड़े-खड़े जेब में हाथ डाला तो उसने देख लिया कि मैंने क्या किया. यह कोई स्क्रिप्ट या डायरेक्शन से जुड़ी बात नहीं होती. ये आर्टिस्ट की अपनी उपज है कि काम में वो किस कदर डूबा है.

मीना कुमारी बहुत अच्छी थीं. हमेशा ऐसा लगता था कि वे बिलकुल सीन से बावस्ता हैं. कामिनी कौशल जब लापरवाही से काम करती हैं तो इनको दूसरी पिक्चरों में मैंने देखा कि ये भी फिर तंग आकर करती हैं या उतनी सफाई से दूसरी पिक्चरों में नहीं. बस डायलॉग अपना बोल दिया.

हम आर्टिस्ट किसी सीन में तभी जान डाल सकते हैं जब उसमें पूरी तरह डूब जाएं और स्क्रिप्ट को पूरी तरह अपना लें. डायलॉग राइटर ने कुछ लिखा है तो इतना ही काफी नहीं है कि हम उसे याद कर डालें. हमें उसे पूरी तरह अपना लेना चाहिए कि ये मेरे अपने हैं. और दोनों आर्टिस्ट मिलकर करें तो सीन को बड़ा जानदार बना देते हैं. और राइटर भी महसूस करता है कि हां मैंने जो सोचा था उसका मतलब तो यही था. अब मैंने देखा कि कई राइटर्स देखते हैं, पहचान कर लिखते हैं कि मेरे टूल्स और इंप्लीमेंट्स क्या हैं, अदाकार कौन से हैं, वो किस तरह से अदा करेंगे. इंटरप्ले में डायरेक्टर भी बड़ा अहम हो सकता है. जैसे विमल दा या नितिन बाबू कहते थे कि ये सीन है, मेहरबानी करके अब इसे अपने तईं मांजिए. मकालमे आपने उनको दे दिए, समझा दिए. मुझको दे दिए, समझा दिए और किसी को दे दिए, समझा दिए. अब वो दे रहे हैं छूट कि आप क्या कर सकते हैं कीजिए. तब आपको ऐसे ईमानदार लोग चाहिए जो कड़ी मेहनत कर सकें.

राज कपूर : एक खिलंदड़ा दोस्त

एक प्रोफेशनल डबल एक्सिस था उस जमाने में कि दोनों में से कौन बाजी ले गया या ले जाएगा. मगर इस किस्म का कोई कंपिटीटिव एहसास हमें...अपने रोल में हम खोये रहते थे लेकिन ऐसी नुमायां (जाहिर) बात कि कंपिटीशन (प्रतिद्वंद्विता) है या इसमें उसका कैरेक्टर कैसा है...एक ही पिक्चर में तो हमने काम किया 'अंदाज' में. हम दोनों तकरीबन बचपन से एक-दूसरे को जानते थे. राज के जो दादा थे बिशेशरनाथ जी, वो मेरे अब्बा के दोस्त थे. वे भी पेशावर के रहने वाले थे, हम भी पेशावर के रहने वाले थे. वो अकसर अब्बा से मिलने भी आते थे. कभी पृथ्वी जी भी आते थे. पृथ्वी जी में बहुत खूबियां थीं. अपने वक्त के मशहूर अदाकार थे और बहुत शकील (भद्र), बहुत सुंदर शख्स. और जब अब्बा के सामने आएं तो अब्बा कहें कि पृथ्वी तूने अपने आपको क्या कर लिया यार. इतना तुमको कद-वुद दिया. ये नाचने-गाने वालों में तुम चले आए और नाक कटवा दी. कभी बिशेशरनाथ जी आएं तो अब्बा उनसे कहें कि मूंछ नीची कर यार, मूंछ नीची कर. बेटा एक तेरा...अब्बा मरहूम को नहीं पता था कि यही बात लौटकर उन पर आएगी. मैंने उनको बताया नहीं था कि मैं क्या करता हूं. ग्लैक्सो बिस्किट कंपनी थी. तो मैंने उनसे कहा कि साहब मैं ग्लैक्सो कंपनी में काम करता हूं और ये नहीं बताया कि मैं फिल्मों में हूं. दूसरे वर्ल्ड वार में लोगों ने बहुत सारा रुपया कमाया. मगर अब्बा ने अपने काम में भारी नुकसान उठाया. फलों वगैरह का कारोबार था हमारा. देवलाली में हमारा घर था वो बिक गया, पेशावर में पांच-छह मकान बिक गए नुकसान को पूरा करने के लिए. तो उस जमाने में ये था कि मुझे कुछ काम करना है. मैं नौकरी की तरफ रागिब (आकर्षित) नहीं था लेकिन मैंने कहा ये नौकरी कर ली.

राज मुझे उस वक्त से कहता था कि यार फिल्म कंपनी में काम करेंगे. तो फिल्म कंपनी कहां और मैं कहां. जूते पड़ने

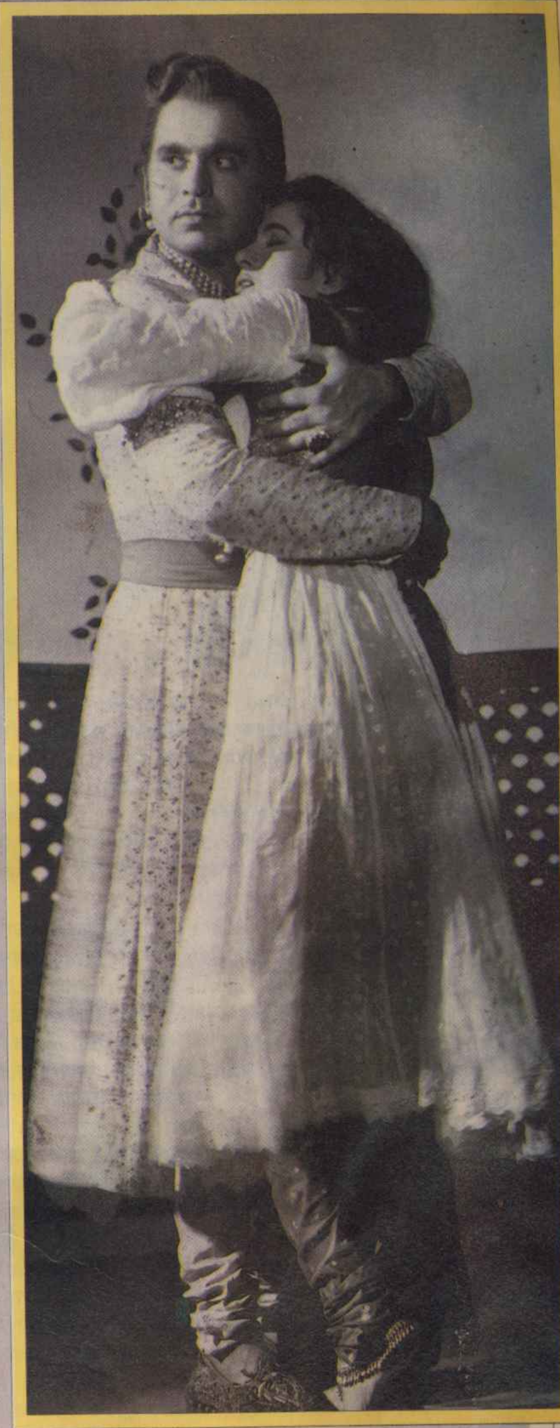

'मुगलेआज़म' में मधुबाला के साथः 'कैसी थी वह?'

वाली बात. और हमको तो आता भी नहीं. घर में बिलकुल मम्लूक (गुलाम). अंग्रेजी फिल्म देख सकते थे. वो भी कॉलेज-स्कूल जहां हमें ले जाएं. तो पहली बार मैं जब बांबे टाकीज़ गया तो राज मुझे वहां मिला. वो छोटे-छोटे रोल्स भी करता था, कंटिनिटी भी रखता था, क्लैप भी देता था. मैंने बांबे टॉकीज में पूछा था कि तुम्हें तनख्वाह क्या देते हैं? कहता, 140 रु. देते हैं. यह तो नए आदमी के लिए अच्छी रकम थी. मैंने कहा मेरे लिए तो उतना होगा नहीं.

जब मुझसे पूछा मिसेज राय ने तो मैंने कहा कि मेरे ऊपर एक फेमिली का बोझ है. मैं ऐसा काम करना चाह रहा हूं जहां मैं अपनी जिम्मेदारियां निभा सकूं. तो जब उन्होंने हजार रु. का कहा, उसमें कुछ एलाउंस भी था तो मैंने दिल ही दिल में कहा कि यह तो बहुत ही अच्छा है. और आकर घर पे जो मेरे हमराज थे मेरे बड़े भाई अयूब, उनसे कहा कि वहां गया था, हजार रु. दिया है. तो अयूब भाई कहें कि मियां हजार रु. महीना कहा कि हजार रु. साल का कहा. मैंने कहा कि मेरा ख्याल है महीने का कहा. उन्होंने कहा, नहीं साल का होगा. तो मुझे भी गुमान ये गुजरा कि मैं इस कदर बदहवास था कि ये तो मैंने गौर ही नहीं किया. उन्होंने कहा कि जब पृथ्वीराज जी के बेटे को 140 रु. मिल रहा है तो तुम ऐसे कौन से हो, तुमने क्या किया आज तक जो तुमको एक हजार रु. देगा. तो मैं भई बिलकुल खफ़ीफ़ (शर्मिंदा) हो गया. इतनी बेवकूफी की मैंने. तो उस शरम के मारे, जिस सोमवार को उन्होंने बुलाया था मैं वहां गया ही नहीं. अब्बा ने फिर एक बाग में भेज दिया नैनीताल के ऊपर रामगढ़ क्योंकि वहां फलों की तुड़ाई हो रही थी. जब चार महीने बाद वापस आया तो डॉक्टर मसानी फिर से मिले. उन्होंने कहा तुम गए नहीं? मैंने उनसे पूछा कि डॉक्टर साब वो हजार रु. महीने का था या साल का. उन्होंने कहा कि ताज्जुब तो मुझे भी हुआ था लेकिन मुझे याद है कि उन्होंने हजार रु. महीना ही कहा था, और मिसेज राय पूछ रही थीं कि वो लड़का गया कहां.

तो फिर हम गए. दो-तीन दिन बाद एग्रीमेंट आया उस पर साइन किया. मैंने राज से कहा कि मेरी तनख्वाह तो सचमुच हजार रु. ही है. तो उसने कहा कि अगर तेरी तनख्वाह हजार है तो मैं इस कंपनी में नहीं रहूंगा. मैं ऐक्टर, मेरा बाप ऐक्टर, मेरे बाप का बाप भी ऐक्टर, मेरे भाई ऐक्टर... लेकिन ऐसा कोई हत्क (अपमान) भी नहीं हुआ उसे. बस से जाते थे. साथ ही पिक्चरें भी देखते थे. तो यह साथ-साथ जवान होने जैसी बात थी.

जब 'अंदाज' में हम काम करने लगे तो मैं अपने काम में खोया रहूं. और ये अपना काम करते थे. जैसे कोई बिलकुल अनाड़ी लोग हों तो वो ये नहीं देखते कि दूसरा क्या कर रहा है और मैं क्या कर रहा हूं. हां जो मुझे सबसे अच्छा आता है कर रहा हूं और उनसे जो हो रहा है वो कर रहे हैं. और मुझे याद है वह एक साथ 8-10 फिल्मों में काम किया करता था. तो 'अंदाज' फिल्म में जब शूटिंग करने आए तो शॉट दिया और फौरन जाकर सीढ़ी पर—'अंदाज' में आपने देखा होगा हॉल है जिसमें सीढ़ियां बनी हैं—तो सीढ़ियों पर सो जाता वह. और शॉट हो तो फिर उठकर मुंह-हाथ धोकर शूटिंग शुरू कर देता.

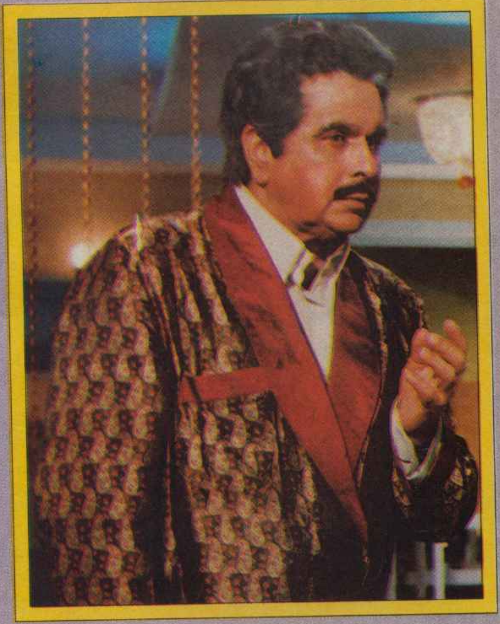

वक्त के साथ-साथ राज पिक्चरमेकर बनता गया. और वो बड़ा जबरदस्त ज़हीन अदाकार था. लेकिन उसने उस टैलेंट को इस्तेमाल ही नहीं किया. आप कभी मौका मिले तो 'गोपीनाथ' पिक्चर देखिए जिसमें राज ने तृप्ति मित्रा के साथ रोल किया. मैं अब भी मानता हूं कि वह उसकी बेहतरीन अदाकारी का एक नमूना है. जब वो पिक्चरमेकर हो गया तो 'आग' बनाने के बाद 'आवारा' बनाई और 'आवारा' में अपने आपको 'फिक्स' (कैद) कर लिया. आहिस्ता-आहिस्ता उसने वो पर्सनालिटी ढाल ली. एकाध दफा मैंने कहा भी कि यार इसको बदल तो सही कुछ, क्योंकि मैं जानता था कि उसमें काबिलियत है. उसने कहा, मैं कोई बदलता-वदलता नहीं. बदल गया तो पटखनी खाकर नीचे गिरूंगा. सब लोग यही एक्सपेक्ट करते हैं राज कपूर से. वो एक तरह से ठीक भी था.

वह कुल मिलाकर पिक्चरमेकर बन गया और मैं उसी लीक पर चलता रहा और ऐक्टर के रूप में काम करता रहा. लेकिन हम लोगों का जो दोस्ताना था वो और पुख्तातर होता गया. एक दिन मैं, आसिफ और राज, राज के यहां खाना खा रहे थे तो टेलीफोन आया लाहौर से चौधरी ईद मुहम्मद साहब का, जो डिस्ट्रीब्यूटर थे. लाहौर में अफवाह उड़ी कि राज कपूर ने दिलीप कुमार को गोली मार दी है. मेरे घर पर फोन आया तो वहां नंबर दिया कि वो तो इस नंबर पर होंगे. उन्होंने मुझसे पूछा कि खैर तो है. मैंने सुना कि राज कपूर ने तुमको गोली मार दी. मैंने कहा कि ये कम्बख्त तो मेरे सामने बैठा है. आप बात कीजिए. तो कहने लगा, चौधरी साब सलाम अलैकुम. कैसे मिजाज हैं? तो उन्होंने पूछा कि मैंने सुना कि तुमने गोली मार दी दिलीप कुमार को. कहने लगा कि मैनूं

'शक्ति' में दिलीप (बाएं); और राज कपूर के साथ (दाएं)

श क्ति' के बाद की बात है. रात 12-1 बजे राज ने फोन किया—लाले, बस फैसला हो गया. देअर इज़ ओनली वन दिलीप कुमार इन दिस कंट्री."

अफसोस है कि अगर मुझमें इतनी हिम्मत होती और एक रिवाल्वर होता तो मैं कब का ये काम कर चुका होता. लेकिन मेरी इतनी हिम्मत है ही नहीं. वोणे खां साहब मेरे सामने बैठे हैं. और मेरी छाती ते मूंग दलते रहवें हैं हर बेले.

तो हमारी दोस्ती का समीकरण ये तय हुआ था कि राज चूंकि खिलंदड़ा था ज्यादा और हरेक के साथ मजाक, और मैं इसको रोकता रहूं. और जब अपनी हद से बाहर हो जाता तो मैं अलग हो जाता था. बहुत फंक्शन हम लोग मिलकर करते थे. आरके सेंटर होता था. एक दिलचस्प बात है कि जब कभी भी कोई फंक्शन जैसे मैंने ऑर्गेनाइज किया तो उसकी मौजूदगी बेहद जरूरी है. वो कहीं भी है अगर उसको दिन लिखा देता था मैं, तो कहता था पहुंच जाऊंगा.

एक बार त्रिवेंद्रम में कहीं शूटिंग कर रहे थे और पंडित जी यहां (बंबई) आ रहे थे तो मुझसे पूछा कि क्या है ये. मैंने कहा कि तुमको है क्या, बस यहां पहुंच जाना है. तो कहने लगा कि तू क्या मछलेवाल (पेशावर का भारी गुंडा था उस जमाने में) दा पुत्तर है जो तुम जब भी हुक्म दो मैं आ जाऊं. लेकिन वो वहां पर... एक दफा पंडित जी यहां आए राजभवन में. दौड़ते-दौड़ते प्लेन से उतरा होगा, गाड़ी से आया होगा. दौड़ता हुआ आया, हांफ रहा था. पंडित जी कमरे में. विजयलक्ष्मी पंडित उस जमाने में गवर्नर थीं. तो हांफते-हांफते आया. पंडित जी ने देखा, पूछा क्या हुआ भई. तो कहे कि साब दौड़ते-दौड़ते आया हूं. उनसे कहने लगा कि साब जब भी होता है ये बुला लेता है. ये तो अपने आपको मछलेवाल का बेटा समझता है. उन्होंने कहा कि मछलेवाल कौन? तो कहा कि था हमारे पेशावर में बदमाश बड़ा मशहूर. तो पंडित जी को पता था कि हम दोनों एक-दूसरे के बड़े करीबी 'कलीग' हैं. अच्छा, जब राज की कोई पार्टी हो तो वो बुलाए, खां साहब फलां-फलां दिन वहां आना है. पूछा कि वहां क्या है? तो जवाब कि है क्या, बस आना है! वहां कौन-कौन होगा? तो कहे तुमको क्या है कौन-कौन होगा. मैं तुमसे पूछता हूं कभी कि कौन-कौन होगा, किधर जा रहे हो, क्या कर रहे हो? तुमको क्या है कि जब भी देखो कि पूछते रहते हो कि कौन-कौन आ रहा है... अब मैं मोहताज इसलिए होता ज्यादा कि इनकी हर पार्टी में रात के 12-1 बजने के बाद जूता चल जाता किसी-न-किसी का. लड़ाई होती और उसमें सुलह कराने वाला मैं ही होता. सारी रात मेरी इसमें जाया हो जाती. ये वाकयात हैं उस जमाने के.

हम लोग लंदन जाते थे. मैं कीमा बना रहा हूं तो वह मुर्गा बना रहा है. किसी ने कह दिया कि भई कीमा अच्छा था तो कहने लगता क्यों न हो साहब, खानदानी बावर्ची जो लोग होते हैं उनसे हम कैसे कंपिटीशन कर सकते हैं. तो इस किस्म की चख चलती रहती थी. बाकी तो सबको पता ही है. जब ये मेमसाहब से मरासिम हुए (मेलजोल बढ़ाने लगे) थे तो हमने जरा आना-जाना कम कर दिया क्योंकि हमारी वफ़ादारी कृष्णा जी के साथ थी. फिर भी मिलते थे तो ठीक था. कई दफा दूर से फोन करता.

एक दफा बंगलूर में था. 'शक्ति' के बाद की बात है. उसने रात बारह-एक बजे फोन किया. लाले...बस फैसला हो गया. देअर इज़ ओनली वन दिलीप कुमार इन दिस कंट्री (इस देश में बस एक ही दिलीप कुमार है). मैंने कहा क्या है? कहने लगा, मैंने तेरी पिक्चर देखी यार. दिल खुश कीते वाह! यानी तारीफ करने का मूड हो तो खूब दिल खोल के तारीफ करता

था. ये एक दफा नहीं हुआ. तीन-चार दफा हुआ.

स्टार इमेज बनाम किरदार से ईमानदारी

दो किस्म के ऐक्टर हैं. एक वो जो अच्छे माने जाते हैं. दूसरे वो जो उतने अच्छे नहीं हैं और अपने काम को ठीक तरह से नहीं करते. लेकिन जो अच्छा ऐक्टर काम करता है और उसकी जो शख्सियत, बुनियादी कोशिश जो है वो असर डालती है. उसको मुख्तलिफ फिल्मों में देखते हुए लोगों को उसकी भीतरी बुनावट, उसकी खूबियों और कमजोरियों का अंदाजा हो जाता है. और वो उसकी एक ख्याली तस्वीर बना लेते हैं जिसको वो पिक्चर-दर-पिक्चर थोड़ा बदलता भी जाता है. लेकिन तब वे पहचान लेते हैं कि इसकी शख्सियत यह है. चूंकि वो लगातार कोई मख्सूस चीज आपके सामने खोलकर रखता चला जाता है. तो आप उसकी महारत का अंदाजा लगा सकते हैं. दूसरे का आप कुछ भी अंदाजा नहीं लगा सकते.

अदाकार अपनी अदाकारी की इमेज बनाना चाहता है कि वो बना रहे यानी उसकी चाल और उसकी हर अदा में कुछ झलक ऐसी जरूर नुमायां हो जो उसकी ज़ाती शख्सियत, जो परदे पर उभरती है उसको, सहारा दे. अगर वो हीरोइक (बहादुराना) है तो वो हीरोइक अंदाज से ही चले, उसी से उसकी गुफ्तगू हो. ऐसे अदाकार को अपनी इमेज को बचाए रखने के लिए सरंजाम भी वैसे तलाश करने पड़ते हैं. अगर आप उसको किसी मसखरे का, किसी नीम दीवाने का रोल दे दें तो हिचकिचाएगा. या किसी किसान का दे दें जो उजड्ड है, तो जरा हिचकिचाता है क्योंकि उसकी इमेज को और इस इमेज को छोड़कर उस इमेज को हासिल करने में या उसमें कामयाबी पाने में या उस तक पहुंचने में जो मफ़र (कवच) है, जो हाथ में है वो भी न चला जाए कि न खुदा ही मिला न विसाले सनम कि न इधर के रहे न उधर के. तो ये अपनी पर्सनालिटी को प्रोजेक्ट करना कैरेक्टर में और उसको ऐसे ढाल देना कि वह उनकी शख्सियत का हिस्सा ही बन जाए. ऐसा आदमी अगर किसी दूसरे कैरेक्टर में जाए और उस दूसरे सीन को भी वो इस तरह से करना चाहे कि अपनी पर्सनालिटी को आंच. न पहुंचे तो वो बेईमानी हो गई क्योंकि वह अपनी उस बुनियादी इमेज को बचाए रखना चाहता है जो उसकी कामयाबी का सबब है.

है तो एक 'दिलीप कुमार इमेज'

दिलीप कुमार इमेज... हां है, एक है तो. कहें कि दिलीप कुमार इमेज नहीं है, ऐसा नहीं है. मैं जानता हूं.. और उसकी जो बुलंदी है, काफी जद्दोजहद है उसके पीछे. कुछ सोची-समझी मेहनत करके आदमी वो हासिल करता है. उसमें एक खामोश ट्रेजेडियन जैसे 'देवदास' है, वो अलग है. 'इंसानियत' कहें या 'गंगा जमुना' या 'राम और श्याम', ये अलग है. फिर 'मुगलेआज़म' जो है वो एक अलग ढंग का है. तो जहां तक कि इन किरदारों को लेना हो... या इस उम्र में आकर कैरेक्टर रोल्स लेने शुरू किए हैं.

लेकिन ये कि अपनी जो इमेज है वो मेरे ख्याल से उसमें एक क्वालिटेटिव (गुणात्मक) पहलू भी है, वो है काम का. और उस दायरे से निकलकर अगर आप मुझसे कहें कि साहब

नरगिस के साथ (बाएं); और सायरा बानू के साथ (दाएं)

"महबूब साहब कहें कि 'मदर इंडिया' में मैं वो रोल करूं. जिसके साथ बतौर हीरो काम किया उसको मां-मां करता फिरूं यह पसंद नहीं आया."

ये एक रोल है सईस का, उसमें बड़ी परफार्मेंस की गुंजाइश है तो मैं उसका एक अलग अंदाजा लगाऊंगा कि कहां तक इसके अंदर लोगों के दिलों में एकदम पैबस्त हो जाने की कैफियत है या इसमें एक ड्रामाई सैटिसफैक्शन (नाटकीयता के तत्व से संतुष्टि) है. अगर मुझे उसमें वो सैटिसफैक्शन मिले और लगे कि ये मुझको नीचे नहीं ले के आ जाएगा तो मैं वो रोल करूंगा, नहीं तो वो रोल नहीं करूंगा. अब आप कहें कि ये आपकी बेईमानी है कि जब आप समझते हैं कि ये अच्छा कैरेक्टर है तो आप नहीं कर रहे. मैं इसलिए नहीं कर रहा हूं कि ये मुझे पसंद नहीं है. कई ऐसे ऑफर आए—उनमें हिंदुस्तानी भी हैं, उनमें वेस्टर्न पिक्चर्स भी हैं—कि जो मुझे नहीं पसंद आए, मैंने नहीं किया. तो इंसान की एक ज़ाती उपज और ज़ाती पसंद भी होती है.

लेकिन अगर कोई अच्छा कैरेक्टर हो, उसमें नुमायां अच्छा रोल हो जिसमें मैं अपनी पैठ बना सकता हूं और जिसमें मैं खुद कुछ सीख सकता हूं और अगर वो किसी अच्छे आदमी के साथ काम करने का मौका मिले जिससे मेरा कोई राबितः हो. डायरेक्टर से राबितः बड़ा जरूरी है. उससे अगर राबितः हो और वो चीज पसंद हो तो वो करेंगे. आधे-अधूरे काम में शामिल होना नहीं चाहता. मैंने कई ऐसे किरदारों को करने से इनकार कर दिया जो दिलचस्प माने जा सकते थे लेकिन पूरा इक्वेशन (हिसाब-किताब) मुझे पसंद नहीं आया. अब जैसे 'मदर इंडिया' है. महबूब साहब कह रहे थे कि मैं वो रोल करूं. मुझे पसंद नहीं आया. जिस लड़की को मैंने आठ-नौ पिक्चरों में, वो भी कामयाब पिक्चरें थीं जिनमें वो हीरोइन, मैं हीरो था... तो उसको मैं मां-मां करता फिरूंगा तो अवाम पर इसका क्या असर पड़ेगा. और मेरी समझ में नहीं आता कि महबूब साहब क्यों नहीं समझ रहे कि इस बात का असर पड़ेगा. अगर आप जबरदस्ती धकेल दें कि आओ तुम सेकंड रो मैं बैठो, थर्ड रो (दूसरी-तीसरी पांत) में बैठो तो शायद मुझको उसमें एतराज है. शायद मैं उसमें सही हूं, शायद नहीं भी हूं लेकिन जो है वही है.

अपनी फिल्मों से लगाव

अपना काम तो गया उस वक्त ही जबकि डायरेक्टर ने कैमरे में कहा कि कट! मेरा फिर उस काम से, उस सीन से कोई वास्ता नहीं. इसी तरह आखिरी शॉट भी हो गया. हाथ मिला के यूनिट वाले सब चले गए. उसने पिक्चर बनाई. फर्ज कीजिए पिक्चर चल गई और लोगों के दिल में कुछ बातें बैठ गईं. अब वो चल गई तो उससे मेरा कोई वास्ता नहीं है. वो मेरे माज़ी (बीते हुए) की बात है. उससे मेरा मेमरी (याददाश्त) भर का ताल्लुक है. लेकिन जब लोगों से आप मिलते हैं तो जो मेरा पास्ट (बीता कल) है वो अभी तक उनके अंदर गूंज रहा है ऐसे कि जैसे वो उनका प्रेजेंट (आज) है. वो उसमें डूबे हैं. वो सीन उनके अंदर चल रहा है. और उसका कोई फ़िकरा याद करते हैं.

बूढ़ी-बूढ़ी औरतें...वो भी याद करके सुनाती हैं और हमको वो बड़े एहतिराम (इज्जत) के साथ सुनना पड़ता है. सुनना चाहिए भी क्योंकि इन्हीं लोगों की इन यादों के सिलसिले की वजह से हम अभी जिंदा हैं और भला हो टीवी और वीडियो का, जो आजकल ये पिक्चरें वैसे तो रिलीज़ न होतीं मगर

इनके जरिये ये नई पौध जो है वो भी उससे वाकिफ है. आप पूछेंगे कि भई इन लोगों से आपका क्या राबितः है, सिलसिला है. आपको उन्हें क्या देना है? मैं जानता हूं कि मैं उन्हें कभी उस प्यार का बदला नहीं दे सकूंगा. और हरेक उनमें ये समझता है. हरेक की आंख से एक रिश्ता, एक तरह का अंदरूनी रिश्ता है. और वो आदमी को बड़ा मारूख कर देता है. वही वक्त है जब मुझे एहसास होता है कि मैं अपने साये से कई गुना छोटा हूं. मेरा साया मुझसे बहुत बड़ा है, दूर-दूर तक जाता है. तो आपको भी प्यार जताना है यानी किसी ने अगर आपका हाथ छुआ है तो उससे झटके से हाथ मत छुड़ाओ. तो ये जो अवाम है इनके दिल में आपके लिए तो पसंदीदगी है उसमें एक एहतिराम भी शामिल है, उसमें एक शफ़क़त (हमदर्दी) भी शामिल हैं, एक्साइटमेंट (उत्साह) भी है. मेरा ख्याल है वे आपको काफी रूहानी ताकत देते हैं.

लड़कियां सवाल पूछेंगी उन हीरोइनों के बारे में जो अब हैं भी नहीं... मधुबाला के बारे में पूछेंगी कि वो कैसी थी, उसके बालों का असली रंग क्या था. और कोई किसी और के बारे में पूछेगी, जैसे वाकई मेरा उनसे राबितः था और कुछ बड़ी दिलसोज कहानियां बावस्ता हैं उनसे और मुझसे. और मैं अब तक हूं. मैं कहता हूं बेटे अभी तो हमें पता नहीं, वो तो पुरानी बातें हो गई. हम बूढ़े हो गए. तो कहेंगी नहीं-नहीं आप बूढ़े नहीं हुए हैं. मैं कहता हूं कि हो गए हैं, हमको तो अंदर की बात मालूम है. तो बड़ा प्यार देती हैं. कई तरह से भरोसा दिलाती हैं. आप अचानक महसूस करने लगते हैं कि वो जो एपरिशन ऑफ दिलीप कुमार है, लीव्स (साया है दिलीप कुमार का वो जिंदा है). ही इज लिविंग, ही इज एक्जीस्टिंग (उसका वजूद कायम है).

समांतर सिनेमा और दिलीप कुमार

ऐसे बहुत ऑफर्स मेरे पास आए नहीं. तो 'गर्म हवा' जैसी फिल्मों में काम करने का सवाल ही कहां पैदा होता है.

सत्यजित बाबू से मेरी मुलाकात अकसर हुई लेकिन ऐसी कोई मख्सूस चीज लेकर मुझसे तो कभी कहा नहीं. अब ये तो हो नहीं सकता, ये भी ग़ैर-मुनासिब है कि वो मेरे पास न आएं तो मैं उनके पास जाऊं कि देखिए आप ऐसी फिल्म बनाएं पैरलल सिनेमा में जिसमें मेरे लिए कोई एक मख्सूस किरदार हो. तो ऐसा हुआ नहीं और दूसरा ये कि पैरलल सिनेमा से कुछ कहानियां मैंने काफी तफ़सील से सुनीं और मैं आपको बड़ी अक़ीदत के साथ कह रहा हूं कि मेरी समझ में नहीं आईं. जो फरमान मेरे जेहन में ढल चुका था, शायद उसमें इतनी उपज नहीं थी कि मैं उनकी बारीक़ी को पहचानता. कुछ ऐसी फिल्में थीं जो मेरे पास आईं और मैंने कीं. अब जैसे 'सगीना महतो' तपन बाबू ने मेरे ख्याल में कोई 15 मिनट में मुझको ये कहानी सुनाई होगी. मैंने कहा, हां मैं करूंगा. मुझे कैरेक्टर अच्छा लगा. फिर बाद में उन्होंने पूरी स्क्रिप्ट सुनाई. मैंने उसमें काम किया.

अब जैसे आप कहते हैं पैरलल सिनेमा. हमारे लिए कोई पैरलल सिनेमा नहीं है. सिनेमा ही है सब. मैं उसको एकेडेमिक सिनेमा कहता हूं. उसमें बड़ी माकूल पिक्चरें भी बनी हैं तो उनसे बहुत कुछ सीखा जा सकता है. मेरे ख्याल से समांतर सिनेमा वह है जो कोई मिसाल बने, कोई तहरीक चलाए.

(बाएं) खाने की मेज पर;
और (दाएं) फिल्मफेअर
पुरस्कार के साथ

"इस मुकाम पे बड़ी कोशिश के बाद पहुंचा हूं मैं. कई रातों की नींद गंवानी पड़ी, खुद को बेपनाह दर्द देना पड़ा. इसे पुख्ता करने के लिए मशक्कत करनी पड़ी."

पैरलल सिनेमा खुद भी बिखरा हुआ है और उसकी नश्वोनुमा (परवरिश) के लिए कोई हालात साजदार हैं भी नहीं.

आप ये तो मानेंगे कि जब पिक्चर चलती है तो उसमें से बड़ी मुश्किल से सौ में से सात-आठ रुपए प्रोड्यूसर को मिलते हैं. इसलिए सिनेमा बनाने का जो बुनियादी हिसाब-किताब है, उसमें जो पिक्चरमेकर है वह ऐसी चीज बनाने को मजबूर है जो बिके. वह लागत का अच्छा मुनाफा जब तक कमाएगा नहीं, वजूद ही नहीं बचा पाएगा. इसकी वजह से आपने देखा होगा कि समांतर सिनेमा कई बंदिशों में है. मगर जिसे कॉमर्शियल सिनेमा कहते हैं उसमें भी बड़ी अच्छी-अच्छी फिल्में बनी हैं.

हालात नहीं हैं साजदार

जब हम आज़ाद हुए, हमारी हुकूमत ने ऐसे हालात बना दिए इस क्रिएटिव वर्क के लिए, जो कि अपनी नश्वोनुमा के पहले दौर से गुजर रहा था... 40-50 में अंग्रेजों के जमाने में, अफसोस होता है कहते हुए कि, हालात ज्यादा साजदार थे प्रोड्यूसर के लिए. प्रोड्यूसर्स के पास संस्थाएं थीं. न्यू थिएटर था, प्रभात सिनेटोन था, अपने ढंग से प्रकाश पिक्चर्स था, बांबे टॉकीज था जिसमें मुझे पहला चांस मिला काम करने का. उस वक्त ये संस्थाएं जो थीं वो डिस्ट्रीब्यूटर, आर्टिस्ट, फिल्म बनाने के सभी पहलुओं पर सबसे ज्यादा हावी थीं. कंपोनेंट्स (साज-सामान) पर पिक्चर बनाने वाले प्रोड्यूसर का पूरा कंट्रोल था. यहां तक कि फिल्मों की लेबोरेटरी भी खुद अपनी होती थी. उनके आर्टिस्ट भी अपने होते थे. बांबे टॉकीज में सात लेखक थे. उनमें थे पंडित सुदर्शन, कृश्नचंद्र और भगवतीचरण वर्मा, नरेंद्र शर्मा, वगैरह.

एक रास्ता ये था कि इन संस्थाओं को हम उसी तरह काम करने देते तो ये बढ़तीं और अच्छा काम करतीं. आज एक भी संस्था उनमें से रही नहीं और उनके बराबर में कोई संस्था खड़ी नहीं हुई. पैरलल सिनेमा का भी कोई इंस्टीट्यूशन नहीं है. यूं नहीं है कि वो आदमी अफोर्ड ही नहीं कर सकता. जब बड़ा फसाद हो रहा था हुकूमत और फिल्म इंडस्ट्री के दरम्यान कि बॉक्स आफिस से मिलने वाली आमदनी में से पांच फीसदी पाने वाले निर्माताओं पर भारी टैक्स लगाकर आप उसे ऐसी फिल्में बनाने पर मजबूर कर रहे हैं जो सलाहियत के हिसाब से सबसे निचले स्तर के लोगों के लिए हो. अच्छी फिल्में बनाने वाली वो संस्थाएं इस बोझ को बर्दाश्त नहीं कर सकीं और आहिस्ता-आहिस्ता खत्म हो गईं. उनकी जगह ये इम्पा आई जिसे वे इंडिपेंडेंट मोशन पिक्चर्स एसोसिएशन कहते थे. लेकिन यह इन फैक्ट द मोस्ट डिपेंडेंट मोशन पिक्चर्स एसोसिएशन है. न तो उनमें अपना कलम-दवात है, न कारखाना, न कैमरा है, साउंड मशीन भी नहीं है. फाइनांस 36,40,48 फीसदी ब्याज पर मिलता है. कोई सरकारी संस्था माकूल तरह से मदद करने को तैयार नहीं.

समाज और लोकतंत्र को खतरा

एक नया खतरा पेश है हमारे सामने, जो बंबई में हुए दंगों के बाद उभरा है. सियासतदां होने के अलावा कोई पार्टी सेंसर बोर्ड का रोल करने लगे और वह भी तानाशाही

एक बुजुर्ग के साथ (बाएं) ; और माइक पर (दाएं)

बड़ी संगलाख जमीन है ये पॉलिटिक्स. और इसमें तो आजकल फिसलन बहुत ज्यादा हो चली है. इसके लिए जो चरित्र चाहिए वो मुझमें नहीं है."

ढंग से फरमान जारी करने लगे जैसे कि दंगों के बाद फिल्म वालों को जारी किए गए तो यह बहुत ही अजीब बात लगती है. क्या मतलब बेचारे हंगल साहब का अगर सीन काट दिया ('शोले' फिल्म में से). आपने हंगल साहब को तो कोई सज़ा नहीं दी. आपने अपने आपको बेनकाब किया. ये तो सिप्पी साहब ने लागू कर लिया. लेकिन पूरी इंडस्ट्री के सामने जिन हज़रात ने या जिस पार्टी ने भी ये फैसला सादिर किया कि ये काट दीजिए और वो काट दीजिए और फिर उस धमकी के दबाव में वे फैसले अगर लागू किए गए...अरे भाई, बाबर से या हुमायूं से या जो भी हों जिनसे आपको आज़र्दगी (चोट) पहुंचा होगा अब उनके नाम को याद कर-करके सीनाजली मत कीजिए, हम लोगों के पीछे मत पड़ जाइए. ये सब न केवल हमारे लोकतंत्र के लिए बल्कि हमारे समाज के मूल्यों और देश के लिए बुरे लक्षण है.

बंबई के दंगे : किस-किसको दोष दें

इसके दो पहलू हैं—एक तो फसादात, उसके वजूहात और खास तौर से बंबई में उसकी शिद्दत और बर्बरियत जो तकरीबन दो महीने जारी रही. जहां तक फसाद का ताल्लुक है वो तो बाबरी मस्जिद के इन्हिदाम (ढहाए जाने) के साथ मुस्लिम जज्बात मुश्तइल हुए (भड़के) क्योंकि इस बात को बहुत देर से आंच दी जा रही थी. पूरे मुल्क को इतना इल्म था कि एक कोशिश जबरदस्त की जाएगी कि ये मस्जिद शहीद कर दी जाए और हुआ वही. तो मुसलमानों के जो जज्बात मुश्तइल हुए हैं वो हुकूमत के खिलाफ यूं बुलंद थे कि हुकूमत ने हर तरह से उनको यकीन दिलाया. उनके बावजूद उन्होंने ये जाना कि उनके साथ धोखा हुआ है. बड़ा जबरदस्त किस्म का रद्देअमल हुआ सब लोगों पर. और फिर इसकी फिल्में दिखाई गईं. पुलिस ने भी खास कोशिश नहीं की कि थम जाए वो कार्रवाई. बीजेपी के जो बड़े-बड़े लीडर हैं वो साफ नजर आते थे वहां पर झंडा फहराते हुए. तो अपनी नोहियत शदीबतरीन तौहीन महसूस की लोगों ने. चुनांचे हंगामा हुआ. बंबई में भी उसका रद्देअमल हुआ.

लेकिन किसी सूरत से उस गुस्से में बंबई में कम्युनल रायट (सांप्रदायिक दंगा) नहीं हुआ. जैसे बंद में होता था वैसा हुआ. लेकिन जो भी जानते हैं उनको एहसास है कि इसे कम्युनल रायट में उन लोगों ने तब्दील किया जो यह चाहते थे. जो कोहराम मचा रहा वो किसने मचाया, वो कत्लोग़ारदगरी किस तरह हुई, किसने की वो तो सब जानते हैं. फासिस्ट कम्युनल लोग हैं जिन्होंने इस शहर में एक सोची-समझी कार्रवाई की. पुलिस पर इल्जाम ये होता है कि उसने इस पर कोई सख्ती से एख्दाम नहीं किया बल्कि इस तबहकारी को फ़रोक दिया. और सबसे हैरत में डालने वाली बात ये है कि ये इंडियन नेशनल कांग्रेस के राज में ये बात हुई. ये तो हो नहीं सकता कि शहर में क्या हो रहा था उसका इल्म न था उनको. इल्म तो सारे शहर को क्या पूरे हिंदुस्तान को था. इससे माइनॉरिटी कम्यूनिटी जो है उसने सबसे ज्यादा तकलीफ झेली—जानी तौर पर भी और माली तौर पर भी.

तो ये एक मेरे ख्याल से दाग है बदनुमा किस्म का, जो हमारे शहर की कांग्रेसी हुकूमत के दामन पे लगा है. और आज तक उस जांचकारी का फैसला नहीं हुआ कि ये जालिम थे, ये

ही लोग थे जो घरों को जलाने वाले थे, ये ही थे जिन्होंने जानें लीं या ये ही थे जो कि मुजरिम हैं. यह हुकूमत की नाकामी है.

हमारे पड़ोस की तो बातें हैं. ये तो हो नहीं सकता था कि हम बेताल्लुकी से बैठे रहें. हमारे यहां फोन आए. हमने सबको अपने टेलीफोन नंबर दे दिए थे. आहिस्ता-आहिस्ता रिलीफ का एक सेंटर बन गया ये घर. इसमें सभी थे. हिंदू भाई भी थे जो हमारे साथ शामिल थे, ईसाई भी थे और मुस्लिम भी थे, वोहरा भी थे, खोजा भी थे. और खुद पुलिस भी थी. कई खतरनाक इलाकों में भी मदद पहुंचाई गई. और जो इल्जाम लगाए गए हम पर उनका हम पर असर नहीं है. करते आए हैं काम. किसी से सर्टिफिकेट तो लेना नहीं है हमें. एक सेक्युलर घर है ये. सेक्युलर मआसिर (पहचान) है हमारा.

पर ये अलामतें (लक्षण) ऐसी हैं कि अगर इनसे वाकई इस वक्त न पार पा सके हम लोग तो ये सारे मुल्क को, उसके इंतजामिया को, उसके मआसिरे को तहसनहस कर देंगे. ये एक हिंदुस्तान अगर ऐसे लोगों के हाथ छोड़ दिया गया तो इसके कई हिंदुस्तान बन जाएंगे. खाली ऊंची-ऊंची इमारतें बना लेना, हवाई जहाज, और इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट (औद्योगिक तरक्की) ही तामीर नहीं है. एक स्टेबिलिटी (स्थिरता) जिसमें कि अख्लाकी तौर पर कौम बढ़ सके. एक रोशनखयाली. अगर ये नहीं है तो इस तामीर के जो कुछ भी हम आसार देख रहे हैं 40-45 साल से वो दो-तीन साल के अरसे में नेस्तनाबूद हो सकती है. शर्मनाक और अफसोस की बात तो ये है कि ये सारा जो तांडव नृत्य हुआ है, जो खूंरेजी हुई है वो धर्म के नाम पर हुई है. धर्म को रुसवा करना है धर्म का नाम लेकर ऐसी हरकतें करना. हिंदू धर्म में तो ऐसी बातें कहीं नहीं हैं चाहे वो गीता कहें, उपनिषद कहें, वेदांत कहें. न कुरान में है, न एंजील में है, न तौराद में है, न तलमूद में है, न अवस्ता में है, न ग्रंथ साहब में है. किसी में भी ये नहीं लिखा कि मजहब के नाम का झंडा फैलाओ और बेगुनाह लोगों के घरों को जलाओ. ये किसी भी मजहब की तौहीन है.

सेक्युलरिज्म का सवाल और कांग्रेस से मायूसी

सारे शहरियों को इस बात को बड़ा जांच कर फैसला करना होगा कि सही सेक्युलरिज्म क्या है और वो प्रैक्टिस हो रहा है या नहीं कि महज उनका नाम लिया जा रहा है. और कम्युनल फंडामेंटलिज्म या फैनेटिसिज्म (सांप्रदायिक कट्टरता और पागलपन) के असरात से किस तरह बचा जा सकता है, मुल्क को बचाया जा सकता है. ये बहुत सोच की बात है. मेरा दिल अफसुर्दः (उदास) है क्योंकि कांग्रेस से हमें मायूसी हुई है. और वो कैफियत यह है कि बड़ा लंबा ताल्लुक रहा कांग्रेस से लेकिन मुस्तक्बिल (भविष्य) के लिए जायजा लेना होगा. और क्योंकि मौजूदा कैफियत जो भी हुई हमें बिलकुल मंजूर नहीं. हम बहुत आजर्दः (खिन्न) हैं. ये जरूर है हमें सच्चे सेक्युलर लोगों को तलाशना होगा खासकर बंबई में क्योंकि बंबई एक कॉस्मोपॉलिटन शहर है. और यही नहीं, यह पूरे मुल्क को उसकी जरूरत का तीन-चौथाई पैसा देता है. इस कॉस्मोपॉलिटन सोसाइटी का एक एहसान है. मुल्क की कुछ जिम्मेदारी बनती है. अगर कांग्रेस इसकी देखरेख नहीं कर सकी तो हम मुस्तकिल (स्थायी) तौर पर अंधाधुंध उसकी पैरवी भी नहीं करते जाएंगे. नहीं करेंगे. देखेंगे कि क्या होता है. वैसे विकल्प हैं जो जाहिरी तौर पर नजर आते हैं. लेकिन वे भी जो हैं उनमें कितना दम है. और कितनी दूरंदेशी है और कितना इत्तिफाक है इनका आपस में, वो भी देखना होगा. लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि मुल्क, मुल्क के लोग, मुल्क की सियासत और हम वोटर्स एक बड़े ही तारीखी मोड़ पर खड़े हैं. अभी बिलकुल दोटूक सख्त बातें करते हुए कुछ मेरा जेहन पशोपेश कर रहा है.

सियासत अपनी जमीन नहीं

ये काम जो हाथ में हमने लिया वही करते-करते हांफ गए हैं. सियासत के लिए जो चरित्र चाहिए और इससे पनपने के लिए जो गुण चाहिए वो तो मुझमें है नहीं. और बड़ी संगलाख जमीन है ये पॉलिटिक्स. और इसमें तो आजकल फिसलन बहुत ज्यादा हो चली है. अब देखिए न इस सुनील दत्त बेचारे का क्या हाल हुआ. एक वाइज आदमी जो अच्छाई के लिए निकला, एक अकेला सेक्युलर कांग्रेसमैन जो सच में सेक्युलर मकसद के लिए लड़ने वाला, वही मैदान में दिखा.

लेकिन सियासत के जो तरीके हैं इस मुल्क में वे बड़े मनहूस हो चले हैं. कहते कुछ हैं और उनका मतलब कुछ और होता है. इस तरह का दोमुंहेपन का और कुछ हद तक सरासर फरेब का माहौल चल निकला है. इस तरह की सियासत हमारे समाज से खत्म की जानी चाहिए. ■

हिंदी फिल्मी गीत

रंगोली से चोली तक

फिल्मी गीतकारों ने मनोहारी शब्दजालों के जरिये कल्पनाओं को कभी झीना आवरण दिया तो कभी बड़ी खूबी से उकेरा, सौंदर्य को अनुपम उपमाओं से सजाया, भावनाओं को अद्भुत रंग दिए और शारीरिक आकर्षण को ऐसे प्रतिबिंब, जिनके पार प्यार का संसार कहीं ज्यादा उन्मादक बनकर उभरता है. फिर भी आज फिल्मी गीत सिर्फ फिल्मी ही क्यों माने जाने लगे हैं? आज उनके हाथ से प्रतिष्ठा कहां फिसल गई? फिल्मी गीत का मतलब आज फूहड़ तुकबंदी से ज्यादा कुछ क्यों नहीं लगा रहा सुधी श्रोता?

कोमल भावनाओं के चितेरे माने जाने वाले गीतकारों के पास क्या सचमुच अब कहने को कुछ नया नहीं रहा? एक तरफ जहां गीतकारों का पारिश्रमिक निरंतर बढ़ा है वहीं, दूसरी तरफ क्या प्रतिभा का सचमुच अकाल पड़ चुका है? गीतों का स्तर इतना क्यों गिरा है कि एक माननीय न्यायाधीश को उनकी

साठ के दशक की स्टंट फिल्म 'रॉकेट गर्ल' का नृत्यः दूरियां तब कायम थीं

मजरूह सुलतानपुरी

'इस कला से कलम को निकाल दिया'

ये इन्सां जो अमीरे बहरे बर है,
कलम ले लो तो पल में जानवर है

इनसान ने अपनी तरक्की के साथ-साथ जो बहुत-सी चीजें ईजाद कीं, उनमें एक चीज—कलम—ईजाद न हुई होती तो क्या होता? तब न रामायण होती, न गीता, न बाइबिल होती; न कुरान, न गुरुग्रंथ साहिब, न हदीस. और यह सब न होतीं तो आज अपने आपको सबसे ज्यादा सभ्य समझने वाला इनसान क्या होता? जानवर ही न? मुझे डर है कि आज का सिनेमा यही कर रहा है. उसने इस कला में से कलम को निकाल दिया है.

एक जमाना वो था जब फिल्म बनाने का भी वैसा ही कोई मकसद हुआ करता था जैसा कोई सड़क बनाने का होता है, जो इनसान को इनसान से जोड़े. तब के फिल्म प्रोड्यूसर-डायरेक्टर को इस बात का पूरा-पूरा एहसास हर वक्त बना रहता था कि फिल्म के जरिये मनोरंजन करने के अलावा भी कुछ कमिटमेंट है उसका सोसाइटी के लिए. और वह इसका आदर करता था.

समय धीरे-धीरे बदलता गया और कल के शांताराम, महबूब खान, बिमल राय जैसों की जगह उन लोगों ने ले ली जिनके लिए आज फिल्म बनाने का सिर्फ एक ही मकसद है—पैसा बनाना. अपने इस मकसद को पूरा करने के लिए ये लोग कुछ भी कर सकते हैं. लिरिसिस्ट (गीतकार) कहे जाने वाले कलम के कारीगर से डबल मीनिंग (द्विअर्थी) गाना लिखवा लेना तो मामूली बात है. व्यापारी तो पिछले समय के निर्माता भी थे. वे भी चाहते थे कि उनकी फिल्म में, फिल्म के गानों में चाशनी हो. लेकिन क्या सेक्स इस तरह पेश नहीं किया जा सकता कि बेपरदा भी न लगे और उसकी कशिश भी बनी रहे?

आज तो हर ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा फिल्मी गीत लिखने चला आ रहा है. वे लोग तक गीतकार बने बैठे हैं जिन्हें अपने गीत के मुखड़े के बारे में यह तक नहीं मालूम हो पाता कि उसकी दो लाइनों में वे ग्रामर की कितनी बड़ी गलती कर बैठे हैं. दो लाइनें सही न लिख सकने वाले लोग गीत में जादू क्या जगाएंगे? वैसे ही प्रोड्यूसर, डायरेक्टर हैं. उन्हें भी कुछ पता नहीं. लिरिसिस्ट ने जो लिखकर दे दिया वही अच्छा लग जाता है उन्हें. उनके अपने अंदर गीत के, पोएट्री (कविता) के कोई संस्कार नहीं. इसलिए उन्हें पोएट्री में, गीतों में, परदे से छन-छनकर उभरते सेक्स की कशिश समझ नहीं आती, सीधी-सीधी बेहयाई झट समझ आती है. वही लिख रहे हैं आजकल के गीतकार. लेकिन क्या आसानी के नाम पर नंगापन परोसेंगे हम? हम गीतकारों की दोहरी जिम्मेदारी है—एक, हम बात को आसान ढंग से कहें, मरहूम शैलेंद्र जी की तरह, ताकि आम आदमी उसे समझ ले. दूसरी, आसानी के नाम पर अश्लीलता देने का घटिया रास्ता अपनाने की जगह लोगों में पोएट्री के लिए टेस्ट (रुचि) पैदा करें. जिस चोली वाले गाने की बड़ी चर्चा है उससे ज्यादा घटिया, उससे ज्यादा अश्लील गाना मैंने दूसरा नहीं सुना. मुझे हैरत होती है यह सोचकर कि हमारे सेंसर बोर्ड ने कैसे इतना

तुलना आधुनिक नारी के ऊपरी पहनावे से यों करनी पड़ी, "यह कंधों से निरंतर नीचा और कमर से क्रमशः ऊंचा होता चला जा रहा है और अपनी इस प्रक्रिया में यह भूल गया है कि कभी वह भी शालीनता का प्रतिनिधि हुआ करता था." कितना सत्य है इस आरोप में?

इस विषय पर कुछ प्रमुख गीतकारों, संगीतकारों, गायकों-गायिकाओं के विचार प्रस्तुत कर रहे हैं विनोद तिवारी:

आज के जुम्मा-जुम्मा, चुम्मा-चुम्मा दौर में टूटती सीमाएं

वाहियात गाना पास कर दिया? इसे देखने-सुनने के पहले सेंसर बोर्ड के मेंबर सो गए थे क्या? अपने को पब्लिक के नुमाइंदे कहने वाले सारे लीडर्स भी सो गए थे? स्कूलों के टीचर्स, बच्चों के पेरेंट्स कोई भी इसके विरोध में उठ खड़ा नहीं हुआ. अब बताइए, अगली बार कोई प्रोड्यूसर इससे भी ज्यादा खुला गाना लिखने को क्यों नहीं कहेगा गीतकार से? और गीतकार भी भला क्यों हिचकेगा? जो नहीं लिखेगा, उसे छोड़कर दूसरे के पास चला जाएगा.

मेरे साथ ऐसा एक नहीं कई बार हुआ है. यह नहीं कि मैं प्रोड्यूसर या डायरेक्टर की बात नहीं सुनता. जहां तक हो सकता है, मैं उसकी तसल्ली करने की कोशिश करता हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि उसने लाखों रुपए दांव पर लगा रखे हैं और वह उन्हें मय सूद वापस लाने के लिए ही ऐसा कह रहा है. लेकिन अब अगर कोई कमर से नीचे ही उतर जाने को कहे तो मुझे माफी मांग लेनी पड़ती है या वही मुझे छोड़कर किसी और के पास चला जाता है.

जब मैं यह सोचता हूं कि वे लोग जो वह सब लिखते चले जाते हैं जो कुछ प्रोड्यूसर मांगता है, वे पैसे के लिहाज से मेरे मुकाबले कितने आगे हैं तो मन को कुछ कचोटता जरूर है. अभी दो-चार बरस से गाने लिखने लगा वह गीतकार, जो मेरे बच्चे जैसा है, तीन-तीन गाड़ियों का मालिक है. वह जिस शान-शौकत से रहता है, मैं उसकी बात सोच भी नहीं सकता. मुझे इस इंडस्ट्री में 50 साल होने को आए. सन् 1945 में पहली बार 'शाहजहां' पिक्चर में गाने लिखे थे मैंने, लेकिन मेरे पास एक भी कार नहीं है. इसका दुख होता है कभी-कभी. लेकिन जब मैं सोचता हूं कि मैंने अपना जमीर बेचकर कुछ नहीं लिखा, ऐसा कुछ नहीं लिखा जिस पर कोई एतराज करे, तो सारे गिले-शिकवे दूर हो जाते हैं.

मुझे फिल्मों ने जो नाम दिया उससे ज्यादा नाम दिया मेरी शायरी ने. फिल्मी गीतों में कोई गीतकार कोई नया ट्रेंड शुरू कर सके, कोई नया एक्सपेरिमेंट कर दिखाए ऐसा मुमकिन नहीं है. लेकिन अदबी राइटिंग में प्रोग्रेसिव गज़ल मेरी ही देन है. कुछ लोग कहते हैं कि पहलेपहल प्रोग्रेसिव गज़ल कहना फैज़ अहमद फैज़ ने शुरू किया लेकिन फैज़ के प्रति पूरे आदर और सम्मान के साथ मैं यह कहना चाहता हूं कि यह गलत धारणा है. फैज़ को 1953 में प्रोग्रेसिव गज़ल के लिए पहचान मिली जबकि मैं 1945 से ही इस विधा में लिख रहा था. आज इस बात को माना जाने लगा है, इसकी मुझे खुशी है.

अफसोस तब होता है जब किसी अच्छी चीज को लोग समझते नहीं. जैसे, जब मैंने 'सुजाता' के लिए गाना लिखा 'जलते हैं जिसके लिए, तेरी आंखों के दिये, ढूंढ़ लाया हूं वही गीत मैं तेरे लिए...' तो बहुत से लोगों ने कहा, "ये तेरी आंखों के दिये क्या होता है भई?" आज भी कुछ लोग कहते हैं. पर ये चीज ऐसी है जिसे समझाया नहीं जा सकता. वह दिल को लग जाती है इसलिए अच्छी लगती है. इसके लिए तो सुनने वालों में संस्कार होना चाहिए. पर संस्कार आएं कहां से? आज का जो एजुकेशन

"दो लाइनें सही न लिख सकने वाले लोग गीत में जादू क्या जगाएंगे? वैसे ही प्रोड्यूसर, डायरेक्टर हैं. उनके अपने अंदर गीत के, पोएट्री के कोई संस्कार नहीं हैं."

सिस्टम है उसने तो हिंदुस्तान के नौजवान को आधा तीतर आधा बटेर बनाकर छोड़ दिया है. वह न अपने देश का रहा न विदेश का. गवर्नमेंट की पॉलिसियों का हाल यह है कि गावसकर या कपिल देव का छक्का टेलीविजन पर दिखाने की चीज हो जाता है, उसका रिकॉर्ड रखा जाता है मगर किसी लेखक की कोई ऐसी जानदार रचना या शानदार किताब जो आने वाली कई नस्लों के लिए प्रेरणा बन सकती है, सदा, सदा जिंदा रह सकती है, टेलीविजन की खबर में तो क्या, किसी अखबार के कोने में भी जगह पाने लायक नहीं समझी जाती. ऐसे देश में जहां की सारी नौजवान पीढ़ी एमटीवी पर आंखें टिकाए हो और भविष्य के प्रति बेखबर रहना बेहतर समझती हो, फिल्मी गीतकार कोशिश करके भी कितने कामयाब हो सकेंगे भला?

आजकल के गानों पर मेरा एतराज उस तुकबंदी से है जो सिर्फ विदेशी ठप्पे वाली उछलकूद दिखाने के मकसद से कहीं भी ठूंस दी जाती है. हमारे जमाने में एक से एक बढ़िया लोग फिल्मों के लिए लिख रहे थे—साहिर, राजेंद्रसिंह बेदी, क्रश्न चंदर, अली सरदार जाफरी, कैफ़ी आज़मी वगैरह. ये सब लोग आपस में इस बात पर भी नजर रखते थे कि दूसरा क्या लिख रहा है. किसी ने कुछ ऊलजलूल लिखा नहीं कि दूसरे सब उसकी लानत-मलामत कर देते थे. इस तरह एक किस्म का सेंसर था घटिया राइटिंग पर.

कल्याण जी-आनंद जी

'आपाधापी में स्तर गिरेगा ही'

आज रिकॉर्डिंग की बेहतरीन सुविधाएं उपलब्ध हैं हमारे देश में. एक से एक अच्छे म्यूजिक सिस्टम बन रहे हैं, कई रिकॉर्डिंग कंपनियां आ गई हैं जो 'सी-डी' तक बनाने लगी हैं, लेकिन ये सब चीजें जिसके लिए बनाई गई हैं—गीत-संगीत, उसकी तरफ ध्यान देने की फुरसत किसी को नहीं है. पिछले जमाने में, जब रिकॉर्डिंग करने में कई तरह की असुविधाएं थीं, जब दोगाने में पुरुष और महिला गायकों को एक ही माइक से गाना पड़ता था, जब म्यूजिक और वॉएस साउंड के अलग ट्रैक लेने की सुविधा नहीं थी, तभी सबसे अच्छे गाने तैयार हुए क्योंकि तब संगीतकार-गीतकार गीत को सजाने-संवारने में इतनी मेहनत करते थे कि उसकी मिठास के सामने कोई बाधा ठहर ही नहीं पाती थी. इसी मिठास की वजह से पिछले समय के गाने सदाबहार हैं. आज भी सुनने वाले उनसे अघाए नहीं हैं.

गुणी लोगों की आज भी कमी नहीं. मैं यह भी नहीं कहता कि नए आ रहे संगीतकारों में प्रतिभा नहीं है. लेकिन संगीत का व्यापार पक्ष इतना प्रबल हो गया है कि गाने में मोती की सी चमक पैदा करने की फुरसत नहीं मिल पाती संगीतकारों को. जिस संगीतकार की कोई फिल्म हिट हो जाती है, कोई गाना चल जाता है, उसके पीछे सभी दौड़ने लगते हैं. उसके पास इतना काम हो जाता है कि जितना वह कर नहीं सकता. प्रोड्यूसर उसकी सफलता को जल्दी से जल्दी कैश कर लेने के लिए उतावले रहते हैं. शाम को धुन फाइनल हुई, सुबह रिकॉर्डिंग. कई बार तो रिकॉर्डिंग और कैसेट कंपनियों को गाने सिर्फ धुन सुनाकर बेच दिए जाते हैं. उस वक्त तक तो उसके बोल भी लिखे नहीं गए होते. जब गाना पहले ही बिक चुका हो तो उसके बोलों पर मेहनत करने-कराने की जरूरत किसी को क्यों महसूस होगी? और जब काम इतनी जल्दबाजी में करना पड़ रहा हो तो गुणी से गुणी म्यूजिक डायरेक्टर और अच्छे से अच्छा गीतकार भी क्वालिटी कहां से देगा? गाने पर मोती की सी आब कब, कैसे चढ़ाएगा? नतीजा जो हो रहा है, सभी देख रहे हैं. 'चंदन सा बदन, चंचल चितवन' जैसा गाना इस जल्दबाजी में कैसे बनेगा भला?

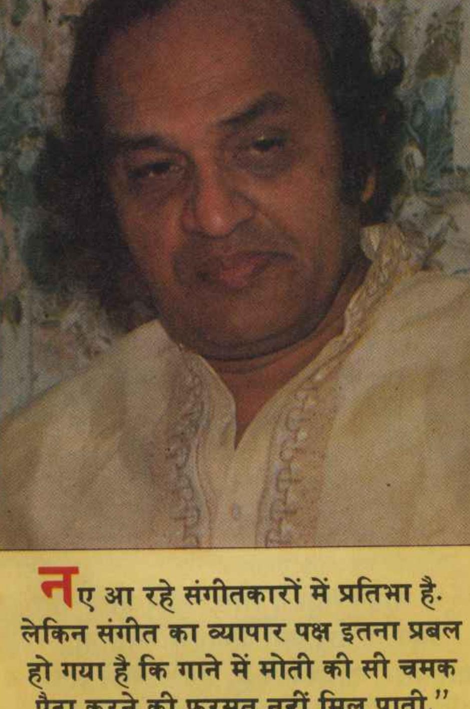

"नए आ रहे संगीतकारों में प्रतिभा है. लेकिन संगीत का व्यापार पक्ष इतना प्रबल हो गया है कि गाने में मोती की सी चमक पैदा करने की फुरसत नहीं मिल पाती."

पहले जमाने के मीठे गीत पब्लिक या तो फिल्मों में ही देख पाती थी या सिर्फ रेडियो से सुन पाती थी. इसलिए उनकी मिठास धीरे-धीरे गहरी उतरती चली जाती थी और अपनी एक स्थायी जगह बना पाती थी. आज ऐसा नहीं है. आज अगर गाना हिट हुआ तो फिल्म, टीवी चित्रहार, टीवी अंताक्षरी के जरिये इतनी बार, इतनी जगह, इतने तरीकों से बजता है कि सुनने वाला तंग आ जाए. इसलिए उसका स्थायी असर बन ही नहीं पाता.

मौजूदा हालात में हम जैसे संगीतकारों के लिए 'जगह नहीं रही' ऐसा नहीं है. सवाल यह है कि क्या हम इस माहौल में अपनी जगह चाहते भी हैं? अगर हम भी यही सोच लें कि धुन जैसी भी बनती है, बनाए जाओ. गाना जैसा भी लिखा जाता है,

लिखाए जाओ और कैसेट पर कैसेट भरे जाओ तो क्यों जगह नहीं है हमारे लिए? लेकिन जो लोग यह सोचते हैं कि गाना 'कमोडिटी' (जिंस) नहीं 'क्रिएशन' (रचना) है, वे आपाधापी में पड़ेंगे ही क्यों? जब हम ज्यादा बिजी थे तब भी हमने नए-नए लोगों को अवसर देकर आगे बढ़ाया और अब जब हमने गिनी-चुनी फिल्में लेने तक सीमित कर लिया है अपने आपको, तब भी हम नए लोगों को सिखा रहे हैं, उन्हें नए जमाने की नई चुनौतियों के बीच संगीत की सुगंध कायम रखने योग्य बना रहे हैं.

गुलज़ार

'शरारत में शराफ़त भी घुली-मिली हो'

फिल्मी गीत-संगीत का स्तर आज सचमुच वैसा नहीं है जैसा पच्चीस-तीस बरस पहले हुआ करता था. आज न वैसी धुनें हैं, न वैसे गीत. ऐसा क्यों हुआ इसकी वजह जानने के पहले ये सवाल पूछे जाने जरूरी हैं—क्या आज की फिल्में, उनकी कहानियां, उनमें दर्शाए जाने वाले जीवन मूल्य, डांस, शालीनता वगैरह वैसी है? तो हर बात का जवाब वही एक होगा—नहीं. अगर कोई भी चीज वैसी नहीं है तो फिर सिर्फ यही क्यों कहा जाए कि गीत-संगीत के स्तर में गिरावट आई है? गिरावट तो चहुंमुखी है.

"जब संगीत का काम मारपीट के दृश्य को उभारना या लड़की छेड़ने में सहयोग देना रह गया हो तो 'मैं तेरा बैंड बजा दूंगा...' जैसी चुनौतियां ही बाकी रह जाती हैं लिखने को."

यह गिरावट मुझे चिंतित करती है. आज का यह सारा समाज, युवा वर्ग के जीवन मूल्य किधर जा रहे हैं? फिल्म का गीत-संगीत तो बहुत मामूली बात है. देश का सारा भविष्य क्या इन्हीं के सहारे बनेगा? लोग कहते हैं एमटीवी का बड़ा हाथ है युवकों को बिगाड़ने में. लेकिन एमटीवी तो अब आया है हिंदुस्तान. हमारी फिल्मों ने तो इसके बहुत पहले उससे कहीं ज्यादा सब कुछ दिखाना शुरू कर दिया था जो एमटीवी आज भी नहीं दिखा रहा और जो कभी भी नृत्य-संगीत की हमारी समृद्ध परंपरा का हिस्सा नहीं था. हमारी फिल्मों में हीरो-हीरोइन आज जिस तरह के डांस कर रहे हैं वह है ऊपरी तौर पर 'पीटी' और सांकेतिक तौर पर रतिक्रिया. यह अश्लीलता एमटीवी में नहीं है. माइकल जैक्सन पर यह अभियोग तो कोई नहीं लगा सकता कि वह वल्गर (अश्लील) है, चीप (फूहड़) है.

इस सारी बात का मतलब यह नहीं है कि फिल्मी गीत-संगीत इतने खराब हो चुके हैं कि सारे समाज को, युवा वर्ग को पथभ्रष्ट किए दे रहे हैं. बात बिलकुल उलटी है. सिनेमा देखकर कोई भ्रष्ट नहीं होता बल्कि सिनेमा समाज को देखकर भ्रष्ट हुआ है. सिनेमा तो समाज का ही ऐसा प्रतिबिंब है जो बिंब में कुछ जोड़ नहीं सकता. जो कुछ वहां विशाल पैमाने पर हो रहा है, सिनेमा ने उसी को प्रतीक रूप में ले लिया है, बस.

इसी बात को उदाहरण के तौर पर ले लीजिए तो आपको फिल्म संगीत की बदलती भूमिका समझ में आ जाएगी और यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि हमें उसमें गिरावट क्यों दिखाई देती है. फिल्मों में जब ऐक्शन, मारामारी और ऐसे ही कई करतब दिखाए जाते हैं तब इन सबके साथ म्यूजिक पूरा चलता रहता है. यानी सारी कार्रवाई एक तरह का म्यूजिकल बैले (संगीतमय नृत्यनाटिका) है. मुझे इसमें तो हिंसा दिखाई नहीं देती कहीं पर. हां, हिंसा वह है जिसकी वजह से कश्मीर की सड़कों पर चलते आदमी के पांव कांपते रहते हैं, हिंसा वह है जिसकी वजह से आज बिलकुल शांत कहे जाने वाले बंबई के बेहरामपाड़ा इलाके में कोई शाम को कदम रखना नहीं चाहता. फिल्मों की हिंसा हिंसा नहीं म्यूजिकल मनोरंजन है. और चूंकि आज का संगीत, आज के गीत इस हिंसा के पूरक के तौर पर आने लगे हैं, हमारे चित्त को दुखी करते हैं. गीत-संगीत वही भाता है हमें जो हमारे मन को शांति पहुंचाता है.

जब संगीत का काम मारपीट के दृश्यों को उभारना या लड़की छेड़ने में सहयोग देना रह गया हो तो 'मैं तेरा बैंड बजा दूंगा...' जैसी चुनौतियां ही बाकी रह जाती हैं लिखने को. इसमें गीत लेखकों का क्या कसूर? काव्य रचना की गुंजाइश है कहां जो उनसे इसकी उम्मीद की जा सके? इसीलिए गाने पहले 'फ्री वर्स' की तर्ज में हुए फिर 'वर्स' की जगह 'प्रोज़' यानी गद्य जैसे हुए और अब यह गद्य भी घटिया लिखा जा रहा है. जहां तक 'चोली के पीछे...' वाले गाने की बात है, बहुत खूबसूरत है यह गाना लेकिन सिर्फ धुन के लिहाज से. यह धुन बार-बार गुनगुनाने को जी चाहता है. वजह शायद यह है कि यह लोक संगीत है. उसमें अपनी अलग मिठास होती है. ग्रामीण रंग-ढंग, वह चाहे रहने-सहने का हो, कपड़े पहनने

का हो, बोलचाल का हो या गीतों का, अनगढ़ होता है. जब सारा परिवेश ग्रामीण ही हो तो यह अनगढ़ता उसमें खप जाती है. लेकिन जब बाकी सारी बातें 'सॉफेस्टिकेटेड' (नफासत भरी) कर दी गई हों तो सिर्फ शब्द रचना को वैसे ही रहने देना पैबंद जैसा लगता है. इसलिए हमारे एस्थेटिक्स (सौंदर्यबोध) को खटकता है. शब्द बदल दिए जाते तो यह गाना सचमुच सुंदर हो सकता था. थोड़ी सेक्सी बात शालीन ढंग से भी तो कही जा सकती है.

सुधार के लिए किसी एक चीज को सिंगल आउट नहीं किया जा सकता. एक-दो गाने बैन कर देने से हमारे सारे नैतिक मूल्य सुधर जाएं ऐसा तो हो नहीं सकता. इसलिए मैं भी वही कहना चाहूंगा जो इस गाने को लेकर माधुरी दीक्षित ने कहीं कहा है—'इस गाने में शरारत है. टीजर सांग है यह.' शरारत तो थोड़ी बहुत हर जगह चलती रहती है. मैं यह नहीं चाहता कि हमारा युवा वर्ग शरारत छोड़कर सीधे ही बूढ़ा हो जाए पर यह जरूर चाहता हूं कि शरारत में शराफ़त जरूर घुली-मिली हो.

लेकिन अच्छी चीजों के प्रशंसक रह ही नहीं गए देश में, ऐसा नहीं है. आखिर 'रूदाली' के गाने कमर्शियल फिल्मों के गानों के मुकाबले में टॉप पर रहे ही. हमारे दर्शक तो बेहद 'इनोसेंट' हैं. आप ईमानदारी बरतिए, अच्छी चीजें पेश कीजिए उनके सामने, वे इतनी इज्जत देंगे आपको कि निहाल हो जाएं आप.

बप्पी लहरी

'बदलती जरूरतों को भी ध्यान में रखें'

कल कल था, आज आज है. हमारे उन नामचीन म्यूजिक डायरेक्टरों और उनके साथ गाने लिखने वाले उन गीतकारों ने, जिनका नाम आज भी बड़ी इज्जत के साथ लिया जाता है, जो कुछ किया वह जरूर ऐसा था जैसा आज हम नहीं कर रहे. लेकिन हम इसलिए वैसा कुछ नहीं दे रहे कि आज उसी की जरूरत कहां है? अब तो कुछ नया ही देना होगा. जब कोई नया सिंगर आता है, कोई नया राइटर आता है तो उससे सब यही कहते हैं, रफ़ी जैसा मत गाइए, लता जी की कॉपी मत कीजिए, साहिर बनने की कोशिश न कीजिए, कुछ नया दीजिए. लेकिन म्यूजिक डायरेक्टर जब कुछ नया करते हैं तो उसे तुरंत घटिया बताया जाने लगता है. क्यों?

दुत्कारने का रिवाज बड़ा पुराना है हमारे यहां. लता जी ने गाना शुरू किया था तब लोगों ने कहा था, नूरजहां की नकल है. किशोर दा को यह कहकर बेकार साबित करने की कोशिश की गई कि वे कुंदनलाल सहगल के दीवाने हैं. वही लोग बाद में इन कलाकारों के प्रशंसक हो गए. जो धुनें बांबे टॉकीज की म्यूजिक डायरेक्टर सरस्वती देवी ने बनाई थीं, क्या उनमें सुधार और फेरबदल करके अगली पीढ़ी के म्यूजिक डायरेक्टरों ने उनसे बेहतर गाने नहीं बनाए? लेकिन जैसे इन नए गानों की वजह से सरस्वती देवी के किए काम की अहमियत कम नहीं हो सकती उसी तरह उनके काम की वजह से इन नए गानों को कम नहीं आंका जा सकता. यह बात हर उस काम पर लागू होती है जो पहले किए जा चुके किसी काम से प्रेरणा लेकर किया गया हो या किया जा रहा हो.

फिल्म में म्यूजिक फिल्म की थीम, उसके सब्जेक्ट के कलर के मुताबिक दिया जाता है. सब्जेक्ट के मुताबिक ही डायरेक्टर गाने की सिचुएशंस निकालकर म्यूजिक डायरेक्टर को बताता है. म्यूजिक डायरेक्टर न तो सब्जेक्ट बदल सकता है, न सब्जेक्ट का ट्रीटमेंट और न ही दी हुई सिचुएशन का मूड. उसमें अगर नौजवान लोग मौज-मस्ती कर रहे हैं तो उनकी एप्रोच यही होगी कि 'दिन को खाओ पिओ, रात को आराम करो...' इस तरह की सिचुएशन पर मैं इंदीवर जी से 'चंदन सा बदन चंचल चितवन, धीरे से तेरा वो मुस्काना' जैसी पोएट्री लिखने की जिद करूं तो वे भी मुझे मूर्ख कहेंगे, आप भी. जिन प्रोड्यूसरों ने नई पीढ़ी को ध्यान में रखकर फिल्में बनाई और हीरो की इमेज माइकल जैक्सन देने की कोशिश की उन्हें मैं शास्त्रीय आधार का गाना कैसे देता? जहां जरूरत थी, गुंजाइश थी वहां मैंने क्लासिकल भी दिया. मसलन, बंगला फिल्म 'गुरुदक्षिणा' में मैंने क्लासिकल बेस म्यूजिक भी दिया था जो बड़ा पसंद किया गया. फिर मेरे फास्ट म्यूजिक वाली हिंदी फिल्में हिट हुईं और उनकी धुनों पर नाचने वाले हीरो मिठुन चक्रवर्ती अपने देश के अलावा और कई देशों में बेहद पॉपुलर हो गए तो मेरे पास वैसा ही काम ज्यादा आने लगा. मैं उसी तरह के काम का एक्सपर्ट हो गया. उस फास्ट

आलोचना करने के पहले फिल्म मीडियम की बदलती जरूरतों को ध्यान में रखना चाहिए. इनको ध्यान में रखते हुए गीतों में पोएट्री भी आए तो सोने में सुहागा."

म्यूजिक में जिस तरह का गाना फिट हो सकेगा उसी तरह का गाना ही तो लिखेगा गीतकार भी. मेरे कुछ गानों में उन्होंने पोएट्री नहीं लिखी तो इसका मतलब यह तो नहीं हो गया कि वे तमाम गीतकार पोएट ही नहीं रहे.

फिल्म के म्यूजिक की जो खास तरह की जरूरतें हैं, जो मैंने अभी बताई जैसे फिल्म की थीम की मांग. उन बंदिशों की वजह से कई बड़े कवि फिल्मों के लिए लिखने को आकर्षित नहीं होते. उन्हें लगता है कि इससे उनकी प्रतिभा जाया होती है. फिल्मी गानों में गीत से ज्यादा महत्व धुन को मिलता रहा है. प्रोड्यूसर चाहते हैं कि धुन ऐसी हो जो झट जबान पर चढ़ जाए. इसीलिए धुन पहले बनती है, गाना बाद में लिखाया जाता है. यह बात भी काफी हद तक सही है कि जबान पर आसानी से चढ़ जाने वाली धुन पर गाना कैसा भी लिखा हो, चल ही जाता है. 'एक दो तीन चार पांच छह' को कोई भी गाने की लाइन नहीं मानता लेकिन गुनगुनाते तो रहे ही लोग इसे.

मैं तेजरफ्तार गानों का हिमायती हूं, इसका मतलब यह नहीं है कि मैं पोएट्री का विरोधी हूं. लेकिन इसी के साथ इतना मैं जरूर कहना चाहता हूं कि पिछले जमाने में भी हर फिल्म, हर गाने में पोएट्री नहीं हुआ करती थी. यह कमी कोई आज के जमाने की ही देन नहीं है. फिल्मी गीतों की आलोचना करने के पहले फिल्म मीडियम की रोज बदलती जरूरतों को ध्यान में रखना चाहिए. इन जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अगर गीतों में पोएट्री भी आ सके तो सोने पर सुहागा जैसी बात हो जाए, इस तथ्य से भला कौन इनकार कर सकता है.

रवींद्र जैन

'संस्कारहीनता कल भी थी, आज भी है'

इस बात से मैं कतई सहमत नहीं हूं कि सिनेमा का गीत-संगीत कल अच्छा था और आज विकृत हो चुका है. वह न कल विकृत था और न आज सुसंस्कृत है. उसमें संस्कारहीनता कल भी थी, आज भी है. सिनेमा के गीत-संगीत को दोषी ठहराने के पहले यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे गीत क्यों लिखे या लिखवाए जाते हैं जो परिष्कृत रुचि के लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हैं. इस सबकी वजह यह है कि मनोरंजन की जरूरत पूरा करना सिनेमा की पहली जिम्मेदारी है. वह कोई मेसेज (संदेश) दे न दे यह निर्माता, या निर्देशक की इच्छा.

फिल्म के दर्शकों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है — शालीन और मनमौजी. शालीन लोग हर बात पर नहीं हंसते. हंसते हैं तो सिर्फ मुस्करा भर देना काफी लगता है उन्हें. उन्हें जल्दी खुश कर सकना मुश्किल है. मनमौजी तो मनमौजी ही होते हैं. गाने का कोई मुखड़ा, कोई अंतरा पसंद आ गया तो दनादन सीटियां बजा दीं. डांस पसंद आ गया तो सिक्के उछाल दिए परदे पर.

सिनेमा की मुश्किल यह है कि इन दो तरह के दर्शकों के लिए सिनेमाघर दो तरह के नहीं होते. एक ही सिनेमाघर में एक ही समय में फिल्म को दोनों को संतुष्टि देनी होती है. फिल्मी गीत किसी भी फिल्म का अहम हिस्सा होते हैं. इसलिए निर्माता-निर्देशक हमेशा यह चाहते हैं कि जहां कुछ गाने गंभीर लोगों की रुचि के हों वहीं कुछ ऐसे भी हों जो आगे की सीटों पर बैठे लोगों को परदे पर चवन्नी उछालने के लिए मजबूर कर दें. इसलिए थोड़े सेक्सी गाने पहले भी फिल्मों में डाले जाते थे, आज भी रखे जाते हैं. यह कोई नई बात नहीं है. जोश मलीहाबादी फिल्मों में गाने लिखने आए तो उन्होंने भी 'मेरे जोबना का देखो उभार...' जैसा गाना लिखा ही. तब क्या कोई कहर टूट पड़ा था? नहीं. तो फिर आज फिल्मी गीतों के स्तर को लेकर इतनी परेशानी क्यों होने लगी है सबको?

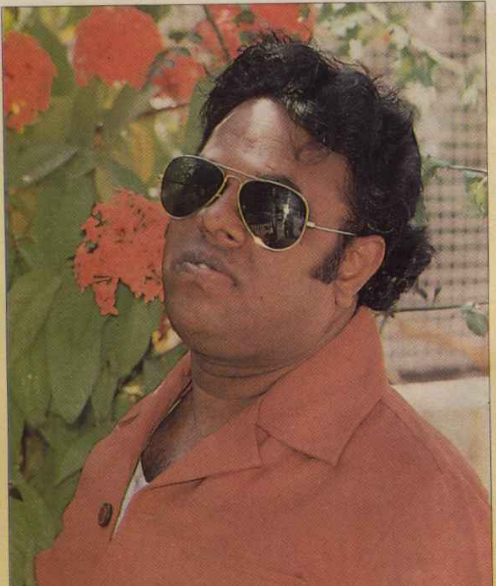

जोश मलीहाबादी फिल्मों में लिखने आए तो उन्होंने भी 'मेरे जोबना का देखो उभार...' जैसा गाना लिखा ही. तब क्या कोई कहर टूट पड़ा था? तो फिर आज इतनी परेशानी...''

बात तो इस देश के उन संस्कारों की है जिनकी जड़ें गहरी जमी हुई हैं. यहां तो सेक्स और अध्यात्म हमेशा साथ जिए हैं, साथ चले हैं, साथ फले हैं. दोनों को एक-दूसरे से कभी आपत्ति नहीं हुई. दोनों के ही नतीजे स्वस्थ रहे हैं. तब फिर हम आज किसी गीत पर आपत्ति करके कैसे निर्मूल कर देंगे इस भावना को? जिसको जो पसंद आएगा उसी तरफ तो जाएगा वह.

जिंदगी में कठिनाइयां बहुत हैं. उनसे जूझते-जूझते जिंदगी में एकरसता आ जाती है. इसको तोड़ने की कोशिश गीतकार का फर्ज है. पहले जमाने में जब फिल्म संगीत नहीं था, ऑडियो कैसेट्स नहीं थे, तब लोक संगीत था. तब भी जनसामान्य गीतों के सहारे ही जिंदगी को सुख-

सहारे ही जिंदगी को सुख-दुख सहने लायक बनाता था. उस कोशिश में कुछ मौके ऐसे भी शामिल किए गए जब कुछ भी कहने पर कुछ भी प्रतिबंध न हो और लोग मन में उमड़ आने वाली उत्तेजक कल्पनाओं को शब्दों के सहारे व्यक्त करके पुनः स्वस्थ मन हो सकें.

सेक्सी गाने तो फिल्मों में पहले भी आते रहे हैं, 'ओ गोरे-गोरे ओ बांके छोरे कभी मेरी गली आया करो...चाहे रोज बुलाया करो', 'सात सहेलियां खड़ी-खड़ी...' या 'मेरे अंगने में तुम्हारा क्या काम है'...जैसे गीत अश्लील ही माने गए थे. कल कौन-सा ऐसा बुरा असर पड़ गया था जो आज पड़ जाएगा?

आज फिल्म संगीत गांव-गांव और घर-घर बजता है. लोकगीतों की जगह भी इसी ने ले ली है. इसलिए जब कोई गीतकार या संगीतकार किसी लोकधुन के आधार पर गीत-संगीत की रचना करता है तो गाना ज्यादा लोकप्रिय होता है. लेकिन किसी अश्लील लोकगीत को फिल्म में किसी भी बहाने शामिल कर लेना और फिर यह कहना कि यह तो गांवों में गाया ही जाता है, सचाई के साथ अन्याय करने जैसा है. अश्लील लोकगीत खास मौकों पर खास मनोभाव के मुताबिक गाए जाते हैं, हर कहीं नहीं. इसलिए लोकगीतों की मधुरता को आसान शब्दावली में, थोड़ा फेरबदल कर इस तरह पेश करना गीतकार का फर्ज है कि उसमें मर्यादाओं से बाहर जाती बातों पर अंकुश लग जाए.

हिंदी फिल्मी गीतों में विदेशी धुनों की नकल के अलावा भी कुछ रचा जाता है, कुछ कहा जाता है, कहा जाता रहा है जिसमें दिल को छू लेने की ताकत है. बगैर किसी उपदेश, बगैर किसी 'प्रीचिंग' के दो-तीन मिनट के अंदर कोई सारगर्भित बात कह देने की कला ने ही फिल्मी गीतों को इतनी अपार लोकप्रियता प्रदान की है, इस तथ्य को भूलना नहीं चाहिए.

किसी भी फिल्म का कोई भी गाना सिर्फ एक वजह से हिट नहीं हो सकता. हिट होता है हमेशा 'टोटेलिटी' पर, अपने संपूर्ण प्रभाव पर. उसकी धुन अच्छी हो, उस पर रचे गए शब्दों में सरलता व कविता दोनों हों. गाया अच्छा गया हो, फिल्म में उसे ठीक 'सिचुएशन' में रखा गया हो और सबसे बड़ी बात, उसे फिल्माया भी बढ़िया ढंग से गया हो तभी चलता है वह. इसलिए यह कहना कि द्विअर्थी बोलों की वजह से गाना चल पड़ा, गलत है. इनमें से किसी चीज में कमी रह गई तो अच्छा गाना बरबाद हो जाता है. अगर उसे बनाया और फिल्माया ही इस नजर से गया हो कि वह सेक्स संबंधी उत्तेजना पैदा करे तो क्या चोली की जगह होली कह देने से उसका सेक्स समाप्त हो जाएगा? और अगर उसे सचमुच होली की निश्छल भावना से लिखा और फिल्माया गया होगा तो क्या उसमें सिर्फ चोली जोड़ देने से उसमें से सेक्स टपकने लगेगा? बचकानी बातें हैं ये सब.

उदित नारायण

'आज जमाना तेज रफ्तार का है'

जिस समय मेरे गाए हिंदी फिल्मी गाने पहली-पहली बार हिट होने शुरू हुए जैसे, 'क्या करते थे साजना, तुम हमसे दूर रह के...' वगैरह, तब सबने यही कहा कि फिल्मी गानों में वह मेलडी (माधुर्य) फिर वापस आ गई है जो हल्ले-गुल्ले वाले गानों में पिछले कई बरसों से गुम थी. इसका मतलब यह हुआ कि आज के जमाने के संगीत में ऐसा कुछ नया आकर्षण तो आया जो 10-15 साल से दिखाई नहीं दे रहा था. तो फिर ऐसा कैसे कहा जा सकता है कि फिल्मों के गीत-संगीत में गिरावट आई है? यहां तो मामला उलटा है. आज के गानों में मेलडी ज्यादा है, कुछ वैसी ही जैसी स्व. रोशन साहब के म्यूजिक में होती थी, मदनमोहन जी, जयदेव जी या ओ.पी. नैयर जी के जमाने में होती थी.

आज का फिल्म संगीत पहले से खराब क्यों माना जाता है यह भी मैं नहीं समझ पाता. बीच में एक दौर आया था जरूर जब पश्चिमी हल्ला-गुल्ला हमारी फिल्मों में भी घुस आया था लेकिन वह टिकने वाली चीज नहीं थी, सो नहीं टिकी. और जो टिकी वह वही थी जिसे हम सब हसरत से याद करते हैं, जिसे फिल्म संगीत का स्वर्णकाल कहते हैं. उस समय रोशन जी ने एक से एक कमाल गाने दिए थे. आज के जमाने में उसी परंपरा को बढ़ाते हुए उनके काबिल बेटे राजेश रोशन ने हिट गाने दिए हैं. पिछले समय के संगीत निर्देशकों में चित्रगुप्त जी की अपनी एक खास जगह थी. आज के जमाने में उनके बेटों आनंद-मिलिंद ने उनके अच्छे काम को और अच्छा करके आगे बढ़ाया. मेरे कहने का मतलब है कि जो पुरानी परंपराएं थीं, वे बेहतर

तब का दिल मांगता था फुरसत के रात-दिन...आज के जमाने की खासियत है—तेजी. आज का संगीत, फिल्मी गीत तेजरफ्तार वालों का साथ दे रहे हैं."

होकर आगे भी तो आई हैं. उन्हें भूलकर, दो-चार घटिया गानों की वजह से यह सोच लेना कि सब कुछ बरबाद हो गया और हम अंधेरे की तरफ जा रहे हैं, मेरे खयाल से नकारात्मक सोच है. और हमें इसे छोड़ना चाहिए.

जहां तक निजी अनुभव की बात है, मेरे पास अब तक कोई प्रोड्यूसर, डायरेक्टर किसी घटिया गाने का प्रस्ताव लेकर नहीं आया. घटिया का मतलब मेरे लिहाज से वह है जिसे हम वल्गर (अश्लील) कहते हैं. वह गाना जो मैं अपनी मां या बहनों के सामने नहीं गा सकता. लेकिन हल्की-फुल्की छेड़छाड़ के गानों के लिए मेरे पास ढेरों लोग आते हैं. सारी पब्लिक सिर्फ वल्गर गाने ही मांगने लगी हो ऐसा तो नहीं है. तो फिर मैं यह कैसे मान लूं कि गानों का स्तर गिरा है या लोगों की रुचि खराब हो गई है? अच्छे काम के लिए पहले भी बहुत जगह थी, आज भी बहुत जगह है. कभीकभार, टेस्ट बदलने के लिए एक-दो गाने पहले भी जरा ज्यादा ही खुले शब्दों वाले, खुले इशारों वाले रिकार्ड हो जाते थे, अब भी हो जाते हैं. यह सोचना कि उनकी वजह से हमारी नौजवान पीढ़ी भ्रष्ट हो जाएगी, नौजवानों का अपमान करना है. बीते जमाने में भी फिल्मी गानों की सिचुएशंस वही थीं जो आज हैं. छेड़छाड़ बीते जमाने में भी होती थी, आज भी हो रही है. बात कहने के अंदाज में थोड़ा-बहुत फर्क आया है, आना ही था और आना ही चाहिए. वक्त तो हर रोज बदल रहा है. लेकिन बदलने का मतलब यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि सब कुछ खराब होता जा रहा है.

पिछले जमाने के दिल को ऐसी जगह जाने की तमन्ना थी जहां कोई न हो, तब का दिल मांगता था—फुरसत के रात-दिन. गाने की लय में भी यह फुरसत, यह अकेलापन झलकता थे और अच्छा भी लगता था. आज के जमाने की खासियत है—तेजी. बैलगाड़ी में चलने वाले लोग तक रेलगाड़ी में चलने लगे हैं. आज का संगीत, आज के फिल्मी गीत इन्हीं तेज रफ्तार वालों का साथ दे रहे हैं.

आनंद-मिलिंद

'फ्लॉप का खौफ जो न करवाए!'

हम दोनों भाइयों ने आंखें ही संगीत के माहौल में खोलीं. पिता जी (चित्रगुप्त) फिल्मों में संगीतकार थे इसलिए गीतकारों और गायकों का घर पर आना-जाना लगा ही रहता था. हम भी उनकी बातें सुना करते थे. आज का फिल्म संगीत अब पहले जैसा नहीं रहा, इसमें दिन पर दिन गिरावट आती जा रही है—यह बात हम तब भी सुनते थे जब बच्चे थे. आज भी सुन रहे हैं जब हम खुद म्यूजिक डायरेक्टर हैं और कई फिल्मों में हमारा संगीत बहुत सराहा जा चुका है. इसका मतलब यह है कि 'गिरावट' जैसी शायद कोई चीज अपने आप में नहीं है और इसे तुलनात्मक रूप में ही लिया जा सकता है. पिछले जमाने के लोग आज के गीत-संगीत का मुकाबला अपने समय के गीत-संगीत से करते हैं जो उन्हें बहुत बढ़िया लगता था. इसलिए उन्हें आज के गीत पहले जैसे नहीं लगते. इसी तरह जो आज के गानों, आज के संगीत निर्देशकों और आज के गायकों को बहुत चाहते हैं उन्हें हो सकता है आने वाले कल का संगीत उसी तरह पसंद न आए जैसे बीते हुए कल का संगीत आज की नौजवान पीढ़ी को अच्छा नहीं लगता.

इसका यह मतलब नहीं कि आज की नौजवान पीढ़ी की तरह हमें पुराना संगीत नापसंद हो. संगीत की नजर से देखें तो उसमें

Chandras' Chemical Enterprises Ltd.
P-35 CIT Road Scheme-52 Calcutta-700 014

HTA-3100-94

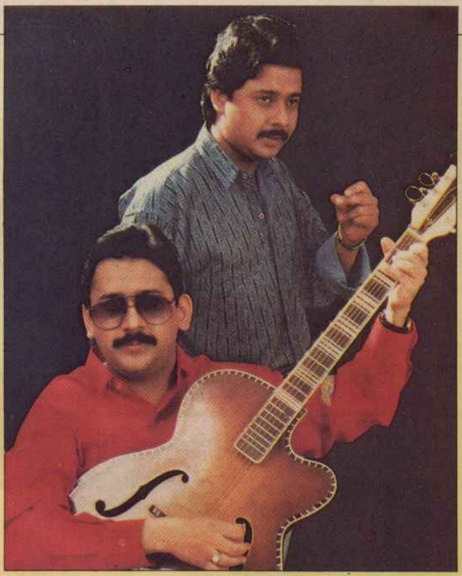

"फिल्म इंडस्ट्री में जो जितना बड़ा है वह फ्लॉप से उतना ही डरता है... इस घबराहट में बड़े नामी लोग भी ऐसे कदम उठा लेते हैं जिनकी उनसे उम्मीद नहीं की जाती."

कोई कमी तो है नहीं. लेकिन अगर आज कोई हमें सलाह दे कि स्व. सहगल साहब के मिजाज की तर्ज बनाएं तो मुश्किल तो होगी ही. हमें अपने समय, अपने श्रोताओं की मांग को देखते हुए काम करना है. आज के श्रोताओं पर पश्चिम का प्रभाव ज्यादा है, यह बात सही है. हमारे ऊपर भी है. हम भी इलेक्ट्रॉनिक गिटार जैसे कई साज इस्तेमाल करने लगे हैं जो हमारे पिता चित्रगुप्त के संगीत में नहीं हुआ करते थे. लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि हमने बांसुरी छोड़ दी है. आज की पीढ़ी को तेज रफ्तार पसंद है लेकिन उसकी वजह से आराम की अहमियत कम नहीं हो जाती. जहां धीमा संगीत चाहिए वहां भी डिस्को ही डालिए, ऐसा तो नहीं कहती नई पीढ़ी. संगीत की तरह नृत्य भी अब तेजरफ्तार ही पसंद किए जा रहे हैं. लेकिन गज़ल की कशिश को तो कुछ नहीं कहा नई पीढ़ी ने. आप देखिए पीनाज़ मसानी और तलत अज़ीज़ जैसे युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि क्या बढ़िया गज़लें गा रहे हैं.

फिल्में चुनना संगीत निर्देशक के हाथ में नहीं होता क्योंकि उसका तो खुद चुनाव किया जाता है. फिल्म कैसी होगी इसका थोड़ा अंदाजा प्रोड्यूसर के, बैनर के काम से और नाम से लग जाता है. दादा कोंडके किस किस्म के सब्जेक्ट पसंद करते हैं, कौन नहीं जानता? वहां शुरू में ही ना कहा जा सकता है. लेकिन अगर बाद में निर्माता कोई ऐसा गाना रिकॉर्ड कराना चाहे जो हमें पसंद नहीं, तो समझाने-बुझाने का सहारा लेना पड़ता है. हम तो बस इतना ही कहते हैं कि हमें समझा दीजिए कि यह गाना गलत असर नहीं

ला ओपाला : चाय का एहसास एक नये अंदाज़ में

शुभ्र-सफ़ेद ओपल ग्लास की सुन्दरता ।

न चिटखे, न ही दाग पकड़े ।

फूलदार डिज़ाइनों की क़तार ।

ला ओपाला

ओपल ग्लास टेबलवेयर

ला ओपाला रेंज–अब विविध डिज़ाइनो में सुलभ । पूरा सेट लें या एकाध । अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें : ला ओपाला ग्लास प्राइवेट लिमिटेड, एच एम-२८ कैलाश कॉलोनी, नई दिल्ली ११० ०४८, फ़ोन ६४६५९४२ ।

Contract LO 140.93 HIN

कौन कहता है आपके बालों की समस्याओं का समाधान केवल विग या डाई ही है?

जब आपके गंजे सिर पर घने बाल आ सकते हैं तो फिर आप विग का प्रयोग क्यों करें? या फिर जब आपके सफेद बाल स्थायी एवं प्राकृतिक रूप से काले हो सकते हैं, तो उन्हें आप डाई क्यों करें?

सैनी हेयर सेंटर गंजापन, रूसी दूर करने, बालों को झड़ने से रोकने, हलके बालों को घना करने तथा सफेद बालों को काला करने के लिए एक औषधि प्रस्तुत करते हैं। इनके आयुर्वेदिक ट्रीटमेंट से कुछ ही दिनों में नए बाल आ जाते हैं तथा हरबल फॉर्मूलेशन का प्रयोग करने से मात्र 4 से 5 दिन के भीतर बाल झड़ने बंद हो जाते हैं। इसी तरह से ओरल मेडिकेशन द्वारा कुछ ही दिनों में सभी आयु के पुरुषों, महिलाओं तथा बच्चों के सफेद बाल बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के काले होने लगते हैं।

सैनी हेयर सेंटर लगभग एक दशक से बालों का रोगोपचार करने में कार्यरत है और भारत तथा विदेश में अपने हजारों क्लाइंट्स में नए विश्वास का भी संचार किया है।

यहाँ से काटिए और निम्नलिखित पते पर भेज दीजिए।

मैं आपके द्वारा इलाज की अधिक जानकारी चाहता हूँ! कृपया मुझे अपनी मुफ्त पुस्तिका भिजवा दें।

नाम ....

पता ....

....

सैनी हेयर सेंटर

17, 19, 20 कनिष्क शॉपिंग कॉम्प्लेक्स,
कनिष्क होटल, अशोक रोड, नई दिल्ली,
फोन: 3722279, 3711629, 3324511 एक्सटेंशन 299
टेलेक्स: 63421, 62012 डीबीएसडी इन
फैक्स: 91-11-3312830
समय प्रात: 10 बजे से सायं 7 बजे तक (रविवार बंद)

सैनी हर्बल हेयर ऑयल का निर्यातक

डालेगा और आपकी फिल्म के लिए फायदेमंद रहेगा. इसके बाद कोई अड़ता नहीं है. लेकिन जब संगीत निर्देशक नए होते हैं या किसी कम नामी संगीतकार को किसी बड़े बैनर में काम करने के लिए चुन लिया जाता है तब समझौता करना ही पड़ता है. ऐसा पहले जमाने में भी होता था, आज भी होता है.

फिल्म इंडस्ट्री में जो जितना बड़ा है, वह 'फ्लॉप' से उतना ज्यादा डरता है. साथ में यह भी सही है कि हमेशा 'हिट' फिल्में देते रह सकना हर किसी के लिए भी मुमकिन नहीं. एक बार हाथ में आई हुई सफलता जब फिसलने लगती है, तब घबराहट में बड़े नामी लोग भी ऐसे कदम उठा बैठते हैं जिनकी उनसे उम्मीद नहीं की जाती.

यह बात जितनी अधिक हिंदी फिल्म के प्रोड्यूसरों के लिए सही है, उतनी ही निर्देशकों, संगीत निर्देशकों और गीतकारों के लिए भी सही है.

अल्का याज्ञिक

'रेत में गरदन दबाएंगे तो पीछे रह जाएंगे'

कोई प्रोड्यूसर किसी से जबरदस्ती तो करता नहीं गाने के लिए. सभी गायक या गायिका खुद कोशिश करके ही बनते हैं. मुझे अपने काम पर कोई अफसोस नहीं क्योंकि मैंने दबाव में कोई भद्दा गाना गया नहीं. मेरे लिए हर नया दिन एक नई चुनौती लेकर आता है. उस चुनौती पर पूरा उतरने की फिक्र पहले भी होती थी, अब भी होती है. पहले सुरों की कोमलता पर ज्यादा जोर होता था आज उसकी जगह रफ्तार ने ले ली है. जिन्हें ज्यादा तेज रफ्तार अच्छी नहीं लगती उन्हें फिल्मी गीतों में गिरावट आती महसूस होती होगी. इसमें दोष न उनका है, न संगीत का, न गीतों का, न गाने वालों का और न धुन बनाने वालों का.

मिठास वाले गाने बनने बंद तो नहीं हो गए. और तेज संगीत वाले गानों को मैं बुरा ही समझती हूं, यह भी सही नहीं. सुनने वालों को जो चीज पसंद आएगी वही तो देनी होगी न उन्हें.

आज बरसों हो गए मुझे गाते हुए. मैंने तो यह कभी महसूस नहीं किया कि गानों में अश्लीलता हावी होती चली जा रही है. हां, पिछले समय से कुछ फर्क जरूर आया है. पर फर्क तो आएगा ही. क्या मुझमें फर्क नहीं आया? मेरे पहनावे में फर्क नहीं आया? मेरा रहन-सहन नहीं बदला? अगर ये सारे बदलाव मुझे बुरे नहीं लगे तो गानों में आ जाने वाला बदलाव ही मुझे दुखी क्यों करेगा? थोड़ा खुलापन लोगों के सोचने के तरीके में भी तो है आज. लेकिन उसे अश्लील तो नहीं कहा जा सकता.

रिकॉर्डिंग के समय सिंगर को यह पता नहीं होता कि उसका गाया गाना किस तरह पिक्चराइज किया जाएगा. सीधे-सादे शब्दों वाले गाने को भी इस तरह फिल्माया जा सकता है कि वह द्विअर्थी लगे. इसलिए अगर कभी सुनने-देखने वालों को कोई गाना भद्दा लगे तो हमेशा यह नहीं सोच लेना चाहिए कि सिंगर भी उसमें सहभागी है.

अगर गाना साफ-साफ ही वल्गर (अश्लील) हो तो मैं निर्माता, संगीत निर्देशक से बात कर लेती हूं कि मुझसे ऐसा गाना गाते नहीं बनेगा.

मैंने तेजी की जो बात कही थी उसका मतलब डबल मीनिंग वाली तेजी नहीं था. मैं उस म्यूजिक की बात कर रही थी जो रोज नए रूप में हमारे सामने आ रहा है. बाली ब्रह्मभट्ट का एक स्टाइल है, अपाचे इंडियन का दूसरा. विदेशों में रोज नए प्रयोग हो रहे हैं.

हमारे यहां भी इस सबका असर तो हुआ है. हमारा गुजराती डांडिया रास, गरबा और इसके गीत डिस्को हो गए हैं. रामायण रैप ढंग में रिकॉर्ड हो चुकी है. ये सब नए प्रयोग नई पीढ़ी ने कितनी तेजी और कितनी खुशी के साथ अपनाए हैं यह नवरात्रि में किसी भी गरबा डांस में देख लीजिए. इनमें हजारों लड़के-लड़कियां नाचने-गाने आते हैं. इन्होंने अपना रूप थोड़ा बदला है लेकिन वल्गरिटी तो नहीं आई इनमें. यही सब फिल्मों में भी हो रहा है. इस बात से अगर हम मुंह छिपाकर चलेंगे या परिवर्तन की इस आंधी में शुतुरमुर्ग की तरह रेत में गरदन दबा लेंगे तो पीछे रह जाएंगे और मैं पीछे रहना नहीं चाहती. ■

"गाने वाले को पता नहीं होता कि गाना किस तरह पिक्चराइज किया जाएगा. सो, गाना भद्दा लगे तो यह नहीं सोचना चाहिए कि सिंगर भी उसमें सहभागी है."

Celebrate the feeling...
W.D.&H.O.WILLS
GOLD FLAKE
HONEY DEW.
QUALITY THAT'S FOREVER
FILTER KINGS
W.D.&H.O.WILLS
GOLD FLAKE
HONEY DEW.
STATUTORY WARNING
CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH
MADE IN INDIA
Every genuine WILLS GOLD FLAKE cigarette bears the name W.D. & H.O. WILLS
STATUTORY WARNING CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH
A BRAND OWNED
BY I.T.C. LTD.
MADE IN INDIA

ह मा रा ब जा ज

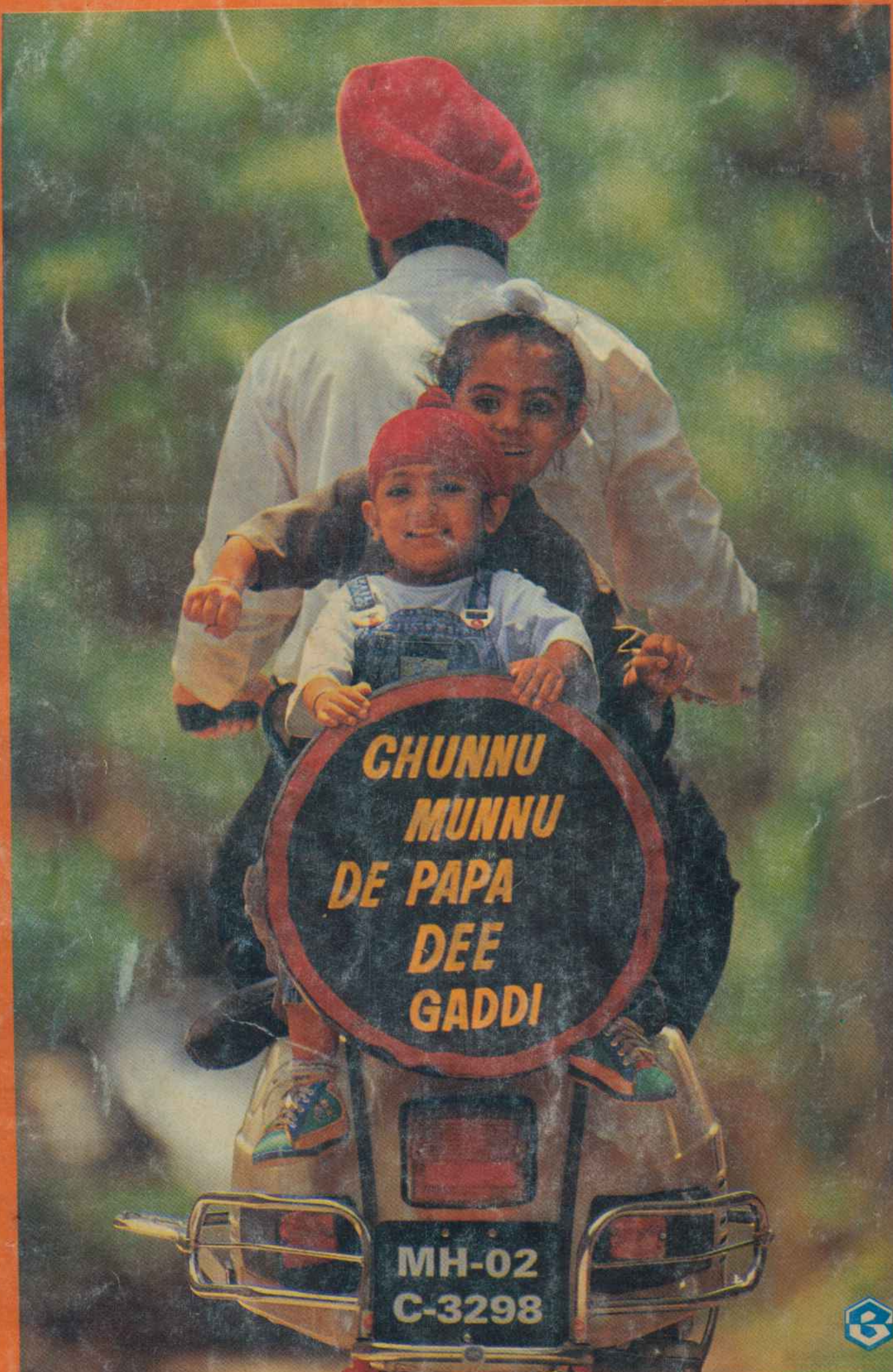

फ़ा य दे
की बा त
ब र सों का
सा थ

bajaj auto
आकुर्डी, पुणे 411035

TAS BAJ SCT 249 2720 HI